

मूल्य दो रुपये

ॐ

प्रेम-दर्शन

देवर्षि नारद विरचित

(भक्तिसूत्र)

प्रेमरूपा भक्तिका
सुन्दर वर्णन
व्याख्या सहित



हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रकाशक—गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्य के कागजपर मुद्रित

विषय-सूची

मूल्य २.०० (दो रुपये)

सं० १९९९ से २०३९ तक		१,४४,२५०
सं० २०४१	सतरहवाँ संस्करण	२०,०००
	कुल	१,६४,२५०

मुद्रक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक—अमित आफसेट, २५७, गोलागंज, लखनऊ

श्रीहरिः

प्रार्थना और निवेदन

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहासम् ।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥
मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः
करविनिहितकन्दुः बल्लवीप्राणबन्धुः ।
वपुरुपसृतरेणुः कक्षनिक्षिप्तवेणु-
र्वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः ॥

त्वां च वृन्दावनाधीश त्वां च वृन्दावनेश्वरि ।
काकुभिर्वन्दमानोऽयं मन्दः प्रार्थयते जनः ॥
योग्यता मे न काचिद्वां कृपालाभाय यद्यपि ।
[illegible] कुरुतं कृपाम् ॥
अयोग्ये सापराधेऽपि दृश्यन्ते [illegible] ।
[illegible] हन्त लोके लोकेशवन्दितौ ॥
भक्तेर्वा करुण[illegible]ऽपि नास्ति मे ।
[illegible] तथाप्यत्र प्रसीदतम् ॥
यदक्षम्यं नु युवयोः सकृ[illegible] ।
तदागः क्वापि नास्त्येव कृत्वाशां प्रार्थये ततः ॥
एष पार्श्वे कदन्नुच्चैरादाय रदनैस्तृणम् ।
हा नाथौ नाथति प्राणी सीदत्यत्र प्रसीदतम् ॥
हाहारावमसौ कुर्वन् दुर्भगो भिक्षते जनः ।
पनां मे भृपुतं काकुं काकुं भृ[illegible] ॥
याचेह दीनधा याचे साक्रन्दमतिमन्दधीः ।
किरतं करुणास्वान्तौ करुणोर्मिच्छटामपि ॥
मधुराः सन्ति यावन्तो भावाः सर्वत्र चेतसः ।
तेभ्योऽपि प्रेम मधुरं प्रसादीकुरुतं निजम् ॥
नाथितं परमेवेदमनाथजनवत्सलौ ।
स्वं साक्षाद्[illegible] प्रसादीकुरुतं जने ॥

अञ्जलिं मूर्ध्नि विन्यस्य दीनोऽयं भिक्षते जनः।
अस्य [illegible] सकृदप्युपपाद्यताम्॥

(स्तवपुष्पाञ्जलि)

सन् १९१६ ई० में सबसे पहले मैंने देवर्षि नारदके सूत्रोंकी एक बँगलामें छपी हुई पुस्तक देखी थी। उस समय मैं एकान्तवासमें था। भगवान्की कृपासे परमार्थ-साधनकी ओर कुछ मन लगता था, उसमें देवर्षिके सूत्रोंसे बड़ी सहायता मिली। वहीं सूत्रोंपर विचार करते-करते उनका भावार्थ लिखनेकी इच्छा हुई, और कुछ समय बाद भावार्थ लिखा भी गया। छपानेकी न उस समय इच्छा थी और न सुविधा ही। लगभग सन् १९२० ई० में मैं बम्बईमें था, वहाँ एक दिन श्रीवेंकटेश्वरप्रेसके स्वामी स्व० सेठ खेमराजजीसे [illegible]। उन्होंने बड़े आग्रहसे पाण्डुलिपि मुझसे ले ली और छापनेके लिये उसे प्रेसमें भी दे दिया; परन्तु असावधानतावश वहाँ पड़ी रह गयी। मुझे कोई विशेष आग्रह था नहीं; इससे मैंने कोई ताकीद नहीं की। सेठजीका स्वर्गवास हो गया। उसके अनन्तर कई वर्षों बाद मैं वहाँसे उस प्रतिको वापस माँग लाया। छपानेका मन नहीं था। सङ्कोच था कि भक्तिशास्त्रपर मैं टीका लिखनेवाला कौन? परन्तु ज्यों-ज्यों प्रसिद्धि बढ़ने लगी, वह सात्त्विक सङ्कोच हटने लगा। और अन्तमें छपानेकी बात स्थिर हो गयी। मैंने फिरसे उसे पढ़ा; उसमें कई जगह परिवर्तन-परिवर्द्धनकी आवश्यकता जान पड़ी, इससे छपानेका काम रुक गया। इस बार भगवत्-प्रेरणासे पुनः उसकी देख-भाल हुई, और कुछ

सुधार-बिगाड़ करनेके बाद कल्याणमें क्रमशः सब सूत्र छप गये। उसका कुछ परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप इस पुस्तकमें है।

जिस समय सन् १९१६ में इसका भावार्थ लिखा गया था, उस समय हिन्दीमें शायद एक-दो टीकाएँ इसपर हुई होंगी। अब तो कई टीकाएँ हो चुकी हैं। इतना होनेपर भी इस टीकाको छपानेमें दो ही कारण हो सकते हैं—पहला तो मान-बड़ाईकी छिपी हुई कामना और दूसरा भक्तिशास्त्रकी आलोचनासे अपने कल्याणकी आशा। वस्तुतः भक्तिकी जितनी चर्चा हो उतना ही मङ्गल है। क्योंकि भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये भक्ति ही सर्वप्रधान साधन है, और साध्यरूपमें वही भगवत्प्रेम है। आशा है कि भक्त और विद्वान् पाठकगण इस प्रकार विचारकर मेरे इस कार्यको नितान्त निन्दनीय नहीं समझेंगे और मेरी धृष्टतापर क्षमा करेंगे, साथ ही मेरी भूलोंके लिये क्षमा करेंगे। प्रेममें भाषाकी अपेक्षा भावका ही विशेष मूल्य हुआ करता है। यद्यपि भक्तिशास्त्रपर कुछ भी व्याख्या-रूपसे लिखनेका मुझे अधिकार नहीं, तथापि आशा है कि इस कार्यमें मेरी जो प्रवृत्ति हुई, उसको विज्ञ महानुभाव भगवत्-प्रेरणा और भगवत्कृपा समझकर मुझपर प्रसन्न होंगे। क्योंकि भगवत्कृपा बिना मनुष्यकी उत्तम कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। भक्तिशास्त्रकी आलोचना उत्तम-से-उत्तम कार्य है ही। कारण, इसमें भगवान्‌के दिव्य गुण, भगवान्‌के अलौकिक प्रेम, भगवान्‌की भक्ति, भगवत्प्रेमप्राप्तिके साधन और अन्ततः भगवान्‌के पवित्र नामोंकी तो चर्चा हुई है। इससे अवश्य ही मेरे नीरस और भक्तिशून्य हृदयमें कुछ

रसका और भक्तिका सञ्चार हुआ होगा। एक महात्मा, उनके इन वचनोंपर हमें दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌के पवित्र नाम-गुणोंके स्मरण और कीर्तनसे मनुष्यका कलुषित हृदय भी क्रमशः पवित्र होकर शिशुकी भाँति सरल हो जाता है। भगवान्‌के गुण और नामोंका कीर्त्तन हृदयकी सारी कालिमाओंको निःशेषरूपसे धो डालता है और प्रेमावेशके कारण शुद्ध और शान्तिमय दिव्य भावोंकी उत्पत्ति होकर उसके जन्म और जीवनको सफल कर देती है।

महापातकयुक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्।
पुनस्तपस्वी भवति पङ्क्तिपावनपावनः॥

'महापातकी व्यक्ति भी यदि निमेषमात्र श्रीभगवान्‌का ध्यान करे तो वह पुनः पवित्र होकर पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र कर सकता है।'

फिर इस ग्रन्थमें व्याख्यारूपसे जो कुछ लिखा गया है सो सभी सन्तोंकी जूठन-प्रसादी है। मेरा वस्तुतः इसमें कुछ है ही नहीं। इसलिये पाठकोंको मेरी ओर न देखकर सूत्रकार, सूत्र और सूत्रकी व्याख्यारूपमें लिखे हुए शास्त्रों और सन्तोंके भावोंपर ध्यान देना चाहिये।

षडदर्शनोंकी भाँति भक्तिसूत्र भी एक दर्शन माना गया है। इसे भक्तगण सहज दर्शन कहते हैं। आत्म-विज्ञानसम्पन्न पुरुष ही वास्तवमें भगवत्प्रेमके प्रकृत अधिकारी होते हैं। देवर्षिने चौरासी सूत्रोंमें ही भक्तितत्त्वकी व्याख्या, भक्तिके अन्तराय, भक्तिके साधन, भक्तिकी महिमा और भक्तोंका महत्त्व भलीभाँति प्रकट कर दिया है। अवश्य ही इसमें

भगवान्‌के सगुण साकार दिव्य स्वरूपकी भक्तिका वर्णन है, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि ज्ञानसे इस भक्तिका कोई विरोध है। वरं स्वयं देवर्षिने व्रजगोपियोंका उदाहरण देकर उनके मनमें श्रीभगवान्‌के माहात्म्यका ज्ञान होना सिद्ध किया है। श्रीभगवान्‌का ज्ञान ही न हो तो प्रेम किसमें हो। और यह तत्त्व सत्य ही है कि अभिन्न अनन्य अविकारी प्रेम होनेपर ही हृदयके असली तत्त्वका—प्रियतमके मनकी बातका पता लगता है। अतएव ज्ञान और भक्तिका इसमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिये। इसी प्रकार कर्मका भी विरोध नहीं है। भगवान्‌के लिये निष्काम कर्म करनेकी तो आज्ञा ही दी है। और कर्मोंका सर्वथा त्यागी भक्त भी अहर्निश भगवान्‌के प्रेममें मस्त होकर भगवच्चिन्तनरूपी कर्म तो छोड़ ही नहीं सकता। इसलिये देवर्षिकथित भक्तिमें ज्ञान और कर्म दोनों ही हैं, अवश्य ही वे होने चाहिये भक्तिके अनुकूल। शुष्क ज्ञान और कर्मको इसमें स्थान नहीं है। इसमें ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सर्वत्र रस-ही-रस है। भगवान् रसमय हैं ही। और उसी रस, परम आनन्द है। श्रुति भी यही कहती है—

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।'

भक्तिसे ही उस रसमय भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। भक्तिसे ही वह ऋषि-मुनि-देवदुर्लभ परमानन्द मिलता है। अतएव भक्तिका ही आश्रय सबको लेना चाहिये। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सूर्यभगवान् रोज-रोज उदय और अस्त होते हैं, इसमें मनुष्योंकी आयु वृथा ही नष्ट होती है। बस, उतना ही समय

सफल होता है जिसमें हरिकथा की जाती है। [illegible] जीते रहना और खाना-पीना कोई महत्त्वकी बात नहीं है। जैसे मनुष्य जीते हैं, वैसे ही क्या वृक्ष नहीं जीते [illegible]? लोहारकी धौंकनी क्या मनुष्योंके समान ही साँस नहीं लेती? गाँवोंके पशु, कुत्ते, सूअर आदि क्या भोजन नहीं करते और मलमूत्रका त्याग नहीं करते? इसी प्रकार इधर-उधर भटकते हुए [illegible] असार वस्तु ग्रहण करते हैं, ऊँट जैसे काँटे खाता है और गदहा जैसे केवल बोझ ढोता है, ठीक वैसे ही [illegible] भक्तिसे हीन मनुष्य कुत्तेके समान सब ओरसे तिरस्कार पाता है, सूअरके समान असार विषयोंको ग्रहण करता है, ऊँटके समान दुःखभरे विषयरूपी काँटोंको खा-खाकर सदा दुःखी रहता है और गदहेके समान संसारके भारको ढोता और रोता रहता है। मनुष्यके वे कान साँपके बिलके समान हैं जिनमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला नहीं आकर विषयवार्ता-रूपी साँप जाते हैं। वह जीभ मेंढककी जीभके समान है जो भगवान्के नाम-गुण नहीं गाती। वह सिर सुन्दर बालों और साजोंसे सजा हुआ होनेपर भी भारस्वरूप है जो श्रीहरिके सामने नहीं झुकता। वे हाथ मुर्देके हाथोंके समान हैं जो सोनेके गहनोंसे सजे होनेपर भी कभी श्रीहरिकी सेवा नहीं करते। वे आँखें मोरकी पाँखोंमें दीखनेवाली आँखोंके समान वृथा हैं जो भगवान्की पवित्र मूर्तियोंका दर्शन नहीं करतीं। वे पैर पेड़ोंके समान व्यर्थ हैं जो भगवान्के पवित्र स्थानों (मन्दिरों

और सीधों) में नहीं आते। वह मनुष्य जीता ही मरेके समान है जो श्रीभगवान्‌की चरणधूलिको सिरपर नहीं धारण करता या भगवान्‌के चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी गन्धको नहीं सूँघता। और वह हृदय तो वज्रका ही है जो श्रीहरिनामोंको सुनकर उमड़ नहीं आता, गद्गद नहीं होता, जिससे रोमाञ्च नहीं होता और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू नहीं भर आते।'

अन्तमें मैं अत्यन्त विनम्रभावसे भगवान्‌के प्रेमी समस्त भक्तोंके चरणकमलोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग सब मिलकर मुझको कृपापूर्वक ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे मेरा मन-मधुकर सदा श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंमें ही विहरण करनेवाला बन जाय। क्योंकि मनुष्यको तभीतक भय, शोक, स्पृहा, परिभव या लोभ रहता है जबतक कि वह भगवान्‌के चरणोंका आश्रय नहीं ले लेता—

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥

(श्रीमद्भागवत ३।९।६)

भक्तोंके चरणरजका दासानुदास

हनुमानप्रसाद पोद्दार



देवर्षि नारद

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीमद्भागवत १।६।३९)

'अहो ! ये देवर्षि नारदजी धन्य हैं, जो वीणा बजाते, हरिगुण गाते और मस्त होते हुए इस आतुर जगत्‌को आनन्दित करते फिरते हैं।'

कारक पुरुष जगत्‌में वैसे ही लोककल्याणार्थ आते और विचरते हैं, जैसे स्वयं भगवान् अवतीर्ण होते हैं। श्रीभगवान्‌की पवित्र लीलाके लिये भूमि तैयार कर देना, उनकी लीलाके लिये वैसे ही लीलोपयोगी उपकरणोंका संग्रह करना, लीलामें सहायक

होना, यह उनका स्वाभाविक कार्य होता है। ऐसे महापुरुष मुक्त होनेपर भी मुक्त न होकर जगत्‌में जीवोंके साथ उनके कल्याणार्थ विराजते हैं। यों तो इनका कार्य सदा ही अबाधितरूपसे चलता रहता है, परन्तु किसी खास भगवदवतारके समय इनका कार्य विशेषरूपसे बढ़ जाता है। इनका मंगलमय जीवन जगत्‌के महान् मंगलके लिये होता है। अविद्या, अहङ्कार, ममत्व, आसक्ति आदिसे सर्वथा रहित ये महापुरुष यन्त्री भगवान्‌के हाथोंमें यन्त्रवत् कार्य करते रहते हैं। इनके सारे कार्य भगवान्‌के ही कार्य होते हैं। ऐसे ही महापुरुषोंमें देवर्षि नारदजी एक हैं। सभी युगोंमें, सभी लोकोंमें, सभी शास्त्रोंमें, सभी समाजोंमें और सभी कार्योंमें नारदजी-का प्रवेश है। आप सत्ययुगमें भी थे; त्रेता, द्वापरमें भी और इस घोर कलिकालमें भी, कहते हैं कि, अधिकारी भक्तोंको आपके शुभ दर्शन हुआ करते हैं। गोलोक, वैकुण्ठलोक, ब्रह्मलोक आदिसे लेकर तल-अतलादि पातालतक सर्वत्र आपका प्रवेश है। और योगबलसे मन करते ही तुरन्त कहाँसे कहाँ पहुँच जाते हैं। वेद, स्मृति, पुराण, संहिता, ज्योतिष, संगीत आदि सभी शास्त्रोंमें आप दृष्टिगोचर होते हैं। साक्षात् भगवान् विष्णु, शिव आदिसे लेकर घोर राक्षसतक आपका सम्मान, विश्वास और आदर करते हैं। देवराज इन्द्र भी आपके वचनोंका आदर करते हैं, और देवशत्रु हिरण्यकशिपुकी पत्नी कयाधू भी आपकी बातपर विश्वास कर आपके आश्रममें अपनेको सुरक्षित समझती है। कहीं आप व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव-सरीखे महापुरुषोंको परमतत्त्वका उपदेश देते दिखायी देते हैं, तो कहीं दो पक्षोंमें कलह और

विवाद उठा कर देनेके प्रयासमें लगे दीखते हैं। वास्तवमें आप अपने लिये कुछ भी नहीं करते। जिस कार्यमें विश्वका मंगल देखते हैं और भगवान्‌की लीलाका एक सुन्दर दृश्य सामने आ जाते हैं, उसी कार्यको करने लगते हैं। इनका विवाद और कलह कराना भी लोकहितार्थ और भगवान्‌की लीलाकी सफलताके ही हुआ करता है; क्योंकि इनकी प्रत्येक चेष्टा भगवान्‌की ही चेष्टा होती है। इनको तो वस्तुतः भगवान्‌का 'मन' ही समझना चाहिये; गम्भीर दृष्टिसे विचार करनेपर भगवत्कृपासे यह बात स्पष्ट दीखती है। कुछ लोग कहते हैं कि नारद नामके कई भिन्न-भिन्न व्यक्ति हुए हैं। उनमें वे सात मुख्य मानते हैं—१–ब्रह्माके मानस पुत्र, २–पर्वत ऋषिके मामा, ३–ऋषिपत्नी अरुन्धतीके भाई या सत्यवती नामक स्त्रीके स्वामी, ४–यहाँकी वहाँ करके आपसमें लोगोंको भिड़ा देनेवाले, ५–कुबेरके सभासद्, ६–भगवान् श्रीरामकी सभाके आठ धर्मशास्त्रियोंमें एक और ७–जनमेजयके सर्पयज्ञके एक सदस्य।

यहाँपर हमें न तो इस विवादमें पड़ना है कि नारद एक हैं या अनेक, और न विचार करके इसका निर्णय करनेकी हममें योग्यता ही है। हाँ, हमारी दृष्टिमें तो हमें एक ही नारद दिखायी देते हैं जिन्होंने भिन्न-भिन्न कल्पों और युगोंमें भगवान्‌के भक्तकी हैसियतसे विविध कार्य किये हैं और कर रहे हैं। यहाँ तो हमें नारदजीके उस कार्यके सम्बन्धमें कुछ कहना है जिसका सम्बन्ध भक्तिसे है। और वास्तवमें यही नारदजीका प्रधान कार्य है। नारद

शास्त्रोंके सुपण्डित तथा समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता और व्याख्याता होकर भी अन्तमें नारदजी भगवान्‌की भक्तिका ही उपदेश करते हैं। वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, प्रह्लाद, ध्रुव आदि महान् महात्माओंको भगवद्भक्तिमें लगाते हैं। इतना ही नहीं, स्वयं वीणा हाथमें लेकर सभी युगों और सभी समाजोंमें निर्भय और निश्चिन्त हुए सदा-सर्वदा भगवान्‌के पवित्र नामोंका गान करते हुए सारे विश्वके नर-नारियोंको पवित्र और भगवन्मुखी करते रहते हैं। इन भगवान् श्रीनारदजीने अपने दो कल्पोंके चरित्रका कुछ स्वयं वर्णन किया है। भागवतमें उक्त प्रसङ्ग बड़ा ही सुन्दर है। अपने और पाठकोंके मनोरञ्जनके लिये उसका कुछ मर्म नीचे दिया जाता है।

दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि व्यासजीने लोगोंके कल्याणके लिये वेदोंके चार विभाग किये। पञ्चम वेदरूप नानाख्यानोंसे पूर्ण महाभारतकी रचना की। पुराणोंका निर्माण किया। इस प्रकार सब प्राणियोंके कल्याणमें प्रवृत्त होनेपर भी व्यासभगवान्‌को तृप्ति नहीं हुई, उनके चित्तमें पूर्ण शान्ति न हुई, उन्हें अपने अन्दर कुछ कमी-सी प्रतीत होती ही रही; तब वे कुछ उदास-से होकर सरस्वती नदीके तटपर बैठकर विचारने लगे—'मैंने सब कुछ किया, तथापि मुझे अपने अन्दर कुछ अभावका-सा अनुभव क्यों हो रहा है? क्या मैंने भागवतधर्मोंका विस्तारसे निरूपण नहीं किया। क्योंकि भागवत धर्म ही परमेश्वर और परमहंस भक्तोंके प्रिय हैं।' वे इस प्रकार सोच ही रहे थे कि हरिगुण गाते प्रसन्नवदन श्रीनारदजी वहाँ आ पहुँचे। आवभगत और कुशलसमाचार पूछने-कहनेके

बाद श्रीव्यासजीने अपनी स्थिति बतलाकर देवर्षिसे उसके लिये उपाय पूछा।" तब श्रीनारदजी कहने लगे—

हे मुनिवर्य! आपने अपने ग्रन्थोंमें जिस प्रकार अन्यान्य धर्मोंका वर्णन किया है, उसी प्रकार भगवान्‌की कीर्तिका कीर्तन नहीं किया। इसीलिये आपके मनमें उदासी छायी है। जिस वाणीमें—जिस कवितामें जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीवासुदेवकी महिमा और कीर्तिका वर्णन नहीं किया गया है, वह वाणी या कविता मृदु, मधुर और चित्र-विचित्र पदोंवाली ([illegible]) होनेपर भी सारासारको जाननेवाले ज्ञानी-लोग उसे 'काकतीर्थ' के नामसे पुकारते हैं। अर्थात् जैसे विष्ठापर चोंच मारनेवाले कौओंके समान मलिन विषयभोगी कामी मनुष्यों-का मन उस कवितामें रमता है वैसे मानसरोवरमें विहरण करनेवाले राजहंसोंके समान परमहंस भागवतोंका मन उसमें कभी नहीं रमता। परन्तु सुननेमें कठोर और काव्यालंकारादिसे रहित, एवं पद-पदपर व्याकरणादिसे अशुद्ध होनेपर भी वह वाणी परम रम्य और जनसमूहके पापोंको नाश करनेवाली होती है जिसमें भगवान्‌के नाम और भगवान्‌के गुणोंकी चर्चा भरी होती है। अतएव उस भगवद्गुण-नामसे पूर्ण वाणीको साधु-महात्मागण सुनते हैं, सुनाते हैं और कीर्तन करते हैं। हे मुनिवर! आप अमोघदर्शी हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। इसलिये अब आप संसारके कल्याणके लिये श्रीहरिकी लीलाओंका वर्णन कीजिये। विद्वानोंने मनुष्यके तप, श्रवण, नित्य धर्म और तीक्ष्ण बुद्धि आदिका परम फल केवल एक-मात्र भक्तिपूर्वक श्रीहरिका गुण वर्णन करना ही बतलाया है।

मेरे पूर्वजन्मका इतिहास सुनकर उसका विचार करेंगे कि श्रीहरिके गुणगानसे मैं कैसे कृतार्थ हो गया।

हे महामुनि, मैं पूर्वजन्ममें एक दासीपुत्र था। एक समय चातुर्मास्य बितानेके लिये वर्षाकालमें हमारे गाँवमें बहुत-से महात्मा पधारे। मैं छोटा बालक था। मेरी माताने मुझे उन महात्माओंकी सेवामें लगा दिया। मैं उन महात्माओंके सामने किसी प्रकारका लड़कपन नहीं करता था, सब खेलोंको छोड़कर शान्तिके साथ उनके चरणोंमें बैठा रहता था और बहुत ही कम बोलता था। इन्हीं सब कारणोंसे वे महात्मा समदृष्टि होनेपर भी मुझपर प्रसन्न होकर विशेष कृपा रखने लगे। उन मुनियोंकी आज्ञासे मैं उनके पात्रोंमें बची हुई जूठन खा लेता था। इसीके प्रभावसे मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये। ऐसा करते-करते कुछ समयमें मेरा चित्त शुद्ध हो गया जिससे उनके धर्ममें (भागवतधर्ममें) मेरी रुचि हो गयी। वहाँ वे लोग नित्य श्रीकृष्णकी कथाएँ गाते थे और मैं उन महात्माओंके अनुग्रहसे उन मनोहर कथाओंको श्रद्धाके साथ सुनता था। ऐसा करते-करते श्रीभगवान्‌में मेरी भक्ति हो गयी। हे महामुनि! पहले भगवान्‌में मेरी रुचि हुई, फिर मेरी स्थिर दृढ मति हो गयी। उस विशुद्ध दृढ बुद्धिके प्रभावसे मैं अपने माया-रहित शुद्ध परब्रह्ममें समस्त सत्-असत् प्रपञ्चको मायासे कल्पित देखने लगा। इस प्रकार वर्षा और शरद् दोनों ऋतुओं-भर वे महात्मा प्रतिदिन भगवान्‌के निर्मल यशका गान करते रहे, जिसके सुननेसे मेरे हृदयमें रजोगुण और तमोगुणको नाश करने-वाली सात्त्विकी भक्ति उत्पन्न हो गयी। मुझको अनुरागी, आश्रित,

विनीत, अकाङ्क्ष और पापहीन बालकरूप दास समझकर दोनों-पर दया करनेवाले उन महात्माओंने जाँते समय परम कृपा करके साक्षात् भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ गुह्यतम ज्ञान मुझसे कहा, जिस ज्ञानके द्वारा मैं भगवान् वासुदेवकी मायाके प्रभावको जान गया, जिसके जाननेसे पुरुष परमात्माके परमपदको प्राप्त होता है।*

इसके अनन्तर मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मा तो दूसरी जगह चले गये। मैं उनके उपदेशके अनुसार भजन करता रहा। मेरी माताके मैं ही एकमात्र पुत्र था, जिससे मुझपर माताका बड़ा भारी स्नेह था। वह मुझको ही अनन्य गति समझती थी। एक दिन कालप्रेरित सर्पने मेरी स्नेहमयी माताको डस लिया, जिससे

* प्रसिद्ध गीताके टीकाकार महात्मा श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने अपने भक्तिरसायन-ग्रन्थमें देवर्षि नारदजीके इसी कथनका अनुसरण करते हुए भक्तिकी ग्यारह भूमिकाएँ बतलायी हैं—

प्रथमं महतां सेवा तद्दयापात्रता ततः ।
श्रद्धाऽथ तेषां धर्मेषु ततो हरिगुणश्रुतिः ॥
ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिः स्वरूपाधिगतिस्ततः ।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे तस्याथ स्फुरणं ततः ॥
भागवद्धर्मनिष्ठातः स्वस्मिंस्तद्गुणशालिता ।
प्रेम्णोऽथ परमा काष्ठेत्युदिता भक्तिभूमिकाः ॥

१–प्रथम महापुरुषोंकी सेवा, २–तदनन्तर उनकी दयापात्रता, ३–उससे इनके धर्मोंपर श्रद्धा, ४–श्रद्धासे हरिगुणका श्रवण, ५–श्रवणसे प्रेमके अङ्कुरकी उत्पत्ति, ६–प्रेमसे स्वरूपप्राप्ति, ७–उससे परानन्द-स्वरूपमें प्रेमवृद्धि, ८–प्रेमवृद्धिसे परमानन्दका स्फुरण, ९–उससे भागवत धर्मोंमें निष्ठा, १०–उससे अपनेमें उन गुणोंका प्राकट्य, और ११–उससे प्रेमकी पराकाष्ठा। इसप्रकार भक्तिकी भूमिकाएँ कही गयी हैं।

उसकी मृत्यु हो गयी ! तब 'भक्तोंका कल्याण चाहनेवाले भगवा
मुझपर कृपा की' ऐसा मानकर मैं उत्तर दिशाकी ओर चल दिय
और वहाँ एक घने वनमें पहुँचकर नदीकिनारे एक पीपलके वृक्ष
जड़में बैठकर भगवान्का चिन्तन और चित्तको एकाग्र कर
भक्तिपूर्वक भगवान्के चरण-कमलोंका ध्यान करने लगा। उ
समय प्रेमावेशसे मेरी आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आये। और मैं
देखा, मेरे हृदयमें भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये ! भगवान्के दर्श
पाते ही प्रेमकी बाढ़-सी आ गयी ! मेरे रोम खड़े हो गये ! मैं आनन्द
समुद्रमें डूब गया और संसारसहित अपने आपको भूल गया

सहसा भगवान्का वह मनमोहन परम सुन्दर रूप अन्तर्हि
हो गया। तब मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं पुनः दर्शनार्थ चे
करने लगा, तब मैंने आकाशवाणीसे सुना कि 'हे बालक ! इ
जन्ममें तुझको मेरे दर्शन नहीं होंगे, प्रेम बढ़ानेके लिये मैंने एक बा
तुझे दर्शन दिये हैं। अल्पकालके सत्संगके प्रतापसे तेरी मुझमें द
भक्ति हुई है। तू इस शरीरको छोड़कर मेरा निजजन होग
मुझमें तेरी अचल बुद्धि होगी और मेरी कृपासे कल्पान्तमें भी तु
इस जन्मकी बातें याद रहेंगी।' तब मैंने अपनेको भगवान्
कृपापात्र जाना और झुककर प्रणाम किया और लज्जा छोड़क
भगवान्के परम गुह्य कल्याणमय नाम और गुणोंका कीर्तन औ
स्मरण करता हुआ सन्तोषके साथ अहङ्कार और ईर्ष्या त्यागक
निरीह हुआ संसारमें विचरने लगा। मैंने श्रीकृष्णमें मन लगाक
संसारका संग त्याग दिया। यथासमय मेरा वह शरीर नष्ट हो गय
और मुझे शुद्ध दिव्य पार्षददेहकी प्राप्ति हुई।

तदनन्तर कल्पके अन्तमें संसारको अपनेमें लीन करके प्रलयसमुद्रमें शयन करनेवाले ब्रह्माजीके हृदयमें श्वासके साथ मैंने प्रवेश किया। सहस्र युगके उपरान्त जब ब्रह्माजी जगत्‌की रचना करने लगे तब मरीचि आदि ऋषियोंके साथ उनके श्वाससे मैं उत्पन्न हो गया।

तबसे अखण्ड ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके मैं तीनों लोकोंमें बाहर-भीतर चाहे जहाँ विचरता हूँ। भगवान्‌की कृपासे मेरे लिये कहीं भी रुकावट नहीं है। स्वयं भगवान्‌की दी हुई इस स्वरमय ब्रह्मसे विभूषित वीणाको बजाकर हरिगुण गाता हुआ मैं सर्वत्र विचरता हूँ। भगवान्‌की मुझपर इतनी अपार कृपा है कि जब मैं प्रेमसे गद्गद होकर भगवान्‌की लीला गाता हूँ तभी मंगलकीर्ति पुण्यचरण भगवान् उसी क्षण प्रकट होकर मुझे ऐसे दर्शन देते हैं, जैसे कोई किसीके पुकारते ही शीघ्र आ जाता है।

जो लोग भोगोंकी इच्छासे बार-बार व्यग्रचित्त होकर संसारके विषय-भोगोंमें आसक्त हैं उनके संसारसागरसे तरनेके लिये केवल श्रीहरिचर्चा ही दृढ़ नौका है। इसीलिये मैं अपने और लोगोंके कल्याणके लिये सदा-सर्वदा हरिगुणगान करता हुआ विचरण करता हूँ। भगवान् श्रीहरिके भजनसे विषयी पुरुषोंका चित्त जितना शीघ्र शान्त होता है उतना योगादिके द्वारा नहीं होता।' इतना कहकर हरिगुण गाते हुए श्रीनारदजी वहाँसे चल दिये।

महाभारतमें कहा है कि देवर्षि नारदजी समस्त वेदोंके तत्त्वज्ञ, देवताओंके पूज्य, इतिहासपुराणोंके विशेषज्ञ, अतीत

कल्पोंकी बातोंको जाननेवाले, धर्म-तत्त्वके ज्ञाता, [illegible] व्याकरणके असाधारण पण्डित, [illegible], परस्पर विरुद्ध [illegible] मीमांसा जाननेवाले, वाक्योंका पृथक्करण करनेमें पूर्ण योग्य, प्रभावशाली व्याख्यानदाता, मेधावी, स्मृतिवान्, नीतिशील, कवि, ज्ञानी, समस्त प्रमाणोंद्वारा वस्तुका विचार करनेमें समर्थ, [illegible] जैसे विद्वानोंकी शङ्काओंका समाधान करनेवाले, [illegible] तत्त्वको जाननेवाले, योगबलसे समस्त दिशाओंसे परिपूर्ण भूमण्डलके प्रत्यक्षदर्शी, मोक्षाधिकारके ज्ञाता, कल्याणके लिये विवाद खड़ा कर देनेवाले, सन्धि और विग्रहके सिद्धान्तोंके ज्ञाता, अनुमानसे ही कार्यका तत्त्व जाननेवाले, समस्त शास्त्रोंके पूर्ण पण्डित, विधिका उपदेश करनेवाले, समस्त सद्गुणोंके आधार और अपार तेजस्वी थे। वे ज्ञानके स्वरूप, विद्याके भाण्डार, आनन्दके समूह, सदाचारके आधार, सब भूतोंके अकारण प्रेमी, विश्वके सहज ही हितकारी, भक्तिके महान् स्वरूप और आचार्य थे।

ऐसे देवर्षि नारदजीने सब कुछ उपदेश करनेके बाद 'अथातो भक्तिं [illegible]' कहकर अन्तमें भक्तितत्त्वका उपदेश किया। इससे सिद्ध होता है कि भक्तिका दर्जा बहुत ही ऊँचा है।

इस प्रकार लोगोंपर अकारण कृपाके कारण हरिगुण गाते हुए त्रिलोकीमें घूमनेवाले देवर्षि नारदजीके चरणोंमें प्रणामकर हमलोगोंको उनके रचे दिव्य भक्तिके अनुपम सूत्रोंको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चेष्टा करनी चाहिये।



श्रीहरिः

प्रेम [illegible]

(देवर्षि नारदरचित [illegible])

[illegible]

[illegible]

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥१॥

१–अब हम भक्तिकी व्याख्या करेंगे।

इस सूत्रके 'अथ' और 'अतः' शब्दसे यह प्रतीत होता है कि भक्तिमार्गके आचार्य परम [illegible] सर्वभूतहितमें रत, दयानिधि देवर्षि नारदजी अन्यान्य सिद्धान्तोंकी व्याख्या तो कर चुके; अब जीवोंके [illegible] परम [illegible] भक्तिके स्वरूप और साधनोंकी व्याख्या आरम्भ करते हैं। नारदजी कहते हैं—

सा [illegible] परमप्रेमरूपा ॥२॥

---

* पाठभेद "कस्मै"

२–वह (भक्ति) ईश्वरके प्रति परम प्रेमरूपा है ।

भक्तिके अनेक प्रकार बतलाये गये हैं, परन्तु नारदजी जिस भक्तिकी व्याख्या करते हैं वह प्रेमस्वरूपा है । भगवान्में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है । ज्ञान, कर्म आदि साधनोंके आश्रयसे रहित और सब ओरसे स्पृहाशून्य होकर चित्तवृत्ति अनन्य भावसे जब केवल भगवान्में ही लग जाती है; जगत्के समस्त पदार्थोंसे तथा परलोककी समस्त सुख-सामग्रियोंसे, यहाँतक कि मोक्ष-सुखसे भी चित्त हटकर एकमात्र अपने परम प्रेमास्पद भगवान्में लगा रहता है; सारी ममता और आसक्ति सब पदार्थोंसे सर्वथा निकलकर एकमात्र प्रियतम भगवान्के प्रति हो जाती है, तब उस स्थितिको 'अनन्य प्रेम' कहते हैं ।

अमृतस्वरूपा च ॥३॥

३–और अमृतस्वरूपा (भी) है ।

भगवान्में अनन्य प्रेम ही वास्तवमें अमृत है; वह सबसे अधिक मधुर है और जिसको यह प्रेमामृत मिल जाता है वह उसे पानकर अमर हो जाता है । लौकिक वासना ही मृत्यु है । अनन्य प्रेमी भक्तके हृदयमें भगवत्प्रेमकी एक नित्य नवीन, पवित्र वासनाके अतिरिक्त दूसरी कोई वासना रह ही नहीं जाती । इसी परम दुर्लभ वासनाके कारण वह भगवान्की मुनिमनहारिणी लीलाका एक साधन बनकर कर्मबन्धनयुक्त जन्म-मृत्युके चक्करसे सर्वथा छूट जाता है । वह सदा भगवान्के समीप निवास करता है और

भगवान् उसके समीप ! प्रेमी भक्त और प्रेमास्पद भगवान्का यह नित्य अटल संयोग ही वास्तविक अमरत्व है। इसीसे भक्तजन मुक्ति न चाहकर भक्ति चाहते हैं।

अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुकुति निरादरि भगति लुभाने॥

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ॥४॥

४—जिसको (परम प्रेमरूपा और अमृतरूपा भक्तिको) **पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है (और) तृप्त हो जाता है।**

जिसने भगवत्-प्रेमामृतका पान कर लिया, वही सिद्ध है। 'सिद्ध' शब्दसे यहाँ अणिमादि सिद्धियोंसे अभिप्राय नहीं है। प्रेमी भक्त, इन सिद्धियोंकी तो बात ही क्या, मोक्षरूप सिद्धि भी नहीं चाहता। ये सिद्धियाँ तो ऐसे प्रेमी भक्तकी सेवाके लिये अवसर ढूँढा करती हैं, परन्तु वह भगवत्प्रेमके सामने अत्यन्त तुच्छ समझकर इनको स्वीकार ही नहीं करता। स्वयं भगवान् कहते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

'मुझमें चित्त लगाये रखनेवाले मेरे प्रेमी भक्त मुझको छोड़कर

ब्रह्माका पद, इन्द्रासन, चक्रवर्ती राज्य, लोकान्तरोंका आधिपत्य योगकी सब सिद्धियाँ और सायुज्य मोक्ष आदि कुछ भी नहीं चाहते।

एक भक्त कहते हैं—

रोमाञ्चेन चमत्कृता तनुरियं भक्त्या मनो नन्दितं
प्रेमाम्भोभिरलङ्कृतं च वदनं कण्ठं गिरो गद्गदाः।
तस्मात्कं [illegible] कृष्णार्चनं कुर्वतां
मुक्तिर्द्वारि चतुर्विधापि किमियं दास्याय कोलाहले॥

(बोधसार)

'प्रियतम श्रीकृष्णकी पूजा करते समय शरीर पुलकित हो गया, भक्तिसे मन प्रफुल्लित हो गया। प्रेमके आँसुओंने मुखको, और गद्गद वाणीने कण्ठको सुशोभित कर दिया। अब तो हमें एक क्षणके लिये भी फुरसत नहीं है कि हम किसी दूसरे विषयको स्वीकार करें। इतनेपर भी सायुज्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ न जाने क्यों हमारे दरवाजेपर खड़ी हमारी दासी बननेके लिये आतुर हो रही हैं!'

भक्त यदि मुक्ति और मुक्तिको स्वीकार कर ले तो वे अपना महान् सौभाग्य मानती हैं, परन्तु भक्त ऐसा नहीं करते।

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
[illegible]॥

(नारदपाञ्चरात्र)

'मुक्ति आदि सिद्धियाँ और अनेक प्रकारकी विलक्षण भुक्तियाँ (भोग) दासीकी भाँति हरिभक्ति महादेवीकी सेवामें लगी रहती हैं।'

गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥
तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥

इसलिये यहाँ सिद्धिका अर्थ 'कृतकृत्यता' लेना चाहिये। भक्तको किसी वस्तुके अभावका बोध नहीं रहता। वह प्रियतम भगवान्‌के प्रेमको पाकर सर्वथा पूर्णकाम हो जाता है। यह पूर्णकामता ही उसका अमर होना है। जबतक मनुष्य कृतकृत्य या पूर्णकाम नहीं होता, तबतक उसे बारंबार कर्मवश आना-जाना पड़ता है। पूर्णकाम भक्त सृष्टि और संहार दोनोंमें भगवान्‌की लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव कर मृत्युको खेल समझता है। वास्तवमें उसके लिये मृत्युकी ही मृत्यु हो जाती है। प्रभु-लीलाके सिवा मृत्युसंज्ञक कोई भयावनी वस्तु उसके ज्ञानमें रह ही नहीं जाती, और इसलिये वह तृप्त हो जाता है। जबतक जगत्‌के पदार्थोंकी ईश्वर-लीलासे अलग कोई सत्ता रहती है तभीतक उनको सुखद या दुःखप्रद समझकर मनुष्य निरन्तर नये-नये सुखप्रद पदार्थोंकी इच्छा करता हुआ अतृप्त रहता है। जब सबका मूल स्रोत, सबका यथार्थ पूर्ण स्वरूप उसे मिल जाता है तब उन खण्ड और अपूर्ण पदार्थोंकी ओर उसका मन ही नहीं जाता। वह पूर्णको पाकर तृप्त हो जाता है।

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥५॥

५-जिसके (प्रेमस्वरूपा भक्तिके) प्राप्त होनेपर मनुष्य न किसी भी वस्तुकी इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तुमें आसक्त होता है और न उसे (विषयभोगोंकी प्राप्तिमें) उत्साह होता है ।

वह प्रेमी भक्त उस परम महान् वस्तुको पा लेता है, जिसके पानेपर सारी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं । जगत्‌के प्रेम, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, बल, यश, ज्ञान, वैराग्य आदि समस्त पदार्थ, जिनके लिये भोगी और त्यागी सभी मनुष्य अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सदा ललचाते रहते हैं, भगवत्प्रेमरूपी दुर्लभ पदार्थके सामने अत्यन्त तुच्छ हैं । विश्वभरमें फैले हुए उपर्युक्त समस्त पदार्थोंको एक स्थानपर एकत्रित किया जाय तो भी वे सब मिलकर जिस भगवान्‌रूपी समुद्रके एक जलकणके समान ही होते हैं, वे भगवान् स्वयं जिस प्रेमके आकर्षणसे सदा खिंचे रहते हैं उस प्रेमके सामने संसारके पदार्थ किस गिनतीमें हैं ?

श्रीशुकदेव मुनि कहते हैं—

> यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
> विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥
>
> (श्रीमद्भा० ६ । १२ । २२)

'जो परम कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करता है वह अमृतके समुद्रमें क्रीडा करता है । गड्ढोंमें भरे हुए मामूली गन्दे जलके सदृश किसी भी भोगमें या स्वर्गादिमें उसका मन चलायमान नहीं होता ।'

प्रेमामृतसमुद्रमें डूबा हुआ भक्त क्यों अन्य पदार्थोंकी इच्छा करने लगा ?

वैसे भक्त भोग, मोक्ष आदिकी इच्छा नहीं करता; वैसे ही इनके नष्ट हो जानेका शोक भी नहीं करता। भोगोंके नाशको वह परमात्माकी लीला समझता है, इससे सदा-हर हालतमें आनन्दमें ही रहता है। परन्तु भगवत्प्रेमके सेवनमें यदि सायुज्य मोक्षके साधनमें कमी आती है तो वह उसके लिये भी शोक नहीं करता; वरं सदा यही चाहता है कि मेरा भगवत्प्रेम बढ़ता रहे, चाहे जन्म कितने ही क्यों न धारण करने पड़ें !

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतुरहित अनुरागु रामपद बढ़ अनुदिन अधिकाई ॥

इसी प्रकार वह किसी जीवसे या लौकिक दृष्टिसे प्रतिकूल माने जानेवाले पदार्थ या स्थितिसे कभी द्वेष नहीं करता। वह सब जीवोंमें अपने प्रभुको और सब पदार्थों और स्थितिमें प्रभुकी लीलाको देख-देखकर क्षण-क्षणमें आनन्दित होता है।

निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं बिरोध ॥

भक्तका मन सदा प्रभु-प्रेममें ऐसा तल्लीन हो जाता है कि आधे क्षणभरके लिये भी अन्य किसी पदार्थमें नहीं रमता। गोपियाँ उद्धवजीसे कहती हैं—

ऊधौ, मन न भए दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग, को आराधै ईस ॥

मन अपने पास रहता ही नहीं, तब वह दूसरेमें कैसे लगे ? इसीलिये तो प्रेमियोंके भगवान्‌का नाम 'मनचोर' है—

मधुकर स्याम हमारे चोर ।
मन हर लियो माधुरी मूरति, निरख नयनकी कोर ॥

वे प्रेमी भक्तके चित्तको ऐसी चातुरीसे चुराकर अपनी सम्पत्ति बना लेते हैं कि उसपर दूसरेकी कभी नजर भी नहीं पड़ सकती। दूसरा कोई दीखे तब न कहीं उसमें आसक्ति या प्रीति हो, परन्तु जहाँ मनमें दूसरेकी कल्पनातकको स्थान नहीं मिलता वहाँ किसमें कैसे आसक्ति या रति हो। प्रेममयी गोपियोंने कहा है—

स्याम तन स्याम मन स्याम है हमारो धन,
आठों जाम ऊधौ हमें स्याम ही सों काम है।
स्याम हिये स्याम जिये स्याम बिनु नाहिं लिये,
आँधेकी-सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥
स्याम गति स्याम मति स्याम ही है प्रानपति,
स्याम सुखदाईसों भलाई सोभाधाम है।
ऊधौ तुम भए बौरे पाती लैके आए दौरे,
जोग कहाँ राखैं यहाँ रोम-रोम स्याम है॥

जब इस प्रियतम श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरेका मनमें प्रवेश ही निषिद्ध है तब दूसरे विषयोंकी प्राप्तिके लिये उत्साह तो हो ही कैसे? और किसीको लेवें, मुझे, उसके लिये मनमें इच्छा उत्पन्न हो, तब न उसके लिये प्रयत्न किया जाय? मन किसीमें रहे, तब न उसे पानेके लिये उत्साह हो। मन तो पहलेसे ही किसी प्यारेने चुरा लिया। उसने उसपर अपना पूरा अधिकार जमा लिया,

और कर्म उसमें आकर रहनेके लिये बस गया। दूसरे किसीके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रह गयी; यदि कोई आता भी है तो उसे दूरसे ही लौट जाना पड़ता है। क्या करे, जगह ही नहीं रही।

[illegible]

वे बेचारे मनको अनुकूल विषय किसको देखें? जब कोई कहीं दीखता ही नहीं, तब उसको पानेके लिये उत्साहकी बात ही नहीं रह जाती।

दूसरी बात यह है कि उत्साह होता है मनुष्यको किसी सुखकी इच्छासे। जब सकल सुखोंका खजाना ही अपने पास है तब क्षुद्र सुखके लिये उत्साह कैसे हो? इसलिये [illegible] उनके भावप्रेमी पुरुषोंमें लौकिक कार्योंके [illegible] प्रति कोई भी उत्साह नहीं देखा जाता।

भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १२।१७)

'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ, अशुभ सबका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।'

न [illegible] [illegible]
[illegible]

विचरता है। इस प्रकारका व्रत धारणकर वह अपने प्रियतम प्रभुके नाम-संकीर्तनमें प्रेम हो जानेके कारण द्रवितचित्त हुआ उन्मत्तके समान कभी अलौकिक भावसे खिलखिलाकर हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी नाच उठता है।'

यों उन्मत्तकी तरह आचरण करता हुआ प्रेमी आनन्दमें भरकर कभी चुप हो जाता है, शान्त होकर बैठ जाता है। यह स्तब्धता उसकी पूर्णकामताका परिचय देती है। प्रभुकी मूर्ति हृदयमें प्रकट हो गयी, रूपमाधुरीमें आनन्दमत्त होकर भक्त ध्यानमग्न हो गया।

सुतीक्ष्णकी दशा बताते हुए गोसाईंजी कहते हैं—

मुनि मग माझ अचल है बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥

नृत्य करते-करते प्रेममय बन जानेपर ऐसी ही अवस्था हुआ करती है। उसका चित्त और शरीर सर्वथा स्तब्ध—शान्त हो जाता है। आत्मा आनन्दमय बन जाता है। इसीको आत्माराम कहते हैं। इस आत्मारामस्थितिमें विषयतृष्णा तो कहीं रह ही नहीं जाती—

नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥

अन्य किसीका भी ज्ञान नहीं रहता। यही प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत है। प्रियतमके साथ मिलकर प्रेमीका पृथक् अस्तित्व ही लोप हो जाता है।



प्रेममें अनन्यता

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥७॥

७—वह (प्रेमाभक्ति) कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि **वह निरोधस्वरूपा है।**

यह प्रेमाभक्ति सर्वथा त्यागरूप है। इसमें धन, सन्तान, कीर्ति, स्वर्ग आदिकी तो बात ही क्या, मोक्षकी भी कामना नहीं रह सकती। जिस भक्तिके बदलेमें कुछ माँगा जाता है या कुछ प्राप्त होनेकी आशा या आकांक्षा है वह भक्ति कामनायुक्त है, वह स्वार्थका व्यापार है। प्रेमाभक्तिमें तो भक्त अपने प्रियतम भगवान् और उनकी सेवाको छोड़कर और कुछ चाहता ही नहीं।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव कहते हैं कि 'मेरे प्रेमी भक्तगण मेरी सेवा छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य (इन पाँच प्रकारकी*) मुक्तियोंको देनेपर भी नहीं लेते।' यथार्थ भक्तिके उदय होनेपर कामनाएँ नष्ट हो ही जाती हैं। क्योंकि वह भक्ति निरोधस्वरूपा यानी त्यागमयी है। वह निरोध क्या है?

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः ॥८॥

८—लौकिक और वैदिक (समस्त) कर्मोंके त्यागको निरोध कहते हैं।

प्रेमाभक्तिमें यह कर्मत्याग अपने-आप ही हो जाता है। प्रेममें मतवाला भक्त अपने प्रियतम भगवान्को छोड़कर अन्य किसी बातको जानता नहीं; उसका मन सदा श्रीकृष्णाकार बना रहता है, उसकी आँखोंके सामने सदा सर्वत्र प्रियतम भगवान्की छबि ही रहती है। दूसरी वस्तुमें उसका मन ही नहीं जाता। श्रीगोपियोंने भगवान्से कहा था—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।

* पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ ये हैं—
सालोक्य—भगवान्के समान लोकप्राप्ति।
सार्ष्टि—भगवान्के समान ऐश्वर्यप्राप्ति।
सामीप्य—भगवान्के समीप स्थानप्राप्ति।
सारूप्य—भगवान्के समान स्वरूपप्राप्ति।
सायुज्य—भगवान्में लयप्राप्ति।

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

(श्रीमद्भा० १० । २९ । ३४)

'हे प्रियतम ! हमारा चित्त आनन्दसे घरके कामोंमें आसक्त हो रहा था, उसे तुमने चुरा लिया । हमारे हाथ घरके कामोंमें लगे थे, वे भी चेष्टाहीन हो गये और हमारे पैर भी तुम्हारे पाद-पद्मोंको छोड़कर एक पग भी हटना नहीं चाहते । अब हम घर कैसे जायँ और जाकर करें भी क्या ?'

जगत्का चित्र चित्तसे मिट जानेके कारण वह भक्त किसी भी लौकिक (स्मार्त) अथवा वैदिक (श्रौत) कार्यके करने लायक नहीं रह जाता । इससे वे सब स्वयमेव छूट जाते हैं । सुन्दरदासजी ऐसे प्रेमी भक्तकी दशाका वर्णन करते हुए कहते हैं—

न लाज तीन लोककी, न वेदको कह्यौ करै ।
न संक भूत-प्रेतकी, न देव-जच्छतें डरै ॥
सुनै न कान और की, द्रसै न और इच्छना ।
कहै न बात और की, सुभक्ति प्रेमलच्छना ॥

कबहुँक हँसि उठि नृत्य करै रोवन फिर लागै ।
कबहुँक गदगद कंठ, सबद निकसै नहिं आगै ॥
कबहुँक हृदै उमंग बहुत ऊँचे सुर गावै ।
कबहुँक ह्वै मुख मौन गगन ऐसो रहि जावै ॥
चित्त बित्त हरिसों लग्यो सावधान कैसे रहै ।
यह प्रेमलच्छना भक्ति है, शिष्य सुनो 'सुन्दर' कहै ॥

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ॥९॥

९–उस प्रियतम भगवान्‌में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषयमें उदासीनताको भी निरोध कहते हैं ।

बाहरी ज्ञान बना रहनेकी स्थितिमें भी प्रेमी भक्त अपने प्रियतमके प्रति अनन्य भाव रखता हुआ उसके प्रतिकूल कार्योंसे सर्वथा उदासीन रहता है । इस प्रकार सावधानीसे होनेवाले कर्म भी निरोध कहलाते हैं । प्रेमी भक्तके द्वारा होनेवाली प्रत्येक चेष्टा अपने प्रियतमके अनुकूल होती है और अनन्य भावसे उसीकी सेवाके लिये होती है । प्रतिकूल चेष्टा तो उसके द्वारा वैसे ही नहीं होती जैसे सूर्यके द्वारा कहीं अँधेरा नहीं होता या अमृतके द्वारा मृत्यु नहीं हो सकती ।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥१०॥

१०–(अपने प्रियतम भगवान्‌को छोड़कर) दूसरे आश्रयोंके त्यागका नाम अनन्यता है ।

प्रेमी भक्तके मनमें अपने प्रियतम भगवान्‌के सिवा अन्य किसीके होनेकी ही कल्पना नहीं होती, तब वह दूसरेका भजन कैसे करे ? वह तो चराचर विश्वको अपने प्रियतमका शरीर जानता है, उसे कहीं दूसरा दीखता ही नहीं—

उत्तमके अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

रहीम कहते हैं कि आँखोंमें प्यारेकी मधुर छवि ऐसी समा रही है कि दूसरी किसी छबिके लिये स्थान ही नहीं रह गया—

प्रीतम-छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय ।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥

गोपियोंकी सर्वत्र श्याममयी चित्तवृत्तिका वर्णन करते हुए श्रीदेवकविने कहा है—

औचक अगाध सिंधु स्याहीको उमड़ि आयो,
तामें तीनौं लोक बूड़ि गए एक संगमें।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद सु
न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चितभंगमें॥
आँखिनमें तिमिर अमावसकी रैन जिमि,
जंबुनद-बुंद जमुना-जल-तरंगमें।
यों ही मन मेरो मेरे कामको न रह्यो माई,
स्याम रँग ह्वै करि समानो स्याम रंगमें॥

यदि कोई उससे दूसरेकी बात कहता है तो वह उसे सुनना ही नहीं चाहता या उसे सुनायी ही नहीं पड़ती। यदि कहीं जबरदस्ती सुननी पड़ती भी है तो उसका मन उधर आकर्षित होता ही नहीं। शिवजीकी अनन्योपासिका पार्वतीजीको सप्तर्षियोंने महादेवजीके अनेक दोष बतलाकर उनसे मन हटाने और सर्वसद्गुणसम्पन्न भगवान् विष्णुमें मन लगानेको कहा, तब शिवप्रेमकी मूर्ति भगवतीने उत्तर दिया—

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआँरी॥
महादेव अवगुनभवन, बिष्णु सकल गुनधाम।
जेहिकर मन रम जाहिसन, तेहि तेही सन काम॥

इसी तरह गोपियोंने भी उद्धवजीसे कहा था—

ऊधौ! मन मानेकी बात।
दाख छोहारा छाड़ि अमृतफल विषकीरा विष खात॥

जो चकोरको दै कपूर कोउ तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरे काठमें बँधत कमलके पात ॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपकसों लपटात ।
'सूरदास' जाको मन जासों, ताको सोइ सुहात ॥

इस प्रकार प्रेमी भक्त एकमात्र अपने प्रियतम भगवान्को ही जानकर, उसीको सर्वस्व मानकर, जैसे मछलीको केवल जलका आश्रय होता है वैसे ही केवल भगवान्का ही आश्रय लेकर, सारी चेष्टाएँ उसीके लिये करता है ।

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित चातक 'तुलसीदास' ॥

वह चातककी टेककी भाँति केवल भगवान्में ही चित्त लगाये, सम्पूर्णरूपसे उसीपर निर्भर करता हुआ, उसीके लिये शरीर धारण करता है । उसका खाना-पीना, सोना-बैठना, चलना-फिरना, देना-लेना, दान-पुण्य करना, सब कुछ उसीके लिये होता है । अतएव उसके समस्त कर्म भगवान्के प्रति अनन्य प्रेमभावसे सम्पन्न होनेके कारण स्वाभाविक ही कल्याणमय होते हैं ।

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥११॥

११–लौकिक और वैदिक कर्मोंमें भगवान्के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषयमें उदासीनता है ।

अनन्य भावसे भगवदर्थ कर्म करनेवालेके लिये भगवान्के प्रतिकूल कर्मोंका अपने आप ही त्याग हो जाता है । वैदिक या

लौकिक (श्रौत या स्मार्त), कोई भी ऐसा कर्म वह नहीं कर सकता जो भगवान्‌के अनुकूल न हो, यानी जिससे प्रेमाभक्तिकी वृद्धिमें सहायता न पहुँचती हो।

पुत्रके लिये माता-पिताकी, स्त्रीके लिये स्वामीकी और शिष्यके लिये गुरुकी आज्ञा मानना वेद और लोक-धर्मके अनुसार सर्वथा कर्तव्य है; परन्तु उनकी आज्ञा भी यदि भगवत्-प्रेमसे विरुद्ध है तो प्रेमी भक्त कष्ट सहकर भी उसका त्याग कर देता है, क्योंकि उसके द्वारा अपने प्यारेके प्रतिकूल आचरण होना असम्भव है।

गोस्वामीजी महाराजने उदाहरण देते हुए कहा है—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम जद्यपि परमसनेही॥
पिता तज्यो प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भए जग मंगलकारी॥

प्रह्लादने भगवान्‌के प्रतिकूल पिताकी आज्ञा नहीं मानी, बिभीषणने भाईका साथ छोड़ दिया, भरतजी माताकी आज्ञाको टाल गये, राजा बलिने गुरु शुक्राचार्यकी बात नहीं सुनी और ब्रजवनिताओंने पतियोंकी आज्ञापर ध्यान नहीं दिया, और ये सभी जगत्‌के लिये कल्याणकारी हुए।

कर्म चार प्रकारके होते हैं—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध। इनमें मद्य-मांस-सेवन, चोरी, व्यभिचार आदि निषिद्ध कर्म तो सभीके लिये त्याज्य हैं। शास्त्रीय काम्य (सकाम) कर्म बन्धनकारक तथा जन्म-मृत्युके चक्रमें डालनेवाले होनेके कारण

'काम्यानां कर्मणां न्यासम्' इस भगवद्-वचनानुसार त्याज्य हैं। रहे नित्य और नैमित्तिक कर्म, इनको लौकिक और वैदिक विधिके अनुसार फलासक्ति छोड़कर केवल भगवान्‌की आज्ञानुसार भगवत्प्रीत्यर्थ करना चाहिये। भगवत्-प्रीत्यर्थ वही कर्म होते हैं जो भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ानेवाले हों। गीताके अनुसार आसक्ति और फलाशा छोड़कर मन, वाणी और शरीरसे भगवान्‌के अनुकूल कर्म करना और प्रतिकूल कर्मोंका त्याग करना ही विरोधी कर्मोंमें उदासीनता है। प्रेमभक्तिकी उन्मादमयी स्थिति प्राप्त न होनेतक ऐसे भगवदनुकूल कर्म प्रेमी भक्तके द्वारा स्वाभाविक हुआ ही करते हैं।

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ॥१२॥

१२-(विधिनिषेधसे अतीत अलौकिक प्रेम प्राप्ति करनेका प्रन)में दृढ़ निश्चय हो जानेके बाद भी शास्त्रकी रक्षा करनी चाहिये। अर्थात् भगवदनुकूल शास्त्रोक्त कर्म करने चाहिये।

प्रेमकी बाह्यज्ञानशून्य, विधि-निषेधसे अतीत सिद्ध अवस्थामें लौकिक और वैदिक कर्मोंका त्याग अपने-आप ही हो जाता है, जान-बूझकर किया नहीं जाता।

इसलिये जबतक प्रेमकी वैसी, सब कुछ भुला देनेवाली स्थिति प्राप्त न हो जाय तबतक प्रेमके नामपर शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। शास्त्रके अनुसार भगवान्‌के अर्पणबुद्धिसे भगवदनुकूल नित्य-नैमित्तिक कर्म और श्रवण-कीर्तनादि-

रूप भजन करते-करते ही भगवान्‌का वह परमोच्च प्रेम प्राप्त होता है। भगवान् स्वयं आज्ञा करते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥
(गीता १६। २४)

अतः तुम्हारे लिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इसकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, यह जानकर तुम्हें शास्त्रविधिके अनुसार ही कर्म करना चाहिये।

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥१३॥

१३-नहीं तो गिर जानेकी सम्भावना है।

जो मनुष्य जान-बूझकर शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन न करके शास्त्रके प्रतिकूल, अमर्यादित कार्य करता है और उसे प्रेमका नाम देकर दोषमुक्त होना चाहता है, वह अवश्य ही गिर जाता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥
(गीता १६। २३)

'जो मनुष्य शास्त्रकी विधिको छोड़कर मनमाना स्वेच्छाचार करता है वह न सिद्धि पाता है, न परम गति पाता है और न उसे सुखकी ही प्राप्ति होती है।' जान-बूझकर शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग करना प्रेमका आदर्श नहीं है, मोह है, उच्छृङ्खलता और

स्वेच्छाचार है। ऐसा करनेवाला परिणाममें आसुरी योनि, नरक और दुःखोंको ही प्राप्त होता है।

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वा-शरीरधारणावधि ॥१४॥

१४—लौकिक कर्मोंको भी तबतक (बाह्यज्ञान रहनेतक विधिपूर्वक करना चाहिये।) पर भोजनादि कार्य जबतक शरीर रहेगा तबतक होते रहेंगे।

वैदिक कर्मके साथ ही लौकिक जीविका, गृहस्थ-पालन आदिके कार्य भी सावधानीके साथ भगवदनुकूल विधिके अनुसार करने चाहिये। अवश्य ही एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें वैदिक, लौकिक कार्य अनायास ही छूट जाते हैं; परन्तु उस स्थितिके प्राप्त होनेतक दोनों प्रकारके कर्म विधिवत् अवश्य करने चाहिये। फिर तो आप ही छूट जायँगे। परन्तु आहारादि कर्म उस अवस्थामें भी रहेंगे। कारण, वे शरीरके लिये आवश्यक हैं। यद्यपि प्रेमके नशेमें चूर भक्त आहारादिके लिये न तो कोई इच्छा करता है और न चेष्टा ही करता है, परन्तु आहारादि प्राप्त होनेपर अभ्यासवश अनायास ही उसके द्वारा आहार कर लिया जाता है। अवश्य ही यह भी भगवत्प्रसाद ही होता है।

प्रेमरूपा भक्तिके लक्षण और उदाहरण

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥१५॥

१५–अब नाना मतोंके अनुसार उस भक्तिके लक्षण कहते हैं।

विभिन्न आचार्योंने भक्तिका स्वरूप भिन्न-भिन्न रूपसे बतलाया है, पहले उनका वर्णन करके फिर देवर्षि नारदजी अपना मत दिखलाना चाहते हैं।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ॥१६॥

१६–पराशरनन्दन श्रीव्यासजीके मतानुसार भगवान्की पूजा आदिमें अनुराग होना भक्ति है।

अपने तन, मन, धनको भगवान्की पूजन-सामग्री समझना और परम श्रद्धापूर्वक यथाविधि तीनोंके द्वारा भगवान्की प्रतिमाकी अथवा विश्वरूप भगवान्की पूजा करनी चाहिये। भगवत्-पूजामें मन लगनेसे संसारके बन्धनकारक विषयोंसे मन अपने-आप ही हट जाता है। बाह्य और मानस दोनों ही प्रकारसे भगवान्की

पूजा होनी चाहिये। भगवत्की पूजासे भगवान्का परमपद प्राप्त होता है—

श्रीविष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम्॥
(विष्णुरहस्य)

'इस धरातलमें जो लोग भगवान्की पूजा करते हैं वे सनातन आनन्दमय परमपदको प्राप्त होते हैं।'

कथादिष्विति गर्गः॥१७॥

१७—श्रीगर्गाचार्यके मतसे भगवान्की कथा आदिमें अनुराग होना ही भक्ति है।

श्रीभगवान्की दिव्य लीला, महिमा, उनके गुण और नामोंके कीर्तन तथा श्रवणमें मन लगाना निस्सन्देह भक्तिका प्रधान लक्षण है। संसारमें अधिकांश मनुष्य तो ऐसे हैं जिन्हें भगवान् और भगवान्की कथासे कोई मतलब ही नहीं है। दिन-रात विषय-चर्चामें ही उनका जीवन बीतता है। न तो वे कभी भगवान्का गुणगान करते हैं और न उन्हें भगवत्कथा सुहाती है। 'श्रवन न रामकथा अनुरागी।' इस अवस्थामें जिन मनुष्योंका मन भगवान्के गुणानुवाद सुनने और कहनेमें लगा रहता है वे अवश्य ही भक्त हैं। सूत्रकार आचार्य श्रीनारदजीने स्वयं महर्षि वेदव्याससे कहा है—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २२)

'विद्वानोंने यही निरूपित किया है कि भगवान्का गुणानुवाद-कीर्तन ही तप, वेदाध्ययन, भलीभाँति किये हुए यज्ञ, मन्त्र, ज्ञान और दान आदि सबका अविनाशी फल है ।' श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

रामकथा सुंदर करतारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥
भवसागर चह पार जो पावा । रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥

अतएव श्रीहरिकथामें यथार्थ अनुराग होना भक्ति है और इस भक्तिसे भगवान्की प्राप्ति निश्चय ही हो जाती है ।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ॥१८॥

१८—शाण्डिल्य ऋषिके मतमें आत्मरतिके अविरोधी विषयमें अनुराग होना ही भक्ति है ।

अविच्छिन्नरूपसे शुद्ध आत्मस्वरूपमें रत रहना ही आत्मरति है; इस आत्मरतिमें नित्य स्थित रहनेको ही अव्यक्तोपासक महानुभाव भक्ति कहते हैं । श्रीशङ्कराचार्यजीने कहा है—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥

आत्मरूपसे प्रत्येक प्राणीमें श्रीभगवान् ही विराजमान हैं, अतः उन सर्वात्मामें रति होना वस्तुतः भगवान्की भक्ति ही है । और ऐसी भक्ति करनेवालेको मुक्ति प्राप्त होनेमें कोई सन्देह नहीं ।

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥१९॥

१९—परन्तु देवर्षि नारदके मतसे अपने सब कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना और भगवान्‌का थोड़ा-सा भी विस्मरण होनेमें परम व्याकुल होना ही भक्ति है।

नारदजीको महर्षि व्यास, गर्ग और शाण्डिल्य-कथित भक्तिके लक्षणोंसे कोई विरोध नहीं है। भगवान्‌की पूजा करना, भगवान्‌के गुणगान करना और सर्वात्मरूप भगवान्‌में प्रेम करना उचित और आवश्यक है। व्यासजीको तो भगवद्‌गुणगानमें श्रीनारदने ही लगाया था। अतः इन लक्षणोंका खण्डन करने या इन्हें तुच्छ बतलानेके लिये नहीं, परन्तु इन्हींको और भी पुष्ट करनेके लिये नारदजी इन सभी लक्षणोंसे युक्त एक सर्वाङ्गपूर्ण भक्तिका लक्षण निर्देश करते हुए कहते हैं कि अपने समस्त कर्म, (वैदिक और लौकिक) भगवान्‌में अर्पण करके प्रियतम भगवान्‌का अखण्ड स्मरण करना और पलभरके लिये भी उनका यदि विस्मरण हो जाय (प्रियतमको भूला जाय) तो परम व्याकुल हो जाना, यही सर्वलक्षणसम्पन्न भक्ति है। इसमें पूजा-कथामें अनुराग और विश्वात्मा भगवान्‌में रति तो रहती ही है। भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें सब प्रकारके योगियोंमें इन्हीं लक्षणोंसे युक्त भक्ति-योगीको सर्वोत्तम बतलाया है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥
(६ । ४६-४७)

'तपस्वियोंसे, शास्त्र-ज्ञानियोंसे और सकाम कर्मियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; अतएव हे अर्जुन ! तू योगी बन । परन्तु सम्पूर्ण योगियोंमें भी वह भक्ति-योगी मेरे मतमें परम श्रेष्ठ है जो मुझमें श्रद्धावान् है और अन्तरात्माको मुझमें लगाकर निरन्तर मुझे भजता है ।'

भगवान्ने फिर आज्ञा की है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
(गीता ८ । ७)

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समय (बिना विराम) मेरा स्मरण कर और (स्मरण करता हुआ ही मेरे लिये ही) युद्ध कर । इस प्रकार मुझमें ही मन-बुद्धि अर्पण करके तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

मानापमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख आदिकी परवा न करके, आसक्ति और फलकी इच्छा छोड़कर, शरीर और संसारमें अपने लिये अहंता-ममतासे रहित होकर, एकमात्र परम प्रियतम श्रीभगवान्को ही परम आश्रय, परम गति, परम सुहृद् समझकर, अनन्यभावसे, अत्यन्त श्रद्धाके साथ, प्रेमपूर्वक निरन्तर तैलधारावत् उनके नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते हुए परमानन्दमें मग्न रहना और इस प्रकार चिन्तनपरायण

रहते हुए ही केवल उन परम प्रियतम भगवान्के लिये, उनकी रुचि तथा इच्छाके अनुसार, उन्हींके प्रीत्यर्थ, उन्हींको सुख पहुँचानेके दृढ़ और परम स्वार्थसे प्रेरित होकर, सर्वथा निःस्वार्थभावसे समस्त दैहिक, वाचिक और मानसिक कर्मोंका आचरण करना। यदि किसी कारणवश क्षणभरके लिये भी उनका चिन्तन-स्मरण छूट जाय तो जलसे निकाली हुई मछलीसे भी अनन्तगुणा अधिक व्याकुलताका अनुभव करना, यही सर्वोच्च भक्ति है।

ऐसा पूर्ण समर्पणकारी प्रेमी भक्त त्रैलोक्यके राज्यसुखकी तो बात ही क्या है, अपुनरावर्ती मोक्षके लिये भी, किसी भी हालतमें अपने प्रियतम भगवान्का स्मरण छोड़ना नहीं चाहता। भगवान् ऐसे भक्तकी प्रशंसा करते हुए भक्त उद्धवसे कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १५—१७)

'हे उद्धव! इस प्रकारके तुम भक्त मुझको जैसे प्रिय हो, वैसे प्रिय ब्रह्मा, शङ्कर, बलराम, लक्ष्मी और अपनी आत्मा भी

नहीं है। ऐसे किसी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले, शान्तचित्त, निर्वैर, सर्वत्र समभावसे मुझको देखनेवाले और निरन्तर मेरा मनन करनेवाले प्रेमी भक्तोंकी चरणरजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा-सर्वदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। मुझमें चित्तको अनुरक्त कर रखनेवाले, सर्वस्व मुझको अर्पण करके अकिञ्चन बने हुए ऐसे शान्त, और मेरे नाते सब जीवोंके प्रति स्नेह करनेवाले तथा सब प्रकारकी कामनाओंसे शून्य हृदयवाले महात्मा जिस परमसुखका अनुभव करते हैं, उस निरपेक्ष परमानन्दको दूसरे लोग नहीं जानते।' बस, श्रीनारदजीके मतसे यही भक्ति है। ऐसा भक्त समस्त आचरण श्रीभगवान्‌के अर्पण करके अनवच्छिन्नरूपसे भगवत्स्मरण करता रहता है, और कहीं तनिक भी भूल जानेपर परम व्याकुल हो जाता है।

अस्त्येवमेवम् ॥२०॥

२०–ठीक ऐसा ही है।

देवर्षि नारद पिछले सूत्रमें बतलाये हुए सिद्धान्तकी दृढ़ताके लिये कहते हैं कि वस्तुतः भक्तिका यही स्वरूप है!

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥२१॥

२१–जैसे व्रजगोपियोंकी (भक्ति)।

भक्तिका लक्षण बतलाकर अब देवर्षि उदाहरणमें प्रेमिका-शिरोमणि प्रातःस्मरणीया श्रीगोपिकाओंका नाम लेते हैं। वस्तुतः गोपियोंकी ऐसी ही महिमा है। जगत्‌में ऐसा कौन है जो गोपियोंके प्रेमके तत्त्वका बखान कर सके? उनका तन, मन, धन,

लोक, परलोक सब श्रीकृष्णके अर्पित था। वे दिन-रात श्रीकृष्णका ही चिन्तन करतीं, गद्गद वाणीसे निरन्तर श्रीकृष्णका ही गुणगान करतीं और सर्वत्र सर्वदा श्रीकृष्णको ही देखा करती थीं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥
(श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

'हे गोपिकाओ! तुमने मेरे लिये गृहस्थकी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरा भजन किया है। तुम्हारा यह कार्य सर्वथा निर्दोष है। मैं देवताओंकी आयुपर्यन्त भी तुम्हारे इस उपकारका बदला नहीं चुका सकता। तुम अपनी उदारतासे ही मुझे ऋणमुक्त करना।'

उद्धवको सँदेसा देकर भेजते समय भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमाश्रु बहाते हुए गद्गद वाणीसे कहा था—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥
(श्रीमद्भा० १०।४६।४-६)

'हे उद्धव ! गोपियोंने अपना मन मुझको समर्पण कर दिया है, मैं ही उनके प्राण हूँ, मेरे लिये उन्होंने अपने देहके सारे व्यवहार छोड़ दिये हैं। जो लोग मेरे लिये समस्त लौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनको मैं सुख पहुँचाता हूँ। वे गोपियाँ मुझको प्रियसे भी अति प्रिय समझती हैं, मेरे दूर रहनेपर मुझे स्मरण करके वे दारुण विरहवेदनासे व्याकुल होकर अपने देहकी सुधि भूल जाती हैं। मेरे बिना वे बड़ी ही कठिनतासे किसी प्रकार प्राण धारण कर रही हैं, मेरे पुनः व्रज जानेके सन्देशके आधारपर ही वे जी रही हैं। मैं उन गोपियोंकी आत्मा हूँ और वे मेरी हैं।'

उद्धवने व्रजमें आकर जब प्रेममयी गोपियोंकी दशा देखी, उन्हें सब ओर, बाहर-भीतर श्रीकृष्णके दर्शन करते पाया और जब उनके मुखसे सुना—

[१]

नाहिन रह्यो हियमहँ ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत चितवत दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदयते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥
कहत कथा अनेक ऊधौ ! लोक-लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेमपूरन, घट न सिंधु समात॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास।
'सूर' ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥

[२]

ऊधौ ! जोग जोग हम नाहीं।
अबला ग्यान सार कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं॥
ते ये मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपटकी मधुकर हमते सुनी न जाहीं॥
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भसम बतावत, बिरह अनल अति दाहीं॥
जोगी भरमत जेहि लगि भूले, सो तो है हम पाहीं।
'सूरदास' सो न्यारो न पल छिन, ज्यों घटते परिछाहीं॥

गोपियोंने कहा—'उद्धवजी ! योग उन्हें जाकर सिखाओ, जहाँ श्यामसुन्दरका वियोग हो। यहाँ तो देखो, सदा ही संयोग है; हमारा प्यारा श्याम सदा-सर्वदा हमारे साथ ही रहता है।' तब उद्धवकी आँखें खुलीं, वे गोपियोंके शुद्ध प्रेमके प्रबल प्रवाहमें बह गये—

सुनि गोपीके बैन, नेम ऊधौके भूले।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनमें फूले॥
छिन गोपिनके पग परै, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटहीं, ऊधौ छाके प्रेम॥

उन्होंने भक्तिप्रणत चित्तसे कहा—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । ४७ । ५८, ६०-६१)

'जगत्‌में इन गोपललनाओंका ही देह धारण करना सफल है, क्योंकि इनका चित्त विश्वात्मा भगवान् श्रीगोविन्दमें लगा हुआ है, जिनकी भवभयसे भीत हुए मुनिगण तथा हमलोग सभी इच्छा करते हैं। सत्य है, जो श्रीअनन्तकी लीला-कथाओंके रसिक हैं उन्हें ब्राह्मणोंके तीनों जन्मों (जन्म, यज्ञोपवीत और यज्ञदीक्षा) की क्या आवश्यकता है? रासलीलाके समय भगवान् श्रीहरिके भुजदण्डको कण्ठहार बनाकर पूर्णकाम हुई इन व्रजवालाओंको श्रीहरिका जो प्रसाद प्राप्त हुआ है, वैसा निरन्तर हृदयमें रहनेवाली श्रीलक्ष्मीजी और कमलकी-सी कान्ति और सुगन्धिसे युक्त सुरसुन्दरियोंको भी नहीं मिला; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है? इन महाभागा गोपियोंने कठिनतासे छोड़े जा सकनेवाले बन्धुओंको और आर्यधर्म-को त्यागकर श्रुति जिसकी खोज करती है, उस मुकुन्दपदवीका अनुसरण किया है। अहो! क्या ही उत्तम हो, यदि मैं आगामी जन्ममें इस वृन्दावनकी लता, ओषधि या झाड़ियोंमेंसे कोई होऊँ,

जिनपर इन गोपियोंकी चरणधूलि पड़ती है।' मथुराकी कुलाङ्गनाओंने गोपियोंकी दशाका वर्णन करके उनके जीवनको धन्य बताते हुए कहा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(श्रीमद्भा० १०।४४।१५)

'जो गोपियाँ गायोंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें छिड़काव करते तथा झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे, आँखोंमें आँसू भरे, गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णके गुणगान किया करती हैं, उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियोंको धन्य है।'

इन गोपियोंकी जितनी महिमा गायी जाय, उतनी ही थोड़ी है। सर्वत्यागी व्रजवासी भक्तोंने तो गोपीपदपङ्कजपराग ही बनना चाहा है। सत्य ही कहा है—

गोपी प्रेमकी धुजा।
जिन घनस्याम किये बस अपने उरधरि स्यामभुजा ॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव-सदृश महान् त्यागी महापुरुषोंने तो गोपियोंको प्रेममार्गका गुरु माना है। महान् भक्त श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

जयति ललितादि देवीय व्रज श्रुतिरिचा,
कृष्ण प्रिय केलि आभीर अंगी ।
जुगल-रस-मत्त आनंदमय रूपनिधि,
सकल सुख समयकी छाँह संगी ॥
गौरमुख हिमकरनकी जु किरनावली,
स्रवत मधु गान हिय पिय तरंगी ।
'नागरी' सकल संकेत आकारिनी,
गनत गुनगननि मति होति पंगी ॥

एक व्रजभक्तने कहा है—

वे हरिरस ओपी गोपी सब तियतें न्यारी ।
कमलनयन गोविंदचंदकी प्रानपियारी ॥
निरमत्सर जे संत तिनहिं चूड़ामनि गोपी ।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी ॥
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावैं ।
क्यों नहिं परमानंद प्रेमभगती सुख पावैं ॥

गोपियोंकी महिमा तभी कुछ समझमें आ सकती है, जब साधक विषयोंसे परम वैराग्य धारणकर प्रेमपथपर कुछ अग्रसर होता है।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥ २२ ॥

२२—इस अवस्थामें भी (गोपियोंमें) माहात्म्यज्ञानकी विस्मृतिका अपवाद नहीं।

अर्थात् गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव, रहस्य और गुणोंको जानती थीं। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रेममें माहात्म्य-ज्ञान नहीं रहता। माहात्म्यज्ञान होगा तो प्रेम नहीं रहेगा, परन्तु

गोपियोंमें ऐसी बात नहीं थी । गोपियाँ श्रीकृष्णको साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् जानती हुई ही अपना प्रियतम समझती थीं । लौकिक प्रेम और भगवत्प्रेममें यही खास भेद है । भगवत्प्रेममें वस्तुतः ऐसा ही होता है । जो लोग कहते हैं कि गोपियाँ श्रीकृष्णको भगवान् नहीं जानती थीं, वे श्रीमद्भागवतके नीचे लिखे श्लोकोंका मनन करें—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥
यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥
श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥
(१०।२९।३१-३२, ३६-३७)

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥
(१०।२९।४१)

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥
(१०।३१।४)

'हे विभो ! आप ऐसे कठोर शब्द (वापस जानेकी बात) न कहिये । हमने अन्य सम्पूर्ण विषयोंको छोड़कर एकमात्र आपके ही चरणकमलोंका आश्रय लिया है । हे स्वच्छन्द ! जिस प्रकार आदिपुरुष श्रीनारायण मुमुक्षुओंको भजते हैं, (उनकी इच्छानुसार उन्हें स्वीकार करते हैं) उसी प्रकार आप हमें अङ्गीकार कीजिये, त्यागिये नहीं । हे हरि ! आप धर्मको जाननेवाले हैं (फिर आप कैसे कहते हैं कि तुमलोग लौट जाओ, आपकी शरण आनेपर भी क्या कोई कभी वापस लौटता है !) आपने जो कहा कि पति, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है सो यह उपदेश उपदेशके स्थान आप ईश्वरके विषयमें ही रहे क्योंकि समस्त देहधारियोंके प्रियतम बन्धु और आत्मा तो आप ही हैं । हे कमललोचन ! जिस समय श्रीलक्ष्मीजीको (श्रीविष्णुरूपमें) कभी कभी आनन्दित करनेवाले आपके चरणकमलोंको हमने स्पर्श किया था और वनवासी तपस्वियोंके प्रिय आपने हमें आनन्दित किया था

तभीसे हमारे लिये अन्यत्र कहीं ठहरना असम्भव हो गया है। जिनकी कृपादृष्टि पानेके लिये देवगण अत्यन्त प्रयास करते हैं, वे लक्ष्मीजी बिना किसी प्रतिद्वन्द्वीके आपके वक्षःस्थलमें स्थान पाकर भी तुलसीजीके सहित अन्य भक्तोंसे सेवित आपके चरण-रजकी इच्छा करती हैं, हम भी निस्सन्देह आपकी उसी चरणरजकी ही शरणमें आयी हैं। क्योंकि देवताओंकी रक्षा करनेवाले आप आदिपुरुष परमात्मा ही व्रजमण्डलका भय और दुःख दूर करनेके लिये प्रकट होकर अवतीर्ण हुए हैं। यह निश्चय है कि आप केवल यशोदाके ही पुत्र नहीं हैं वरं समस्त देहधारियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। हे सखे! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही आपने सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेके लिये यदुकुलमें अवतार लिया है।'

ऐसे अनेकों प्रमाणोंसे तथा युक्तियोंसे यह सर्वथा सिद्ध है कि गोपियोंने श्रीकृष्णको साक्षात् सच्चिदानन्दघन भगवान् समझकर ही उन्हें आत्मसमर्पण किया था।

तद्विहीनं जाराणामिव ॥ २३ ॥

२३–उसके बिना (भगवान्‌को भगवान् जाने बिना किया जानेवाला ऐसा प्रेम) जारोंके (प्रेमके) समान है।

माहात्म्यज्ञान बिना स्त्रियोंके द्वारा किसी पुरुषके प्रति किया जानेवाला ऐसा प्रेम जारोंका-सा प्रेम होता है। जिस प्रेममें सर्वार्पण है, जिसमें लौकिक स्वार्थकी तनिक-सी गन्ध भी नहीं है, ऐसा प्रेम केवल भगवान्‌के प्रति ही हो सकता है। यद्यपि जाने-अनजाने किसी प्रकार भी भगवान्‌के प्रति किया हुआ प्रेम निष्फल

नहीं होता, परन्तु जानकर होनेवाले प्रेममें विशेषता होती है। भगवान् हमारे प्रियतम हैं, इस कल्पनामें ही कितना अपार आनन्द है। फिर जिनको वे भगवान् परम प्रियतमरूपमें प्राप्त हो जायँ उनके सुखका तो कहना ही क्या है? गोपियाँ इसी परम पवित्र दिव्य सुखकी भागिनी थीं। इसीसे जीवन्मुक्त महात्मा शुकदेव मुनिने मृत्युके लिये तैयार हुए राजा परीक्षितको यह पवित्र प्रेमलीला सुनायी थी। अतएव यह प्रेम भगवत्-माहात्म्यके ज्ञानसे युक्त परमपवित्र था।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम् ॥ २४ ॥

२४–उसमें (जारके प्रेममें) प्रियतमके सुखसे सुखी होना नहीं है।

व्यभिचारी मनुष्य कामवश होकर केवल अपने सुखके लिये, अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये प्रीति किया करते हैं; वे अपने प्रेमास्पदके सुखसे सुखी नहीं होते। गोपियोंके प्रेममें यह भाव नहीं था। लौकिक कामजनित प्रीतिमें प्रेमास्पद पुरुष जार होता है और उसके अंग-संगकी इच्छा होती है। यहाँ प्रेमास्पद साक्षात् विश्वात्मा भगवान् थे और गोपियोंके मनोंमें अंग-संगकी कामना नहीं थी। गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण-सुखकी अभिलाषिणी थीं। उन्होंने अपना तन, मन, बुद्धि, रूप, यौवन, धन, प्राण आदि सम्पूर्ण वस्तुओंको प्रियतम श्रीकृष्णकी पूजनसामग्री बना दिया था। अपना सर्वस्व देकर वे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाना चाहती थीं। जिस बातमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नता होती, वही करना उनका धर्म था। उसीमें उन्हें परम सुखकी अनुभूति होती थी। इसके अतिरिक्त

उनके मनमें अन्य प्रकारसे होनेवाले सुखकी कामना तो दूर रही, कल्पना भी नहीं थी। यही तो काम और प्रेमका अन्तर है। काम चाहता है दूसरेके द्वारा अपने सुखी होना, और प्रेम चाहता है अपने द्वारा प्रियतमको सुखी करना और उसे सुखी देखकर ही सुखी होना। श्रीचैतन्यचरितामृतमें गोपियोंके प्रेमका वर्णन करते हुए बहुत ही ठीक कहा गया है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति-इच्छा, तार नाम काम। कृष्णेन्द्रिय प्रीति-इच्छा धरे प्रेम नाम
कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल। कृष्ण-सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल॥
आत्म-सुख-दुःख गोपी ना करे विचार। कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार॥
लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म कर्म। लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म॥
सर्व त्याग करये करे कृष्णेर भजन। कृष्णसुख हेतु करे प्रेमेर सेवन॥
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग। स्वच्छ धौत वस्त्र जैसे नाहि कोन दाग॥
अतएव काम प्रेमे बहुत अंतर। काम अंधतम प्रेम निर्मल भास्कर॥
अतएव गोपीगणे नाहि कामगंध! कृष्णसुख हेतु मात्र कृष्णेर संबंध॥

भगवान् श्रीकृष्णको सर्वस्व-अर्पण, पलभरके लिये भूल जानेमें परम व्याकुलता, श्रीकृष्णके प्रभाव और माहात्म्यका सम्यक् ज्ञान और श्रीकृष्णके सुखमें ही सुखी होना, यही चार बातें गोपी-प्रेममें मुख्य हैं।

यह गोपी-प्रेम परम पवित्र और अलौकिक है। इसमें जो पाप या व्यभिचार देखते हैं, उनपर श्रीकृष्ण दया करें।



प्रेमरूपा भक्ति फलरूपा है

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥ २५॥

२५–वह (प्रेमरूपा भक्ति) तो कर्म, ज्ञान और योगसे भी श्रेष्ठतर है ।

कर्म, ज्ञान और योग तीनों ही भगवत्प्राप्तिके साधन हैं, परन्तु भक्ति इन तीनोंमें सबसे श्रेष्ठ है । उनमें वर्ण, आश्रम, अधिकार आदिका विचार है; साथ ही गिरनेका भय भी है परन्तु सच्ची भक्तिमें भगवान्‌की पूरी सहायता रहनेके कारण कोई भी भय नहीं है । तथा इसमें स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभीका अधिकार है । गोसाईं तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥
सुनु खगेस हरिभगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥

उमा जोग जप दान तप, नाना ब्रत मख नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम ॥
पन्नगारि सुनु प्रेम सम, भजन न दूसर आन ।
यह बिचारि मुनि पुनि-पुनि, करत राम-गुन-गान ॥

स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।२०-२१)

'जिस प्रकार मेरी दृढ़भक्ति मुझे वश करती है, उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग वशमें नहीं कर सकते। सन्तोंका प्रिय आत्मारूप मैं केवल श्रद्धायुक्त भक्तिके द्वारा वशमें हो सकता हूँ, मेरी भक्ति चाण्डाल आदिको भी पवित्रहृदय बनानेमें समर्थ है।'

इसी प्रकार श्रीभगवान्ने गीतामें भी कहा है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(११।५३-५४)

'हे अर्जुन! जैसा तुमने मुझको देखा है, ऐसा वेद, तप, दान, यज्ञ आदिसे मैं नहीं देखनेमें आता। हे परन्तप अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा ही इस प्रकार मेरा देखा जाना, मुझे तत्त्वसे जानना और मुझमें प्रवेश पाना सम्भव है।'

फलरूपत्वात्॥ २६॥

२६—क्योंकि (वह भक्ति) फलरूपा है।

वस्तुतः यह भक्ति फलरूपा है, साधन नहीं है। जो भक्ति ज्ञानका साधन मानी जाती है वह गौणी भक्ति साधारण उपासना

है, प्रेमरूपा भक्ति नहीं है। प्रेमरूपा भक्ति तो समस्त साधनोंका फल है।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना करम धरम ब्रत दाना। संजम नेम ग्यान जप नाना॥
भूतदया गुरु-द्विज सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी॥

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च॥२७॥

२७-ईश्वरको भी अभिमानसे द्वेषभाव है और दैन्यसे प्रियभाव है।

कर्म, ज्ञान और योगके साधकोंको अपने बलका और साधनका अभिमान हो सकता है। भगवान्‌का तो नाम ही दर्पहारी है। यद्यपि वस्तुतः भगवान्‌का न किसीमें द्वेष है, न राग है। उनके लिये सभी समान हैं। वे सभीका उद्धार करते हैं। हाँ, उद्धारके साधन भिन्न-भिन्न हैं। अभिमानीका उद्धार उसे दण्ड देकर करते हैं और दीन सेवकका उसे प्रेमसे गले लगाकर। इसीसे भगवान्‌के क्रोधको भी वरके तुल्य बतलाया गया है। अभिमानीके प्रति भगवान् द्वेषीकी-सी लीला करते हैं और दीनके साथ प्रेमीकी-सी। इसीसे 'दीनबन्धु', 'अशरण-शरण' और 'कङ्गालके धन' आदि उनके नाम हैं। यथार्थमें तो अभिमानीके प्रति भी उनके हृदयमें प्रेम ही होता है, इसीलिये तो वे उसका अभिमान नष्ट करते हैं।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जनअभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृतिमूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना॥

तेहिते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥

इतना होनेपर भी दम्भमें द्वेष दीखता ही है, परन्तु दीन अमानी गरीबको तो आप हृदयसे लगा लेते हैं। उसका छोटे-से-छोटा काम करनेमें भी नहीं सकुचाते। भक्तजन तो स्वाभाविक ही अपनेको किंकर समझते हैं, वे कहते हैं—

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा।
पापपीनस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम॥

'हे प्रभो! मुझ समस्त साधनोंसे हीन, मायाके सर्वथा पराधीन हुए पापोंसे लदे हुए दीनकी तो केवल तुम ही गति हो।'

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे॥

यह दीनता उस अभावकी स्थितिका नाम नहीं है जिसमें मनुष्य धन, मान, वैभव आदिके अभावसे ग्रस्त होकर उनकी प्राप्तिके लिये व्याकुल रहा करता है। यह दीनता तो उस निरभिमानता और अहङ्कारशून्यताका नाम है जो बड़े-से-बड़े वैभवशाली सम्राट्को भी भगवत्कृपासे प्राप्त हो सकती है। इस दीनताका अर्थ है अभिमान और कर्तृत्व-अहंकारका नाश हो जाना। यह समझना कि मैं और मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ है सो सब भगवान् है और सब भगवान्का है, सब कुछ उन्हींकी शक्ति और प्रेरणासे होता है, करने-करानेवाले वे ही हैं।

परन्तु भगवान्को प्यारी यह सच्ची दीनता सहज ही नहीं प्राप्त होती। अभिमानका सारा भूत उतरे बिना दीनता नहीं

आती। वर्ण, जाति, धन, मान, विद्या, साधन, स्वास्थ्य आदिका अभिमान, और कर्तापनका अहंकार मनुष्यमें ऐसी दीनता उत्पन्न नहीं होने देता; ऊपरसे मनुष्य दम्भपूर्वक दीन बनता है, भगवान्‌के सामने अपनेको दीन कहता है, रोनेका स्वाँग भरता है; परन्तु उसकी दीनताकी परीक्षा तो तभी होती है, जब बड़े-से-बड़े सांसारिक पदार्थों और साधनोंकी प्राप्तिमें भी स्वाभाविक दीनता ज्यों-की-त्यों बनी रहे। जो सब लोगोंके सामने अपनेसे हीन स्थितिके दूसरे मनुष्योंद्वारा दीन और पापी कहा जाना केवल सह ही नहीं लेता, वरं उसे सत्य समझकर प्रसन्न होता है और प्रभु-प्राप्तिके लिये सदैव जिसका चित्त खिन्न रहा करता है, ऐसे ही खिन्न—दीन भगवान्‌को प्यारे होते हैं। सच्ची भक्तिमें अपने पुरुषार्थ या साधनका अभिमान आ ही नहीं सकता, इसीलिये भक्ति श्रेष्ठ है।

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥२८॥

२८—उसका (भक्तिका) साधन ज्ञान ही है, किन्हीं (आचार्यों) का यह मत है।

यद्यपि भक्तिमें इस ज्ञानकी तो परम आवश्यकता है कि मैं जिसकी भक्ति करता हूँ वे ही सबके स्वामी, सबके आधार, सबके महेश्वर, जगत्‌के उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले, मायाके पति, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वात्मा, निर्गुण, निर्विकार, निराकार, सगुण, साकार भगवान् हैं, उनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं। क्योंकि इतना ज्ञान भी यदि न होगा तो श्रद्धा नहीं होगी; श्रद्धा बिना प्रीति नहीं होगी और प्रीति बिना भक्ति दृढ़ नहीं होगी।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहि प्रीती॥
प्रीति बिना नहि भगति दृढ़ाई। जिमि खगेस जलकी चिकनाई॥

परन्तु इसमें अद्वैतज्ञानके साधनकी आवश्यकता नहीं होती। केवल श्रद्धा और भावसे ही परमात्माकी भक्ति प्राप्त हो जाती है। गृध्रराज, गजेन्द्र, ध्रुव, शबरी आदिने केवल भगवान्‌की ऐसी ही भक्तिसे भगवान्‌को प्राप्त किया था।

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥ २९॥

२९-दूसरे (आचार्यों) का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक दूसरेके आश्रित हैं।

ऐसा भी होता है। गौणी भक्तिसे भगवान्‌के तत्त्वका ज्ञान होता है और तत्त्वके जाननेसे भगवान्‌में अत्यन्त प्रेम उत्पन्न होता है। परन्तु केवल भक्तिके प्रेमीजन इस मतकी परवा नहीं करते। क्योंकि वे इस बातको जानते हैं कि जब निर्मल प्रेमस्वरूपा भक्तिका पूर्ण उदय होता है तब किसीका ज्ञान अलग रह ही नहीं जाता। प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों एक हो जाते हैं। फिर किसका ज्ञान किसको होगा?

स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः* ॥ ३०॥

३०-ब्रह्मकुमारोंके (सनत्कुमारादि और नारदके) मतसे भक्ति स्वयं फलरूपा है।

अतएव यह भक्ति ही साधन है और भक्ति ही साध्य है। मूल भी वही और फल भी वही। भक्तगण भक्तिके लिये ही भक्ति

* पाठभेद "ब्रह्मकुमारः"।

करते हैं। क्योंकि भक्ति स्वयं फलरूपा है। वह न किसी साधनसे मिलती है और न कोई उससे श्रेष्ठ वस्तु है जिसकी प्राप्तिका वह साधन हो।

सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान-बिग्याना।

राजगृहभोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्॥ ३१॥

३१—राजगृह और भोजनादिमें ऐसा ही देखा जाता है।

यह पूर्वकथित भक्तिकी फलरूपताको समझनेके लिये उदाहरण है।

न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा॥ ३२॥

३२—न उससे (जान लेनेमात्रसे) राजाकी प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी।

केवल राजमहलका वर्णन सुनने और जान लेनेसे काम नहीं चलता। राजा धर्मात्मा है, शक्तिशाली है, प्रजाहितैषी है, रूपगुणसम्पन्न है, यह बात मी जान ली; परन्तु इससे क्या हुआ, इस जाननेमात्रसे राजा प्रसन्न थोड़े ही हो गया। इसी प्रकार जान लिया कि हलुआ मीठा होता है, घी और शक्करसे बनता है, बड़ा स्वादिष्ट है; परन्तु इससे भूख तो नहीं मिटती। इसी तरह केवल शब्दज्ञानसे न तो भगवान्‌की प्रसन्नता होती है और न हमें शान्ति ही मिलती है। यद्यपि भगवान्‌के लिये सभी समान हैं, तथापि उनकी प्रसन्नता तो भक्तिसे ही मिलती है। वे स्वयं कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
(गीता ९। २९)

'मैं सब भूतोंमें सम हूँ, न कोई मेरा द्वेष्य है और न प्रिय है; परन्तु जो मुझको भक्तिपूर्वक भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।'

तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥ ३३ ॥

३३–अतएव (संसारके बन्धनसे) मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवालोंको भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिये।

भक्तिसे भवबन्धन तो अनायास कट ही जाता है, साक्षात् भगवान् उसके प्रेमास्पद बनकर उसके साथ दिव्य लीला करते हैं।

अति दुरलभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं॥

अन्यान्य बड़े-बड़े साधनोंसे भी सहजमें न मिलनेवाली अति दुर्लभ मुक्ति बिना ही माँगे बलात्कारसे आती है, परन्तु वह भक्त तो—

मुकुति निरादरि भगति लुभाने॥

मुक्तिकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। ऐसी सुलभ और सर्वोपरि स्थितिरूप भक्तिको छोड़कर दूसरे साधनको कोई क्यों करे? श्रद्धालु और बुद्धिमान् पुरुषोंको केवल भक्ति ही करनी चाहिये।

प्रेमरूपा भक्तिके साधन और सत्संगकी महिमा

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ॥ ३४ ॥

३४-आचार्यगण उस भक्तिके साधन बतलाते हैं ।

कर्म और ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करके अब देवर्षि नारद भक्तिशास्त्रके प्रधान प्रवर्तक और भक्ति-तत्त्वके अनुभवी आचार्यों एवं सन्त-भक्तोंद्वारा गान किये हुए उस श्रेष्ठतम भक्तिके साधनोंका वर्णन करते हैं ।

तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च ॥ ३५ ॥

३५-वह (भक्ति-साधन) विषयत्याग और संगत्याग-से सम्पन्न होता है ।

जीवके मनमें स्वाभाविक ही प्रेमका स्रोत है, क्योंकि जीव परमानन्दस्वरूप परमप्रेमरूप भगवान्‌का ही सनातन चिदंश है; परन्तु विषयोंके प्रति प्रवाहित होनेसे उसके प्रेमकी धारा दूषित हो गयी है और इसीसे वह प्रेम दुःख उत्पन्न करनेवाले कामके रूपमें परिणत हो रहा है और इसी कारण उसके परमात्ममुखी दिव्य स्वरूपका प्रकाश नहीं होता । प्रेमके दिव्य स्वरूपके प्रकाशके लिये उसकी विषयाभिमुखी गतिको पलटकर ईश्वराभिमुखी करनेकी आवश्यकता

है। इसके लिये दो उपाय हैं—१—विषयोंका स्वरूपसे त्याग और २—विषयोंकी आसक्तिका त्याग। जो लोग यह मानते हैं कि विषयोंमें आसक्त रहते और यथेच्छ अमर्यादित विषयोंका संग्रह एवं उपभोग करते हुए ही भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जायगी, अथवा भगवद्भक्तिके मार्गमें विषय और विषयासक्तिके त्यागकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, वे बहुत बड़ी भूलमें हैं। भक्तिमें तो अपने भोगके लिये कोई वस्तु रह ही नहीं जाती; जब भोक्ता ही कोई नहीं रहता, तब भोग्य वस्तु कहाँसे रहे? वहाँ तो एकमात्र प्राणाधार भगवान् ही सर्वभोक्ता हैं और हम अपने समस्त अंगों एवं समस्त सामग्रियोंसहित भगवान्‌के भोग्य हैं। एकमात्र वे ही पुरुष हैं और सब उनकी भोग्या प्रकृति हैं। ऐसी अवस्थामें भक्तका अपना कोई भोग्य विषय रह ही नहीं जाता। इसको यदि ऊँची स्थिति कहकर कोई इससे बचना चाहे तो उसे भी साधन-कालमें विषयोंका और विषयासक्तिका यथासाध्य उत्तरोत्तर त्याग करना ही पड़ता है। शरीर विषयभोगमें लगा होगा और मन विषयोंमें आसक्त रहेगा, तो फिर प्रियतम भगवान्‌की सेवा किस तन-मनसे होगी? अतएव विषयत्यागकी बड़ी भारी आवश्यकता है। बाह्य भोग तो क्या, मनसे भी विषयोंका चिन्तन छोड़ना पड़ेगा; क्योंकि यह नियम है कि मन जिस वस्तुका चिन्तन करेगा उसीमें उसकी आसक्ति होगी। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

अर्थात् विषयोंका चिन्तन करनेसे मन विषयोंमें आसक्त होता है और मेरा बार-बार स्मरण करनेसे वह मुझमें लीन हो जाता है।

मनको जहाँ लगाओ वहीं लग जाता है, और मन लगाना होता है इन्द्रियोंके द्वारा ही; इम बार-बार जिस प्रकारके दृश्योंको देखेंगे, जैसी बात सुनेंगे, जैसी चीज खायेंगे, जो कुछ सूँघेंगे, जैसी वस्तुका स्पर्श करेंगे, उन्हींका मनमें बार-बार चिन्तन होगा और जिस वस्तुका अधिक चिन्तन होगा, उसीमें आसक्ति होगी। नाटक देखेंगे, वेश्याका गाना सुनेंगे, उनमें आसक्ति होगी; भक्त-लीला देखेंगे, कीर्त्तन सुनेंगे तो उनमें आसक्ति होगी। अतएव भक्तिकी अभिलाषा रखनेवालोंको भगवान्के प्रतिकूल तमाम विषयोंका त्याग करना चाहिये। वास्तवमें इस सूत्रमें विषयत्यागमें उन्हीं विषयोंका त्याग समझना चाहिये जो हमारे मनको भगवान्से हटाकर भोगोंमें—जगत्प्रपञ्चमें लगा देते हैं। ध्यान, चिन्तन, कीर्तन, भगवत्सेवा, साधुसत्कार, सत्सङ्ग आदि जो भगवदनुकूल विषय हैं, उनमें तो तन-मनको चाह करके लगाना चाहिये। और जिन विषयोंके संग्रह और सेवनकी शरीरयात्रा या कुटुम्ब-पोषणके लिये नितान्त आवश्यकता हो, उनका भी यथासम्भव बहुत ही थोड़े परिमाणमें संग्रह और सेवन करना चाहिये, और वह भी शास्त्रानुकूल तथा ईश्वरकी आज्ञा समझकर अन्य किसी भी फल-कामनाको मनमें स्थान न देते हुए केवल ईश्वर-प्रीत्यर्थ ही! इस प्रकारसे किया हुआ विषय-सेवन भी विषयत्यागके ही तुल्य समझा जाता है। केवल बाहरसे किसी विषयका त्याग कर दिया

जाय और मनमें उसका स्मरण बना रहे, तो वह यथार्थ त्याग नहीं है; इसीलिये सूत्रमें विषयत्यागके साथ-ही-साथ आसक्तित्याग-की भी आवश्यकता बतलायी गयी है। महाभारतमें कहा है—

त्यागः स्नेहस्य यत्त्यागो विषयाणां तथैव च।

(शान्तिपर्व १६१। १७)

'विषयासक्ति और विषय दोनोंके त्यागका नाम ही त्याग है।' इससे विषयानुरागका त्याग होगा, और विषयानुरागसे रहित हृदय ही भगवत्प्रेमका दिव्य धाम बन सकता है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होनेपर तो विषयका त्याग स्वाभाविक ही रहता है। श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

रमाबिलासु राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी॥

अमृतके स्वादको चख लेने और उसके गुणसे लाभ उठा लेनेपर फिर विषकी ओर किसीकी नजर ही क्यों जाने लगी! परन्तु उस अमृतकी प्राप्तिके लिये भी—उसकी ओर गति होनेके लिये भी विषयविषके त्यागकी आवश्यकता है। विषयासक्तिका त्याग करके भगवान्‌में आसक्त होनेमें ही परम सुख है। भगवान् कहते हैं—

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयात्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १२)

'मुझमें चित्त लगानेवाले और समस्त विषयोंकी अपेक्षा छोड़ने-वाले भक्तको आत्मस्वरूप मुझसे जो परम सुख मिलता है, वह सुख विषयासक्तचित्त लोगोंको कहाँसे मिल सकता है?'

अव्यावृतभजनात् ॥ ३६ ॥

३६–अखण्ड भजनसे (भक्तिका साधन सम्पन्न होता है)।

भजन भक्तिका प्रधान अङ्ग है, यह साध्य और साधन दोनों है। जो भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिये अखण्ड भजन स्वाभाविक हो जाता है, और जिनको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति करनी है उनको अखण्ड भजनका अभ्यास करना चाहिये। जो भजन बिना मुक्ति और भगवत्प्रेमकी प्राप्ति चाहता है वह भूलता है। गोसाईं श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

> बारि मथें बरु होइ घृत, सिकता तें बरु तेल।
> बिनु हरि-भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल॥

'जलके मन्थनसे चाहे घी निकल आवे, बालूसे चाहे तेल निकले; परन्तु भगवान्‌के भजन बिना भवसागरसे मनुष्य नहीं तर सकता, यह सिद्धान्त अकाट्य है।' अतएव भजन तो अनिवार्य साधन है। फिर भक्तिके साधकके लिये तो यही एक खास वस्तु है। विषयसे मन हटाकर यदि भगवान्‌में न लगाया जाय तो वह वापस दौड़कर वहीं चला जायगा। विषयत्याग वैराग्य है और भगवत्-भजन अभ्यास। इन्हीं अभ्यास-वैराग्यसे विशुद्ध भगवत्प्रेम-की प्राप्ति होती है। परन्तु जो भजन अभी होता है, थोड़ीभर बाद नहीं होता; आज किया, कल नहीं,—वह प्रेम और आदरयुक्त अखण्ड भजन नहीं है। भजनरूपी अभ्यास तो वही सिद्ध होता

है जो सदा होता रहे, सतत होता रहे और सत्कारपूर्वक हो। योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।
(१।१४)

'दीर्घकालपर्यन्त निरन्तर सत्कारके साथ करनेपर ही अभ्यास दृढ होता है।' इस नित्य-निरन्तरके अखण्ड स्मरणसे भगवान्‌की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। स्वयं भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

अतएव अखण्डरूपसे भगवान्‌का प्रेमपूर्वक चिन्तन करते हुए ही स्नान, भोजन, व्यापार आदि सब काम करने चाहिये। भगवद्-स्मरणयुक्त होनेसे प्रत्येक कार्य ही भजन हो जायगा। इस प्रकार भजनका ताँता क्षणभर भी नहीं टूटना चाहिये। स्वरूपका चिन्तन न हो सके तो निरन्तर भगवान्‌का नामस्मरण ही करना चाहिये। भगवान्‌के नामस्मरणसे मन और प्राण पवित्र हो जायँगे और भगवान्‌के पावन पदकमलोंमें अनन्य प्रेम उत्पन्न हो जायगा। नाम-जपकी सहज विधि यह है कि अपने श्वास-

प्रश्वासके आने-जानेकी ओर ध्यान रखकर श्वास-प्रश्वासके साथ-ही-साथ मनसे, और साथ ही धीमे स्वरसे वाणीसे भी भगवान्‌का नाम-जप करता रहे। यह साधन उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते, खड़े रहते, सब समय किया जा सकता है। अभ्यास दृढ़ हो जानेपर चित्त विक्षेपशून्य होकर निरन्तर भगवान्‌के चिन्तनमें अपने आप ही लग जायगा। प्रायः सभी प्रसिद्ध भक्तों और सन्तोंने इस साधनका प्रयोग किया था। महात्मा चरणदासजी कहते हैं—

स्वासा माहीं जपेतें, दुविधा रहे न कोय।

इसी प्रकार कबीरजी कहते हैं—

साँस साँस सुमिरन करौ, यह उपाय अति नीक।

मतलब यह कि भगवान्‌के स्वरूप, प्रभाव, रहस्य, गुण, लीला अथवा नामका चिन्तन निरन्तर तैलधारावी भाँति होते रहना चाहिये। यही अखण्ड भजन है।

लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्त्तनात्॥ ३७॥

३७—लोकसमाजमें भी भगवद्-गुण-श्रवण और कीर्तनसे (भक्ति-साधन सम्पन्न होता है)।

मनसे तो नित्य भगवान्‌का चिन्तन करना ही चाहिये, परन्तु कान और वाणीसे भी सदा-सर्वदा लोगोंके बीचमें भी भगवान्‌का गुण ही सुनना और कहना चाहिये। मनसे भगवच्चिन्तनकी चेष्टा तभी सफल होती है, जब हमारी इन्द्रियाँ भी भगवत्सम्बन्धी कार्योंमें ही लगी रहें। सभी कार्योंका प्रायः

आधार होता है सुनना और बोलना। यदि कानोंमें सदा विषयों-की चर्चा आती रहेगी और वाणीसे सदा विषयोंकी बातें की जायँगी तो मनसे भगवान्का चिन्तन होना असम्भव-सा ही समझना चाहिये। परन्तु यदि कान और जबान भगवान्में लगे रहेंगे—उन्हें दूसरे कार्यके लिये फुरसत ही नहीं मिलेगी, तो अन्यान्य इन्द्रियाँ और मन भी स्वतः ही भगवत्परायण हो जायँगे। अतएव कान और जीभको भगवान्के नाम-गुण-लीलादिके सुनने और गानेमें ही निरन्तर लगाये रखना चाहिये। यही जीवनको सफल बनानेके साधन हैं। केवल जीवित रहने, श्वास लेने, खाने और मैथुन करने आदिमें ही जीवनकी सफलता मानी जाय तो क्या वृक्ष जीवित नहीं रहते ? क्या लोहारकी धोंकनी श्वास नहीं लेती और क्या पशु भोजन या मैथुन नहीं करते। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥
बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥
(२।३।१९-२०)

'जिसके कर्णपथमें भगवान्के नाम-गुणोंने कभी प्रवेश नहीं किया वह मनुष्यरूपी पशु कुत्ते, विष्ठाभोजी सूअर, ऊँट और

गदहेकी अपेक्षा भी अधिक निन्दनीय है । हे सूतजी ! जो कान भगवान्‌की लीलाका श्रवण नहीं करते वे सर्पोंके बिलके समान हैं और जो दुष्टा जिह्वा भगवान्‌की लीला-कथाका गान नहीं करती वह मेंढककी जीभके समान व्यर्थ बकवाद करनेवाली है।' इसीका अनुवाद गोस्वामी तुलसीदासजीने किया है—

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवनरंध्र अहिभवन समाना॥
जो नहिं करहिं राम-गुन-गाना। जीह सो दादुरजीह समाना॥

श्रीमद्भागवतके अन्तमें कहा गया है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥
(१२ । १२ । ४८-४९)

'जिस वाणीसे अधोक्षज भगवान्‌की कथा न कही जाकर विषयोंकी बुरी बातें कही जाती हैं, वह वाणी असत् और व्यर्थ है। जिन वचनोंमें भगवान्‌के गुणोंको प्रकट किया जाता है, पुण्यकीर्ति भगवान्‌का यश वर्णन किया जाता है, वास्तवमें वही वचन सत्य हैं, वही मंगलरूप हैं, वही पुण्य हैं, वही मनोहर हैं, वही रुचिर हैं, वही नित्य नये-नये रसमय हैं, वही सदा मनको

महान् आनन्द देनेवाले हैं और वही मनुष्योंके शोकरूपी समुद्रको सुखानेवाले हैं।'

अतएव कानोंसे भगवान्के गुण और नामोंका श्रवण और वाणीसे उनका कीर्तन करना चाहिये। इसीसे भगवान्का निर्मल प्रेम उदय होता है।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि॥
(११।२६।२८)

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥
(११।३१।२७-२८)

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि॥
(११।२६।३०)

भगवान् कहते हैं—'जो लोग मुझमें मन लगाकर श्रद्धा और आदरके साथ मेरी नाम-गुण-लीला-कथाको सुनते, गाते और उनका अनुमोदन करते हैं उनकी मुझमें अनन्य भक्ति हो जाती है।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'हे राजन् ! जो मनुष्य देवदेव भगवान्‌के दिव्य जन्म-कर्मोंका श्रद्धापूर्वक कीर्तन करता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीहरिके अति मनोहर कल्याणकारी अवतार, पराक्रम तथा बाल-लीलाओंको सुनने तथा उनका गान करनेसे मनुष्य परमहंसोंकी गतिस्वरूप भगवान्‌में परा भक्तिको प्राप्त होता है।'

भगवान् कहते हैं—'इस प्रकार मुझ अनन्तगुणसम्पन्न सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें भक्ति हो जानेपर फिर उस साधु पुरुषको और कौन-सी वस्तु प्राप्त करनी बाकी रह जाती है ? अर्थात् वह कृतार्थ हो जाता है।'

भगवान्‌के नाम-श्रवण और कीर्तनका महान् फल होता है। जहाँतक भगवान्‌के नामकी ध्वनि पहुँचती है, वहाँतकका वातावरण पवित्र हो जाता है। मृत्युकालके अन्तिम श्वासमें भगवान्‌का नाम किसी भी भावसे जिसके मुँहसे निकल जाता है उसको परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के नामका जहाँ कीर्तन होता है वहाँ यमदूत नहीं जा सकते। अतएव दस नामापराधोंसे* बचते हुए भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन और श्रवण अवश्य ही करना चाहिये।

* नामके दस अपराध ये हैं—१-सन्तोंकी निन्दा, २-भगवान्‌के नामोंमें छोटे-बड़ेका भेदभाव, ३-गुरुका अपमान, ४-शास्त्रनिन्दा, ५-नाममें अर्थवाद (अर्थात् यह समझना कि यह केवल प्रशंसामात्र है, ऐसा फल नहीं होता) मानना, ६-नामका सहारा लेकर पाप करना, ७-धर्म, व्रत, दान और यज्ञादिके साथ नामकी तुलना करना,

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(६।२।१४,१८)

'पुत्रादिके नामसंकेतसे, परिहासमें, स्तोभ या अवहेलनासे भी भगवान्‌का नाम लेनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अज्ञान अथवा ज्ञानपूर्वक लिया हुआ पुण्यश्लोक भगवान्‌का नाम मनुष्यके पापको उसी प्रकार जला देता है जैसे अग्निमें किसी प्रकारसे भी डाला हुआ ईंधन भस्म हो जाता है।'

सभी सद्ग्रन्थों और संतोंकी वाणियोंमें भगवन्नामकी महिमा गायी गयी है। श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोक मनन करने योग्य हैं। देवी देवहूतिजी भगवान् कपिलदेवसे कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(३।३३।७)

८-अश्रद्धालु, हरिविमुख और सुनना न चाहनेवालोंको नामका उपदेश करना, ९-नाममाहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम न करना और १०-अहंकार, ममता तथा भोगादि विषयोंमें आसक्त रहना।

'अहो, जिसकी जिह्वापर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान, वेदाध्ययन सब कुछ कर लिया।'

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशोऽब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(१२।१२।४६-४७)

'कोई भी मनुष्य गिरते, पड़ते, छींकते और दुःखसे पीड़ित होते समय परवश होकर भी यदि ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' पुकार उठता है तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्य पर्वतकी गुफाके अन्धकारका भी नाश कर देता है, और जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्नभिन्न करके लुप्त कर देता है, इसी प्रकार अनन्त भगवान्‌का नाम-कीर्तन अथवा उनके प्रभावका श्रवण हृदयमें प्रवेश करके समस्त दुःखोंका अन्त कर देता है।'

यह तो विवश होकर नाम लेनेका फल है। प्रेमसे लेनेपर तो कहना ही क्या। इसीसे गोसाईंजी कहते हैं—

बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक सँचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भवबारिधि गोपद इव तरहीं॥

अतएव भक्तिकी प्राप्तिके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-यशका कीर्तन, श्रवण और चिन्तन निःसन्देह परम साधन है।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा॥३८॥

३८—परन्तु (प्रेमभक्तिकी प्राप्तिका साधन) मुख्यतया (प्रेमी) महापुरुषोंकी कृपासे अथवा भगवत्कृपाके लेशमात्रसे होता है।

विषय और विषयासक्तिका त्याग करके अखण्ड भजन और श्रवण-कीर्तनका साधन बतलाया जानेके बाद अब एक ऐसा साधन बतलाया जाता है, जिस एकके प्रतापसे ही पहले तीनों अपने-आप हो जाते हैं—वह साधन है 'महापुरुषोंकी कृपा'। महापुरुष तो कृपालु ही होते हैं, परन्तु श्रद्धा-विश्वासपूर्वक उनका सङ्ग करना बड़ा कठिन है। महापुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर विषय तो आप ही छूट जाते हैं। उनके सङ्गसे श्रवण कीर्तन भी करना ही पड़ता है और रातदिन जो कुछ सुनने, कहने और देखनेमें आता है, उसका स्मरण अनिवार्य है ही। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यहाँ जिन महापुरुषोंकी कृपामात्रसे ही फलरूपा प्रेमभक्तिकी प्राप्ति बतलायी है, वे महापुरुष केवल शास्त्रज्ञानी और सदाचारी ही नहीं होते, भगवान्‌के स्वरूप-तत्त्वको यथार्थरूपसे जानकर उनमें अनन्य प्रेम करनेवाले भक्त होते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंके सङ्गकी बड़ी महिमा है। इसीसे, यज्ञ-धूमसे जिनके शरीर धुमैले हो गये हैं, ऐसे कर्मकाण्डी विद्वानविद् ऋषि

भगवच्चरणकमलरसामृतका पान करानेवाले प्रेममूर्ति सूतजीसे कहते हैं—

> तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
> भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
> (श्रीमद्भा० १। १८। १३)

'हे सौम्य! भगवत्सङ्गी प्रेमियोंके निमेषमात्रके सङ्गकी तुलना, स्वर्गादिकी तो बात ही क्या, पुनर्जन्मका नाश करनेवाली मुक्तिके साथ भी नहीं की जा सकती; फिर मर्त्यलोकके राज्यादि सम्पत्तिकी तो बात ही क्या है? इसीके आधारपर रामचरितमानसमें कहा गया है—

> तात स्वरग अपबरग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
> तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

यह उस सत्सङ्गकी महिमा नहीं है जो अन्तःकरणकी शुद्धि करके मोक्षप्राप्ति करवाता है। क्योंकि यहाँ तो मोक्षके साथ लवमात्रके ऐसे सत्सङ्गकी तुलना करना भी असङ्गत बतलाया गया है। अतएव यहाँ उन भगवत्तत्त्वके ज्ञाता होकर भगवत्-प्रेमके रंगमें रँगे हुए मोक्षसंन्यासी भगवत्सङ्गी (सर्वैश्वर्यपूर्ण मधुरतम लीलाविहारी भगवान्के नित्य लीलासङ्गी) प्रेमी सन्तोंकी उस कृपाका उल्लेख है, जो केवल मुक्ति ही नहीं, भगवान्के प्रेमरूपी भक्तिकी प्राप्ति भी सहज ही करवा देती है। क्योंकि मुक्तिको तो ऐसे प्रेमी चाहते ही नहीं। वरं मुक्तिकी चाहको ही वे प्रेमरूपा भगवद्भक्तिकी उत्पत्तिमें बाधा देनेवाली पिशाचिनी समझकर उसका

तिरस्कार किया करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंकी कृपा जिनपर होती है, जो पुरुष ऐसे भक्तोंका संग प्राप्त कर लेता है, योग और ज्ञान आदिसे भी वशमें न होनेवाले भगवान् (सहज ही) उसके वशमें हो जाते हैं। इसीलिये स्वयं भगवान् अपने प्रेमी भक्त उद्धवसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥
(श्रीमद्भा० ११। १२। १-२)

'हे उद्धव! दूसरे समस्त सङ्गोंका निवारण करनेवाले 'सत्संगसे' मैं जैसा वशीभूत होता हूँ वैसा योग, ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम और नियम, किसीसे नहीं होता।'

इसका कारण यह है कि अन्यान्य सब साधन, सकामभावसे होनेपर भोग और स्वर्गादिकी, और निष्कामभावसे होनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि और मुक्तिकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। लीलाविहारी भगवान्को सीधा वशमें करनेवाला तो केवल एक सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, अनन्य और विशुद्ध प्रेम ही है, जो इन साधनों-मेंसे किसीसे नहीं मिलता; वह तो केवल भगवत्संगी प्रेमी महापुरुषोंकी महती कृपासे ही मिलता है।

भगति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥

हाँ, यदि श्रीभगवान् चाहें तो स्वयमेव अपना प्रेम दे सकते हैं; उनकी कृपाके लेशमात्रसे ही प्रेम मिल सकता है। गोसाईंजीने कहा है—

जाकी कृपा-लवलेसतें मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

परन्तु नित्य कृपावर्षा करनेवाले भगवान्‌का कृपाबिन्दु भी भगवदीय महात्माओंकी कृपासे ही जीवोंको मिल सकता है। अतएव ऐसे प्रेमी सन्तोंका संग ही प्रधान साधन है, परन्तु ऐसा संग प्राप्त होना अपने वशकी बात नहीं! इसीसे देवर्षि नारदजी अगले सूत्रमें महत्संगको दुर्लभ बतलाते हैं—

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥३९॥

३९–परन्तु महापुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

संसारमें स्वधर्मपरायण, सदाचारी, साधुस्वभाव, दैवी सम्पत्तिवान् पुरुषोंकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है। सच्चे हीरोंकी भाँति जमातों और उपदेशकोंमें सच्चे साधु थोड़े ही होते हैं; पर खोज करनेपर संसारमें सदाचारी, कर्मकाण्डी और कुछ ज्ञानी पुरुष तो मिल भी सकते हैं। परन्तु ऐसे सच्चे प्रेमी महात्मा बहुत ही कम मिलते हैं जिनकी कृपामात्रसे परमदुर्लभ योगि-ज्ञानि-जनवाञ्छित भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाती हो। इसीलिये ऐसे महात्माओंका मिलन बहुत दुर्लभ माना जाता है। यदि कहीं ऐसे महापुरुष मिल भी जाते हैं तो उनका पहचानना बहुत कठिन होता है

क्योंकि बाह्य आचार तो ढोंगी और नाटकके पात्र भी किसी अंशमें वैसा ही दिखला सकते हैं। आँखोंसे आँसुओंका बहना, रोना, हँसना और चिल्लाना ही प्रेमीके लक्षण नहीं हैं। अनेक बाह्य कारणोंसे भी ऐसा हो सकता है। फिर कोई-कोई सच्चे प्रेमी ऐसे भी हो सकते हैं, जो इन लक्षणोंवाली स्थितिसे भी आगे बढ़ चुके हों और जिनके बाह्य आचार साधारण समझसे बाहर हों। प्रेमीजन तो किसीको कहने जाते ही नहीं कि हमें प्रेमी मानो; और कहनेसे मानता भी कौन है। अतएव ऐसे निःस्पृही भगवज्जनोंकी पहचान बहुत ही कठिन है, इसीसे उनके संगको दुर्लभ बतलाया गया है। परन्तु सौभाग्यसे यदि कहीं ऐसे महात्मा पुरुष मिल जाते हैं तो उनका बिना जाने मिल जाना भी कभी व्यर्थ नहीं हो सकता; क्योंकि वह अमोघ है। जब साधारण सदाचारी, विद्वान् साधुओंका समागम ही अन्तःकरणकी शुद्धिका कारण होकर पाप, ताप और दैन्यका निवारण करनेमें समर्थ होता है; तब जिनका हृदय भगवत्प्रेमसे छलकता है, जो प्रेम और आनन्दकी मूर्ति हैं, जिनके स्मरणमात्रसे ही पापोंका नाश होता है, उन भगवदीय प्रेमी महात्माओंके दर्शनका महान् फल अवश्य ही प्राप्त होता है।

जैसे अमावस्याकी अँधेरी रातमें सोया हुआ आदमी यदि सूर्योदय होनेपर भी सोता ही रहे तो उसको न जागनेतक प्रकाशका अनुभव नहीं होता, परन्तु प्रकाश तो सूर्योदयके साथ-साथ हो ही जाता है। और जैसे कोई धनी पुरुष अपने किसी प्रेमी दरिद्र आदमीके नामपर अपनी करोड़ोंकी सम्पत्ति ट्रांस्फर करवा देता है, तो वह दरिद्र उसी समयसे धनी

तो हो जाता है; परन्तु जबतक उसको इस बातका पता नहीं लगता तबतक वह अपनेको दरिद्र ही समझता है। इसी प्रकार किन्हीं भगवत्प्रेमी महापुरुषके अज्ञात संगसे भी पाप और अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश होकर ज्ञानरूप सूर्यका प्रकाश और प्रेमरूप परमनिधि तो मिल जाती है, परन्तु जबतक इस बातका पता नहीं लगता तबतक इस लाभसे अपरिचित रहनेके कारण मनुष्य आनन्दको प्राप्त नहीं होता। अवश्य ही इस स्थितिका परिचय मिलनेमें अधिक विलम्ब नहीं होता। इसीसे महत्संगको अमोघ (अवश्य फलदायी) बतलाया गया है।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥४०॥

४०–उस (भगवान्) की कृपासे ही (महत्पुरुषोंका) सङ्ग भी मिलता है।

अवश्य ही ऐसे सन्तका मिलन हरि-कृपासे ही होता है। भगवान् जिसपर कृपा करके अपनाना चाहते हैं, उसीके पास, प्रेमपाशमें अपनेको बाँध रखनेकी शक्तिवाले, अपने ही स्वरूपभूत प्रेमी भक्तको भेजते हैं। वस्तुतः भगवत्कृपा और महान् पुरुषोंका संग एक-दूसरेके आश्रित हैं। महत्पुरुषोंके संग बिना भगवत्कृपाका अनुभव नहीं होता, और भगवत्कृपा बिना ऐसे महापुरुष नहीं मिलते। श्रीविभीषणको भी श्रीहनूमान्‌जीके मिलनेपर ही भगवत्कृपाका अनुभव हुआ, इसीसे उन्होंने कहा—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्॥ ४१॥

४१—क्योंकि भगवान्‌में और उनके भक्तमें भेदका अभाव है।

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही हैं (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति)। जो भक्तोंका सेवन करते हैं वे भगवान्‌का ही सेवन करते हैं। भक्त भगवान्‌के हृदयमें बसते हैं और भगवान् भक्तके हृदयमें। भगवान्‌ने कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥
(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

'साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते और मैं उन्हें छोड़कर और किसीको नहीं जानता।' भरत रामको भजते हैं और राम भरतको—

भरत सरिस को रामसनेही। जग जप राम राम जप जेही॥

श्रीभगवान्‌ने प्रेमरूपा गोपियोंके सम्बन्धमें कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

'हे अर्जुन ! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनकी बात तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती हैं, और कोई नहीं जानता ।'

ऐसे प्रेमी भक्तोंमें और भगवान्‌में क्या अन्तर है ? भगवान्‌ने कहा ही है—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥
(गीता ९ । २९)

'जो प्रेमसे मुझको भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ ।' ऐसे भक्त भगवत्प्रेममें इस प्रकार तल्लीन रहते हैं कि वे अपने बाह्य रूपको भूलकर साक्षात् भगवत्स्वरूपका अनुभव करने लगते हैं । गोपियाँ भगवान्‌को ढूँढती हुई ऐसी तन्मय हो गयीं कि वे उन्हींकी लीला करने लगीं—

मोहन लाल रसालकी लीला इनहीं सोहै ।
केवल तन्मय भई कछु न जानैं हम को हैं ॥
(नन्ददासजी)

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ॥ ४२ ॥

४२–(अतएव) उस (महत्सङ्ग) की ही साधना करो, उसीकी साधना करो ।

अतएव भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये ऐसे भगवत्प्रेमी महापुरुषोंके संगकी ही प्रबल इच्छा करो ! भगवत्कृपासे प्रेमी सन्त मिल

जायँगे और सन्त-मिलनके प्रतापसे ही हम पाप-तापसे छूटकर निर्मल भगवत्प्रेमको प्राप्त कर सकेंगे। इसमें एक बड़ा रहस्य है। मान लीजिये, एक महान् प्रतापी राजा है और साथ ही वह बड़ा भारी प्रेमी भी है; परन्तु प्रेम हरेकके साथ नहीं होता। राजा राजसभामें और अपने राज्यमें अपना प्रभाव और ऐश्वर्य तो खूब दिखला सकता है, परन्तु अपने मुँहसे अपने प्रेमका रहस्य किसीके सामने नहीं कह सकता। हम प्रजाके रूपमें विधिके अनुसार उससे मिलकर विधिवत् बातें कर सकते हैं, परन्तु न तो प्रेमका रहस्य पूछ सकते हैं और न वह हमें बतला ही सकता है। उसके प्रेमका गुह्य रहस्य जानना या उसके प्रेमराज्यमें प्रवेश करना हो तो उसके किसी अनन्य प्रेमीका—जिसके साथ राजाका व्यक्तिगत प्रेमका निर्मल (राज्यविधिसे अतीत) सम्बन्ध है और जिसके साथ वह परस्पर खुली प्रेमचर्चा करता है—संग करना होगा, और उसके हृदयमें अपना विश्वास पैदा करके उसके द्वारा राजाके प्रेमका रहस्य जानना होगा और उसीके द्वारा राजाके निकट अपना प्रेमसन्देश पहुँचाना होगा तथा अपनी पात्रता सिद्ध करनी होगी। जब राजा हमें पात्र समझ लेगा तो हमें भी उसीकी भाँति प्रेमगोष्ठीमें शामिल कर लेगा। इसी प्रकार भगवान् भी अपने प्रेमका रहस्य अपने मुँहसे नहीं बतलाते। भगवान्ने उद्धवको प्रेमशिक्षा दिलानेके लिये गोपियोंके पास भेजा था। प्रियतमका प्रेमरहस्य और उसके प्रेमकी गुह्यतम बातें जैसे उसकी प्रियतमाके द्वारा ही उसकी विश्वस्त सखियोंको मिलती है, इसी प्रकार भगवान्-

के प्रेमका रहस्य भी भगवत्प्रेमी भक्तोंके द्वारा ही साधकको मिलता है। और मिलता भी है उसीको, जिसको भगवान् पात्र समझकर कृपा करके अपने प्रेमका भेद देना चाहते हैं। क्योंकि प्रेमी भक्त प्रेमास्पद प्रियतम भगवान्‌की इच्छा या आज्ञा बिना उनके प्रेमका रहस्य किसीके सामने नहीं खोल सकते। पहले साधकको पात्र बनना होता है। जब भगवान्‌के निर्मल अत्युच्च प्रेमकी एकान्त आकांक्षा उसके मनमें उत्पन्न हो जाती है तब उसका हृदय भगवत्प्रेमके लिये रोने लगता है। उसके हृदयका आर्तनाद अन्तर्यामी आनन्दमय प्रभु सुनते हैं, और तब कृपा करके वे अपने किसी प्रेमी भक्तको आदेश या संकेत करके उसके समागममें भेज देते हैं। वहाँ पहले उसके प्रेमकी परीक्षा होती है। यदि उसका प्रेम कामनाशून्य और अनन्य होता है, और वह अपने आचरण और व्यवहारसे उस प्रेमी भक्तके हृदयमें पात्रताका विश्वास पैदा कर देता है, तब वे उसका सन्देश भगवान्‌के पास पहुँचाते हैं और भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त करके क्रमशः प्रेमका रहस्य उसके सामने खोलते हैं और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उसकी पात्रता बढ़ती है, त्यों-ही-त्यों भगवान्‌की आज्ञासे वे उसे भगवान्‌के प्रेमराज्यमें उत्तरोत्तर आगे बढ़ाकर ले जाते हैं और अन्तमें उसपर भगवान्‌की पूर्ण कृपा होनेसे वह भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लेता है। राजा या उसका प्रेमी तो अन्तर्यामी न होनेसे किसीके धोखेमें भी आ सकता है परन्तु भगवान्, और भगवान्‌की इच्छासे नियुक्त होनेवाले प्रेमी भक्त, कभी धोखा नहीं खाते। अतएव जिसको भगवत्-

प्रेमकी प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे देवर्षिके बतलाये हुए साधनोंमें तत्पर होकर पहले पात्र बनना चाहिये, जिससे उसपर भगवान्‌की कृपा हो, और वह भगवत्प्रेमी पुरुषोंके संगका पात्र समझा जाय। साथ ही ऐसे भगवत्प्रेमी पुरुषोंके संगकी इच्छा प्रबलरूपसे बढ़ानी चाहिये, क्योंकि इनके संग बिना भगवत्प्रेमकी प्राप्ति महान् कठिन है। इसीसे भगवान् अपने निर्मल प्रेमके प्रचारार्थ ऐसे भक्तोंको, मुक्तिके पूर्ण अधिकारी होनेपर भी, उनके मनमें प्रेमकी वासना जागृत रखकर उन्हें सायुज्य मुक्ति नहीं देते, और इसीसे प्रेमी भक्तगण इस प्रेम-लीला-सुखको छोड़कर मुक्तिकी कभी चाह नहीं करते। वे मुक्त होकर भी केवल प्रेमवितरणके लिये ही संसारमें आया करते हैं या निवास करते हैं। वे अहैतुक कृपालु होते हैं। हमारी तीव्र इच्छा पावेंगे तो भगवत्कृपासे भगवान्‌का संकेत प्राप्त-कर अपने पुण्यमय दर्शन-स्पर्श-भाषण और अपनी महती कृपासे हमें अवश्य प्रेमदान करेंगे। क्योंकि वे तो प्रेमी जनोंकी खोजमें ही रहते हैं। उनका काम ही प्रेमदान करना है। अतएव उन्हीं भगवत्संगी प्रेमी महानुभावोंका संग प्राप्त करो, उन्हींकी कृपाकी इच्छा करो!



प्रेमरूपा भक्तिमें प्रधान बाधा कुसंगति है

दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ॥४३॥

४३—दुःसंगका सर्वथा ही त्याग करना चाहिये।

सत्संगका महत्त्व बतलाकर अब देवर्षि दुःसंगका निषेध करते हैं। जिस प्रकार सत्संगसे भगवत्कथा, भगवच्चर्चा, भगवन्नाम, भगवत्प्रीति, सदाचार, शास्त्र, विवेक, वैराग्य, सत् अभ्यास, सेवा, सरलता, नम्रता, क्षमा, तितिक्षा, शौच, दया, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निरभिमानता और शान्ति आदिके प्रति प्रवृत्ति होती है और मनुष्य सदाचारपरायण परमभक्त बन सकता है; इसी प्रकार इसके विपरीत दुःसंगसे विषयवार्ता, जगच्चर्चा, लोकनिन्दा, भोगप्रीति, दुराचार, उच्छृङ्खलता, अविवेक, विषयलोलुपता, दुष्ट अभ्यास, मान, दम्भ, घमंड, क्रोध, असहिष्णुता, अपवित्रता, निर्दयता, हिंसा, असत्य, इन्द्रियलम्पटता, अभिमान और अशान्ति आदिके प्रति प्रवृत्त होकर मनुष्य पापपरायण और अत्यन्त विषयासक्त हो जाता है। दुःसंगसे आसुरी सम्पत्तिके सभी दुर्गुण और दुराचारोंका विकास और विस्तार होता है। दुःसंगसे मनुष्यके समस्त सद्गुणोंका विनाश होकर उसका सर्वनाश हो जाता है। परम सुशीला, स्नेहमयी, प्रेमप्रतिमा देवी कैकेयी मन्थराकी कुसंगतिके कारण ही महाराज दशरथके, भरतके,

अपने और तमाम अयोध्यावासियोंके परम शोकका कारण बनी थीं और इसीसे उन्हें अन्तमें दुःखप्रद वैधव्यका सहन करना और प्राणप्रिय भरतका अप्रीतिभाजन होकर रहना पड़ा था। शकुनिकी कुसंगति ही महाभारतके भयानक संहारमें एक प्रधान कारण हुई। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव माता देवहूतिजीसे कहते हैं—

> यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
> आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्॥
> सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा।
> शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम्॥
> तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
> सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च॥
> (३।३१।३२-३४)

'जो मनुष्य शिश्नोदरपरायण (स्त्री और धनमें ही आसक्त) नीच पुरुषोंका संग करके उनके अनुसार बर्ताव करने लगता है वह उन्हींकी भाँति अन्धकारमय नरकोंमें जाता है। क्योंकि दुष्ट-सङ्गसे सत्य, पवित्रता, दया, मननशीलता, बुद्धि, लज्जा, श्री, कीर्ति, क्षमा, मनका वशमें रहना, इन्द्रियोंका वशमें रहना और ऐश्वर्य आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। अतएव उन अशान्तचित्त, मूर्ख, नष्टबुद्धि, स्त्रियोंके हाथके खिलौने बने हुए, शोचनीय, असाधु दुष्ट मनुष्योंका संग कभी नहीं करना चाहिये।'

अतएव दुःसंगका त्याग तो सभीके लिये आवश्यक है, पर भगवत्प्रेमकी इच्छा करनेवालोंको तो दुःसंगका त्याग बड़ी ही

सावधानीसे करना चाहिये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

'हे विभीषण! नरकमें रहना अच्छा है, परन्तु विधाता कभी दुष्टका संग न दे।' दुष्ट-संगसे केवल दुराचारी मनुष्योंका ही संग नहीं समझना चाहिये। इन्द्रियोंका कोई भी विषय, जो हमारे मनमें असत् विचार तथा विषयोंकी लालसा उत्पन्न करे और भगवत्प्राप्तिके मार्गसे हमारे चित्तको चलायमान कर दे, दुःसंग हो सकता है। हमें न कोई ऐसी चेतन वस्तु या जड़ दृश्य देखना चाहिये, न ऐसी बात सुननी चाहिये, न ऐसी चर्चा करनी चाहिये, न वैसे स्थानमें जाना चाहिये, न वैसी पुस्तक या पत्रिका पढ़नी चाहिये, न वैसा चित्र देखना चाहिये, न वैसी वस्तु खानी, सूँघनी या स्पर्श करनी चाहिये और न वैसा विचार ही करना चाहिये, जिससे हमारे चित्तमें विषयचिन्तनकी प्रबलता हो जाय। याद रखना चाहिये कि मनुष्यमें अच्छे और बुरे भावोंकी उत्पत्ति और वृद्धिमें कम-से-कम ये दस बातें प्रधान कारण होती हैं— स्थान, अन्न, जल, परिवार, अड़ोस-पड़ोस, दृश्य, साहित्य, आलोचना, आजीविकाका कार्य और उपासना। यदि ये सब सात्त्विक होते हैं तो इनके सेवनसे सात्त्विकता बढ़ती है। इन्हींका सेवन सत्संग है। और यदि ये राजस या तामस हैं तो इनका सेवन दुःसंग है और उससे अज्ञानकी वृद्धि होकर तमाम दोषोंका विकास हो जाता है। अतएव दुःसंगका सब प्रकारसे सर्वथा त्याग करना चाहिये।

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ॥ ४४ ॥

४४—क्योंकि वह (दुःसङ्ग) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाशका कारण है।

भगवत्सम्बन्धी तत्त्व-रहस्य तथा लीला-कथाओंको छोड़कर इन्द्रियोंको भोगके समय तृप्ति देनेवाले लौकिक विषयोंका चिन्तन ही सर्वनाशकी जड़ है। चित्त निरन्तर या अधिक समयतक जिस विषयका चिन्तन करता है, उसीमें उसकी आसक्ति होती है। दुःसङ्गसे—सांसारिक विषयों और विषयी पुरुषोंके शरीर, वाणी और मनद्वारा किये हुए संगसे स्वाभाविक ही विषयासक्ति बढ़ती है। आसक्तिसे कामना होती है, यह कामना ही समस्त पापोंका मूल है; कामनाकी तृप्तिसे अधिक प्राप्तिके लिये लोभ उत्पन्न होता है और अतृप्तिसे वही कामना क्रोधके रूपमें परिणत हो जाती है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने राग या आसक्तिरूपी रजोगुणसे उत्पन्न कामको ही पापोंके होनेमें प्रधान कारण बतलाया है। अर्जुनने पूछा कि 'भगवन्! मनुष्य न चाहता हुआ भी जबर्दस्ती पकड़ा-सा जाकर किसकी प्रेरणासे पाप करता है?' इसके उत्तरमें भगवान् स्पष्ट कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३।३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न यह काम ही क्रोध है, इस महापापी कामका पेट कभी नहीं भरता; इस विषयमें तुम इस कामको ही (पाप करानेवाला) अपना शत्रु मानो ।' यद्यपि कामसे लोभ और क्रोध दोनों ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु संसारमें मनमानी थोड़ी ही कामनाओंकी पूर्ति होती है; अधिकांशमें तो विफलता ही प्राप्त होती है । विफलतामें क्रोध उत्पन्न होता है; क्रोधकी उत्पत्ति हो जानेपर मनुष्य विवेक-विचारशून्य हो जाता है । उसे हिताहित कुछ भी नहीं सूझता, वह पिशाचकी भाँति केवल विनाशका ही प्रयत्न करता है । इस मोहमें उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है, और स्मृति भ्रष्ट होनेपर बुद्धि मारी जाती है । बुद्धिके नष्ट होनेपर वह इस लोक और परलोकके कल्याणपथसे गिर जाता है—उसका सर्वनाश हो जाता है । ठीक यही बात श्रीभगवान्‌ने भी गीताके अध्याय २, श्लोक ६२-६३ में कही है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

'विषयोंके चिन्तनसे मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति होती है, आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, (कामकी तृप्तिमें बाधा होनेसे) उस कामसे ही क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे सम्मोह होता है, सम्मोहसे स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे (पुरुषका) सर्वनाश हो जाता है ।'

सर्वनाशके कारणभूत विषयोंका चिन्तन होनेमें विषय और विषयी पुरुषोंका संग ही प्रधान है, यही दुःसंग है; अतएव इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात्समुद्रायन्ति ॥ ४५ ॥

४५—ये (कामक्रोधादि) पहले तरंगकी तरह (क्षुद्र आकारमें) आकर भी (दुःसंगसे विशाल) समुद्रका आकार धारण कर लेते हैं।

जबतक दोषोंका समूल विनाश न हो जाय, तबतक तनिक-से दोषसे भी डरते ही रहना चाहिये; जैसे ईंधनमें दबी हुई जरा-सी चिनगारी हवाके जोरसे विशाल अग्निका रूप धारण कर लेती है, इसी प्रकार दबा हुआ जरा-सा भी दोष कुसंग पाते ही पनप कर विशाल रूप धारण कर लेता है। पहले-पहले जब मनमें काम-क्रोधका विकार उत्पन्न होता है तो उसकी एक लहर-सी ही आती है, परन्तु कुसंग पाते ही वह लहर समुद्र बन जाती है; फिर चारों ओरसे सारे हृदयपर उसीका अधिकार हो जाता है, सद्विचारके प्रवेशको भी गुंजाइश नहीं रह जाती; उससे सर्वनाश ही होता है। अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि हमारे अन्दर सद्गुण अधिक हैं और दोष कम हैं, इससे कुसंगसे हमारी क्या हानि होगी! वरं सदा-सर्वदा अत्यन्त सावधानीके साथ सब प्रकारसे कुसंगका त्याग ही करना चाहिये।



मायासे कौन तरता है ?

कस्तरति कस्तरति मायाम् ? यः सङ्गाँस्त्यजति यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति ॥ ४६ ॥

४६-(प्रश्न) **कौन तरता है ? (दुस्तर) मायासे कौन तरता है ? (उत्तर) जो सब संगोंका परित्याग करता है, जो महानुभावोंकी सेवा करता है और जो ममतारहित होता है।**

नदीमें तैरनेवाले मनुष्यके लिये सबसे अधिक आवश्यक काम होता है हाथों और पैरोंसे नदीके जलको फेंकते जाना, निरन्तर जलको काटते रहना; तभी नया तैराक नदीके पार जा सकता है। जलको फेंकना छोड़ दे तो तत्काल डूब जाय। इसी प्रकार इस महाभयानक दुस्तर मायानदीको तैरकर जो उस पार जाना चाहते हैं, उन्हें अहंकार और विषयासक्तिरूपी जलको बराबर

अलग फेंकते रहना चाहिये । अहङ्कार और आसक्तिरूपी जलसे ही यह मायानदी भरी है; जो अहङ्कार और आसक्तिको दूर नहीं फेंक सकता, इनका त्याग नहीं करना चाहता, वह इस मायानदी-के जलमें रमकर अतल तलमें डूब जायगा । इसलिये संगत्याग अवश्य करना चाहिये; परन्तु हाथ-पैर मारते-मारते भी उनके थक जानेकी अथवा श्वास टूट जानेकी सम्भावना है, अतएव बीच-बीचमें ऐसा अवलम्बन चाहिये जहाँ कुछ देर ठहरकर वह विश्राम ले सके । इस मायानदीमें भी केवल संगत्यागसे काम नहीं चलता, इसमें भी विश्रामस्थल चाहिये । वे विश्रामस्थल सन्तोंके सुधामय वचन ही हैं, जिनके सहारेसे नवीन बल प्राप्त होता है और उस बलसे मनुष्य मायासमुद्रके पार पहुँच जा सकता है । वस्तुतः सन्तसेवी साधकको अपने बलसे तैरना पड़ता ही नहीं, वह तो सन्त महानुभावोंकी कृपारूपी सुदृढ़ जहाजपर सवार होकर अनायास ही तर जाता है । इसीलिये देवर्षि महानुभावोंकी सेवा करनेको कहते हैं ।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

> निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
> सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥
> (११ । २६ । ३२)

'जलमें डूबते हुए लोगोंके लिये दृढ़ नौकाके समान इस भयङ्कर संसारसागरमें गोते खानेवालोंके लिये ब्रह्मवेत्ता शान्तचित्त सन्तजन ही परम अवलम्बन हैं ।'

महानुभाव सन्तोंकी सेवासे पाप-ताप और मोह अनायास ही दूर हो जाते हैं।

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा॥
(११।२६।३१)

'जिस प्रकार भगवान् अग्निदेवका आश्रय लेनेपर शीत, भय और अन्धकार तीनोंका नाश हो जाता है, इसी प्रकार सन्त पुरुषोंके सेवनसे पापरूपी शीत, जन्ममृत्युरूपी भय और अज्ञान-रूपी अन्धकार ये कोई भी नहीं रहते।'

निर्मल हरिभक्तिकी प्राप्तिके लिये तो महापुरुषोंकी चरणसेवा ही प्रधान है। श्रीमद्भागवतमें भक्तराज प्रह्लाद और ज्ञानिप्रवर अवधूतशिरोमणि जडभरतके वचन हैं—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥
(७।५।३२)

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥
(५।१२।१२)

प्रह्लाद कहते हैं कि 'हे पिता ! जिन भगवान् श्रीहरिके चरणोंका स्पर्श समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति करनेवाला है, उन श्रीहरिचरणोंमें तबतक प्रेम नहीं होता जबतक अकिञ्चन (सब कुछ भगवान्को अर्पण कर चुकनेवाले) साधु महान् पुरुषोंकी चरणधूलिसे मस्तकका अभिषेक न किया जाय।'

महात्मा जड़भरत राजा रहूगणसे कहते हैं—

'हे रहूगण ! यह भगवत्तत्त्वका ज्ञान और भगवत्प्रेम तप, यज्ञ, दान, गृहस्थाश्रमद्वारा परोपकार, वेदाध्ययन और जल, अग्नि एवं सूर्यकी उपासनासे नहीं मिलता। यह तो महापुरुषोंके चरणों-की धूलिमें स्नान करनेसे अर्थात् उनकी चरणसेवासे ही मिलता है।'

परन्तु इतना स्मरण रहे कि महापुरुषोंकी सेवाका अर्थ केवल उनके समीप रहना या उनके शरीरकी सेवा करना ही नहीं है। उसकी भी यथायोग्य आवश्यकता और सार्थकता है; परन्तु जबतक हम उनकी आज्ञानुसार क्रिया नहीं करते, उनके इशारेपर नहीं चलते एवं उनकी रुचिके अनुसार अपना जीवन निर्माण नहीं करते तबतक सेवामें त्रुटि ही समझनी चाहिये। अतएव इस बातको समझकर सर्वदा और सर्वथा महानुभावोंकी सेवा करनी चाहिये।

परन्तु इसमें ममता एक बड़ी बाधा है। ममताके बन्धनसे सन्तसेवा ही नहीं हो सकती। घर मेरा, शरीर मेरा, परिवार मेरा, धन मेरा, सम्बन्धी मेरे, मकान मेरा, जमीन मेरी—इस प्रकार

मेरे-मेरेके अनगिनत बन्धनोंमें जीव बँधा है, इन ममताके बन्धनों-को तोड़ना होगा। अवश्य ही सत्संग और सन्तोंकी सेवारूपी दिव्य मणिदीपकके प्रकाशसे ममतारूपी अन्धकारमयी रात्रिका अन्धकार बहुत कुछ कम हो जाता है, तथापि पहले सन्त-संगमें जानेके लिये भी तो ममताको कम करनेकी आवश्यकता है। अतएव संसारके इन ममत्वके विषयोंको दुःखरूप, अनित्य और अज्ञानमूलक समझकर इनके प्रति मेरे भावको सर्वथा त्याग करना चाहिये। यह समझना चाहिये कि संसारमें मेरा कुछ भी नहीं है। जिस शरीरको मनुष्य मेरा ही नहीं वरं 'मैं' कहता है वह भी नष्ट हो जाता है, तब फिर अन्य वस्तुओंमें मेरापन समझना तो मूर्खता ही है। मायासे तरनेके लिये इस मेरेपनका नाश जरूर करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह मायासे तर जाता है।

यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोकबन्धमुन्मूल-यति, निस्त्रैगुण्यो भवति, योगक्षेमं त्यजति ॥ ४७॥

४७–जो निर्जन स्थानमें निवास करता है, जो लौकिक बन्धनोंको तोड़ डालता है, जो तीनों गुणोंसे परे हो जाता है और जो योग तथा क्षेमका परित्याग कर देता है।

मायासे तरनेके लिये पूर्वसूत्रमें तीन उपाय बतलाये गये हैं, अब इस सूत्रमें चार उपाय बतलाये जाते हैं और अगले दो सूत्रोंमें क्रमशः पाँच उपाय या लक्षण और बतलायेंगे।

ममताका त्याग दिन-रात ममत्वकी वस्तुओंके बीचमें रहनेसे नहीं होता; संगसे तो ममता उल्टी बढ़ती है; अतएव साधकको एकान्त सेवन करना चाहिये। श्रीभगवान्‌ने भी गीतामें—

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

(१३।१०)

—'एकान्त स्थानमें रहने और मनुष्योंकी भीड़भाड़में प्रीति न रखनेकी आज्ञा दी है।' मनुष्य कितना भी साधन करनेकी चेष्टा करे, परन्तु जबतक वह विषय-वासनासे जकड़े हुए जन-समुदायमें और मोहक विषयोंसे भरे हुए स्थानोंमें रहेगा तबतक भगवान्‌में उसका मन लगना बहुत कठिन है; इसीलिये साधकको एकान्त देशमें रहकर भक्तिका साधन करना बतलाया गया है। साथ ही भगवान्‌के साथ प्रेमका बन्धन बाँधनेके लिये लोकबन्धन-को तोड़ना आवश्यक है। एकान्तदेशसेवनसे लोकसंग छूट जानेके कारण लोकबन्धन स्वयमेव ही ढीला हो जायगा। इसके अतिरिक्त भगवान्‌के रहस्य, प्रभाव और तत्त्वके साथ मृत्युमय और दुःखालय इस लोककी तुलना करके बारंबार विचार करनेपर लोकबन्धन आप ही टूट जाता है।

इसके बाद भक्तिके साधकको सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे परे होना पड़ेगा। संसारका प्रकाश इन गुणोंसे ही होता है। गुणोंका ही कार्य यह संसार है, अतएव इस संसारके पदार्थोंमें अनासक्ति या विरक्ति होना ही निस्त्रैगुण्य या असंसारी होना है। जो मनुष्य विषयासक्त और विषयकामी है, वही गुणबद्ध है और जो भगवदासक्त और भगवत्प्रेमी है वही निस्त्रैगुण्य

है । जो निस्त्रैगुण्य होगा वह योगक्षेमकी चिन्ता क्यों करने लगा ? संसारमें तो उसका कोई प्रलोभन ही नहीं है, क्योंकि वह निस्त्रैगुण्य है; और मोक्षकी सिद्धिसे भी वह निःस्पृह है, क्योंकि वह भगवान्‌का प्रेमी है । अप्राप्तकी प्राप्तिको 'योग' और प्राप्तके संरक्षणको 'क्षेम' कहते हैं । इसमें केवल भोजनाच्छादनका भाव ही नहीं है; पारमार्थिक अर्थमें तो योगका अर्थ है भगवत्-प्राप्ति या भगवत्-प्राप्तिका सफल साधन, और क्षेमका अर्थ है भगवत्-प्राप्तिके साधनका संरक्षण । प्रेमी भगवद्भक्त इन दोनों ही अर्थोंमें योगक्षेमकी परवा नहीं करता, वह तो भगवत्-प्रेममें ही मस्त रहकर भगवत्-प्रेरणासे सदा-सर्वदा भगवदनुकूल स्वाभाविक कर्म करता रहता है । भक्तका योगक्षेम स्वयं भगवान् ही चलाते हैं । श्रीभगवान्‌ने गीतामें स्वयं कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(९ । २२)

'जो अनन्य भक्त निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मेरी निष्काम उपासना करते हैं उन नित्य मुझमें लगे रहनेवाले भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।'*

---

* श्रीजगन्नाथपुरीमें एक सरल हृदयके सदाचारी ब्राह्मण सपरिवार रहते थे । उनको गीतासे बड़ा प्रेम था, वह दिन-रात गीताका अध्ययन और मनन किया करते थे । अवश्य ही उनका सकाम भाव अभी दूर नहीं हुआ था, परन्तु थे बे बड़े विश्वासी । एक दिन वे गीताके प्रत्येक शब्दका क्रियात्मक अर्थ देखना चाहते थे । पाठ करते समय जब उपर्युक्त श्लोकका 'वहाम्यहम्' शब्द आया, तब ब्राह्मण सोचने

भोजनादिकी चिन्ता तो साधारण विश्वासी भक्तको भी नहीं करनी चाहिये; जो भोजनादिके लिये भगवान्‌का भरोसा न रखकर न्याय और सत्यमार्गका तथा सदाचारका त्याग कर पापकी शरण लेते हैं वे तो एक प्रकारसे नास्तिक ही हैं। कहा है—

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः स किं दासानुपेक्षते॥

सूनते कि क्या भगवान् अपने भक्तके लिये आवश्यक वस्तुएँ स्वयं ढोकर उसके घर पहुँचा आते हैं; नहीं, नहीं! ऐसा नहीं हो सकता, भगवान् किसी दूसरे साधनसे संग्रह करा देते होंगे। यह विचारकर ब्राह्मणने 'वहाम्यहम्' का अर्थ ठीक न बैठते देख गीताके उक्त पदको काटकर उसकी जगह ऊपर 'करोम्यहम्' लिख दिया। ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे जीवननिर्वाह करते थे। भगवान्‌की अपार माया है; एक दिन मूसलाधार वृष्टि होने लगी। ब्राह्मणदेवता उस दिन घरसे न निकल सकनेके कारण दिनभर सपरिवार भूखे ही रहे। दूसरे दिन वर्षा बन्द होनेपर ब्राह्मण भीखके लिये चले। उनके घरसे जानेके थोड़ी ही देर बाद एक खूनसे लथ-पथ अत्यन्त ही सुन्दर बालक ब्राह्मणके घरपर आकर ब्राह्मणीसे बोला—'पण्डितजी महाराजने यह प्रसाद भेजा है।' ब्राह्मणी बालकके मनोहर वदनको देखकर और उसके मीठे वचन सुनकर मुग्ध हो गयी, परन्तु उसके शरीरसे खून बहता देखकर उसे बहुत ही दुःख हुआ। उसने आँसूभरे नेत्रोंसे पूछा—'तुमको किस निठुरने मारा है ?' बालकने ब्राह्मणीके पतिका नाम लेकर कहा कि 'मुझको ब्राह्मणदेवताने मारा है।' ब्राह्मणी तो अचरजमें डूब गयी; कहने लगी—'वह तो बड़े सीधे-सादे, अक्रोधी और परम भागवत हैं; तुम-सरीखे नयनमनलुभावन बालकको वह क्यों मारने लगे ?' बालकने कहा—'मैं सच कहता हूँ

'वैष्णव आहारादिके लिये व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं। जो भगवान् समस्त विश्वके सब जीवोंका भरण-पोषण करते हैं वे क्या अपने सेवकोंको कभी भूल सकते हैं?'

यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥४८॥

माँ! उन्होंने ही एक चूल्हेसे मेरे बदनको काट डाला है, उन्होंने क्यों ऐसा किया, इस बातको तो वही जानें।'

इतना कहकर और प्रसाद रखकर बालक वहाँसे चल दिया; ब्राह्मणीको अन्यमनस्क होनेके कारण उसके जानेका पता नहीं लगा। वह कुछ भी न समझकर अति दुःखित चित्तसे स्वामीके घर आनेकी बाट देखने लगी। समयपर ब्राह्मण घर आये। ब्राह्मणीने विनयके साथ, किन्तु रोष और विषादभरे शब्दोंमें सारा वृत्तान्त ब्राह्मणको कह सुनाया। पण्डितजी गृहिणीकी बात सुनकर अवाक् हो गये। गीताके श्लोकपर हरतालकी कलम फेरनेकी घटनाको स्मरणकर वह व्याकुल हो उठे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। ब्राह्मण अब समझे कि सचमुच ही भगवान् अपने विश्वासी भक्तके लिये स्वयं सिरपर ढोकर आहारादि पहुँचाते हैं। गीता श्रीभगवान्का अंग है। गीताका श्लोक काटनेसे भगवान्के शरीरपर चोट लगी है। ब्राह्मण अपनी करनीपर पश्चात्ताप करते-करते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भगवान्‌ने उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। कुछ समय बाद उठकर वे भगवान्से क्षमा-प्रार्थना करने लगे, और भावविह्वल होकर गीताके चारों ओर 'वहाम्यहम्' 'वहाम्यहम्' लिखने लगे!

४८--जो कर्मफलका त्याग करता है, कर्मोंका भी त्याग करता है और तब सब कुछ त्यागकर जो निर्द्वन्द्व हो जाता है।

योगक्षेमकी चिन्ताका त्याग करनेवाला कर्मफलका त्यागी होता ही है, अथवा योगक्षेमके त्यागके लिये भी कर्मफलके त्यागकी आवश्यकता होती है। वस्तुतः अब यहाँसे प्रेमी भक्तके लक्षणोंका आरम्भ हो गया है। ये भक्तिके साधकोंके लिये आदर्श साधन हैं और सिद्ध प्रेमी भक्तोंके स्वाभाविक गुण ! भक्त जो कुछ करता है वह भगवान्‌के लिये ही करता है, उसे उसका अपने लिये कुछ भी फल नहीं चाहिये। उसकी न कर्ममें आसक्ति है, और न उसके फलमें; वह तो यन्त्रवत् कर्म करता रहता है। परन्तु जहाँतक उसे यह स्मरण रहता है कि मैं यन्त्र हूँ, भगवान्‌के लिये कर्म करता हूँ, वहाँतक वह कर्मफलका ही त्यागी कहा जा सकता है; कर्मका त्यागी तो तब होगा जब उसे यह भी पता नहीं रहेगा कि मैं भी कुछ करता हूँ। जब मन-बुद्धिके पूर्ण समर्पणसे भगवान् उसके अहङ्कारको सर्वथा हरण करके स्वयं ही उसके हृदयमन्दिरमें बैठकर कर्म करने-कराने लगेंगे, तब वह कर्मोंका सम्पूर्ण त्यागी होकर सर्वथा निर्द्वन्द्व हो जायगा। फिर उसे सुख-दुःख, हानि-लाभ, अपना-पराया, मैं-तू आदि द्वन्द्वोंसे कोई प्रयोजन ही नहीं रह जायगा। परन्तु जबतक ऐसी स्वाभाविक स्थिति न हो तबतक साधनरूपसे कर्मफलत्याग और भगवद्-विरोधी अथवा अनावश्यक कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करके निर्द्वन्द्व होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं--

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥
(गीता २। ४५)

'हे अर्जुन! वेद तीनों गुणोंके प्रकाशरूप संसारको प्रकाश करनेवाले हैं; अतएव निस्त्रैगुण्य अथवा असंसारी (निष्कामी), सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित, योगक्षेमकी इच्छा न करनेवाला, नित्य सत्त्वमें स्थित और परमात्मपरायण हो जाओ।'

वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ॥ ४९ ॥

४९—जो वेदोंका भी भलीभाँति परित्याग कर देता है और जो अखण्ड असीम भगवत्प्रेम प्राप्त कर लेता है।

साधनकी दृष्टिसे उपर्युक्त श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोक (२। ४५) के अनुसार तीनों गुणोंके प्रकाशरूप संसारको प्रकट करनेवाले वेदोंके त्यागसे, निष्कामी बननेका अर्थ बहुत ही ठीक है। सकाम भावका त्याग ही वेदत्याग है। परन्तु देवर्षि नारद यहाँ जिस प्रेमावस्थाका वर्णन कर रहे हैं, उस अवस्थामें तो भक्त केवल एक अविच्छिन्न अखण्ड भगवत्प्रेमके महान् सागरमें डूबकर तन्मय हो जाता है; इससे वेदोंका आश्रय स्वयमेव ही छूट जाता है, उससे फिर लौकिक-वैदिक कोई-सी भी क्रिया यथाविधि नहीं हो सकती। सारे नियमोंका अपने-आप टूट जाना ही इस प्रेमका एक नियम है। यह भी शास्त्रविधि ही है। इस स्थितिमें वेद अपने अनुयायीको वेदोंका परमफल प्राप्त करते देखकर, उसकी चरम तृप्तिपर स्वयं तृप्त होकर उसे छोड़

देते हैं। यह वेदत्याग तिरस्कारमूलक नहीं है, वरं तृप्तिमूलक है। वह जानबूझकर वेदोंको नहीं छोड़ता, वेद ही उसे पूर्णकाम समझकर अपना आधिपत्य उसपरसे उठा लेते हैं। इस अवस्थामें वह प्रेमी भक्त विधि-निषेधमय वेदोंको लाँघकर बस, केवल एक अनिर्वचनीय हरिप्रेममें ही मतवाला रहता है; वह भगवत्प्रेमकी एक जीती-जागती मूर्ति होता है। स्वयं भगवान् ही उसके शरीरमें दिव्य प्रेमके रूपमें प्रकट होकर लीला करते हैं।

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ॥ ५० ॥

५०–वह तरता है, वह तरता है, वह लोगोंको तार देता है।

देवर्षि नारद आनन्दमें भरकर पुकार रहे हैं कि जो इस प्रकार भगवान्‌के प्रेममें मतवाला हो जाता है वह स्वयं तो तर ही गया, अपितु वह समस्त लोकोंको भी तार देता है। वही सच्चा तरन-तारन होता है। भगवान्‌ने भी श्रीमद्भागवतमें कहा है—'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति'—ऐसा मेरा भक्त त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।

छियालिसवें सूत्रमें मायासे कौन तरता है, यह प्रश्न करके यहाँतक उसका उत्तर दिया गया। चार सूत्रोंमें प्रेमके साधन और प्रेमियोंके लक्षण बतलाये गये। अब आगे उस प्रेमका रूप बतलाया जायगा, जिसको पाकर प्रेमी महानुभावगण इस दुर्लभ स्थितिको स्वाभाविक गुणोंके रूपमें अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।



प्रेमरूपा भक्ति और गौणी भक्तिका स्वरूप

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥ ५१ ॥

५१–प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है।

प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं; जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है, वेद 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं, इसी प्रकार प्रेमका वर्णन भी वाणीद्वारा नहीं हो सकता। संसारमें भी हम देखते हैं कि प्रिय वस्तुके मिलनेपर, उसका समाचार पानेपर, उसके स्पर्श, आलिङ्गन और प्रेमालापका सुअवसर मिलनेपर हृदयमें जिस आनन्दका अनुभव होता है, उसका वर्णन वाणी कभी नहीं कर सकती। जिस प्रेमका वर्णन वाणीके द्वारा हो सकता है, वह तो प्रेमका सर्वथा बाहरी रूप है। प्रेम तो अनुभवकी वस्तु है। भगवान् श्रीराम लंकामें स्थित जगज्जननी जानकीजीको सँदेसा कहलाते हैं—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥

प्रेमका अनुभव है मनमें, और मन रहता है सदा अपने प्रेमीके पास। फिर भला, मनके अभावमें वाणीको यत्किञ्चित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले? अतएव प्रेमका जो

कुछ भी वर्णन मिलता है वह केवल सांकेतिकमात्र है—बाहा है। प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नहीं, और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है। जलमें मुखसे शब्दका उच्चारण तभीतक होता है जबतक कि मुख जलसे बाहर रहता है, जब मनुष्य अतलतलमें डूब जाता है तब तो डूबनेवालेकी लाशका पता लगना भी कठिन होता है। इसी प्रकार जो प्रेमसमुद्रमें डूब चुका है, वह कुछ कह ही नहीं सकता। और ऊपर-ऊपर डुबकियाँ मारने और डूबने-उतरानेवाले जो कुछ कहते हैं सो केवल ऊपर-ऊपरकी ही बात कहते हैं—

> डूबे सो बोलै नहीं, बोलै सो अनजान।
> गहरो प्रेम-समुद्र कोउ डूबे चतुर सुजान॥

मूकास्वादनवत्॥ ५२॥

५२—गूँगेके स्वादकी तरह।

जैसे गूँगा गुड़ खाकर प्रसन्न होता है, हँसता है, परन्तु गुड़का स्वाद नहीं बतला सकता; इसी प्रकार प्रेमी महात्मा प्रेमका अनुभव कर आनन्दमें निमग्न हो जाते हैं, परन्तु अपने उस अनुभवका स्वरूप दूसरे किसीको भी बतला नहीं सकते। इस प्रेममें तन्मयता होती है। इसलिये प्रेमी यह नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और क्या जानता हूँ। इसीसे श्रीराधाने एक समय कहा है कि हे सखि! मैं कृष्णप्रेमकी बात कुछ भी नहीं जानती, नहीं समझती, और जो कुछ जानती हूँ उसे प्रकट करनेयोग्य भाषा

मेरे पास नहीं है। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जब हृदयके अंदर उनका स्पर्श होता है, तभी मेरा सारा ज्ञान चला जाता है।

प्रकाशते* क्वापि पात्रे ॥५३॥

५३–किसी बिरले योग्य पात्रमें (प्रेमी भक्तमें) ऐसा प्रेम प्रकट भी होता है।

यह तो निश्चित है कि वाणीद्वारा प्रेमका स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता, परन्तु जब कोई प्रेममदसे छके हुए भाग्यवान् महापुरुष तन-मनकी सुधि भुलाकर दिव्य उन्मत्तवत् चेष्टा करने लगते हैं तब प्रेमका कुछ-कुछ प्रकाश लोगोंको प्रकट दीखने लगता है। उस समय ऐसे महात्माकी केवल वाणीसे और नेत्रोंसे ही नहीं, शरीरके रोम-रोमसे प्रेमकी किरणें अपने-आप ही निकलने लगती हैं। यह प्रेमका प्राकट्य साक्षात् भगवान्‌का ही प्रकाश है। ऐसा प्रकाश किसी बिरले ही प्रेमी महापुरुषमें होता है।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमान-मविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥ ५४॥

५४–यह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेदरहित है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है।

किसी गुणको देखकर जो प्रेम होता है वह तो गुण न दीखनेपर नष्ट हो जा सकता है। परन्तु असली प्रेममें गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। प्रेमीको अपने प्रेमास्पदमें गुण-दोष देखनेका

* पाठभेद "प्रकाश्यते"

अवकाश ही कहाँ मिलता है, वहाँ तो स्वाभाविक सहज प्रेम होता है। अथवा यों कह सकते हैं कि प्रेम गुणातीत होता है। वह तीनों गुणोंके दायरेसे परेकी वस्तु है।

प्रेममें कुछ भी कामना नहीं होती, क्योंकि प्रेममें प्रेमास्पदको सुखी देखनेकी एक इच्छाको छोड़कर अन्य किसी स्वार्थकी वासना ही नहीं रहती। उसका तो परम अर्थ केवल प्रेमास्पद ही है। जहाँ कुछ भी पानेकी वासना है वहाँ तो प्रेमका पवित्र आसन कुटिल कामके द्वारा कलङ्कित हो रहा है। अतएव प्रेममें कामना-का लेश भी नहीं है।

सच्चा प्रेम कभी घटता तो है ही नहीं, बरं वह सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेममें कहीं परिसमाप्ति नहीं है। प्रेमीका सदा यही भाव रहता है कि मुझमें प्रेमकी कमी ही है। किसी भी अवस्थामें उसे अपना प्रेम बढ़ा हुआ नहीं दीखता, अतएव उसकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही प्रेम बढ़ानेकी होती है। इस विच्छेदरहित प्रेमकी सतत वृद्धिका क्रम कभी टूटता ही नहीं। यह विशुद्ध प्रेम दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता ही रहता है।

प्रेम सदा बढ़िबो करै, ज्यों ससिकला सुवेष।
पै पूनौं यामें नहीं, तातें कबहूँ न सेष॥

यह प्रेम हृदयकी गुप्त गुहामें रहनेवाला होनेके कारण सूक्ष्म-से भी सूक्ष्मतर होता है और केवल अनुभवमें ही आता है। प्रेमी रसखानजी मानो इसी सूत्रका अनुवाद करते हुए कहते हैं—

बिनु जोबन गुन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
सुद्ध, कामनाते रहित, प्रेम सकल रसखानि॥

अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर ।
प्रेम कठिन सबते सदा, नित इकरस भरपूर ॥
रसमय स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान ।
सदा एकरस बढ़त नित सुद्ध प्रेम रसखान ॥

यह प्रेम परम आनन्दमय है और आनन्दमय श्रीहरिके साथ मिलाकर प्रेमीको आनन्दमय बना देता है ।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति* तदेव चिन्तयति ॥ ५५ ॥

५५–इस प्रेमको पाकर प्रेमी इस प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है, प्रेमका ही वर्णन करता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है ।

परम प्रेमके दिव्य रसमें डूबा हुआ प्रेमानन्दमय प्रेमी सर्वत्र अपने प्रेममय, रसमय प्रियतमको ही देखता है । उसे कहीं दूसरी वस्तु दीखती ही नहीं । ऐसी ही स्थितिमें एक गोपी कहती है—

जित देखौं तित स्याममई है ।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है ॥
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है ।
मैं बौरी, की लोगन ही की स्याम पुतरिया बदल गई है ॥
चंद्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है ।
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनो स्यामता बेल बई है ॥
श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है ।
नर देवनकी कौन कथा है, अलख ब्रह्म छबि स्याममई है ॥

* किसी-किसी प्रतिमें "तदेव भाषयति" नहीं है ।

दूसरा भक्त कहता है—

बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें,
बृच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें।
दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचनमें,
हीरनमें हारनमें भूषनमें तनमें॥
कानमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें,
गोकुलमें गोधनमें दामिनमें घनमें।
जहाँ-जहाँ देखौं तहाँ स्याम ही दिखाई देत,
सालिगराम छाइ रह्यो नैननमें मनमें॥

कहि न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम दिखात॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल।
अपनीहू सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल॥
को कासों केहि बिधि कहा, कहै हृदैकी बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो हरि सर्वत्र लखात॥

ऐसी अवस्थामें उसके कानमें जो कुछ भी आवाज आती है, वह केवल प्रेममयके प्रेमसंगीतकी स्वरलहरी ही होती है; वह सर्वदा उसकी मुरलीकी मीठी तानमें मस्त रहता है। इसी प्रकार उसके मुखसे भी प्रेममयको छोड़कर दूसरा शब्द नहीं निकलता। वह प्रेममयका गुण गाते-गाते कभी थकता ही नहीं, बात-बातमें उसे केवल दिव्य प्रेमरसामृतका ही अनुपम स्वाद मिलता रहता है और वह अतृप्त रसनासे सदा उसी अमृतरसपानमें मत्त रहता है। उसके चित्तमें तो दूसरेके लिये स्थान ही नहीं रह गया। वहाँ एकमात्र प्रियतमका ही अखण्ड साम्राज्य और पूर्ण अधिकार

है। ऐसा ज़रा-सा भी स्थान नहीं, जहाँ किसी दूसरेकी कल्पनाकी स्मृति छायारूपसे भी आ सके। चित्त साक्षात् प्रियतमके प्रेमका स्वरूप ही बन जाता है; इस अवस्थाका अनुमान करते हुए कवि कहता है—

कानन दूसरो नाम सुनै नहिं एकहि रंग रँगो यह डोरो।
धोखेहुँ दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै, हम कैसेहुँ टेक तजैं नहिं भोरो।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो॥

समस्त अंग केवल उसीका अनुभव कर रहे हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसीको विषय करती हैं। आँखें अहर्निश सम्पूर्ण विश्वको श्याममय देखती हैं। कान सदा उसीकी मधुरातिमधुर शब्द-ब्रह्ममयी वेणुध्वनि सुनते हैं। नासिका नित्य-निरन्तर उसी नटवरके अंगसौरभको ही सूँघती है। जिह्वा अविच्छिन्नरूपसे उसी प्रेमसुधाका आस्वादन करती है। और शरीर सर्वदा उसी अखिल सौन्दर्यमाधुर्यरसाम्बुधि रसराज परम सुखस्पर्श आनन्द-कन्द श्रीनन्दनन्दनके अनुपम स्पर्श-सुखका अनुभव करता है। आकाशमें वही शब्द है, वायुमें वही स्पर्श है, अग्निमें वही ज्योति है, जलमें वही रस है और पृथ्वीमें वही गन्ध बना हुआ है। सबमें वही भरा है। सबमें वही अपनी अनोखी रूपमाधुरीकी झाँकी दिखा रहा है। सर्वत्र प्रेम-ही-प्रेम, आनन्द-ही-आनन्द है। समस्त विश्व प्रेममय, आनन्दमय, रसमय या श्रीकृष्णमय है। सब कुछ आनन्दसे और सौन्दर्य-माधुर्यसे भरा है। दृश्य, द्रष्टा सभी मधुर

हैं; हम-तुम सभी मधुर हैं; उस परमानन्द-रस-सुधामय मधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है। 'मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः, माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः, मधुमत् पार्थिवं रजः' सर्वत्र मधु-ही-मधु। इस प्रकार प्रेमी भक्तकी दृष्टिमें सर्वत्र प्रेममय भगवान् हैं और भगवान्की दृष्टिमें भक्त। भगवान्ने कहा ही है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(गीता ६।३०)

'जो मुझे सर्वत्र देखता है, और सबको मुझमें देखता है, न कभी मैं उसकी आँखोंसे ओझल होता हूँ और न वह मेरी आँखोंसे ओझल होता है।'

इस अवस्थामें प्रेमी भक्त जिस नित्य महान् दिव्य प्रेमामृत-रससागरमें मग्न रहता है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। यही प्रेमाभक्ति या पराभक्तिका स्वरूप है। यही महान् भूमानन्द है, इसी सर्वव्यापी भूमानन्दके साथ अल्प सुखका तारतम्य दिखलाती हुई श्रुति कहती है—

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम्, यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।
(छान्दोग्योपनिषद् ७।२४।१)

'जहाँ दूसरेको नहीं देखता, दूसरेको नहीं सुनता, दूसरेको नहीं जानता वही भूमा है। और जहाँ दूसरेको देखता है, दूसरेको सुनता है, दूसरेको जानता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मरा हुआ है।' इसीलिये प्रेम सदा मधुर, अविनाशी, सनातन और सत्य है।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ॥५६॥

५६–गौणी भक्ति गुणभेदसे अथवा आर्तादिभेदसे तीन प्रकारकी होती है।

पिछले सूत्रतक उस परा या मुख्या भक्तिका विवेचन हुआ जिसमें प्रेमी भक्त उस प्रेमाभक्तिसे अपने प्रियतम भगवान्के प्रेममय स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इसीको श्रीमद्भागवतमें अहैतुकी–निर्गुण भक्ति तथा गीतामें ज्ञानीकी भक्ति कहा है। अहैतुकी भक्तिमें भक्तकी चित्तवृत्ति और कर्मगतिका प्रवाह अविच्छिन्नरूपसे स्वाभाविक ही भगवान्की ओर बहता रहता है अर्थात् उसका चित्त निरन्तर निष्काम अनन्य प्रेमभावसे भगवान्में लगा रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ श्रीभगवान्के लिये ही होती हैं (भागवत ३। २९। ११-१२) और गीतोक्त दुर्लभ तत्त्वज्ञानी महात्मा भक्त भी सब कुछ वासुदेव ही देखता है (अध्याय ७। १७)। ये दोनों तो भगवत्स्वरूप ही हैं। अब यहाँ इस भक्तिकी अपेक्षा निम्नश्रेणीकी गौणी भक्तिका वर्णन किया जाता है। यह गौणी भक्ति सात्त्विकी, राजसी और

तामसी-भेदसे अथवा आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी-भेदसे तीन प्रकारकी है।

जो भक्ति पापनाशके उद्देश्यसे सब कर्मफलोंको भगवान्में समर्पण करनेके रूपमें, अथवा जिसमें पूजन करना कर्तव्य है यह समझकर भेद-दृष्टिसे पूजा की जाती है, वह सात्त्विकी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। १०)।

जो भक्ति विषय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे भेददृष्टि-पूर्वक केवल प्रतिमादिके पूजनके रूपमें ही की जाती है वह राजसी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। ९)।

जो भक्ति क्रोधसे हिंसा, दम्भ और मत्सरताको लेकर भेद-दृष्टिसे की जाती है वह तामसी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। ८)।

इसी तरह आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी पुरुष त्रिविध उपासनासे तीन प्रकारकी भक्ति करते हैं; अर्थात् भक्तोंके भाव-भेदसे गौणी भक्तिके तीन भेद होते हैं।

गौणी भक्तिके साधनोंसे यद्यपि साक्षात् भगवत्प्राप्ति नहीं होती, तथापि इस गौणी भक्तिके साधक भी सुकृती ही होते हैं और उन्हें भी भगवत्कृपासे इसका अनुष्ठान करते-करते अन्तमें भगवत्-प्राप्तिकी मुख्य साधनरूपा या साक्षात् भगवत्-स्वरूपा प्रेमा भक्तिकी प्राप्ति होती है। भगवान्की भक्तिमें यही विशेषता है कि इसका अन्तिम फल दुर्लभ भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति ही है। इसीसे गौणी भक्तिको भी श्रेष्ठ और पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा ही

होनेवाली माना गया है। क्योंकि भक्तिमात्रमें ही भगवान्का भजन, भगवान्का आश्रय, भगवान्का ध्यान किसी-न-किसी रूपमें रहता है; और भगवद्भजन, भगवदाश्रय तथा भगवान्के ध्यानका फल सीधा भगवत्प्राप्ति ही होता है। अतएव किसी प्रकारसे भी हो, भगवान्की भक्ति मनुष्यको अवश्य ही करनी चाहिये। परन्तु जहाँतक हो सके सात्त्विकी भक्ति अथवा त्रिभुवनके वैभवको भी अनर्थ एवं भगवान्को ही परम अर्थ—परम धन मानकर उसीके प्रेमकी प्राप्तिके लिये सच्चे अर्थार्थीके भावसे भक्ति करनी चाहिये।

उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ॥५७॥

५७—(उनमें) उत्तर-उत्तर क्रमसे पूर्व-पूर्व क्रमकी भक्ति कल्याणकारिणी होती है।

तामसीकी अपेक्षा राजसी और राजसीकी अपेक्षा सात्त्विकी भक्ति उत्तम है। इसी प्रकार अर्थार्थी भक्तकी अपेक्षा जिज्ञासुकी और इन दोनोंकी अपेक्षा आर्त्तकी भक्ति विशेष कल्याणकारिणी होती है।



भक्तिकी सुलभता और महत्ता

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ॥ ५८ ॥

५८–अन्य सबकी अपेक्षा भक्ति सुलभ है ।

इससे पहले भक्तिकी महिमा और कर्म, योग तथा ज्ञानादिकी अपेक्षा उसकी श्रेष्ठताका वर्णन किया गया है । अब सूत्रकार यह दिखलाते हैं कि इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ होनेपर भी भक्तिकी प्राप्ति अन्यान्य फलोंकी अपेक्षा सहज और सुलभ है। भक्तिकी प्राप्तिमें न विद्याकी आवश्यकता है न धनकी, न श्रेष्ठ कुल प्रयोजनीय है और न उच्च वर्णाश्रम, न वेदाध्ययनकी आवश्यकता है न कठोर तपकी, न विवेककी जरूरत है न कठिन वैराग्यकी, आवश्यकता है केवल सरल भावसे भगवान्‌की अपार कृपापर विश्वास करके उनका सतत प्रेमभावसे स्मरण करनेकी । फिर सुलभता तो प्रत्यक्ष ही दीखने लगती है । भगवत्कृपा सबपर सदा-

सर्वदा है। मनुष्य विश्वास नहीं करता, इसीसे वह वञ्चित रह जाता है। भगवान्ने तो गीतामें डंकेकी चोट कहा है कि 'मैं सब प्राणियोंका सुहृद् हूँ, और जो मुझे सुहृद् जान लेता है वह उसी क्षण शान्ति पा जाता है'—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।
(गीता ५। २९)

मनुष्यको चाहिये कि वह भगवत्कृपापर विश्वास करके यह मान ले कि मैं भगवत्कृपाके समुद्रमें डूब रहा हूँ। मेरे ऊपर-नीचे इर्द-गिर्द, भूत-भविष्यत्, सब स्थानों और सब कालमें भगवत्कृपा भरपूर है। ऐसा मानते ही वह उस भगवत्कृपाके प्रतापसे तुरन्त पाप-तापसे मुक्त होकर भगवान्की भक्तिका अधिकारी हो जाता है। भगवत्कृपापर इस प्रकार विश्वास और निश्चय करके भगवान्के अनन्य स्मरणका अभ्यास किसी भी अवस्थामें बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र कोई भी कर सकता है। इसमें न कुछ छोड़ना है और न ग्रहण करना है। सदा सबपर भगवत्कृपा होनेपर भी हमें जो विश्वास नहीं है, बस, उस विश्वासको स्थिर कर लेना है। फिर भक्तिकी प्राप्तिके सभी साधन अपने आप सहज ही सिद्ध हो जायँगे—('तस्याहं सुलभः पार्थ'—गीता ८। १४)। भक्ति किसी और साधनसे नहीं मिलती, यह भजनसे ही मिलती है।

[illegible]पेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ॥५९॥

५९—क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है, इसके लिये अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।

रहता है, दूसरे किसी प्रमाणकी इसमें आवश्यकता नहीं है। पतिसुखके आनन्दका अनुभव भार्या बननेपर ही मिल सकता है; यह कुमारी कन्याको समझानेकी बात नहीं है। इसी प्रकार भक्तिसुखका अनुभव भक्तोंको ही होता है, यह कहकर बतलानेकी बात नहीं है। जो पुण्यात्मा महानुभाव सब कामनाओंका त्याग कर एकमात्र भगवत्प्रेमकी कामनासे ही भगवत्कृपाका आश्रय लेकर भगवान्‌का सदा-सर्वदा प्रेमपूर्वक पुलकित चित्तसे भजन करते हैं वे ही भक्तिसुखका अनुभव करते हैं।

शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ॥ ६० ॥

६०—भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्दरूपा है।

शान्ति और परम आनन्द साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। अपने प्रेमरूपमें स्वयं भगवान् ही अवतीर्ण होते हैं, इसलिये यह भगवत्प्रेम भी शान्ति और परमानन्दस्वरूप ही है। आनन्दमय भगवान् स्वयं ही अपनी ह्लादिनी नाम्नी आनन्दशक्तिको निमित्त बनाकर प्रेम और प्रेमिकके रूपमें प्रकट होते हैं और स्वयं ही प्रेमास्पद बनकर अपने आनन्दका आप ही उपभोग करते हैं। यही उनकी आनन्दलीला है। यहाँपर यह समझ लेना चाहिये कि जिन भगवान्‌की भक्ति या प्रेम शान्तिरूप और परमानन्दरूप है, वे भगवान् निर्गुणवादियोंद्वारा माने हुए प्रकृतिसम्भव सत्त्व, रज, तमरूप त्रिगुणोंसे युक्त 'सगुण ब्रह्म' नहीं हैं। भगवान्‌का

दिव्य तनु उनके अपने आनन्दांश, अपनी योगमायाके निमित्तसे नित्य ही प्रकट है। इसीलिये आत्माराम मुनि, जीवन्मुक्त महापुरुष, व्यास, नारद, शुकदेव, जनक, सनकादि महात्मा उनके एक-एक दिव्य गुण, दिव्य आभूषण, दिव्य गन्ध, दिव्य मुरली-ध्वनि, और दिव्य सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाते हैं। यदि भगवान्‌में इस जगत्प्रसविनी, आवरण करनेवाली मलिना मायाके ही गुणोंका विकास होता, या इसीसे निर्मित उनका शरीर होता तो मायाकी ग्रन्थिको काटे हुए ब्रह्मस्वरूप महात्माओंका उनकी ओर इतना आकर्षण कभी नहीं होता। निर्गुणवादी जिसे भगवत्स्वरूपको शुद्ध सच्चिदानन्दघन ब्रह्म कहते हैं, और वेद जिसे 'नेति-नेति' कहकर सङ्केतसे समझाना चाहते हैं, वही मायातीत विज्ञानानन्दघन परमात्मा भक्तोंके प्रियतम भगवान् हैं। उनको शान्ति और आनन्दके समुद्र कहनेसे भी उनका यथार्थ वर्णन नहीं होता। उनका जो प्रेम है, वही परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप है। इसी प्रेमका वर्णन देवर्षि नारदजी इस सूत्रमें कर रहे हैं।



लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोक-वेदत्वात्* ॥६१॥

६१—लोकहानिकी चिन्ता (भक्तको) नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह (भक्त) अपने आपको, और लौकिक, वैदिक (सब प्रकारके) कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण कर चुका है।

भक्त सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर चुकता है, इसलिये उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी उसे क्या आवश्यकता है? उसको तो केवल एक प्रियतम भगवान्‌के चिन्तनकी ही चिन्ता रहनी चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, जन, मानादि पदार्थ रहें या चले जायँ, उसे इनकी कोई परवा नहीं; क्योंकि वह तो इन्हें पहले ही भगवान्‌के समर्पण करके सर्वथा अकिंचन हो चुका है। फिर उसके पास इनकी चिन्ता करनेके लिये समय और चिन्ता करनेवाला चित्त भी कहाँ है? उसके चित्तको तो एकमात्र चिन्ताहरण चिन्तामणिकी चिन्ताने चुरा लिया है। वे चतुर चौरचूडामणि कभी उसके चित्तको वापस देना ही नहीं चाहते, फिर वह चित्तके अभावमें किसी हानिकी चिन्ता ही कैसे करे? अतएव इस पथके पथिकको लोकहानिकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसे तो सबके सार अर्थ श्रीभगवान्‌का

* पाठभेद 'लोकवेदशीलत्वात्'

ही चिन्तन करना चाहिये । और भक्तके हृदयमें ऐसा ही होता भी है ।

न तदसिद्धौ* लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ॥६२॥

६२—(परन्तु) जबतक भक्तिमें सिद्धि न मिले तबतक लोकव्यवहारका त्याग नहीं करना चाहिये, किन्तु फल त्यागकर (निष्कामभावसे) उस भक्तिका साधन करना चाहिये ।

प्रेमकी प्राप्ति होनेपर लौकिक (और वैदिक) कर्म छूट जाते हैं, जान-बूझकर उनका स्वरूपसे त्याग नहीं करना पड़ता। समर्पणका अर्थ उनका मनसे समर्पण ही है। फिर जब प्रेमकी उच्च दशा प्राप्त होती है तब विधि-निषेधके परे पहुँच जानेके कारण ये सब कर्म स्वतः ही उसे विधिके बन्धनसे मुक्त कर अलग हो जाते हैं। उस स्थितिका यही नियम है। परन्तु जो जान-बूझकर प्रेमके नामपर शास्त्रविधिका त्याग करता है, उसे भक्तिकी सिद्धि सहजमें नहीं होती। इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि लोकव्यवहारका त्याग जान-बूझकर मत करो। फलकी कामना छोड़कर कर्म करते रहो। निष्काम कर्म करनेवाला स्वयमेव ही लोकहानिकी चिन्तासे छूट जाता है और उसके वे भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे किये हुए लौकिक कर्म भक्तिकी प्राप्तिमें साधक बन जाते हैं ।

* पाठभेद 'तत्सिद्धौ' है ।

स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं * न श्रवणीयम् ॥६३॥

६३—स्त्री, धन, नास्तिक और वैरीका चरित्र नहीं सुनना चाहिये।

६२ वें सूत्रमें लोक-व्यवहारका त्याग नहीं करनेकी आज्ञा दी गयी है, अतएव लोकव्यवहार तो करना चाहिये; परन्तु प्रेमपथके पथिकको लोकव्यवहारमें भी स्त्री, धन, नास्तिक और शत्रुके चरित्र-श्रवणसे तो बचना ही चाहिये।

(१) जिसका मन स्त्रीकी चिन्तामें लग गया, वह भगवान्‌की चिन्ता किसी प्रकार नहीं कर सकता। स्त्रीकी चिन्तासे कामकी उत्पत्ति होती है, और काम प्रेममार्गमें सबसे बड़ा बाधक है। स्त्रीसम्बन्धी बातोंके सुनने, पढ़ने और देखनेसे ही स्त्रीचिन्तन होता है। अतएव साधकको चाहिये कि स्त्रीसम्बन्धी बातचीत न करे, स्त्रीसम्बन्धी बात या गान न सुने, स्त्रीसम्बन्धी चित्र न देखे, स्त्रीसम्बन्धी पुस्तक या अन्य साहित्य न पढ़े, नाटक, सिनेमा आदि न देखे, स्त्रीचरित्रपर कुछ भी आलोचना न करे, स्त्रियोंके सम्बन्धमें लेखादि न लिखे, स्त्रियोंमें रहे नहीं, और स्त्रियोंसे अनावश्यक मिले नहीं। जो साधक गृहस्थ हों, उन्हें अपनी विवाहिता पत्नीके सिवा यथासाध्य अन्य स्त्रियोंसे मिलनेसे बचना चाहिये। स्त्रीसम्बन्धी चर्चा करना-सुनना, चित्रादि देखना तो सभीके लिये हानिकारक है। श्रीमद्भागवतमें तो कहा है—

> न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
> योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥
> (३।३१।३५)

---

* पाठभेद 'स्त्रीधननास्तिकचरित्रं'

'स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंका संग करनेवालोंके संगसे मनुष्यको जैसा मोह और बन्धन प्राप्त होता है वैसा अन्य किसीके भी संगसे नहीं होता।' आगे चलकर पञ्चम स्कन्धमें स्त्रियासक्त पुरुषोंकी संगतिको 'नरकका द्वार' बतलाया है। जैसे पुरुषोंके लिये स्त्रीका संग त्याज्य है, इसी प्रकार स्त्रियोंके लिये भी पुरुषोंका संग सर्वथा त्याज्य है।

(२) धनके चिन्तनसे लोभकी उत्पत्ति होती है। जहाँ चित्तमें धनका लोभ जागृत हुआ, वहीं न्यायान्यायकी बुद्धि मारी जाती है और मनुष्य सत्पथको त्यागकर अन्यायके मार्गपर चलने लगता है। अतएव धन और धनियोंकी भोग और गर्वभरी बातें नहीं सुननी-देखनी चाहिये।

(३) जिनका ईश्वर और शास्त्रोंपर विश्वास नहीं है, वे ही नास्तिक हैं। ईश्वरका अस्तित्व न माननेवाले नास्तिकोंके समान जगत्के जीवोंका शत्रु शायद ही कोई है। 'इसमें क्या रक्खा है? उसमें क्या है? ईश्वर केवल ढोंग है, किसने ईश्वरको देखा है! आत्मा तो कल्पनामात्र है।' ऐसी बातें बकनेवाले और ईश्वर तथा शास्त्रोंकी निन्दा करनेवाले कुतर्कियोंका संग करने तथा उनके चरित्र सुननेसे ईश्वरमें अश्रद्धा पैदा होती है और ईश्वरमें अश्रद्धाके समान पतनका साधन और कोई-सा भी नहीं है। अतएव नास्तिकोंसे सदा बचना चाहिये।

(४) वास्तवमें भक्तके मन उसका कोई भी शत्रु नहीं है। जो सब जगत्‌में अपने प्राणाराम परमात्माको व्याप्त देखता है, जो

जगत्‌को श्रीकृष्णमय देखता है, वह कैसे किसको अपना वैरी मान सकता है । देवदेव श्रीमहादेवजीने कहा है—

उमा जे रामचरनरत, बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं बिरोध ॥

परन्तु जबतक भक्तिकी सिद्धि न हो, तबतक साधकको ऐसी भावना करनी चाहिये । और मन-ही-मन यह निश्चय करना चाहिये कि सब कुछ मेरे प्रभुका ही स्वरूप है । ऐसी अवस्थामें यदि कोई दूसरा मनुष्य भ्रमवश साधकसे द्वेष या वैर रक्खे तो उसकी उन वैरसम्बन्धी बातोंको, जहाँतक हो, सुनना ही नहीं चाहिये । क्योंकि उनके सुननेसे क्रोध उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है । अतएव अपनी ओरसे तो अपने न जीते हुए मनके सिवा किसीको शत्रु माने ही नहीं, और दूसरा कोई शत्रुता रखता हो तो उसपर भी विचार न करे ।

स्त्रीके चिन्तनसे काम, धनके चिन्तनसे लोभ, नास्तिकके चिन्तनसे ईश्वरमें अविश्वास और वैरीके चिन्तनसे क्रोध उत्पन्न होता है । अतएव इन चारोंके चरित्रोंको यथासाध्य सुनना ही नहीं चाहिये ।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ॥६४॥

६४–अभिमान, दम्भ आदिका त्याग करना चाहिये ।

इससे पहलेके सूत्रमें स्त्री, धन, नास्तिक, वैरीका चरित्र न सुननेका आदेश दिया गया है । परन्तु वैसा करके यह नहीं मान लेना चाहिये कि मैं कामिनी-काञ्चनका त्यागी हूँ, मैं परम आस्तिक हूँ, मैं अजातशत्रु हूँ । अभिमान सर्वथा पतनका हेतु है ।

सम्पत्ति, सन्तति, शक्ति, स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, कुल, वर्ण, आश्रम, आचार, रूप, पद, पुरुषार्थ आदि किसी भी वस्तुका अभिमान नहीं होना चाहिये। जो कुछ सद्वस्तु या सद्गुण प्राप्त हों, अथवा साधन ठीक चलता रहे तो उसमें भगवान्‌की कृपाको ही कारण समझना चाहिये। अभिमानसे बहुत बड़ी हानि होती है। अतएव अभिमानका सर्वथा त्याग करना चाहिये। यहाँतक कि निरभिमानताके अभिमानको भी छोड़ देना चाहिये। अभिमान-नाशका एक उत्तम उपाय दीनता, विनय और नम्रता है। नमन-भक्तिसे भी अभिमानका नाश होता है। इसी प्रकार दम्भका भी त्याग करना चाहिये। अपनेमें जो गुण न हों, धनमानके लोभसे या स्वभावदोषसे उन गुणोंको दिखानेकी चेष्टा करना; बाहरसे धर्मात्मा, भक्त, त्यागी बननेका ढोंग करना दम्भ कहलाता है। दाम्भिक पुरुषका साधनपथ बहुत बुरी तरहसे रुक जाता है। वह ऊपरसे अपना कपटवेश बनाये रखनेमें ही अपनी समस्त विद्या, बुद्धि और क्रियाकुशलताको समाप्त कर देता है। निरभिमानता और सरलता ये दो भक्तिके साधनमें परम सहायकरूप हैं, और अभिमान एवं दम्भ महान् बाधक। ये दोनों आसुरी सम्पदाके दुर्गुण हैं। इनके साथ 'आदि' शब्द जोड़कर सूत्रकारने आसुरी सम्पदाके* अन्यान्य दुर्गुणोंकी तरफ इशारा किया है। अतएव सभी आसुरी दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये।

* श्रीमद्भगवद्गीताके १६ वें अध्यायमें श्लोक ७ से २० तक श्रीभगवान्‌ने आसुरी सम्पत्तिका जो वर्णन किया है उसका भावार्थ इस प्रकार है—

तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ॥ ६५ ॥

६५—सब आचार भगवान्‌के अर्पण कर चुकनेपर यदि काम, क्रोध, अभिमानादि हों तो उन्हें भी उस (भगवान्) के प्रति ही करना चाहिये ।

जब सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर दिया तो फिर काम, क्रोधादिका अर्पण दूसरे किसको किया जाय ! प्रियतम भगवान् जैसे

आसुरी मनुष्य धर्माधर्मविषयक प्रवृत्ति और निवृत्तिको नहीं जानते, इसलिये उनमें न पवित्रता है, न आचार है और न सत्य ही रहता है । वे आसुरी मनुष्य कहते हैं कि यह जगत् असत्य, अप्रतिष्ठ (धर्माधर्मव्यवस्थासे रहित), ईश्वररहित और अन्योन्यसम्भूत है अर्थात् स्त्रीपुरुषमिथुनजनित है । इस जगत्का और कोई कारण नहीं, यह केवल स्त्री-पुरुषके कामजनित संयोगसे ही उत्पन्न है । वे सब अल्पबुद्धि मनुष्य इस प्रकारकी दृष्टिका आश्रय करके मलिनचित्त, उग्रकर्मी और अहितकारी होकर जगत्के विनाशके लिये ही जन्म ग्रहण करते हैं । वे दुष्पूरणीय (किसी प्रकारसे भी पूरी न हों ऐसी) कामनाओंका आश्रय करके दम्भ, अभिमान और मदके वशीभूत हो मोहवश असद्‌ग्रह (इस षड्यन्त्रसे अमुक मनोरथ पूर्ण हो जायगा ऐसी वेदशास्त्रविरुद्ध दुराशा) स्वीकार कर अपवित्र व्रत (मद्यमांसादि तथा चोरी, झूठ, कपटादिद्वारा सम्पादित नरकादि-उत्पादक कुकर्मोंको) धारणकर शास्त्रविरुद्ध कर्मों—पापकर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं । अन्तिम श्वासतक अपार विषयचिन्ताओंसे घिरे हुए वे 'कामोपभोग' ही परम पुरुषार्थ है, इस प्रकार स्थिर निश्चय करके सैकड़ों प्रकारकी आशाओंकी फाँसियोंसे बँधे हुए कामक्रोधपरायण होकर कामभोगके लिये अन्यायपूर्वक (चोरी, विश्वासघात आदिके द्वारा)

अपने प्रेमी भक्तके प्रेमके पात्र हैं, वैसे ही उसके काम, क्रोधादिके पात्र भी वही हैं। दूसरा तो कोई उसके मन है ही नहीं, तब इनका पात्र और कौन हो? इसका अर्थ यह नहीं कि भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंमें भी विषयी पुरुषों-जैसे ही काम, क्रोध, अभिमान रहते हैं। आसुरी सम्पदाके दुर्गुणस्वरूप काम, क्रोध, अभिमानादि-

---

धन सञ्चय करनेकी चेष्टा करते हैं। आज मैंने यह पाया, यह मनोरथ भी पूरा होगा; यह धन मेरा है, फिर यह धन भी प्राप्त होगा। मैंने अमुक शत्रुको मार डाला, अब उन शत्रुओंको भी मारूँगा। मैं ईश्वर (के समान सर्वशक्तिमान्) हूँ, मैं भोगी हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं धनी हूँ, मैं बड़े कुलवाला हूँ, मेरे समान और कौन है, मैं यज्ञ करूँगा, मैं (नाम, यश या स्वार्थके लिये) दान करूँगा, मैं मौज करूँगा,—इस प्रकार अज्ञानसे मोहित होकर वे अनेकों विषयोंके चिन्तनमें लगे हुए विभ्रान्त चित्तवाले, मोहजालसे ढके हुए, कामभोगोंमें आसक्त होकर महान् क्लेशदायक अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं। वे अभिमानी स्वयं अपनेको श्रेष्ठ समझते हैं (अपनेमें पूज्यबुद्धि रखते हैं), अकड़े रहते हैं, धन, मान और मदके नशेमें चूर हुए वे केवल दम्भपूर्वक लोगोंको धर्मात्मापनका स्वाँग दिखानेके लिये (ईश्वरप्रीत्यर्थ श्रद्धा-विश्वासपूर्वक नहीं) अविधिपूर्वक नाममात्रका यज्ञ करते हैं। अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोधका आश्रय लिये हुए वे अपने तथा दूसरोंके शरीरमें (आत्मारूपसे) स्थित मुझ (भगवान्) से द्वेष करते हैं और सत्य मार्गपर चलनेवाले साधुओंमें दोषारोपण करते हैं। मैं उनमें द्वेषी, क्रूर, नराधम और पापी मनुष्योंको संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। हे अर्जुन! वे मूर्ख इस प्रकार जन्म-जन्ममें बार-बार आसुरी योनिको प्राप्त होकर मुझको (भगवान्‌को) न पाकर (मुझको पाना तो दूर रहा, मेरी प्राप्तिके योग्य मनुष्यशरीरको भी न पाकर) और भी नीची योनियोंको प्राप्त होते हैं।

के त्यागकी बात तो पहले ही कही जा चुकी है। फिर प्रेमी भक्त महात्माओंमें यह दूषित काम कहाँ। उनमें विषयासक्ति, हिंसा, द्वेष और क्रोध कहाँ। उन अमानियोंमें मानकी गन्ध भी कहाँ! इनका तो उनमें बीज ही नहीं है। अपने सुखकी जब कोई वासना ही नहीं, तब ये दोष कहाँसे आवें? उन भक्तोंके जीवनका उद्देश्य तो बस एक प्रियतमको सुखी करना ही है—'कृष्णसुखैकतात्पर्यं गोपीभाववर्य॥' उनके चित्तमें जगत्का संस्कार ही नहीं है; वे तो लज्जा, घृणा, कुल, शील, मान, देह, गेह, भोग, मोक्ष, सबकी सुधि भुलाकर केवल अपने प्रियतम भगवान्‌पर ही न्योछावर हो चुके हैं। अतएव जैसे ये भक्त स्वयं दिव्य भाववाले होते हैं, वैसे ही इनके काम, क्रोध, अभिमान भी दिव्य होते हैं। इसीलिये परम विरागी जीवन्मुक्त मुनियोंने इस प्रकारके भगवत्-रंगरँगीले प्रेमियोंकी ऐसी लीलाएँ गाने और सुननेमें अपनेको कृतार्थ माना है। जिनका चित्त सब ओरसे हट गया है, एकमात्र भगवान् ही जिनकी कामनाकी वस्तु रह गये हैं, वे भक्त अपने उन भगवान्‌के दर्शनकी कामनाके वेगसे पीड़ित होकर रो-रोकर पुकारते हैं—

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत)

'हे देव ! हे प्रियतम ! हे विश्वके एकमात्र बन्धु ! हे हमारे मनोंको अपनी ओर बरबस खींचनेवाले ! हे चपल ! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु ! हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम ! हा ! हा ! तुम कब हमारे दृष्टिगोचर होओगे ?'

श्रीकृष्णगतप्राणा श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥
का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम्॥
यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥
(श्रीमद्भा० १०।५२।३७, ३८, ४३)

'हे अच्युत ! हे त्रिभुवनसुन्दर ! जो कानोंके द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सुननेवालोंके अंगतापको हरण कर लेते हैं वे आपके दिव्य गुण, और जो नेत्रवालोंकी दृष्टिका सबसे परम लाभ है वह आपका दिव्य रूप, इनकी प्रशंसा सुनकर मेरा चित्त सारी

लोकलाजको छोड़कर आपपर अत्यन्त आसक्त हो गया है। हे मुकुन्द ! कुल, शील, रूप, विद्या, वय, द्रव्य और प्रभावमें आपके समान बस आप ही हैं। हे पुरुषोत्तम ! आप नरलोकके मनको मोहनेवाले हैं। हे पुरुषसिंह ! विवाहकाल (आपसे मिलनका अवसर) उपस्थित होनेपर ऐसी (कौन प्रेमी मकरूपी) कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कन्या है जो आपके साथ गँठजोड़ा करनेकी इच्छा न करेगी ? हे कमललोचन ! उमापति शंकरके समान महान् देव अपने हृदयका तम दूर करनेके लिये आपकी जिस चरणधूलिमें स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, यदि वह चरणधूलि मुझे प्रसादरूपमें नहीं मिली तो यह निश्चय समझिये कि मैं व्रतादिके द्वारा शरीरको सुखाकर इन व्याकुल प्राणोंको त्याग दूँगी, और ऐसे करते-करते कभी सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद मुझको प्राप्त होगा ही।'

भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानियाँ द्रौपदीसे कहती हैं—

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।
कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥
(श्रीमद्भागवत १०।८३।४१-४२)

'हे साध्वी ! हमें पृथ्वीके साम्राज्य, इन्द्रके राज्य, भौज्यपद, सिद्धियाँ, ब्रह्माके पद, मोक्ष या वैकुण्ठकी भी इच्छा नहीं है। हम तो केवल यही चाहती हैं कि भगवान् श्रीकृष्णकी कमलाकुच-

कुंकुमकी सुगन्धसे युक्त चरणकमलोंको ही सदा अपने मस्तकोंपर लगाते रहें।' मुक्ति तो ऐसे भक्तोंके चरणोंपर लोटा करती है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥

'जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती है।'

आदर्श प्रेममयी भक्तशिरोमणि गोपियाँ प्रियतम भगवान्‌के आँखोंसे ओझल हो जानेपर विलाप करती हुई कहती हैं—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥
व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥
(श्रीमद्भागवत १०। ३१। ५-६, १३)

'हे यदुकुलशिरोमणि! जो लोग संसारके भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं, तुम्हारे करसरोज उन्हें अभय देकर उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं। हे प्रियतम! अपने उन्हीं करकमलों-को, जिनसे आपने लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रखिये। हे व्रजवासियोंके दुःखोंको हरनेवाले वीर! आपकी मन्द मधुर मुसकान भक्तोंके गर्वको हरनेवाली है। हे सखे! हम आपकी किंकरी हैं, कृपा करके हमें स्वीकार कीजिये और अपना

सुन्दर मुखकमल हमें दिखाइये ! हे रमण ! हे आर्तिनाशन ! तुम्हारे चरणारविन्द प्रणत जनोंकी कामना पूरी करनेवाले हैं, लक्ष्मीजीके द्वारा सदा सेवित हैं, पृथ्वीके आभूषण हैं, विपत्तिकालमें ध्यान करनेसे कल्याण करनेवाले हैं, हे प्रियतम ! उन परम कल्याणमय सुशीतल चरणोंको हमारे तप्त हृदयपर स्थापित कीजिये।'

इस प्रकार प्रेमी भक्त श्रीकृष्णके कामसे पीड़ित हुए सदा उन्हींके लिये रोया करते हैं और उन्हें पुकारा करते हैं; और आँखमिचौनी-सी लीला करनेवाले लीलाविहारी भगवान् जब उनकी प्रेम-पुकार सुनकर त्रिभुवनकमनीय, योगिजनदुर्लभ, देवदेव-प्रत्याशित, ऋषिमहर्षिमहापुरुषचित्ताकर्षक निखिलसौन्दर्यमाधुर्य-रसामृतसारभूत आनन्दकन्द मदनमोहन मन्मथमन्मथरूपमें मन्द-मन्द मुसकाते हुए और मुरलीमें अपना दिव्य मोहन सुर भरते हुए सहसा प्रकट होकर अपनी प्रेमानन्दरसमाधुरी चारों ओर बिखेर देते हैं, जब अपने सौन्दर्यमाधुर्यसुधासुशीतल वदनविधुकी शुभ्र ज्योत्स्ना चारों ओर छिटका देते हैं, तब वहाँ उन भाग्यवान् दिव्य-चक्षु दिव्यभावापन्न भक्त महात्माओंके चित्तोंकी क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। यह अनिर्वचनीय रहस्य है।

उस समय भक्तका अपना सब कुछ उनके चरणोंमें स्वयमेव न्योछावर हो जाता है और वह आनन्दोद्रासमें मत्त होकर सारे जगत्‌की परवा छोड़कर पुकार उठता है—

घर तजौं, बन तजौं, नागर नगर तजौं,
बंसीवट-तट तजौं, काहूपै न लजिहौं।
देह तजौं, गेह तजौं, नेह कहो कैसे तजौं,
आज राजकाज सब ऐसे साज सजिहौं॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोकौं,
बावरी कहेते मैं काहू ना बरजिहौं।
कहैया सुनैया तजौं, बाप और भैया तजौं,
दैया तजौं मैया ! पै कन्हैया नाहिं तजिहौं॥

जीना और मरना तुम्हारे ही लिये होगा, और तुम्हारे ही चरणोंमें होगा। मेरे हृदयकी यही एकमात्र कामना है। जब सब कुछ न्योछावर हो गया तो फिर मरनेके बाद शरीरके ये पाँचों भूत अलग-अलग बिखरकर भी तुम्हारी ही सेवा करेंगे।

कहीं ये पञ्चभूत जब मुझे छोड़कर अलग हों तब प्रियतमकी सेवासे हट न जायँ, इसीलिये विह्वलचित्तसे भक्त विधातासे प्रार्थना करता है—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गन-
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः॥

इसीका अनुवाद करते हुए एक कविने कहा है—

मरिबे डरौं न बिधिहिं बस, पंचभूत करि बास।
पी-बापी, मारग, मुकुर, बीजन, आँगन अकास॥

पाँचों तत्त्व तो अलग-अलग होंगे ही, हे प्रभो ! आप इतना कर दीजिये कि जलका भाग उस कुएँमें जाकर मिल जाय जिसके जलको मेरे प्रियतम नहाने और पीनेके काममें लेते हों, अग्नितत्त्व

उस दर्पणमें जा मिले जिसमें प्रियतम अपना मुख देखते हों, पृथ्वी-तत्त्व उस मार्गमें मिल जाय जिस मार्गसे प्रियतम आते-जाते हों, वायुतत्त्व उस भाग्यवान् पङ्खेमें जा मिले जिससे प्रियतम हवा लेते हों और आकाशतत्त्व उस आँगनमें जाकर मिल जाय जिसमें प्रियतम बैठते हों !

और जीव ? वह तो प्रभुके चरणोंसे कभी अलग हो ही नहीं सकता । उसको तो वे अपने हृदयमें ही छिपा रक्खेंगे ! यह है भक्तोंके 'काम' का एक छोटा-सा दृश्य ! अब उनका क्रोध देखिये।

एक दिन श्रीकृष्णकी किसी खिझानेवाली चालसे श्रीराधाजी खीझ गयीं, सखी समझाने लगीं तो वे क्रोधमें भरकर कहने लगीं— तू उनका नाम भी मेरे सामने मत ले; उनकी तो बात ही क्या है, मैं काले रंगकी चीज मात्रका त्याग कर दूँगी। जीवनभर उनके विरहतापसे जलती रहूँगी, परन्तु उनसे मिलूँगी नहीं ।

मिलौं न तिनसौं भूल, अब जौलौं जीवन जियौं ।
सहौं विरहको सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं ॥
मैं अब अपने मन यह ठानी । उनके पंथ पिऊँ नहिं पानी ॥
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ । मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊँ ॥
सुनौं न स्रवननि अलि पिक बानी । नील जलज परसौं नहि पानी ॥

जरा ध्यान देकर देखिये, इस खीझमें कितनी रीझ भरी है !

एक दिन लीलामयने भक्त सखाओंके प्रणयकोपका आनन्द लूटनेके लिये खेलमें गड़बड़ मचाकर सखाओंको खिझा दिया । सखाओंने मिलकर निश्चय किया कि इस नटखटको खेलसे अलग कर दो । श्यामसुन्दरका वियोग तो क्षणभरके लिये भी सहनेको उनमेंसे

एक भी तैयार नहीं था, क्योंकि उसे अलग करते ही प्राण अलग हो जाते हैं; परन्तु ऊपरसे बात गाँठकर उन्होंने कहा—'कृष्ण! तुम खुद ही गड़बड़ मचाते हो, और फिर तनकर रूठ जाते हो; हटो यहाँसे, हम तुम्हें अपने साथ नहीं खेलने देंगे।' बस, जहाँ फटकार मिली कि प्राणधन श्यामसुन्दर ढीले पड़ गये। लगे पैरों पड़ने और शपथ खा-खाकर क्षमा माँगने। सूरदासजीने गाया है—

खेलनमें को काको गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रुसैयाँ॥
जाति पाँति हमते बड़ नाहीं, ना हम बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत याते, जाते अधिक तुम्हारे गैयाँ॥
रूठ करे ता सँग को खेलै, हा हा खात परत तब पैयाँ।
'सूरदास' प्रभु खेल्यो ही चाहैं, दाँव दियो करि नँद दुहैयाँ॥

यह है उनका क्रोध!

अब रही मानकी बात, सो दूषणरहित मान तो इस प्रेमाभक्तिका एक भूषण ही है। एक समय श्रीराधारानी रूठ गयीं, मान कर बैठीं और सखियोंसे बोलीं—

सखि नँदलाल न आवन पावै।
भीतर चरन धरन जिन दीजो, चाहे जितै लजावै॥
ऐसनको विश्वास कहा री कपट बैन बतियावै।
'नारायन' इक मेरे भवन तजि अनत चहे जहँ जावै॥

भगवान् मनाते-मनाते थक गये और शेषमें बोले—

इतो श्रम नाहिंन तबहूँ भयो।
सुनु राधिका! जितो श्रम मोकौं ते बहु मानु दयो॥
धरनीधर बिधि बेद उधारो, मधु सो सत्रु हयो।
द्विज नृप किए दुसह दुख मेटे, बलि को राज लयो॥
तोरयो धनुष सुयंबर कीन्हो, रावन अजित जयो।
अघ बक बच्छ अरिष्ट केसि मथि दावानल अँचयो॥
तिय बपु धरयो असुर सुर मोहे, को जग जो न ठयो।
गुरुसुत मृतक ल्याय के कारन सागर सोध लयो॥
जानौं नाहिं कहा या रसमें सहजहि होत नयो।
'सूरस्याम' बल तोहि मनावत मोहि सब बिसरि गयो॥

धन्य तेरा मान! बड़े-बड़े काम किये, कहीं हार नहीं मानी, कहीं थकावट नहीं प्रतीत हुई। आज तुझे मनानेमें मेरा सारा बल खिल गया। यह भक्तोंकी और भगवान्‌की प्रणय-लीला है—इस लीलामें राग, काम, क्रोध, मान सभी है; परन्तु सभी दूसरे रूपमें हैं। सभी पवित्र प्रेमके नामान्तरमात्र हैं, यहाँका यह सर्वधर्मत्याग ही परम धर्म है। यहाँकी अविधि ही सर्वोपरि प्रेम-की विधि है।

यह तो हुई सिद्ध भक्तोंकी बात। भक्तिके साधनमें भी यदि काम, क्रोध, लोभ कभी सतावें तो उनको भगवान्‌के प्रति ही लगा देना चाहिये। जो बातें हमारे मार्गमें बाधक होती हैं, वे ही भगवान्‌के प्रति प्रयुक्त होनेपर साधक बन जाती हैं। यह निश्चय रखना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें परमहंसश्रेष्ठ श्रीशुकदेवजीके वचन हैं—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥
(१०। २९। १५)

'काम, क्रोध, भय, स्नेह, तादात्म्य एवं मित्रता, सभी कुछ जो श्रीहरिके प्रति ही करते हैं वे अवश्य ही भगवान्‌के साथ तन्मय हो जाते हैं।'

तीव्र काम उसी वस्तुके लिये उत्पन्न होता है जो सबसे श्रेष्ठ हो, अखिल ऐश्वर्यमय हो, महान् माधुर्यसे पूर्ण हो, सर्वाङ्गसुन्दर हो, आनन्दमय हो; भगवान्‌में यह सब कुछ है। यह सोचकर सदा-सर्वदा एकमात्र श्रीकृष्णमिलनकी कामनासे पीड़ित रहे और यह कामवासना उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय। प्रेमभरा क्रोध इस प्रकार करे कि 'तुम बड़े निठुर हो, इतना पुकारनेपर भी नहीं आते; याद रक्खो,—अभी तो मैं पुकारता हूँ,—पीछे तुम्हें पीछे-पीछे भटकना पड़ेगा।' आठों पहर चिन्तनमें लगे रहकर प्रेमभरा मान इस प्रकार करे कि, 'मेरे पास तो अटूट चिन्तन-धन है, मैं तुम्हारी कोई गरज नहीं रखता; तुम्हें सौ बार गरज हो तो आना।' इत्यादि।

भगवान्‌के प्रति काम, क्रोध और अभिमान कैसे किया जा सकता है इसका एक और सुन्दर उदाहरण मातृपरायण शिशु है। छोटे बच्चेको आप बहुमूल्य रत्न दीजिये, उसे बढ़िया-बढ़िया चीजें खानेको दीजिये, उसका खूब सम्मान कीजिये, उसका यश गाइये,

उसे स्वर्ग-मोक्ष मिलनेकी बात कहिये, वह माता और मातृस्तनोंको छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता। चाहे क्या, वह और किसी वस्तुको जानता ही नहीं, उसके लिये जाननेकी और चाहनेकी एकमात्र वस्तु माँ है। माँके बदलेमें वह किसी वस्तुसे भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इसी प्रकार भक्तकी कामना केवल भगवान्‌के लिये ही होनी चाहिये। एकमात्र भगवान् ही उसके काम्य होने चाहिये।

बच्चा कुछ बड़ा हुआ; इधर-उधर कुछ चलने लगा; चलते-चलते ठोकर खाकर गिर पड़ा, रोने लगा। बच्चेका रोना सुनकर माँ दौड़ी आयी। बच्चा खीझ गया; पड़ा स्वयं, परन्तु क्रोध उसका मातापर हुआ। वह अपनी तोतली बोलीमें बार-बार कहता है, तू मुझे अकेला छोड़ क्यों गयी? फिर अभिमान करके रूठ जाता है। कहता है, 'जा मैं तुझसे नहीं बोलूँगा। तेरी गोदी नहीं आऊँगा।' माँ मनाती है, गोद लेना चाहती है, स्तन पिलाना चाहती है, वह रोता हुआ आगे-आगे भागता है। वह ऐसा क्यों करता है, इसीलिये कि वह स्वाभाविक ही मातापर अपना अधिकार समझता है। माताको ही अपनी सब कुछ समझता है। वह भूखा रहे तो माँका दोष, वह गिर जाय तो माँका अपराध, वह सो न सके तो माताका अपराध; और अपराधका दण्ड खीझना और रूठना—क्रोध और अभिमान! इसी प्रकार निर्भर भक्त भी अपने भगवान्‌के प्रति काम, क्रोध और अभिमानादि कर सकता है।



प्रेमी भक्तोंकी महिमा

त्रिरूपभङ्गपूर्वकं नित्यदासनित्यकान्ताभजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम्, प्रेमैव कार्यम् ॥६६॥

६६–तीन (स्वामी, सेवक और सेवा) रूपोंको भंगकर नित्य दासभक्तिसे या नित्य कान्ताभक्तिसे प्रेम ही करना चाहिये, प्रेम ही करना चाहिये।

स्वामी, सेवक और सेवा; अथवा पति, पत्नी और पतिसेवा—इन तीन-तीन रूपोंको मिटाकर नित्य दास्यभक्तिके द्वारा अथवा कान्ताभक्तिके द्वारा भगवान्से प्रेम ही करना चाहिये। दास्यभाव और कान्ताभाव इन दोनोंमें ही आगे चलकर भगवान्के साथ तन्मयता हो जाती है। निष्कामभावसे शरीर, मन, वाणी, सब कुछ स्वामीके अर्पणकर, एक अपने स्वामीको छोड़कर जगत्में दूसरे किसीको भी न जानना—यह दास्यभक्तिका आदर्श है। और पति ही मेरा तन, मन, धन, गति, मति, आश्रय, जीवन,

प्राण, धर्म, मोक्ष और भगवान् है; एक पतिके सिवा अन्य कोई पुरुष ही जगत्में नहीं है; पतिका धन मेरा धन, पतिका तन मेरा तन, पतिका मन मेरा मन, पतिकी सेवा मेरी सेवा, पतिका ऐश्वर्य मेरा ऐश्वर्य, पतिका मान मेरा मान, पतिका अपमान मेरा अपमान, पतिके प्राण मेरे प्राण—इस प्रकार एकमात्र पतिपरायणा पतिगतप्राणा होकर निष्काम अनन्यभावसे निरन्तर सेवामें लगे रहना, यह कान्ताभक्तिका आदर्श है। वास्तवमें दोनों एक ही हैं। दोनोंमें ही समता है। दोनोंमें ही अभिन्नता है। दास्यभक्तिमें भी सेवक अपना सब कुछ भुलाकर स्वामीके नाम-गोत्रवाला बन जाता है और कान्ताभक्तिमें तो अपने नाम-गोत्रको पतिके नाम-गोत्रमें मिलानेपर ही कान्ताभावकी प्राप्ति होती है। दास्यभावके सम्बन्धमें श्रीगोसाईंजी महाराज कहते हैं—

मेरे जातिपाँति, न चहौं काहूकी जातिपाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको।
लोक परलोक रघुनाथहीके हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको॥
अति ही अयाने उपखाने नहीं बूझैं लोग,
साहहीको गोत गोत होत है गुलामको।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहूके द्वार परौं जो हौं सो हौं रामको॥

स्वामी और सेवकका कुल-गोत्र एक हो गया। इस दास्य-भावकी महिमा गाती हुई भगवती श्रीराधिकाजी भक्तवर उद्धवजीसे कहती हैं—

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् ।
श्रेष्ठा पञ्चविधामुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ।
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि ।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम्॥
(ब्रह्मवैवर्त० कृ० ९७ । ८-९)

'सब वरोंमें श्रेष्ठतम वर श्रीकृष्णभक्ति या श्रीकृष्णदास्य ही है। पाँच प्रकारकी श्रेष्ठ मुक्तियोंसे हरिभक्ति ही श्रेष्ठ एवं गुरुतर है । ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरत्व, अमृतप्राप्ति, सिद्धिलाभ—इन सभीसे श्रीहरिका दासत्व प्राप्त होना सुदुर्लभ है ।'

कान्ताभक्तिमें तो एकात्मता है ही—

प्रीति जो मेरे पीवकी, बैठी पिंजर माँहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै, 'दादू' दूसर नाँहिं ॥
प्रीतमको पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस ।
तनमें, मनमें, नैनमें, ताको कहा सँदेस ॥

कान्ता और कान्त तो घुल-मिलकर एक हो जाते हैं—अतएव वहाँ त्रिरूपका भङ्ग आप ही हो जाता है । सूत्रकार कहते हैं, इस एकात्मताके आदर्शको सामने रखकर, इस भावको मनमें स्थान देकर दास्यभाव या कान्ताभावसे भगवान्‌के प्रति केवल प्रेम ही करो ।

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥६७॥

६७-एकान्त (अनन्य) भक्त ही श्रेष्ठ हैं ।

इससे पूर्व सूत्रके अनुसार भक्ति करनेवाला भगवान्‌का अनन्य भक्त ही सबमें श्रेष्ठ है । क्योंकि उसका तन, मन, धन सब कुछ

परमात्माका हो जाता है। वह परमात्माका यन्त्रवत् होकर संसारमें रहता है। उसका आत्मा परमात्मासे मिल जाता है, उसका मन परमात्माके मनमें रम जाता है, उसके नेत्र सब जगह सर्वदा परमात्माको ही देखते हैं—

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिरि जाय॥
'कबिरा' काजर-रेखहू, अब तो दई न जाय।
नैननि प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय॥
आठ पहर चौंसठ घरी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींदहिं ठौर न होय॥

कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः
पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥६८॥

६८—ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध, रोमाञ्च और अश्रुयुक्त नेत्रवाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलोंको और पृथ्वीको पवित्र करते हैं।

अनन्य भक्तगण जब इकट्ठे होकर अपने प्राणस्वरूप प्रियतमकी चर्चा करते हैं तो उनका प्रेमसागर उमड़ पड़ता है। तब वे चेष्टा करनेपर भी नहीं बोल सकते; उनके कण्ठ रुक जाते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है, रोम-रोमसे प्रेमकी किरणधाराएँ निकलकर उस स्थानमें निर्मल प्रेमज्योति फैला देती हैं। वहाँका वातावरण अत्यन्त विशुद्ध और प्रेममय हो जाता है। उस समय वे भक्तगण प्रेमविह्वल होकर आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा

बहाते हुए परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। यह स्थिति बहुत ही दुर्लभ और परम पवित्र होती है, जिन भाग्यवानोंको यह अवस्था प्राप्त हो जाती है उन सबके कुल तो पवित्र होते ही हैं—

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगतपूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीरपरायन, जेहिं नर उपज बिनीत॥

—वरं उनके अस्तित्वसे पृथ्वी भी पवित्र हो जाती है। उस समय उन पवित्र प्रेमस्वरूप भक्तके तनसे स्पर्श की हुई जरा-सी हवा जिसके शरीरको स्पर्श कर लेती है, वह भी पवित्र हो जाता है। शास्त्रमें कहा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

'जिसका चित्त अपार संवित् एवं सुखके सागर परब्रह्ममें लीन हो गया है उसके जन्मसे कुल पवित्र, जननी कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।'

श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(११।१४।२४)

'प्रेमके प्रकट हो जानेसे जिसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है, जो प्रेमावेशमें बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने और नाचने लगता है। ऐसा मेरा परम भक्त त्रिलोकीको पवित्र कर देता है।'

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि ॥ ६९॥

६९-ऐसे भक्त तीर्थोंको सुतीर्थ, कर्मोंको सुकर्म और शास्त्रोंको सत्‌शास्त्र कर देते हैं।

तीर्थ पापी नर-नारियोंको निष्पाप और पवित्र करते हैं, परन्तु पापात्माओंके सतत समागमसे उनमें मलिनता आ जाती है। तीर्थोंकी वह मलिनता भक्तोंके समागमसे नष्ट होती है। दिलीप-कुमार महाराज भगीरथके घोर तपसे प्रसन्न होकर वर देनेके लिये आविर्भूत हुई भगवती श्रीगङ्गाजीने उनसे कहा—'भगीरथ! मैं पृथ्वीपर कैसे आऊँ? संसारके सारे पापी तो आ-आकर मुझमें अपने पापोंको धो डालेंगे। परन्तु उन पापियोंके अपार पाप-पङ्कको मैं कहाँ धोने जाऊँगी, इसपर आपने क्या विचार किया है?' इसके उत्तरमें भगीरथने कहा—

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥
(श्रीमद्भागवत ९। ९। ६)

'हे माता! समस्त विश्वको पवित्र करनेवाले विषयोंके त्यागी, शान्तस्वरूप, ब्रह्मनिष्ठ साधु-महात्मा आकर तुम्हारे प्रवाहमें स्नान

करेंगे तब उनके अंगके संगसे तुम्हारे सारे पाप धुल जायँगे; क्योंकि उनके हृदयमें समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीहरि निवास करते हैं।'

प्रचेतागण भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥

(श्रीमद्भागवत ४।३०।३७)

'आपके जो भक्तगण तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये ही भूमिपर विचरण करते हैं उनका समागम संसारभयसे भीत पुरुषको कैसे प्रिय नहीं होगा।'

धर्मराज युधिष्ठिर भक्तराज विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं प्रभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भागवत १।१३।१०)

'हे प्रभो! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं, (पापियों-द्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें विराजित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्रदान करा देते हैं।'

इसी प्रकार जिन शास्त्रोक्त कर्मोंको भक्तगण करने लगते हैं, वे ही सत्कर्म हो जाते हैं और वे जिस शास्त्रको आदर देते हैं, वही सद्‌शास्त्र माना जाता है। वरं यह कहना भी अत्युक्ति नहीं कि भक्त जिस जगह रहते हैं, जिस सरोवर या नदीमें स्नान करते हैं, वही तीर्थ बन जाता है; भक्त जो कुछ कर्म करते हैं, वही आदर्श सत्कर्म कहलाता है और भक्त जो कुछ उपदेश करते हैं, वही सद्‌शास्त्र माना जाता है। उनका निवासस्थान ही तीर्थ,

उनके कर्म ही सत्कर्म और उनकी वाणी ही सत्शास्त्र है। तीर्थ, सत्कर्म और शास्त्रका रहस्य समझनेपर यह बात भलीभाँति समझमें आ जाती है।

तन्मयाः ॥ ७० ॥

७०-(क्योंकि) वे तन्मय हैं।

जैसे नदी समुद्रमें मिलकर समुद्र बन जाती है, इसी प्रकार भक्त भी अपना तन-मन-बुद्धि-अहंकार सब कुछ प्रियतम भगवान्‌के समर्पण कर भगवान्‌के साथ तन्मय हो जाता है। ऐसा भक्त साक्षात् भगवत्स्वरूप ही होता है, वह जहाँ रहता है वहाँका तमाम सूक्ष्म और स्थूल वातावरण शुद्ध हो जाता है। इसीलिये उसके समागममात्रसे तीर्थ, कर्म और शास्त्र पवित्र हो जाते हैं। ऐसे ही भक्तोंके द्वारा भगवान्, भगवन्नाम, भगवद्भक्तिकी महिमा बढ़ती है और इनके समागममें आनेवाले पापी-से-पापी नर-नारी भी घोर संसार-सागरसे अनायास ही तर जाते हैं।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥ ७१ ॥

७१-(ऐसे भक्तोंका आविर्भाव देखकर) पितरगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

भक्तोंका आविर्भाव सभीके लिये शुभ होता है, क्योंकि उनके सभी कर्म स्वाभाविक ही लोककल्याणकारी होते हैं। उनके प्रभावसे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा बढ़ती है, पितृकार्य और देव-कार्योंमें विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इससे धर्मपथसे डिगे हुए लोग

पुनः धर्ममार्गपर आरूढ़ होकर यज्ञ, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म करने लगते हैं जिससे देवता और पितरोंको बड़ा सुख मिलता है। भक्तिके प्रतापसे भक्तके आगे-पीछेके कई कुल तर जाते हैं, इसलिये अपने कुलमें भक्तको उत्पन्न हुआ देखकर पितरगण अपनी मुक्तिकी दृढ़ आशासे हर्षोत्फुल्ल हो जाते हैं। पद्मपुराणमें कहा है—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति॥

'पितृ-पितामहगण अपने वंशमें भगवद्भक्तका जन्म हुआ जानकर—यह हमारा उद्धार कर देगा, इस आशासे प्रसन्न होकर नाचने और ताल ठोकने लगते हैं।'

मचले हुए दर्शनाकांक्षी भक्त किसी भी बातसे सन्तुष्ट नहीं होते, अतः स्नेहमयी जननीकी भाँति उन्हें अपनी गोदमें खिलाकर सुखी करनेके लिये सच्चिदानन्दघन भगवान् दिव्य रूपमें साक्षात् प्रकट होते हैं। उनके प्रकट होते ही देवताओंका अहित करनेवाले असुरोंका विनाश आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार भक्तके आविर्भावको ही भगवान्‌के प्राकट्यमें कारण समझकर देवतागण भी नाचने लगते हैं। जबतक भगवान् या भगवान्‌के प्यारे धर्मात्मा भक्तोंका आविर्भाव नहीं होता तबतक पृथ्वीदेवी अनाथा रहती हैं। और जब भक्त प्रकट होते हैं तब बछड़ेके पीछे स्नेहवश दौड़नेवाली गौकी तरह भगवान् भी प्रकट हो जाते हैं, अतएव भक्तके आविर्भावसे ही पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः ॥७२॥

७२-उनमें (भक्तोंमें) जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादिका भेद नहीं है।

सूत्रकार यहाँ यह समझाते हैं कि भक्तिमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादिकी प्रधानता नहीं है। ब्राह्मण हो या शूद्र, पढ़ा-लिखा हो या बेपढ़ा-लिखा, सुन्दर हो या कुरूप, ऊँचे कुलका हो या नीच कुलका, धनवान् हो या दरिद्र और बहुत क्रियाशील हो या अक्रिय। जो अपना सर्वस्व प्रभुपर न्योछावरकर सतत उनका प्रेमपूर्वक स्मरण करनेमें अपने चित्तको तल्लीन कर देता है, उसीको भक्तिरूपी परम दुर्लभ धन मिल जाता है। निषादका जन्म नीच जातिमें हुआ था, सजन कसाई थे, शबरी गँवार स्त्री थी, ध्रुव अपढ़ बालक थे, विभीषण और हनुमानादि कुरूप और अकुलीन राक्षस तथा वानर थे, विदुर और सुदामा निर्धन थे, गोपीजन क्रियाहीन थीं, परन्तु इन सबने भक्ति और प्रपत्तिके प्रतापसे भगवान्का प्रेम प्राप्त किया और भगवान्के परमप्रिय हो गये। सर्व सत्कर्मोंकी फलरूपा भक्ति जिसके हृदयमें है, वही भक्त है, वही सर्वगुणसम्पन्न है, फिर चाहे वह कोई हो। यही बात श्रीरामचरितमानसमें कही गयी है—

सोइ सरबग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्मपरायन सोइ कुल त्राता। रामचरन जा कर मन राता॥
नीतिनिपुन सोइ परम सयाना। श्रुतिसिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबिकोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

इसका यह तात्पर्य नहीं कि भक्त अपनेको सबसे ऊँचा और सर्वगुणसम्पन्न समझकर सबसे अपनी पूजा कराता है या समाज, जाति, वर्ण और आश्रममें बड़ोंके साथ खानपान, विवाह, व्यवहार, रहन-सहन, आचार-विचार और कुलपरम्परा आदिमें अपने लिये समान अधिकारका दावा करता है। भक्त तो अभिमान-का सर्वथा त्यागी है, फिर वह नया झूठा अभिमान लादकर ऐसा क्यों करने लगा ? जो ऐसा करते हैं वे भक्त नहीं हैं । वर्णाश्रम तथा भक्तिमें भेद है । जो भक्तिके नामपर वर्णाश्रमकी मर्यादा नाश करना चाहते हैं, वे तो भक्तिपर लाञ्छन लगाते हैं । अतएव भक्तिमार्गपर चलनेवाले साधकोंको शास्त्रत्यागकी कभी भावना ही नहीं करनी चाहिये । यह सत्य है कि प्रारब्धमें न होनेसे विद्या और धन नहीं मिल सकता, और न इस जन्ममें रूप, जाति तथा कुल ही बदल सकते हैं । परन्तु इन सब वस्तुओंके होने-न-होनेसे अथवा कम-ज्यादा होनेसे भक्तमें ऊँचा-नीचा भाव नहीं करना चाहिये—भक्तिके नाते जातिभेद आदिके कारण भक्तको नीचा कदापि नहीं समझना चाहिये । वैष्णवशास्त्रोंमें इसीलिये भक्तोंमें जातिभेदबुद्धिको एक अपराध बतलाया है ।*

* वैष्णवग्रन्थोंमें निम्नलिखित ६४ अपराध बतलाये गये हैं। इनपर ध्यान रखकर चलनेसे बहुत लाभ हो सकता है । १ श्रीभगवान्को कोई देवता या तत्त्वविशेष मानना, २ वेदोंमें ग्रन्थ या पौरुषेयबुद्धि, ३ भक्तोंमें जातिभेदबुद्धि, ४ गुरुको साधारण मनुष्य समझना, ५ भगवान्की प्रतिमाको काठ, पत्थर, धातु, कागज या मिट्टी समझना, ६ भगवान्के प्रसादको साधारण खानेकी चीज समझना, ७ भगवान्के चरणोदकको साधारण जल समझना, ८ तुलसीको साधारण वृक्ष समझना, ९ गौको साधारण पशु समझना, १० भागवत और गीताको साधारण पुस्तक समझना, ११ भगवान्की लीलाओंको मनुष्यकी की हुई मानना,

यतस्तदीयाः ॥ ७२ ॥

१२ सांसारिक प्रेम या सौसुखके साथ भगवान्‌की लीलाकी तुलना करना, १३ गोपियोंको (भगवान्‌के लिये) परनारी समझना, १४ रासलीलाको कामचेष्टा समझना, १५ भगवान्‌के महोत्सवके समय स्पर्शास्पर्शबुद्धि रखना, १६ ईश्वर और शास्त्रोंको न मानकर नास्तिक हो जाना, १७ सन्देहपूर्वक धर्मका आचरण करना, १८ धर्मके पालनमें आलस्य करना, १९ भक्तोंको बाहरी बातोंपर कसना, २० साधु-महात्माओंके गुण-दोषोंकी आलोचना करना, २१ अपनेको उत्तम समझना, २२ किसी भी देवता या किसी भी शास्त्रकी निन्दा करना, २३ भगवान्‌की मूर्तिके सामने पीठ देकर बैठना, २४ भगवान्‌की मूर्तिके सामने जूते पहनकर जाना, २५ भगवान्‌की मूर्तिके सामने माला धारण करना, २६ भगवान्‌की मूर्तिके सामने छड़ी लेकर जाना, २७ भगवान्‌की मूर्तिके सामने नीले कपड़े पहनकर जाना, २८ दाँतन-कुल्ला किये बिना जाना, २९ मलत्याग या मैथुनादिके बाद कपड़े बदले बिना मन्दिरमें प्रवेश करना, ३० भगवान्‌की मूर्तिके सामने हाथ-पैर फैलाना, ३१ भगवान्‌की मूर्तिके सामने पान खाना, ३२ भगवान्‌की मूर्तिके सामने जोरसे हँसना, ३३ कुचेष्टा करना, ३४ स्त्रियोंके चारों ओर घूमना, ३५ क्रोध करना, ३६ भगवान्‌की मूर्तिके सामने किसी दूसरेका अभिवादन करना, ३७ दुर्गन्धवाली कोई चीज खाकर दुर्गन्ध दूर हुए पहले मन्दिरमें जाना, ३८ मादक द्रव्य सेवन करना, ३९ किसीको अपमानित करना या मारना, ४० काम-क्रोधादिकी चेष्टा करना, ४१ अतिथि या साधुकी आवभगत न करना, ४२ अपनेको भक्त, धर्मात्मा, पण्डित या पुण्यवान् समझना, ४३ नास्तिक, व्यभिचारी, हिंसक, लोभी और झूठ बोलनेवाले मनुष्योंका सङ्ग करना, ४४ विपत्तिमें ईश्वरपर दोष लगाना, ४५ पापके लिये धर्म करना, ४६ किसीको किञ्चित्

७३-(क्योंकि भक्त सब) उनके (भगवान्‌के) ही हैं ।

भक्त अपनी भक्तिके प्रभावसे भगवद्‌रूप ही हो जाते हैं, इसीलिये उनमें परस्पर भेदबुद्धि नहीं होती और उनमें कोई अपनेको किसी भी हेतुसे ऊँचा नहीं समझता ।



भी कष्ट देकर अपनेको धार्मिक समझना, ४७ स्त्री, पुत्र, परिवार, आश्रित, दीन और साधुका पालन-पोषण न करना, ४८ किसी वस्तुको अपनी भोग्य समझकर भगवान्‌के निवेदन करना या बिना निवेदन किये भोगना, ४९ अपने इष्टदेवके नामकी शपथ करना, ५० धर्म और भगवान्‌के नामको बेचकर धन कमाना, ५१ अपने इष्टदेवको छोड़कर दूसरेसे आशा करना, ५२ शास्त्रोंकी मर्यादाको तोड़ना, ५३ ब्रह्मज्ञान न होनेपर भी ब्रह्मज्ञानीके समान आचरण करना, ५४ सम्प्रदायभेदसे वैष्णवोंमें किसीको ऊँचा-नीचा समझना, ५५ देवताके समान आचरण करना, ५६ अवतारोंकी लीलाओंमें तारतम्य देकर उनकी निन्दा करना, ५७ दिल्लगीमें भी किसीको 'आप ही भगवान् हैं' ऐसा कहना, ५८ भगवान् किसीके मुखापेक्षी हैं, भूलकर भी ऐसा समझना, ५९ लोभवश किसीको भगवत्प्रसाद या चरणोदक देना, ६० भगवान्‌के चित्र, प्रतिमा या नामका अपमान करना, ६१ किसी भी जीवको किसी प्रकारसे कष्ट पहुँचाना, भय दिखलाना या किसीका अहित करना, ६२ तर्कवितर्कमें हार जाने या सिद्धान्त स्थापित न कर सकनेपर आस्तिकताको त्याग देना, ६३ भगवान्‌के अवतारोंके जन्म-कर्मोंको साधारण समझना, ६४ भगवान्‌के युगलरूपमें द्वैतबुद्धि करना ।

वाद-विवादरूपी विघ्न

वादो नावलम्ब्यः ॥ ७४ ॥

७४-(भक्तको) वाद-विवाद नहीं करना चाहिये ।

भक्तिके साधकोंके लिये यह सूत्र बड़े ही महत्त्वका है। भक्तको तर्क-वितर्कमें पड़नेकी कोई भी आवश्यकता नहीं। यह समझना चाहिये कि मेरा तो हरेक क्षण अपने प्रियतम भगवान्‌के भजनके लिये समर्पण हो चुका, उसे दूसरे काममें लगानेका अधिकार ही नहीं है। फिर वह तर्क-वितर्क करे भी किस बातकी। सृष्टि कब हुई, कैसे हुई, क्यों हुई, इसका मूल तत्त्व क्या है, इन सब बातोंको जाननेकी उसे जरूरत नहीं। उसने तो श्रीभगवान्‌को ही सब कुछ मान-जानकर अपना एकमात्र लक्ष्य बना लिया है। भगवान् अपना तत्त्व जब चाहेंगे, आप ही समझा देंगे। कब समझावेंगे, समझावेंगे या नहीं समझावेंगे, इस बातकी भी उसे कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिये। अपने प्रियतम भगवान्‌के चिन्तनको छोड़कर दूसरी किसी वस्तुके चिन्तनकी उसके मनमें गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिये। और यह भी निश्चित है कि तर्कसे तत्त्वकी उपलब्धि भी नहीं होती। इसीलिये ब्रह्मसूत्रमें कहा है—'तर्काप्रतिष्ठानात्' (२।१।११)—'तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं है।' कठोपनिषद्‌में कहा गया है—'नैषा तर्केण मति-

रापनेया' (१।२।९)। 'बुद्धिके तर्कसे उस तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती।' वह सत्य तत्त्व तो शुद्धचित्त सात्त्विक पुरुषके सामने स्वयमेव आविर्भूत होता है। किसी अंशमें यह भी सत्य है कि 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः', परन्तु वह वाद दूसरा होता है। श्रद्धालु शिष्य जिज्ञासाभावसे गुरुके सामने तर्क उपस्थित करता है और गुरु उसकी शङ्काका निवारण कर और भी प्रबल तर्कसे उसे सिद्धान्त समझाते हैं। ऐसा वाद दूषित नहीं है। परन्तु जो वाद आग्रहपूर्वक होता है वह तो बुरा ही फल उत्पन्न करता है। और वादमें अपने मतका आग्रह हो ही जाता है। फिर सिद्धान्तका लक्ष्य छूट जाता है और व्यक्तिगत दोषनिरीक्षण, दोषारोपण और परस्पर गालीगलौज होने लगता है। विवेक नष्ट हो जाता है, क्रोध छा जाता है, वाणी बेकाबू हो जाती है और सदाके लिये वैर बँध जाता है। इसीलिये 'वादे वादे वर्द्धते वैरवह्निः'—'वादविवादसे वैरकी आग भड़क उठती है,' कहा जाता है। भक्तिके पथिकको तो इतनी फुरसत ही नहीं मिलनी चाहिये जिसमें वह वादविवाद कर सके। जहाँतक हो सके उसे तर्कके स्थानसे अलग ही रहना चाहिये। यदि प्रारब्धवश कभी तर्कवादियोंसे समागम हो जाय तो उसे विनीतभाव धारणकर उनकी बात सुन लेनी चाहिये और बदलेमें कोई उत्तर देकर बात बढ़ानी नहीं चाहिये। 'अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति'—'जब आगमें ईंधन नहीं पड़ेगा तो वह आप ही बुझ जायगी'—कहनेवाले स्वयं ही थक जायँगे। अतएव भक्तके लिये सबसे भली चुप है। 'मौनं सर्वार्थसाधनम्'—यह वाक्य याद रखना चाहिये।

दूसरेकी ऐसी बात सुने ही नहीं जिससे अपने इष्टमें, पथमें, विश्वासमें और साधनमें संशय हो जाय; और स्वयं किसीका जी दुखे, ऐसी कोई बात किसीसे कहे नहीं। दूसरेकी बात मौके-बेमौके सुननी पड़े तो उसे सुन ले; परन्तु स्वयं तो तर्ककी इच्छासे, दूसरेको दबानेके लिये, अपना मत स्थापन करनेके लिये विवादमें उतरे ही नहीं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि श्रद्धाके साथ पूछनेवालेको कुछ न कहे, या मौका पड़नेपर बिना पूछे भी हितकी बात न कहे। मतलब तो यह है कि विवादमें न उतरे। अनावश्यक बोले ही नहीं, जब बिना बोले काम न चले तब आवश्यक समझकर इतना ही बोले जितनेसे काम चल जाय। बात बढ़ाकर न कहे, विवादके भावसे न कहे, किसीका विरोध न करे, किसीकी दिल्लगी न करे, किसीका दोष न बतावे, किसीके हृदयपर चोट न करे, अपनी या अपने मतकी बड़ाई न करे, किसीकी निन्दा न करे, कड़ुआ न बोले, बोलनेमें आशा या कामनाका भाव न रक्खे, जबानसे किसीको धोखा न दे, किसीके विश्वासमें शङ्का न पैदा करे। जो कुछ बोले सत्य, मधुर, प्रिय, अनुद्वेगकर और हितकर शब्द ही बोले; शेष समय भगवन्नाम-स्मरणमें लगा रहे! अनावश्यक एक शब्द बोलनेमें भी बड़ी हानि समझे, क्योंकि उतना समय व्यर्थ गया। उतने समयके लिये जीभसे नामजप छूट गया और अनावश्यक शब्दका वातावरणमें जो असर हुआ, वह अलग। यह निश्चय रक्खे कि तर्क और वादविवादसे कभी भगवत्प्रेम, ज्ञान या भगवान्‌की प्राप्ति

नहीं होती। तर्कसे तो अहङ्कार, द्वेष, क्रोध, हिंसा और वैरकी ही जमात इकट्ठी होती है। अतएव वादविवादसे सदा अलग रहे।

अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तरक सब त्यागी॥

अस बिचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजिअ राम रघुबीर, करुनाकर सुंदर सुखद॥

बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ॥ ७५ ॥

७५-क्योंकि (वाद-विवादमें) बाहुल्यका अवकाश है और वह अनियत है।

सूत्रकार कारण दिखाते हुए कहते हैं कि वादविवादमें उत्तरप्रत्युत्तर होता है और वह बढ़ता ही जाता है। दोनों ओरसे अपने-अपने मतका समर्थन करनेमें शब्दोंकी झड़ी लग जाती है। जो बात भगवत्कृपासे ही जानी जा सकती है, वह तर्कसे मिल तो सकती ही नहीं। अतएव तर्कवितर्कका कोई सुफल भी नहीं होता। यदि विवादमें बोलते-बोलते थक जाने या समयपर तर्क याद न आनेसे किसी पक्षकी जीत हो जाती है तो वह भी सिद्धान्त नहीं माना जाता; क्योंकि वह सिद्धान्त है ही नहीं। अतएव विवादमें समय नष्ट न कर भक्तको सर्व प्रकारसे अपने भगवान्‌पर निर्भर रहते हुए निरन्तर निष्कपट और निष्काम भावसे परम श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का भजन करना चाहिये। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति तर्कसे नहीं होती, भक्तिसे ही होती है।



भक्तिके प्रधान सहायक

भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधककर्माण्यपि करणीयानि ॥७६॥

७६–(उस प्रेमा भक्तिकी प्राप्तिके लिये) भक्तिशास्त्रका मनन करते रहना चाहिये और ऐसे कर्म भी करने चाहिये जिनसे भक्तिकी वृद्धि हो।

भक्ति चाहनेवालोंको न कोई ग्रन्थ देखना चाहिये और न कोई कर्म करना चाहिये ऐसी बात नहीं है। उनको तर्क-वितर्कका त्याग करके बार-बार ऐसे ग्रन्थोंको अवश्य देखना चाहिये जिनमें भगवान्‌की भक्तिका निरूपण हो, भक्तिका माहात्म्य हो, भक्तिके साधन बतलाये गये हों, भगवान्‌के प्यारे भक्तोंके पुण्यचरित्रोंकी कथाएँ हों, और भक्तिके वशमें होकर रहनेवाले भगवान्‌के प्रभाव, रहस्य और गुणोंका वर्णन हो। ऐसे भक्तिशास्त्रोंके अध्ययनसे, महात्मा भक्त सन्तोंकी वाणियोंके श्रवण और पठनसे भगवान्‌के प्रति प्रेमा भक्तिका उदय होता है। हाँ, भक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको ऐसी पुस्तकें कभी नहीं पढ़नी-सुननी चाहिये जिनमें श्रीभगवान्‌का और भक्तिका खण्डन हो, उनका महत्त्व कम बतलाया गया हो और भक्तोंकी निन्दा हो, अथवा जिनमें लौकिक विषयोंकी महत्ताका ही वर्णन हो। ऐसी पुस्तकें भी उन्हें लाभदायक नहीं होतीं जिनमें भगवान्, भक्ति और भक्तोंका महत्त्व न हो। इसके सिवा

राग-द्वेष, काम-क्रोध और वैर-विरोध उत्पन्न करनेवाला साहित्य तो छूना भी नहीं चाहिये। इसीलिये ऐसा कहा गया है कि—

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

'जिस शास्त्र या पुराणमें भगवान्की भक्ति न दिखलायी दे, ब्रह्माके द्वारा कहा हुआ होनेपर भी उसको नहीं सुनना चाहिये।'

साथ ही कर्म भी ऐसे करने चाहिये, जिनसे भक्तिकी जागृति और वृद्धि हो। भक्तिकामी पुरुषको निषिद्ध (पाप) कर्मोंका तो बिल्कुल ही त्याग कर देना चाहिये। जो विषयोंकी आसक्तिवश पापकर्मोंको नहीं छोड़ना चाहता और भक्त भी कहलाना चाहता है वह या तो स्वयं भ्रममें है या जान-बूझकर भ्रम फैलाना चाहता है।

भक्तिकी प्राप्तिमें सहायक कर्मोंमें प्रधान निम्नलिखित हैं—

१—अपने वर्ण और आश्रमके धर्मोंका यथासम्भव पूरा पालन। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासीके लिये त्यागपूर्ण आचरण और गृहस्थके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ माता-पिता, स्त्री-पुत्र-परिवार आदि आश्रित जनोंका प्रेम और सत्कारपूर्वक पालन, न्याय और सत्यपूर्वक जीविकानिर्वाह एवं शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप आदि।

२—सदाचारका पालन।

३—सत्संग और भगवद्गुणानुवादका श्रवण, चिन्तन और कीर्तन।

४—भगवन्नामका जप, स्मरण और कीर्तन।

५—भगवत्-पूजन, स्तुति-प्रार्थना और नमस्कार ।

६—सन्त-भक्तोंकी सेवा और श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञाका पालन ।

७—तीर्थसेवन ।

८—दीन प्राणियोंपर दया और यथासाध्य तन-मन-धनसे उनकी सेवा ।

९—सब कर्मोंको भगवान्के प्रति अर्पण ।

१०—सब प्राणियोंमें भगवान्को देखनेका अभ्यास ।

श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥
आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥
मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥
(श्रीमद्भागवत ११।१९।२०—२४)

'मेरी अमृतके समान कल्याणमयी कथामें श्रद्धा, निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन, मेरी पूजामें पूर्ण निष्ठा, स्तोत्रोंके

द्वारा मेरी स्तुति, मेरी सेवामें निरन्तर आदर, सब अंगोंसे मुझको नमस्कार, मेरे भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन, सब प्राणियोंमें मुझे देखना, मेरे लिये ही सारे लौकिक कर्म करना, बातचीतमें केवल मेरे ही गुणोंकी चर्चा करना, मनको मुझमें ही अर्पण कर देना, समस्त कामनाओंको छोड़ देना, मेरे लिये धन, भोग और सुखोंको त्याग देना और मेरे ही लिये यज्ञ, दान, होम, जप, तप और व्रतादि शास्त्रोक्त कर्मोंको करना। हे उद्धव! आत्मनिवेदनपूर्वक इन धर्मोंके द्वारा मेरी उपासना करनेसे मनुष्योंको मेरी प्रेमरूपा भक्ति प्राप्त होती है। फिर उनको कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रह जाता।'

प्रबुद्ध नामक योगीश्वरने महाराजा निमिसे प्रेमरूपा भक्तिकी प्राप्तिके साधन इस प्रकार बतलाये हैं—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥
तत्र भागवतान्धर्मान्शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥
सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित्॥

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥
श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥
इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम्॥
एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥
(श्रीमद्भागवत ११।३।२१—३१)

'जिसको अपना परम कल्याण जाननेकी इच्छा हो, उसे वेदके ज्ञाता और परब्रह्ममें स्थित शान्तस्वरूप गुरुकी शरण जाना चाहिये। और गुरुको ही आत्मा एवं इष्टदेव समझकर निष्कपट-भावसे उनकी सेवा करके उन भागवत धर्मोंको सीखना चाहिये जिनसे अपने आपको दे डालनेवाले परमात्मा हरि प्रसन्न हो जाते हैं। मनसे सब विषय-भोगोंमें वैराग्य, साधु-महात्माओंका सङ्ग, सब प्राणियोंके प्रति यथायोग्य (दीनोंके प्रति) दया, (समान अवस्थावालोंसे) मित्रता और (बड़ोंके प्रति विनयका व्यवहार), तन-मन-धनसे पवित्र रहना, कष्ट सहकर भी अपने वर्णाश्रमधर्म-

का पालनरूपी तप करना, शीत, उष्ण आदिको सहना, व्यर्थ बातचीतका त्याग या भगवान्का मनन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें समभाव, सर्वत्र सब जीवोंमें अपने आपको तथा ईश्वरको देखना, एकान्तमें रहना, घर आदिको भगवान्का मानना, शुद्ध साधारण वस्त्र पहनना, जो कुछ भी मिले उसीमें सन्तोष मानना, भगवान्का गुण गानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा रखना, दूसरे शास्त्रोंकी निन्दा न करना, मन, वाणी और कर्मोंका संयम, सत्यभाषण, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखना, अद्भुत लीला करनेवाले श्रीहरिके जन्म, कर्म और गुणोंका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना, भगवान्के लिये ही सब विहित कर्म करना, यज्ञ, दान, तप, जप आदि सदाचार, अपने प्रिय लगनेवाले सब पदार्थ और स्त्री, पुत्र, घर तथा प्राणोंको भी परमात्माके अर्पण कर देना, और इस प्रकार भगवान् ही जिनके आत्मा और स्वामी हैं ऐसे भक्तोंसे मित्रता करना, जड-चेतन जीवोंकी, मनुष्योंकी और उनमें भी साधुस्वभाववाले महापुरुषोंकी विशेषरूपसे सेवा करना, परस्परमें भगवान्के पवित्र यशका कथन करना और इस भगवद्गुणगानके द्वारा ही परस्पर प्रीति, तुष्टि और दुःखोंकी निवृत्ति करना—ये सब साधन सद्गुरुके समीप रहकर सीखने चाहिये। इस प्रकार बर्ताव करनेवाले और पाप-समूहके नाशक श्रीहरिका स्वयं स्मरण करने और दूसरोंसे करानेवाले भक्तोंके हृदयमें इस साधनरूपा भक्तिके द्वारा प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उनका शरीर पुलकित हो जाता है, वह फिर प्रेममग्न हो जाते हैं।'

इस प्रकार श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामायण आदि भक्तिप्रधान ग्रन्थोंके श्रवण-पठनसे तथा उपर्युक्त प्रकारसे सत्संग, नाम-जप, नाम-कीर्तनादि भक्तिवर्धक सत्कार्योंके भगवत्प्रीत्यर्थ करनेसे भक्तिकी वृद्धि होती है। भक्तको सदा साधुस्वभाव और सत्कार्योंमें ही रत होना चाहिये, तभी उनकी भक्ति बढ़ती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्यारे भक्तोंके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्धाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(गीता १२। १३—२०)

'जो किसी भी जीवसे द्वेष नहीं रखता, जो सबका मित्र और दयालु है, जो ममता और अहङ्कारसे रहित, सुखदुःखोंकी प्राप्तिमें समभाववाला और क्षमाशील है, जिसका चित्त निरन्तर मुझमें लगा है, जो सदा सन्तुष्ट है, मन और इन्द्रियोंको जीते हुए है, मुझमें इढ़निश्चयी है और जिसने अपने मनबुद्धिको मुझे सौंप रक्खा है वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

जिससे किसी जीवको उद्वेग नहीं होता और जो स्वयं किसीसे उद्विग्न नहीं होता, जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगोंसे छूटा हुआ है वह भक्त मुझको प्रिय है।

जिसको किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, जो शुद्ध, चतुर और उदासीन है, जो दुःखोंसे मुक्त है और 'मैं करनेवाला हूँ' इस अभिमानसे किसी कार्यका आरम्भ नहीं करता (सब कुछ भगवान्का ही किया मानता है) वह मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न कुछ चाहता ही है, जो शुभ और अशुभ किसी भी कर्मको आसक्ति और फलकी इच्छासे नहीं करता वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

जो शत्रु-मित्रमें, मान-अपमानमें और सर्दी-गर्मी तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें समानभाव रखता है, जिसकी (मुझको छोड़कर) किसी भी पदार्थमें आसक्ति नहीं है, जो निन्दास्तुतिको समान समझता है, जो चित्त तथा वाणीसे केवल मेरा ही मनन और कथन करता है और जो किसी भी प्रकार जीवननिर्वाह होनेमें

सन्तोष रखता है, जिसका अपना कोई घर नहीं है अर्थात् जो घरमें ममत्वरहित है या जो घर-द्वार सबको भगवान्‌के मान चुका है वह स्थिरबुद्धि भक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

जो श्रद्धावान् पुरुष मेरे ही परायण होकर उपर्युक्त धर्ममय अमृतका भलीभाँति सेवन करते हैं वे भक्त तो मुझको अत्यन्त ही प्रिय हैं।'

श्रीभगवान्‌के बतलाये हुए ये लक्षण सिद्ध भक्तोंमें तो स्वाभाविक होते हैं और भक्तिके साधकोंको इन्हें अपना आदर्श मानकर इनके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

इस प्रकार भक्तिशास्त्रके अध्ययन-मननसे तथा भक्तिको बढ़ानेवाले साधनोंमें लगे रहनेसे भक्तको योगिजनदुर्लभ प्रेमरूपा भक्तिकी प्राप्ति होती है।

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयम् ॥ ७७ ॥

७७–सुख, दुःख, इच्छा, लाभ आदिका (पूर्ण) त्याग हो जाय ऐसे कालकी बाट देखते हुए आधा क्षण भी (भजन बिना) व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्तिकी सिद्धि होनेपर सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि सारे द्वन्द्व स्वयमेव मिट जाते हैं और फिर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती। परन्तु ऐसे शुभ समयकी केवल बाट ही देखी जाय और 'साधन कुछ भी न किया जाय तो वर्तमान हीन दशाका विनाश होकर अचानक वैसी शुभ दशा

अपने-आप प्राप्त होगी ही कैसे ? फिर, मनुष्यके जीवनका एक क्षणका भी पता नहीं है, न मालूम किस पलमें प्रलय हो जाय, कब मृत्यु आ जाय; इसलिये 'अमुक स्थिति हो जानेपर भगवान्का भजन करूँगा' ऐसी धारणाको छोड़ देना चाहिये और अभी जो जिस अवस्थामें है, उसे इसी अवस्थामें भगवान्की कृपाका आश्रय करके साधना आरम्भ कर देनी चाहिये। आधे क्षणके लिये भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। कबीरजी कहते हैं—

> काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
> पलमें परलै होयगी, फेरि करैगा कब॥

पलक मारते-मारते मृत्युके ग्रास बन जाओगे, फिर कब करोगे। यह मत समझो कि 'अभी छोटी उम्र है, खेलने-खाने और विषय भोगनेका समय है; बड़े-बूढ़े होनेपर भजन करेंगे।' कौन कह सकता है कि तुम बड़े-बूढ़े होनेसे पहले ही नहीं मर जाओगे। मौतकी नंगी तलवार तो सदा ही सिरपर झूल रही है। इसपर एक दृष्टान्त है। एक भ्रमर था, वह कमलके अन्दर बैठा कमलका रस पी रहा था और उसकी सुगन्धसे मस्त हो रहा था; इतनेमें सन्ध्या हो आयी। सूर्यके छिपते ही कमल सङ्कुचित हो जाता है; अतएव कमल बन्द हो गया और मोटे-मोटे शाल और सीसमके पेड़ोंको छेद डालनेकी ताकत रखनेवाला भ्रमर विषयासक्तिके कारण उसके अन्दर ही रह गया, और विचार करने लगा—

> रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
> भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
> इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
> हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

'रात बीत जायगी, प्रातःकाल होगा, सूर्य उदय होंगे और जब उनकी किरणोंके पड़ते ही कमल फिर खिल जायगा, तब मैं इसमेंसे निकल जाऊँगा। इतने आनन्दसे मकरन्दरसका आस्वादन करता रहूँ।' वह यों विचार कर ही रहा था कि इतनेमें एक मतवाले हाथीने आकर कमलको उखाड़कर मुँहमें डाल लिया और कमलके साथ ही भौंरा भी हाथीके दाँतोंमें पिस गया। उसके मनका मनोरथ मनहीमें रह गया। अतएव इन विचारोंको तो छोड़ ही देना चाहिये कि अमुक काम होनेपर भजन करेंगे। प्रथम तो मनमानी कामनाओंकी पूर्ति होती ही नहीं और यदि होती है तो एक कामनाकी पूर्ति अनेकों नये-नये अभावोंको साथ लेकर आती है, फिर उनकी पूर्तिके प्रयत्नमें लग जाना पड़ता है। अपूर्ण और अभावमय क्षणभङ्गुर सांसारिक पदार्थोंसे कभी पूर्ण तृप्ति हो ही नहीं सकती। कितनी ही प्राप्ति हो जाय, रहेगा अभाव ही, और अभावके दुःखसे जलते हुए ही विषयकामी मनुष्यको मर जाना पड़ेगा। इसलिये विषयोंकी पूर्ण प्राप्ति और विषयोंके भोगसे पूर्ण तृप्ति हो जाय ऐसे समयकी आशा छोड़कर पहलेसे ही भजनमें लग जाना चाहिये।

इसके सिवा एक बात और विचारणीय है कि आज अच्छे संगसे हमारे मनमें भगवान्को या भगवान्की भक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा हुई है, और हमने क्षणभरके लिये अपने जीवनका ध्येय भगवत्-प्राप्ति माना है; परन्तु हम विचार करते हैं कि अमुक स्थिति हो जानेपर इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये साधन किया जायगा। क्या

हमारा यह विचार धोखेका नहीं है ? प्रथम तो यही निश्चय नहीं कि अमुक स्थिति प्राप्त हो, और फिर यह कौन कह सकता है कि तबतक हमारा ध्येय नहीं बदल जायगा। परन्तु यदि आज हम अपने ध्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें लग जाते हैं तो साधनमार्गमें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे त्यों-त्यों हमारा उसमें विशेष अनुराग होगा, लाभ भी प्रतीत होगा और अभ्यास भी दृढ़ होता जायगा। इसके विपरीत यदि हम केवल ध्येयमात्र मानकर ही चुप रह जाते हैं तो दूसरे ही क्षण, दूसरा संग मिलनेपर हमारा यह ध्येय बदल जायगा। इसलिये कालकी प्रतीक्षा न कर अभीसे भजन-साधन आरम्भ कर देना चाहिये। सत्संगसे प्राप्त सदिच्छाके सुअवसरको खो नहीं देना चाहिये। स्वास्थ्य भी सदा अच्छा रहेगा, यह भी निश्चय नहीं है। जबतक स्वास्थ्य ठीक है तभीतक साधन-भजन होता है। स्वास्थ्य बिगड़ जानेपर, इन्द्रियोंके अशक्त हो जानेपर और बुढ़ापा आ जानेपर, यदि पहले पूरा अभ्यास नहीं किया गया है तो भजनमें मन ही नहीं लगेगा। महाराजा भर्तृहरिने इसीलिये कहा है—

> यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
> यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
> आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
> प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥
>
> (वैराग्यशतक)

'जबतक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा नहीं आया है, इन्द्रियोंकी शक्ति पूरी बनी हुई है, आयुके दिन शेष हैं, तभीतक बुद्धिमान्

पुरुषको अपने कल्याणके लिये अच्छी तरह यत्न कर लेना चाहिये। घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेसे क्या होगा ?'

इसीलिये भक्तगण भगवान्के शरण होकर पुकारा करते हैं—

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद ! त्वं रक्ष रक्षाधुना ॥

'आयु प्रतिदिन देखते-देखते नष्ट हो रही है, जवानी बीती जा रही है, गये हुए दिन लौटकर नहीं आते, काल जगत्को खा रहा है, लक्ष्मी जलके तरंगकी भाँति चञ्चल है और जीवन तो बिजलीकी चमकके समान अस्थिर है; अतएव हे शरण देनेवाले प्रभु ! मुझ शरणागतकी तुम अभी रक्षा करो !'

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥

'हे कृष्ण ! तुम्हारे पदकमलरूपी पिंजरेमें मेरा यह मनरूपी राजहंस आज ही प्रवेश कर जाय। प्राण निकलनेके समय जब कफ, वायु और पित्तके बढ़नेपर कण्ठ रुक जायगा, उस समय तुम्हारा स्मरण कहाँसे होगा ?'

अतएव जरा-सी भी काल भगवान्के भजनके बिना नहीं बिताना चाहिये। जो समय भगवद्भजनमें जाता है वही सार्थक

है, शेष सब व्यर्थ है। समयका मूल्य समझकर एक-एक साँसको खूब सावधानीके साथ कंजूसके परिमित पैसोंकी भाँति केवल भगवच्चिन्तनमें ही लगाना उचित है। भजनहीन काल ही वास्तवमें हमारे लिये भयङ्कर काल है। वही सबसे बड़ी विपत्ति है।

कह हनुमान बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न कीर्तयेत्॥

'जो घड़ी या एक क्षण भी श्रीभगवान्‌के कीर्तन बिना बीत गया उसीको सबसे बड़ा नुकसान, अज्ञान और मोह जानना चाहिये।'

भगवान्‌के भजनके लिये किसी भी सुभीतेके समयकी प्रतीक्षा **नहीं** करनी चाहिये। नहीं तो हमारा अमूल्य मनुष्यजीवन ही वृथा नष्ट हो जायगा। भगवान्‌का भजन ही मनुष्यजीवनका सर्वोत्तम और आदरणीय कर्म है। भजन करते-करते भगवान्‌की कृपासे एक दिन हमारे सारे सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंका अपने आप ही नाश हो जायगा, और भगवत्प्रेमकी निर्मल ज्योतिसे हमारा हृदय जगमगा उठेगा; सब दिशाएँ और सारा ब्रह्माण्ड उस निर्मल शीतल स्निग्ध ज्योतिसे भर जायगा, और तब हमारे आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

वस्तुतः भक्तका काम तो यह सोचना भी नहीं है कि भजनका क्या परिणाम होगा; उसका काम तो केवल प्रेमपूर्वक भजन ही करना है। प्रेमके लिये ही प्रेम करना है, भजनके लिये ही भजन करना है। भजन करना उसका स्वभाव ही बन

जाता है, भजन बिना उससे रहा ही नहीं जाता। वह सब कुछ सह सकता है, किन्तु भजनका वियोग उसके लिये असह्य है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

> त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
> स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
> न चलति भगवत्पदारविन्दा-
> ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

'यदि भगवान्‌के भक्तसे कहा जाय कि तुम आधे क्षण या आधे निमेषके लिये भी भगवच्चरणोंका चिन्तन छोड़ दो और त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवको ले लो, तो वह इस बातको स्वीकार नहीं करता। उसका चित्तरूपी भ्रमर तो अचञ्चलरूपसे भगवान्‌के उन चारु चरणकमलोंमें ही लगा रहता है, जिनको निरन्तर ध्यानपूर्वक खोजनेपर भी देवता नहीं पा सकते। ऐसा वह भक्त कुछ भी नहीं चाहता।' वह बार-बार कातर कण्ठसे यही कहता है कि मुझे न मोक्ष चाहिये, न ज्ञान चाहिये, न वैभव चाहिये, न ऋद्धि-सिद्धि चाहिये और न महान् कीर्ति ही चाहिये। किसी भी योनिमें जाना पड़े, कुछ भी हो, इसकी भी तनिक-सी चिन्ता नहीं। बस, हे मेरे प्रियतम! तुम्हारे चरणोंमें मेरा प्रेम, बिना किसी हेतुका प्रेम, पगला प्रेम, अन्धा प्रेम, प्रेममय प्रेम, प्रियतममय प्रेम दिनोंदिन बढ़ता ही रहे।

> जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥

श्रीशङ्कराचार्य जगज्जननीरूप भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—

न मोक्षस्याकाङ्क्षा वरविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखिसुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि ॥७८॥

७८—(भक्तिके साधकको) अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय सदाचारोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये।

छिहत्तरवें सूत्रमें भक्तिको बढ़ानेवाले कर्मोंका आचरण करनेकी बात कही गयी है। इस सूत्रमें उन क्रियाओं और सद्गुणोंमेंसे पाँच प्रधान आचारोंका नाम निर्देश करके सूत्रकार इनके पालनकी अत्यन्त आवश्यकताका प्रतिपादन करते हैं।

दैवी सम्पत्तिके गुण भक्तका बाना है। जहाँ भक्ति है वहाँ दैवी सम्पत्तिका होना अनिवार्य है। कुछ लोग भूलसे ऐसा कह दिया करते हैं कि 'भक्ति करो; भक्तमें सद्गुण न हों तो न सही। मनुष्य चाहे जितने पाप करे; बस, भक्त हो जाय; फिर कोई परवा नहीं।' परन्तु उनका यह कथन वैसे ही युक्तिविरुद्ध है जैसे यह कथन कि 'सूर्य उदय हो जाय, फिर वहाँ अन्धकार भले ही बना रहे।' जहाँ सूर्य उदय हो गया, वहाँ अन्धकार न रहकर प्रकाश छा ही जाता है। इसी प्रकार जहाँ भक्तिरूपी सूर्यका

उदय हो गया है वहाँ उसका प्रकाशरूप दैवी सम्पत्ति अवश्य फैल जायगी। यह किसी अंशमें सत्य है कि भगवत्प्राप्त महात्मा भक्त पुरुषोंके बाहरी आचरणोंसे उनकी परीक्षा नहीं होती। परन्तु कुछ गुण तो ऐसे हैं ही जिनका उनमें प्रकट रहना अत्यन्त ही आवश्यक है। आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। उन्हीं गुणोंमें ये पाँचों गुण भी हैं। जिस पुरुषमें ये गुण न हों, वह यदि कदाचित् साधु या भक्त भी हो तो भी उससे डरना ही चाहिये। बल्कि अधिकांशमें तो इन गुणोंसे रहित मनुष्य साधु या भक्त होते ही नहीं। अपनी परीक्षा तो साधकको इन्हीं गुणोंके आधारपर करनी चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि यदि भगवान्का चिन्तन और दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है तो हमारी भक्तिमार्गमें उन्नति हो रही है; यदि भगवत्का चिन्तन होता है और दैवी सम्पत्ति नहीं बढ़ रही है तो हमारी उन्नति नहीं हो रही है एवं यदि विषयोंका चिन्तन बढ़ रहा है और आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है तो हमारी निश्चय ही अवनति हो रही है। भगवान्का प्रेमपूर्वक चिन्तन भक्तका धर्म है और दैवी सम्पदाके गुण उसकी जीवनपद्धति हैं। वह सब कुछ छोड़ देता है, परन्तु इन दोनोंको नहीं छोड़ता। अवश्य ही लीलामय भगवान्की आज्ञा या रुचिके अनुसार सिद्ध भक्तको कहीं-कहीं जीवनपद्धति बदलनी पड़ती है। परन्तु वह नियम नहीं है, अपवाद है। यह निश्चय है कि वह किसी प्रकारकी भी आसक्ति, ममता, कामना, वासना, अहंकार या मोहवश जीवनपद्धतिको नहीं बदलता। जहाँ किसी कारणवश किसी समय उसकी जीवन-पद्धतिमें और उसके स्वाभाविक स्वधर्म भगवत्प्रेममें विरोध आता

दीखता है वहीं भगवान्‌की आज्ञा लेकर वह अपने स्वधर्मकी रक्षाके लिये नीतिको छोड़ देता है। ऐसे ही स्थलोंके लिये—भरत, प्रह्लाद, विभीषण, श्रीगोपीजन आदिके उदाहरण मिलते हैं, जहाँ उन्होंने भगवान्‌के लिये माता, पिता, भाई और पति आदिकी आज्ञाओंका उल्लङ्घन किया है। परन्तु वहाँ भी देखा जाय तो सदाचार-नीतिका त्याग नहीं हुआ है। प्रेमधर्मके पालनार्थ भक्तोंने प्रायः स्वयं ही कष्ट सहा है। उस अवस्थाकी बात दूसरी है जिसमें सारे विधि-निषेधोंका भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण हो जाता है। परन्तु स्मरण रहे, वह समर्पण होता है, किया नहीं जाता। विधि-निषेधोंका बोझ उस बावले भक्तके सिरसे उतार लिया जाता है, वह जानकर नहीं उतारता। और उस मस्तीमें भी उसमें कोई दुर्गुण रहता हो सो बात नहीं है। परन्तु यहाँ तो साधककी चर्चा हो रही है और साधकको बड़ी ही सावधानीके साथ शास्त्र-विहित सद्गुणों और सदाचारोंका रक्षण और पालन करना चाहिये। सूत्रकारने जिन पाँच गुणोंका नाम लिया है उनका स्वरूप संक्षेपमें यों समझना चाहिये।

अहिंसा—शरीर, मन और वाणीसे किसी भी जीवको किसी प्रकारसे वर्तमान या भविष्यमें दुःख नहीं पहुँचाना, वरं सदा सबको सुखी बनानेकी चेष्टामें लगे रहना।

सत्य—जैसा देखा, सुना या समझा हो, वचन, लेखन या संकेतसे ठीक वैसा ही दूसरेको समझानेकी नीयत रखना। वाणीसे ऐसे ही शब्दोंका उच्चारण करना जो सत्य हों, और साथ ही मधुर और हितकारी भी हों। कुछ लोग सत्यभाषणमें कठोर भाषाका

प्रयोग आवश्यक समझते हैं और अभिमानवश कह बैठते हैं कि हम तो सत्य कहनेवाले हैं, चाहे उससे किसीका जी दुखी हो या सुखी! परन्तु ऐसी बात नहीं है। द्वेष, वैर, निन्दा, चुगली आदि भावोंसे बचाकर वाणीको अपने और दूसरेके हितकी दृष्टिसे सदा मधुरता और सत्यमें ही सनी रखनी चाहिये। जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी प्रकाश देनेवाली होनेके साथ ही शीतल भी होती है, इसी प्रकार भक्तकी वाणी भी सत्य और मधुर—प्रकाशक और शान्ति-दायक होनी चाहिये। जिससे दूसरेका अहित होता हो वह सत्य भी वाञ्छनीय नहीं है।

शौच—बाहरी और भीतरी दोनों प्रकारके शौचकी आवश्यकता है।

बाहरी—

(क) जल, मिट्टी आदिसे शरीरको पवित्र रखना।

(ख) दूसरेका स्वत्व न छीनकर सत्यतापूर्वक निर्दोषरूपसे कमानेकी चेष्टा कर धनको शुद्ध रखना।

(ग) शुद्ध स्थानमें शुद्ध, स्नान किये हुए मनुष्यद्वारा, शुद्ध निरामिष अन्नसे बनाये हुए पदार्थोंको भगवदर्पण कर भोजनको शुद्ध करना।

(घ) शुद्ध, निष्कपट और प्रेमपूर्ण बर्तावसे व्यवहारको शुद्ध रखना।

(ङ) अतिथिसत्कार और भगवन्नामकी ध्वनिसे घरको पवित्र रखना।

(च) शास्त्रविहित आचरणोंसे अन्य सभी बाह्य कर्मोंको शुद्ध रखना।

भीतरी—दम्भ, वैर, अभिमान, आसक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, पापचिन्तन, व्यर्थ विषयचिन्तन आदि दोषोंको मनमें यथासाध्य न आने देकर सरलता, प्रेम, विनय, वैराग्य, अद्वेष, प्रसन्नता, सच्चिन्तन और भगवच्चिन्तनके द्वारा मनको पवित्र रखना।

दया—दुखी मनुष्य घरका या दूसरा हो, मित्र हो या शत्रु हो, उसको दुःखकी दशामें देखकर बिना किसी भेद-भावके मनका व्याकुल हो जाना और यथासाध्य कष्ट सहकर तथा त्याग करके भी उसके दुःखको दूर करनेकी चेष्टा करना। यह भाव सभी जीवोंके प्रति होना चाहिये और सभी कालमें होना चाहिये। जिस क्रियासे जीवोंका अहित होता हो और उन्हें दुःख पहुँचता हो, उन क्रियाओंको त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार देश या समाजमें जिन प्रथाओं और कृत्योंसे जीवोंका अहित होता हो, उन्हें बन्द करानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

आस्तिकता—ईश्वर और शास्त्रोंपर प्रत्यक्षकी तरह पूर्ण विश्वास होना चाहिये। भगवान् हैं, सर्वव्यापी हैं, सर्वेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं, परम दयालु हैं, परम सुहृद् हैं, भक्तवत्सल हैं, दीनबन्धु हैं और सदा सर्वत्र विराजमान हैं, इन बातोंपर विश्वास करते ही सारे पाप-ताप अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। भगवान्में विश्वास करनेकी आवश्यकता सबसे पहले और सबसे अधिक है। भगवान्के अस्तित्व और उनके प्रभाव तथा गुणोंपर विश्वास हो जायगा तो मन स्वतः ही भगवान्की ओर लग जायगा। मनुष्यको जो कुछ चाहिये, भगवान् सभीका भण्डार है। ज्ञान चाहिये, भगवान् ज्ञानस्वरूप

हैं; प्रेम चाहिये, भगवान् प्रेममय हैं; आनन्द चाहिये, भगवान् आनन्दघन हैं; वैराग्य चाहिये, भगवान् परम विरागमय हैं; धन चाहिये, धनकी स्वामिनी लक्ष्मीजी अपनी चञ्चलताको छोड़कर निरन्तर उनकी चरणसेवा करती हैं; ऐश्वर्य चाहिये, सारा जगत् उन्हींके ऐश्वर्यके एक कणका प्रकाश है; यश चाहिये, यशकी धारा वहींसे निकलती है; सारांश यह कि संसारमें हम जो कुछ भी सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम, स्नेह, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धन, भोग, सुख आदि देखते हैं, और इन सब वस्तुओंके सम्बन्धमें जहाँतक हमारी ऊँची-से-ऊँची कल्पना होती है वह सब कुछ भगवान्‌के एक क्षुद्र अंशमें ही रह जाता है। हमारे इस जगत्‌के पदार्थ और पदार्थोंकी हमारी कल्पना उस अखिल सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्यादि सद्गुण-सागरकी एक बूँदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। जो इस प्रकार भगवान्‌को जान लेता है और विश्वास कर लेता है वह भगवान्‌को छोड़कर आधे क्षणके लिये भी दूसरी ओर मन नहीं लगा सकता, और न वह जगत्‌के क्षणिक भोगोंके उदय और विनाशमें हर्ष और शोकको ही प्राप्त होता है। अवश्य ही आस्तिकतामें विश्वास सच्चा होना चाहिये। भगवान्‌की सत्ताके विश्वासमें हमें प्रह्लादका इतिहास सदा याद करना चाहिये। हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे सैकड़ों हजारों दुर्दान्त दानव बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रह्लादको मारने दौड़ते हैं। वह कहता है—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि च॥
(विष्णुपुराण १।१७।३३)

'अरे दैत्यो ! मेरे भगवान् विष्णु इन शस्त्रोंमें भी हैं, तुमलोगोंमें भी हैं और मुझमें भी हैं, वे सब जगह हैं। इस परम सत्यके प्रभावसे तुम्हारे इन शस्त्रोंका मुझपर कोई असर न हो !'

दैत्योंके शस्त्र व्यर्थ हो गये, उनके आघातसे प्रह्लादको तनिक भी वेदना नहीं हुई।

विषधर सर्पोंमें और उनके विषमें, विशालकाय मतवाले हाथियोंमें और उनके वज्रके समान दाँतोंमें भी प्रह्लादने अपने भगवान्को देखा। प्रह्लादका उनसे कुछ भी नहीं बिगड़ा। प्रह्लादको आगमें डाला गया, अग्निमें उसे भगवान्की नवनीलनीरदमूर्ति दिखायी दी। उसने कहा—

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि॥
(विष्णुपुराण १।१७।४७)

'हे तात ! पवनसे प्रेरित यह अग्नि भी मुझे नहीं जलाता। मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं, मानो मेरे चारों ओर कमलके पत्ते ढँके हों !'

प्रह्लादको मारनेके लिये पुरोहितोंने 'कृत्या' उत्पन्न की और जब प्रह्लादको मारनेमें निष्फल होकर कृत्याने पुरोहितोंको ही मार डाला, तब प्रह्लाद बोले—

यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः।
विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
(वि० पु० १।१८।४०-४१)

'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वगत और अक्षय विष्णुभगवान्को मुझे मारनेकी चेष्टा करनेवालोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहित जी जायँ।'

प्रह्लादकी दृढ आस्तिकतासे पुरोहित जी उठे।

अन्तमें हिरण्यकशिपुके पूछनेपर प्रह्लादने बड़ी दृढताके साथ, अडिग निश्चयसे, छाती ठोंककर कहा—'हाँ, मेरे प्रभु सर्वत्र हैं, इस खम्भेमें भी हैं।' अपने सेवकके इस वाक्यको प्रत्यक्ष सत्य करनेके लिये भगवान् खम्भेको चीरकर प्रकट हो गये। कैसा निश्चय और कैसा अद्भुत परिणाम! यह है आस्तिकता।

भक्तोंको यथासाध्य आस्तिक बने रहनेकी और आस्तिकतामें निरन्तर अग्रसर होनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

सूत्रकारने 'आस्तिक्य' के साथ 'आदि' शब्द जोड़कर दैवी सम्पदाके अन्यान्य दैवी गुणोंकी ओर सङ्केत किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें दैवी सम्पत्तिके ये छब्बीस गुण बतलाये गये हैं। भगवान् कहते हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
(१६। १-३)

'हे भारत! निर्भयता, अन्तःकरणकी शुद्धि, भगवान्के स्वरूपमें निरन्तर दृढ स्थिति (आस्तिकता), दान, इन्द्रियसंयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग, शान्ति, किसीकी निन्दा या चुगली न करना, सब प्राणियोंपर दया, लोभरहित होना, कोमलता, ईश्वर और शास्त्रविरुद्ध कर्मोंमें लज्जा, अचञ्चलता, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोहिता और अभिमानशून्यता—ये सब गुण दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषमें रहते हैं। यह दैवी सम्पत्ति भक्तमें ही रहती है। इसीलिये भक्तोंको 'देव' कहा गया है।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
विष्णुभक्तः[1] स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः॥
(पद्मपुराण)

'इस जगत्में दो प्रकारके जीव हैं। एक दैव और दूसरे आसुर। जो भगवान्के भक्त हैं, वह देव हैं, जो भक्त नहीं हैं, वही आसुर हैं।'

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ॥ ७९ ॥

---

१ यहाँ 'विष्णुभक्त' शब्दसे शास्त्रानुसार भगवान्के किन्हीं भी नामरूपका सात्त्विक भक्त समझना चाहिये। भगवान्के नामरूपोंमें भेद मानना तो अपराध ही माना गया है।

७९–सब समय, सर्वभावसे निश्चिन्त होकर (केवल) भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये ।

यह सूत्र बड़े ही महत्त्वका है । इसमें देवर्षिने प्रेममार्गी भक्तके भगवद्भजनका बड़ा ही सुन्दर प्रकार बतलाया है । वास्तवमें जो पुरुष भगवान्‌के दिव्य गुण, रहस्य और प्रभावको यथार्थरूपसे जान लेता है; जानना दूर रहा, सन्तोंद्वारा सुनकर उसपर विश्वास कर लेता है, वह भगवान्‌को छोड़कर किसी भी कालमें मन-वाणी-शरीरसे दूसरा काम नहीं कर सकता । भगवान् शङ्कर कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जिन्ह जाना । तिन्हहि भजन तजि भाव न आना ॥

दरिद्र मनुष्यको कहीं पारस मिल जाय तो वह दूसरी ओर क्यों ताकेगा ? एकमात्र भगवान् ही परमतत्त्व हैं, भगवान् ही सबकी गति हैं, भगवान् ही सर्वाधार हैं, भगवान् ही सर्वशक्तिमान्, सकल दिव्य गुणनिधान, सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यकी निधि, ज्ञान और वैराग्यके स्वरूप, आनन्द-कन्द-विग्रह हैं और इतना सब होते हुए भी वे हमारे परम सुहृद् हैं, हमें गले लगानेके लिये सदा हाथ पसारे खड़े-खड़े हमारी बाट देखा करते हैं—इस बातको जान लेनेपर सकामी या अकामी, विषयी या मुमुक्षु, साधक या सिद्ध, कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान्‌को छोड़कर एक क्षणार्धके लिये भी दूसरेको भजे ? हम नहीं भजते, इसका कारण यही है कि हमने उनके प्रभावको जाना नहीं है । सुना है तो उसपर विश्वास नहीं किया है । देवर्षि कहते हैं कि विश्वास करो, और निरन्तर मन-वाणी-शरीरसे केवल उन्हीं परम प्रियतम भगवान्‌का भजन

करो; मनसे सारी चिन्ताओंको दूर कर दो। समस्त चिन्तनोंसे चित्तको मुक्त कर दो। जैसे छोटा शिशु माँकी गोदमें जाकर निश्चिन्त हो जाता है ऐसे ही प्रभुके दास बनकर निश्चिन्त हो जाओ। जिसके रखवारे राम हैं, उसे किस बातकी चिन्ता होनी चाहिये। सब कुछ छोड़कर, सबकी आशा त्यागकर, भगवान्‌के सामने सबको तुच्छ मानकर, उस दिव्यातिदिव्य मधुर सुधारसके सामने जगत्‌के सारे रसोंको फीका समझकर, उस कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन, सौन्दर्यसार श्यामसुन्दरके सरूपके सामने जगत्‌की समस्त रूपराशिको नगण्य मानकर उसीके भजन-में लग जाओ, चित्तको उसीके अर्पण कर दो, सब प्रकारसे उसीपर निर्भर हो जाओ, मनसे उसीका स्मरण करो, बुद्धिसे उसीका विचार करो, वाणीसे उसीके गुणानुवाद गाओ, कानोंसे उसीके गुण और लीलाओंको सुनो, जीभसे उसीके प्रसादका रस लो, नासिकासे उसीकी पदपद्मपरागगन्धको सूँघो, शरीरसे सर्वत्र उसीके स्पर्शका अनुभव करो, नेत्रोंसे उसी छबिधामकी छबिको सर्वत्र सर्वदा देखो, हाथोंसे उसीकी सेवा करो, तन-मन-धन सब उसीके अर्पण कर दो।

जबतक तुम जगत्‌के पदार्थोंको अपने मानते रहोगे, उनमें ममत्व रखोगे, तबतक कभी निश्चिन्त नहीं हो सकोगे; ये नाशवान क्षणभङ्गुर परिवर्तनशील पदार्थ कभी तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने देंगे, इनपरसे ममत्व और आसक्तिको हटा लो; ये जिनकी चीजें हैं, उन्हें सौंप दो; बस, जहाँ तुमने इनको भगवान्‌के समर्पण किया कि वहीं निश्चिन्त हो गये। फिर न नाशका भय है, न अभावकी

चिन्ता है और न कामनाकी जलन है। और जहाँ निश्चिन्त होकर भजनमें लगे कि वहीं तुम्हें उस दिव्य आनन्द-माधुर्य-सौन्दर्य-सागरकी झाँकी बीच-बीचमें दीखने लगेगी, फिर तुम्हारा चित्त दूसरी ओर जाना ही नहीं चाहेगा। ऐश्वर्यकी ओर दृष्टि ही नहीं जायगी—और कहीं ऐश्वर्यकी कोई वासना रह भी गयी तो समस्त ऐश्वर्योंका खजाना उनके चरणोंमें ही तुम्हें मिल जायगा। इसीलिये विषयासक्तिरूपी व्यभिचारको त्यागकर उस एकमात्र प्राणाराम प्रियतम प्रभुकी प्यारी पतिव्रता पत्नी बन जाओ। इसीलिये श्रीसुन्दरदासजी महाराजने कहा है—

पतिहीसूँ प्रेम होय, पतिहीसूँ नेम होय,
पतिहीसूँ छेम होय, पतिहीसूँ रत है।
पति ही है जग्य-जोग, पति ही है रसभोग,
पतिहीसूँ मिटै सोग, पतिहीको जत है॥
पतिहीको ग्यान-ध्यान, पतिहीको पुन्न-दान,
पति ही है तीर्थन्हान, पतिहीको मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं,
'सुन्दर' सकल बिधि, एक पतिब्रत है॥
जलको सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान,
मनि बिनु अहि जैसे जीवत न कहिये।
स्वातिबिंदुको सनेही प्रगट जगत माँहि,
एक सीप दूसरो सु चातकहु कहिये॥
रबिको सनेही पुनि कमल सरोवरमें,
ससिको सनेही हू चकोर जैसे रहिये।
तैसे ही 'सुन्दर' एक प्रभुसूँ सनेह जोर,
और कुछ देखि काहू ओर नाहिं बहिये॥

भगवान् स्वयं आज्ञा करते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता १८ । ६५-६६)

'हे अर्जुन ! तुम मुझमें ही मन लगाओ, मेरे ही भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो, मुझको ही नमस्कार करो, फिर निश्चय मुझको ही प्राप्त होओगे, यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो । दूसरे सारे धर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल एक मेरे ही अनन्य शरण हो जाओ । मैं तुमको सारे पापोंसे आप ही छुड़ा दूँगा, तुम चिन्ता न करो !'

भगवान्‌का इतना प्रतिज्ञायुक्त आश्वासन पाकर भी यदि हम सर्वदा सर्वभावसे निश्चिन्त होकर भगवान्‌को नहीं भजते तो हम-सरीखा अभागा और कौन होगा ?

अतएव इसी बातमें अपना परम कल्याण समझकर, उठते-बैठते, सोते-जागते सर्वदा सब कार्योंमें हमें श्रीभगवान्‌की पवित्र सत्ताके दर्शन करते हुए, हानि-लाभ और जन्म-मरणकी चिन्ताको छोड़कर, निश्चिन्त अनन्य चित्तसे श्रीहरिका ही भजन-कीर्तन करना चाहिये ।

प्रेमा भक्तिका फल और भक्तिकी सर्वश्रेष्ठता

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान् ॥ ८० ॥

८०—वे भगवान् (प्रेमपूर्वक) कीर्तित होनेपर शीघ्र ही प्रकट होते हैं और भक्तोंको अपना अनुभव करा देते हैं।

इससे पहले सूत्रके अनुसार अनन्य भजन करनेसे भगवान् शीघ्र ही साक्षात् प्रकट होकर भक्तको अपने स्वरूपका अनुभव करा देते हैं। यहाँ 'आविर्भवति' शब्दसे भगवान्का अखिल दिव्य सौन्दर्य-माधुर्य-रससार साकाररूपमें प्रकट होना समझना चाहिये। वस्तुतः निर्गुण-सगुण और निराकार-साकारमें कोई भेद नहीं है। वही मन-बुद्धिके अगोचर ब्रह्म हैं, वही सृष्टिकर्ता सगुण निराकार विभु हैं, वही जगदात्मा हैं, वही श्रीराम और

श्रीकृष्ण हैं, वही महाशिव, महाविष्णु, महादेवी हैं; वही यह विराट् पुरुष हैं। उनसे भिन्न कुछ है ही नहीं। जब रसीले, हठीले भक्तके प्रेमका आकर्षण होता है तब वह अपनी दिव्याह्लादिनी शक्तिको निमित्त बनाकर दिव्य चिन्मय वस्त्र, माला, गन्ध, आयुध, आभूषणादिसे सुसज्जित सौन्दर्यनिधिरूपमें प्रकट होकर भक्तको कृतार्थ करते हैं।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगतप्रेम बस सगुन सो होई॥

परन्तु यह बात नहीं है कि यह रूप जगत्-प्रसविनी माया-द्वारा निर्मित होता है। इसमें सभी चीजें दिव्य, शुद्ध, नित्य, चिन्मय और भगवत्स्वरूप होती हैं। इसीसे इस दिव्य रसमय स्वरूपके सामने आते ही आत्मज्ञानी मुनियोंके मरे हुए मन भी जीवित होकर इस स्वरूपकी एक-एक वस्तुपर मुग्ध हो जाते हैं। जिन इन्द्रियोंके विकाररूप रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शसे मुमुक्षु-अवस्थामें ही चित्त उपराम हो जाता है उन्हीं रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शके प्रति मुनियों और आत्मज्ञानियोंका आकर्षित होना यह सिद्ध करता है कि भगवान्‌के दिव्य स्वरूपके ये रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शादि विषय मायाके कार्य त्रिगुणोंसे उत्पन्न नहीं हैं। ये सर्वगुणसम्पन्न और सदा निर्गुण प्रभुके स्वरूप ही हैं। इसीसे मुनिगण इनपर मोहित हो जाते हैं। इसीलिये वेदान्तके प्रधान आचार्य श्रीशङ्कराचार्य भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कहते हैं—

ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः।
शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा ॥

'जिन्होंने ब्रह्माजीको अनेक ब्रह्माण्ड, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग अद्भुत ब्रह्मा, वत्सोंसहित समस्त गोप तथा विभिन्न ब्रह्माण्डोंके सब विष्णुस्वरूपोंको दिखाया, जिनके चरणोदकको श्रीशम्भु अपने सिरपर धारण करते हैं वे श्रीकृष्ण त्रिमूर्ति (ब्रह्माण्डोंमें विभिन्न स्वरूपोंसे शासन करनेवाले अंशावतार ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से अलग ही कोई अविकारिणी सच्चिदानन्दमयी नीलिमा हैं।'

एक बार दिव्य वैकुण्ठलोकमें भगवान् श्रीमहाविष्णुके समीप नित्य आत्मनिष्ठ सनकादि ऋषि पधारे। ज्यों ही वे भगवान्के सामने पहुँचे और उनके स्वरूपकी ओर देखा कि मुग्ध हो गये। भगवान्की सुन्दरता देखते-देखते उनके नेत्र किसी प्रकार तृप्त ही नहीं होते थे। भगवान्के सौन्दर्यने ही उन्हें मोहित किया हो सो नहीं, प्रणाम करते समय कमलनयन श्रीहरिके पादपद्मपरागसे मिली हुई तुलसी-मञ्जरीकी सुगन्ध वायुके द्वारा नासिकामार्गसे ज्यों ही मुनियोंके अन्तरमें पहुँची कि उन नित्य अचलरूपसे ब्रह्मानन्दका अनुभव करनेवाले मुनियोंका हृदय क्षुब्ध हो गया, उस सुगन्धकी ओर खिंच गया, उसपर मोहित हो गया और आनन्दसे उनके रोमाञ्च हो आया—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥
(श्रीमद्भागवत ३ । १५ । ४३)

यही हाल भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणके स्वरूपको देखकर ब्रह्मविद्वरिष्ठ ज्ञानिश्रेष्ठ विदेह जनकका हुआ—

मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी ॥
प्रेममगन मनु जानि नृप, करि बिबेकु धरि धीर ।
बोलेउ मुनिपद नाइ सिरु, गदगद गिरा गँभीर ॥

उस रूपराशिके सामने आते ही विदेहका ज्ञान मानो मूर्छित हो गया, देहकी सुधि जाती रही, आँखोंमें आँसू आ गये। जनकजीने देखा, यह क्या हो गया! बालकोंके सौन्दर्यपर—नेत्रोंके विषयपर जनकके मनमें मोह कैसा? विवेकसे, धीरजसे अपनेको सँभाला; परन्तु पूछे बिना नहीं रहा गया। विश्वामित्रजीके चरणोंमें प्रणामकर राजाने बोलना चाहा, परन्तु विवेक हृदयकी द्रवताको दूर नहीं कर सका; बोलते-बोलते ही वाणी गद्गद—और भरी-भरी हो गयी! राजाने अपनी हालतका बयान करते हुए क्या पूछा, जरा सुनिये—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
तातें प्रभु पूछउँ सति भाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

मुनिने मुस्कराते हुए राजाके अनुमानका समर्थन किया।

इस प्रकार जिस स्वरूपको बार-बार देखकर भी देखनेकी इच्छा बढ़ती ही रहती है, वह कुछ विलक्षण ही वस्तु है। संसारमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसे बार-बार देखनेपर भी देखनेकी इच्छा बढ़े। अनुभव तो यह कहता है कि जिस वस्तुके देखनेकी इच्छा प्रबल होती है, उसके मिलनेपर प्रथम दर्शनमें तो बड़ा ही आनन्द होता है; पर फिर ज्यों-ज्यों वह दर्शन सुलभ होता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके प्रति आकर्षण कम होता चला जाता है। परन्तु भगवान्‌का सौन्दर्य ऐसा है कि उसे देखते-देखते कभी तृप्ति ही नहीं होती। ज्यों प्रेमी भक्तका प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता रहता है त्यों ही भगवान्‌की सौन्दर्यछटा भी प्रतिक्षण अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है। पल-पलमें नया-नया सौन्दर्य, अधिकाधिक आकर्षक माधुरी दिखायी देती है। ऐसा वह भगवान्‌का स्वरूप मायिक नहीं होता। वह सर्वथा दिव्य होता है, और जिस क्षण वह भक्तके सामने उसके प्रेमके आकर्षणसे प्रकट होता है उसी क्षण उसे दिव्यभावापन्न करके अपने स्वरूपका अनुभव करा देता है। जबतक वह माधुरी सामने रहती है, तबतक भक्त किसी दिव्य राज्यमें रहता है। उसका सब कुछ दिव्य हुआ रहता है। उस कालमें वह सिवा भगवान्‌के माधुर्यके और कुछ भी नहीं देखता, सुनता। वह तन्मय हो जाता है। और उसे भगवान्‌का यथार्थ अनुभव हो जाता है।

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ॥ ८१ ॥

८१—तीनों (कायिक, वाचिक, मानसिक) सत्योंमें (अथवा तीनों कालोंमें सत्य भगवान्‌की) भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

त्रिसत्य कायिक, वाचिक और मानसिक सत्यको कहते हैं। देवर्षि नारदजीको तीनों सत्योंसे भक्तिकी श्रेष्ठताका अनुभव हो चुका है। अतएव वे बार-बार यह घोषणा करते हैं कि भक्ति ही श्रेष्ठ है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। उपनिषद्‌में भी इसी प्रकार घोषणा की गयी है—

सर्वोपायान् परित्यज्य भक्तिमाश्रय। भक्तिनिष्ठो भव, भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति भक्त्यासाध्यं न किञ्चिदस्ति।

(त्रिपाद्विभूतिनारायणोपनिषद्)

'सब उपायोंको छोड़कर भक्तिका ही आश्रय लो। भक्तिनिष्ठ होओ, भक्तिनिष्ठ हो जाओ। भक्तिसे सब सिद्धियाँ सफल हो जाती हैं। ऐसी कोई बात नहीं है जो भक्तिसे न होती हो।' मुक्ति भी मिलती है और मुक्तिदाता भगवान् सगुणरूपसे भी साथ खेलते हैं। स्वयं भगवान्‌के श्रीमुखके वचन हैं—

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १९)

'हे उद्धव ! जैसे जोरसे जली हुई अग्नि काठके ढेरको भस्म कर डालती है वैसे ही मेरी भक्ति सब (छोटे-बड़े) पापोंके समूहको जला देती है ।'

भक्तके साधनकी रक्षा भगवान् करते हैं, और उसके फलस्वरूप अपनी प्राप्ति भी आप ही करवा देते हैं! और सबका इसमें अधिकार है। अतएव भक्तिसे श्रेष्ठ और क्या होगा? भगवान्ने इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी जगह-जगह भक्तिकी प्रशंसा की है। और बारहवें अध्यायमें तो भक्तको 'युक्ततम' तक कह दिया है। इसीलिये यहाँ देवर्षि नारद ताल ठोंक-ठोंककर मुक्तकण्ठसे वज्रगम्भीरस्वरसे घोषणा करते हैं कि कायिक, वाचिक मानस तीनों सत्योंमें अथवा त्रिकालमें सत्य भगवान्की भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयतासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति ॥ ८२ ॥

८२-यह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी १ गुणमाहात्म्यासक्ति, २ रूपासक्ति, ३ पूजासक्ति, ४ स्मरणासक्ति, ५ दास्यासक्ति, ६ सख्यासक्ति, ७ कान्तासक्ति, ८ वात्सल्यासक्ति, ९ आत्मनिवेदनासक्ति, १० तन्मयतासक्ति और ११ परमविरहासक्ति—इस प्रकारसे, ग्यारह प्रकारकी होती है।

जो महात्माजन प्रेमरूपा भक्तिकी पूर्णताको पहुँच जाते हैं, उनमें तो यह सभी आसक्तियाँ रहती हैं। जैसे श्रीव्रजगोपियोंमें थीं; जिनका उदाहरण देवर्षि नारदजी पहले दे चुके हैं। सबका विकास नहीं होता तो अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे केवल एक, या एकाधिक भावोंसे भगवान्‌के साथ प्रेम किया जाता है। प्रेम एक ही वस्तु है, इसलिये इन प्रेमियोंमें, प्रेमासक्तिके भेदसे किसीमें ऊँच-नीचकी भावना नहीं करनी चाहिये।

इन भिन्न-भिन्न आसक्तियोंसे भगवान्‌को भजनेवाले असंख्य भक्त हो गये हैं। उदाहरणके लिये कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं—

१-गुणमाहात्म्यासक्त भक्त-देवर्षि नारद, महर्षि वेदव्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, काकभुशुण्डि, शेष, सूत, शौनक, शाण्डिल्य, भीष्म, अर्जुन, परीक्षित, पृथु, जनमेजय आदि।

२-रूपासक्त भक्त-मिथिलाके नर-नारी, राजा जनक, दण्डकारण्यके ऋषि, व्रजनारियाँ आदि।

३-पूजासक्त भक्त-श्रीलक्ष्मीजी, राजा पृथु, अम्बरीष, श्रीभरतजी आदि।

४-स्मरणासक्त भक्त-प्रह्लादजी, ध्रुवजी, सनकादि।

५-दास्यासक्त भक्त-श्रीहनूमान्‌जी, अक्रूरजी, विदुरजी आदि।

६-सख्यासक्त भक्त-अर्जुन, उद्धव, सञ्जय, श्रीदाम, सुदामादि।

७-कान्तासक्त भक्त-अष्ट पटरानियाँ आदि।

८-वात्सल्यासक्त भक्त-कश्यप-अदिति, सुतपा-पृश्नि, मनु-शतरूपा, दशरथ-कौसल्या, नन्द-यशोदा, वसुदेव-देवकी आदि।

९-आत्मनिवेदनासक्त भक्त-

बलि, विभीषणजी, शिवि आदि।

१०-तन्मयतासक्त भक्त-याज्ञवल्क्य, शुक,

अथवा कौण्डिन्य, सुतीक्ष्ण आदि प्रेमी

११-परमविरहासक्त भक्त-उद्धव, अर्जुन,

श्रीगोपीजनोंमें ग्यारहों प्रकारके प्रेमका

उपर्युक्त भक्तोंमें एक-एक प्रकारके ही प्रेमका

नहीं है। जिस भावकी प्रधानता थी उसीमें

दिया गया है।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया

कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णु

वारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो

८३-कुमार (सनत्कुमारादि), वेदव्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान्, विभीषण आदि

लोगोंकी निन्दा-स्तुतिका कुछ भी भय न कर

एकमतसे ऐसा ही कहते हैं (कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है

देवर्षि नारद भक्तितत्त्व

देकर अपने कथनकी पुष्टि करते हैं। ये

तत्त्वके ज्ञाता और आचार्य हुए हैं। सनत्कुमार

मन्त्रका जाप करते रहते हैं और

भगवान् श्रीवेदव्यासने अठारहों पुराणोंमें भक्तिको ही मुख्य बतलाया है, उनका श्रीमद्भागवत तो भक्तिकी खानि ही है। श्रीशुकदेवजीकी भक्तिका क्या कहना? भक्तिरसप्रधान श्रीमद्भागवत उन्हींके मुखसे निकला हुआ सुधासमुद्र है। महर्षि शाण्डिल्यके भक्तिसूत्र ही उनके भक्तितत्त्वके एक प्रधान आचार्य होनेका प्रमाण दे रहे हैं। महर्षि गर्गकी गर्गसंहितामें भक्तिका प्रवाह बहता है। महर्षि विष्णु प्रधान स्मृतिकार थे। एक विष्णुस्वामी प्रसिद्ध भक्तिसम्प्रदायके आचार्य हुए हैं। कौण्डिन्यजीने तन्मयतासक्तिमें सिद्धि प्राप्त की थी ऐसा माना जाता है। भगवान् शेषजी तो दिन-रात सहस्र मुखोंसे हरिगुणगान ही करते हैं। आप दास्यभावके परम आचार्य हैं। दासस्वरूप लक्ष्मणके रूपमें आपने ही अवतार लिया था। उद्धवजी महाराज भगवान् श्रीकृष्णके प्रधान सखा थे। आरुणिको निम्बार्कका नामान्तर मानते हैं, आप युगल स्वरूपके उपासक थे। राजा बलि सर्वात्मनिवेदनासक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप हैं, इनके भक्तिबलसे भगवान्‌ने स्वयं इनका द्वारपाल बनना स्वीकार किया था। प्रातःस्मरणीय भक्तराज श्रीहनूमान्‌जीका दास्यभाव प्रसिद्ध है। महाभाग विभीषणजीने भक्तिके प्रतापसे भगवान् श्रीरामचन्द्रका सख्य प्राप्त किया था। इन भक्तिशास्त्रके सभी आचार्योंने लोगोंकी निन्दा-स्तुतिकी कुछ भी परवा न कर भक्तिकी महिमा गायी है। और अपने जीवनद्वारा भक्तिकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की है। इन्हींके मतके अनुसार श्रीनारदजी भी निर्भय होकर भक्तिका डंका बजा रहे हैं।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धत्ते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभत इति ॥ ८४ ॥

८४—जो इस नारदोक्त शिवानुशासनमें विश्वास और श्रद्धा करते हैं वे प्रियतमको पाते हैं, वे प्रियतमको पाते हैं।

अबतक भक्तिशास्त्रकी व्याख्या करके अब सूत्रकार उसका फल वर्णन करते हैं। देवर्षि कहते हैं कि जो इस मेरे कहे हुए परम कल्याणमय उपदेशपर या भक्तितत्त्वके आदि आचार्य साक्षात् भगवान् श्रीशिवजीके किये हुए उपदेशपर विश्वास और श्रद्धा करते हैं वे भगवान्को 'प्रियतम' रूपसे प्राप्त करते हैं। विश्वास और श्रद्धा हुए विना तो कुछ भी नहीं होता। संशयात्माका तो पतन ही होता है—'संशयात्मा विनश्यति'। फिर, विश्वास और श्रद्धा करनेसे ही उसके लिये साधन होता है, अतएव विश्वास और श्रद्धा करके भक्ति करनी चाहिये। अन्यान्य साधनोंद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोंमें प्राप्त होते हैं परन्तु भक्तिद्वारा तो वे 'प्रियतम' रूपमें मिलते हैं। यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्षका भी संन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है।

बोलो भक्ति, भक्त और भगवान्की जय !

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।



पञ्चदशः श्लोकः

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

पदच्छेद— परिशोचति ते माता कुररी इव गत प्रजा ।
पुत्र स्नेह आकुला दीना विवत्सा गौः इव आतुरा ॥

शब्दार्थ—

परिशोचति	१२.	शोक कर रही हैं	पुत्र	५.	पुत्र
ते	३.	आप की	स्नेह	६.	स्नेह
माता	४.	माता	आकुला	७.	व्याकुल होकर
कुररी	८.	कुररी पक्षी के	दीना	८.	दीन हो कर
इव	१०.	समान तथा	विवत्सा	१३.	खो जाने पर
गत	२.	खो जाने पर	गौः	११.	गाय के (बच्चे के)
प्रजा ।	१.	सन्तान के	इव	१२.	समान
			आतुरा ॥	१४.	व्याकुल

श्लोकार्थ—सन्तान के खो जाने पर आप की माता पुत्र स्नेह से व्याकुल एवम् दीन हो कर कुररी पक्षी के समान, तथा गाय के बच्चे के समान खो जाने पर व्याकुल होकर शोक कर रही हैं ।

षोडशः श्लोकः

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥१६॥

पदच्छेद— प्रभाष्य एवम् ददौ विद्याम् प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायाम् सर्व माया विनाशिनीम् ॥

शब्दार्थ—

प्रभाष्य	२.	कह कर	मायावती	३.	मायावती ने
एवम्	१.	इस प्रकार	महामायाम्	७.	महामाया नामक
ददौ	११.	सिखा दी	सर्व	४.	सभी
विद्याम्	८.	विद्या	माया	५.	मायाओं का
प्रद्युम्नाय	१०.	प्रद्युम्न को	विनाशिनीम् ॥	६.	विनाश करने वाली
महात्मने ।	९.	परम शक्तिशाली			

श्लोकार्थ—इस प्रकार कह कर मायावती ने सभी मायाओं का विनाश करने वाली महामाया नामक विद्या परम शक्तिशाली प्रद्युम्न को सिखा दी ॥

सप्तदशः श्लोकः

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥१७॥

पदच्छेद— स च शम्बरम् अभ्येत्य संयुगाय सम् आह्वयत् ।
अविषह्यैः तम् आक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥

शब्दार्थ—

स च	१.	उन्होंने भी	अविषह्यैः	६.	अत्यन्त कटु
शम्बरम्	२.	शम्बर के	तम्	८.	उसकी
अभ्येत्य	३.	पास जाकर	आक्षेपैः	७.	आक्षेपों से
सम् संयुगाय	४.	युद्ध के लिये	क्षिपन्	९.	निन्दा करते हुये
आह्वयत् ।	५.	ललकारा (और)	सञ्जनयन्	११.	बढ़ा लिया
			कलिम् ॥	१०.	झगड़ा

श्लोकार्थ—उन्होंने शम्बर के पास जा कर युद्ध के लिये ललकारा। और अत्यन्तकटु आक्षेपों से उसकी निन्दा करते हुये झगड़ा बढ़ा लिया ॥

अष्टादशः श्लोकः

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पादाहत इवोरगः ।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥१८॥

पदच्छेद— सः अधिक्षिप्तः दुर्वचोभिः पाद आहत इव उरगः ।
निः चक्राम गदापाणिः अमर्षात् ताम्र लोचनः ॥

शब्दार्थ—

सः	४.	वह शम्बरासुर	निः चक्राम	१०.	बाहर निकल आया
अधिक्षिप्तः	५.	तिल-मिला उठा	गदापाणिः	९.	वह हाथ में गदा लेकर
दुर्वचोभिः	३.	कटु वचनों से	अमर्षात्	८.	क्रोध से
पाद आहत	१.	पैर से ठोकर मारे गये	ताम्र	७.	लाल कर के
इव उरगः ।	२.	सांप के समान	लोचनः ॥	६.	आँखें

श्लोकार्थ—पैर से ठोकर मारे गये सांप के समान कटु वचनों से वह शम्बरासुर तिल-मिला उठा और आँखें लाल करके क्रोध से वह हाथ में गदा लेकर बाहर निकल आया ।

एकोनविंशः श्लोकः

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥१९॥

पदच्छेद— गदाम् आविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदत् नादम् वज्र निष्पेष निष्ठुरम् ॥

शब्दार्थ—

गदाम्	१.	उसने गदा को	प्रक्षिप्य	६.	चला कर
आविध्य	३.	घुमा कर	व्यनदत्	१०.	किया
तरसा	२.	बड़े ज़ोर से	नादम्	९.	सिंहनाद
प्रद्युम्नाय	५.	प्रद्युम्न पर	वज्र निष्पेष	७.	वज्र गिरने के समान
महात्मने ।	४.	महात्मा	निष्ठुरम् ॥	८.	कठोर

श्लोकार्थ—उसने गदा को बड़े ज़ोर से घुमा कर महात्मा प्रद्युम्न पर चला कर वज्र गिरने के समान कठोर सिंह नाद किया ॥

विंशः श्लोकः

तामापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत् स्वगदां नृप ॥२०॥

पदच्छेद— ताम् आपतन्तीम् भगवान् प्रद्युम्नः गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत् स्वगदाम् नृप ॥

शब्दार्थ—

ताम्	५.	उस	अपास्य	८.	दूर करके
आपतन्तीम्	४.	आगिरती हुई	शत्रवे	१०.	शत्रु पर
भगवान्	२.	भगवान्	क्रुद्धः	९.	क्रुद्ध हो कर
प्रद्युम्नः	३.	प्रद्युम्न ने	प्राहिणोत्	१२.	चला दो
गदया	७.	अपनी गदा से	स्वगदाम्	११.	अपनी गदा
गदाम् ।	६.	गदा को	नृप ॥	१.	हे राजन् !

श्लोकार्थ –हे राजन् ! भगवान् प्रद्युम्न ने आ गिरती हुई उस गदा को अपनी गदा से दूर करके क्रुद्ध हो कर शत्रु पर अपनी गदा चला दी ॥

एकविंशः श्लोकः

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥२१॥

पदच्छेद— सः च मायाम् समाश्रित्य दैतेयीम् मय दर्शिताम् ।
मुमुचे अस्त्र मयम् वर्षम् कार्ष्णौ वैहायसः असुरः ॥

शब्दार्थ—

सः च	१. वह	मुमुचे	१२. करने लगा
मायाम्	६. माया का	अस्त्र मयम्	१०. अस्त्र शस्त्रों की
सम् आश्रित्य	७. आश्रय लेकर	वर्षम्	११. वर्षा
दैतेयीम्	५. आसुरी	कार्ष्णौ	९. प्रद्युम्न पर
मय	३. मयासुर को	वैहायसः	८. आकाश में स्थित होकर
दर्शिताम् ।	४. बतलायी हुई	असुरः ॥	२. असुर

श्लोकार्थ—वह असुर मयासुर को बतलायी हुई आसुरी माया का आश्रय लेकर आकाश में स्थित होकर प्रद्युम्न पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा ॥

द्वाविंशः श्लोकः

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥२२॥

पदच्छेद— बाध्यमानः अस्त्र वर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्व आत्मिकाम् महाविद्याम् सर्व माया उपमर्दिनीम् ॥

शब्दार्थ—

बाध्यमानः	३. पीड़ित	सत्त्व	८. सत्त्व
अस्त्र	१. अस्त्रों की	आत्मिकाम्	९. स्वरूपी
वर्षेण	२. वर्षा से	महाविद्याम्	१०. महाविद्या का प्रयोग किया
रौक्मिणेयः	५. रुक्मिणी पुत्र ने	सर्वमाया	६. समस्त मायाओं को
महारथः ।	४. महारथी	उपमर्दिनीम् ॥	७. शान्त करने वाली

श्लोकार्थ—अस्त्रों की वर्षा से पीड़ित महारथी रुक्मिणी पुत्र ने समस्त मायाओं को शान्त करने वाली सत्त्वस्वरूपी महाविद्या का प्रयोग किया ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

तनो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ।
प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत् स ताः ॥२३॥

पदच्छेद— ततः गौह्यक गान्धर्व पैशाचः उरग राक्षसीः ।
प्रायुङ्क्त शतशः दैत्यः कार्ष्णिः व्यधमयत् सः ताः ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	प्रायुङ्क्त	९.	प्रयोग किया
गौह्यक	३.	यक्ष	शतशः	८.	सैकड़ों मायाओं का
गान्धर्व	४.	गन्धर्व	दैत्यः	२.	दैत्य ने
पैशाच	५.	पिशाच	कार्ष्णिः	१०.	प्रद्युम्न ने
उरग	६.	नाग और	व्यधमयत्	१२	नष्ट कर दिया
राक्षसी ।	७.	राक्षसों की	सः ताः ॥	११.	उन-उन को

श्लोकार्थ—तदनन्तर दैत्य ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसों की सैकड़ों मायाओं का प्रयोग किया । किन्तु प्रद्युम्न जी ने उन-उनको नष्ट कर दिया ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्र्वोजसाहरत् ॥२४॥

पदच्छेद— निशातम् असिम् उद्यम्य सकिरीटम् सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्र श्मश्रु ओजसा अहरत् ॥

शब्दार्थ—

निशातम्	१.	फिर एक तीक्ष्ण	शिरः	९.	सिर को
असिम्	२.	तलवार को	कायात्	१०.	शरीर से
उद्यम्य	३.	उठाकर	ताम्र	७.	लाल-लाल
सकिरीटम्	५.	मुकुट और	श्मश्रु	८.	दाढ़ी-मूँछों वाले
सकुण्डलम् ।	६.	कुण्डल से युक्त	ओजसा	११.	बलपूर्वक
शम्बरस्य	४.	शम्बरासुर के	अहरत् ॥	१२.	अलग कर दिया

श्लोकार्थ—फिर एक तीक्ष्ण तलवार को उठाकर शम्बरासुर के मुकुट और कुण्डल से युक्त लाल-लाल दाढ़ी मूँछों वाले सिर को शरीर से बल पूर्वक अलग कर दिया ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ।
भार्ययाम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥२५॥

पदच्छेद— आकीर्यमाणः दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुम उत्करैः ।
भार्यया अम्बर चारिण्या पुरम् नीतः विहायसा ॥

शब्दार्थ—

आकीर्यमाणः	५. बिखेरने लगे	भार्यया	८. पत्नी मायावती
दिविजैः	२. देवता लोग (उन पर)	अम्बर	६. फिर आकाश में
स्तुवद्भिः	१. स्तुति करते हुये	चारिण्या	७. चलने वाली
कुसुम	३. पुष्पों की	पुरम्	१०. द्वारकापुरी में
उत्करैः ।	४. राशि	नीतः	११. ले गयीं
		विहायसा ॥	९. आकाश मार्ग से (उन्हें)

श्लोकार्थ—स्तुति करते हुये देवता लोग उन पर पुष्पों की राशि बिखेरने लगे। फिर आकाश में चलने वाली पत्नी मायावती आकाश मार्ग से उन्हें द्वारकापुरी में ले गईं ॥

षड्विंशः श्लोकः

अन्तःपुरवरं राजन् ललनाशतसङ्कुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनाद् विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥

पदच्छेद— अन्तःपुर वरम् राजन् ललना शत सङ्कुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनात् विद्युता इव बलाहकः ॥

शब्दार्थ—

अन्तःपुर	६. अन्तःपुर में	विवेश	१२. प्रवेश किया
वरम्	५. श्रेष्ठ	पत्न्या	८. पत्नी के साथ
राजन्	१. हे राजन् !	गगनात्	७. प्रद्युम्न ने आकाश से
ललना	३. रमणियों से	विद्युता	११. बिजली के साथ
शत	२. सैकड़ों	इव	१०. समान
सङ्कुलम् ।	४. भरे हुये	बलाहकः ॥	९. मेघ के

श्लोकार्थ—हे राजन् ! सैकड़ों रमणियों से भरे हुये श्रेष्ठ अन्तःपुर में प्रद्युम्न ने आकाश से पत्नी के साथ वैसे प्रवेश किया मानो बिजली के साथ मेघ हो ॥

सप्तविंशः श्लोकः

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥

पदच्छेद— तम् दृष्ट्वा जलद श्यामम् पीत कौशेय वाससम् ।
प्रलम्ब बाहुम् ताम्र अक्षम् सुस्मितम् रुचिर आननम् ॥

शब्दार्थ—

तम्	१३.	उन प्रद्युम्न को	प्रलम्ब	६.	लम्बी
दृष्ट्वा	१४.	देखा	बाहुम्	७.	भुजाओं वाले
जलद	१.	मेघ के समान	ताम्र	८.	लाल
श्यामम्	२.	श्यामवर्ण	अक्षम्	९.	नेत्रों वाले (और)
पीत	३.	पीला	सुस्मितम्	१२.	मुसकराते हुये
कौशेय	४.	रेशमी	रुचिर	१०.	मनोहर
वाससम् ।	५.	वस्त्र धारण किये हुए	आननम् ॥	११.	मुख वाले

श्लोकार्थ— मेघ के समान श्याम वर्ण, पीला रेशमी वस्त्र धारण किये हुये, लम्बी भुजाओं वाले, लाल नेत्रों वाले और मनोहर मुख वाले मुसकराते हुये उन प्रद्युम्न को देखा ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

स्वलङ्कृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥२८॥

पदच्छेद— सु अलङ्कृत मुखाम्भोजम् नील वक्र अलक अलिभिः ।
कृष्णम् मत्वा स्त्रियः ह्रीताः निलिल्युः तत्र-तत्र ह ॥

शब्दार्थ—

सु अलङ्कृत	५.	अच्छी प्रकार विभूषित	कृष्णम्	८.	कृष्ण
मुख	६.	मुख	मत्वा	९.	समझ कर
अम्भोजम्	७.	कमल वाले (उन्हें)	स्त्रियः	१०.	स्त्रियाँ
नील	१.	नीली और	ह्रीताः	११.	सकुचा गईं और
वक्र	२.	घुंघराली	निलिल्युः	१४.	लुक-छिप गईं
अलक	३.	केश	तत्र-	१२.	इधर
अलिभिः ।	४.	पंक्तियों से	तत्र ह ॥	१३.	उधर

श्लोकार्थ— नीली और घुँघराली केश पंक्तियों से अच्छी प्रकार विभूषित मुख कमल वाले उन्हें कृष्ण समझकर स्त्रियाँ सकुचा गईं और इधर-उधर लुक-छिप गईं ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

पदच्छेद— अवधार्य शनैः ईषत् वैलक्षण्येन योषितः।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नम् सुविस्मिताः ॥

शब्दार्थ—

अवधार्य	४.	जान कर	उपजग्मुः	९.	आ गईं
शनैः	१.	धीरे-धीरे (श्रीकृष्ण से)	प्रमुदिताः	६.	आनन्दित (और)
ईषत्	२.	इनमें कुछ	सस्त्रीरत्नम्	८.	श्रेष्ठ दम्पति के पास
वैलक्षण्येन	३.	विलक्षणता	सुविस्मिताः ॥	७.	आश्चर्य चकित होकर
योषितः।	५.	स्त्रियाँ			

श्लोकार्थ—धीरे-धीरे श्रीकृष्ण से इनमें कुछ विलक्षणता जान कर स्त्रियाँ आनन्दित और आश्चर्य-चकित होकर श्रेष्ठ दम्पति के पास आ गईं ॥

त्रिंशः श्लोकः

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी।
अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥३०॥

पदच्छेद— अथ तत्र असित अपाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी।
अस्मरत् स्वसुतम् नष्टम् स्नेह स्नुत पयोधरा ॥

शब्दार्थ—

अथ	१.	अनन्तर	अस्मरत्	९.	स्मरण हो आया (और)
तत्र	२.	वहाँ	स्वसुतम्	८.	अपने पुत्र का
असित	३.	कजरारे	नष्टम्	७.	खोये हुये
अपाङ्गी	४.	नेत्रों वाली और	स्नेह	१०.	स्नेह के कारण
वैदर्भी	६.	रुक्मिणी को	स्नुत	१२.	दूध टपकने लगा
वल्गुभाषिणी।	५.	मधुर बोलने वाली	पयोधरा ॥	११.	स्तनों से

श्लोकार्थ—अनन्तर वहाँ कजरारे नेत्रों वाली और मधुर बोलने वाली रुक्मिणी को खोये हुये अपने पुत्र का स्मरण हो आया और स्नेह के कारण स्तनों से दूध टपकने लगा ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥३१॥

पदच्छेद— कः नु अयम् नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे का इयम् लब्धा तु अनेन वा ॥

शब्दार्थ—

कः नु	३. कौन है	धृतः	१०. धारण किया है
अयम्	१. यह	कया	८. किसने
नरवैदूर्यः	२. नर रत्न	वा	७. अथवा
कस्य	६. किसका पुत्र है	जठरे	९. इसे गर्भ में
वा	४. अथवा यह	का इयम्	११. यह कौन
कमलेक्षणः ।	५. कमल नयन	लब्धा तु	१३. प्राप्त हुई है
		अनेन वा ॥	१२. इसे (पत्नी रूप में)

श्लोकार्थ—यह नररत्न कौन है। अथवा यह कमल नयन किसका पुत्र है। अथवा किसने इसे गर्भ में धारण किया है, यह कौन इसे पत्नी रूप में प्राप्त हुई है ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

पदच्छेद— मम च अपि आत्मजः नष्टः नीतः यः सूतिका गृहात् ।
एतत् तुल्य वयः रूपः यदि जीवति कुत्रचित् ॥

शब्दार्थ—

मम च	१. मेरा	एतत्	११. इसी के
अपि	२. भी	तुल्य	१२. समान
आत्मजः	३. पुत्र	वयः	१३. उसकी अवस्था और
नष्टः	४. खो गया था	रूपः	१४. रूप हुआ होगा
नीतः	७. उठा ले गया था	यदि	८. यदि वह
यः	५. जिसे	जीवति	१०. जीता होगा तो
सूतिका गृहात् ।	६. सूतिका गृह से (कोई)	कुत्रचित् ॥	९. कहीं

श्लोकार्थ—मेरा भी पुत्र खो गया था। जिसे सूतिका गृह से कोई उठा ले गया था। यदि वह कहीं जीता होगा तो इसी के समान उसकी अवस्था और रूप हुआ होगा ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥

पदच्छेद— कथम् तु अनेन संप्राप्तम् सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्या अवयवैः गत्या स्वरहास अवलोकनैः ॥

शब्दार्थ—

कथम् तु	९.	कैसे	आकृत्या	४.	आकृति
अनेन	१.	इसने	अवयवैः	५.	अंग
संप्राप्तम्	१०.	प्राप्त कर ली	गत्या	६.	चाल
सारूप्यम्	३.	समान रूप	स्वरहास	७.	स्वर हंसी और
शार्ङ्गधन्वनः ।	२.	शार्ङ्ग धनुष वाले (श्रीकृष्ण के)	अवलोकनैः ॥	८.	चितवन

श्लोकार्थ—इसने शार्ङ्गधनुष वाले श्रीकृष्ण के समान रूप आकृति, अंग, चाल, स्वर, हंसी और चितवन कैसे प्राप्त कर ली ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।
अमुष्मिन् प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

पदच्छेद— सः एव वा भवेत् नूनम् यः मे गर्भे धृतः अर्भकः ।
अमुष्मिन् प्रीतिः अधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥

शब्दार्थ—

सः एव	३.	वह ही	अमुष्मिन्	९.	क्योंकि इसमें
वा	१.	अथवा	प्रीतिः	११.	प्रीति
भवेत्	५.	होगा	अधिका	१२.	अधिक उमड़ रही है
नूनम्	२.	निश्चित रूप से	वामः	१३.	और बायीं
यः	६.	जिसे	स्फुरति	१५.	फड़क रही है
मे गर्भे	७.	मैंने गर्भ में	मे	१०.	मेरी
धृतः	८.	धारण किया था	भुजः ॥	१४.	भुजा
अर्भकः ।	४.	यह बालक			

श्लोकार्थ—अथवा निश्चित रूप से वह ही यह बालक होगा जिसे मैंने गर्भ में धारण किया था। क्योंकि मेरी प्रीति अधिक उमड़ रही है। और बांयी भुजा फड़क रही है ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

पदच्छेद— एवम् मीमांसमानायाम् वैदर्भ्याम् देवकी सुतः ।
देवकी आनक दुन्दुभ्याम् उत्तम श्लोकः आगमत् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. इस प्रकार	देवकी	८. देवकी और
मीमांस	३. सोच-विचार कर	आनक दुन्दुभ्याम्	९. वसुदेव के साथ
मानायाम्	४. रही थीं कि	उत्तम	५. पवित्र
वैदर्भ्याम्	२. रुक्मिणी	श्लोक	६. कीर्ति
देवकीसुतः ।	७. देवकीनन्दन श्रीकृष्ण	आगमत् ॥	१०. आ गये

श्लोकार्थ—इस प्रकार रुक्मिणी सोच-विचार कर रही थीं कि पवित्रकीर्ति देवकीनन्दन श्रीकृष्ण देवकी और वसुदेव के साथ आ गये ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत् सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥

पदच्छेद— विज्ञात अर्थः अपि भगवान् तूष्णीम् आस जनार्दन ।
नारदः अकथयत् सर्वम् शम्बर आहरण आदिकम् ॥

शब्दार्थ—

विज्ञात	४. जानते हुये	नारदः	७. नारद ने
अर्थः	३. सब कुछ	अकथयत्	१२. कह दिया
अपि	५. भी	सर्वम्	११. सब
भगवान्	१. भगवान्	शम्बर	८. शम्बरासुर द्वारा
तूष्णीम् आस	६. चुप रहे	आहरण	९. हर ले जाना
जनार्दन ।	२. श्रीकृष्ण	आदिकम् ॥	१०. आदि

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते हुये भी चुप रहे। नारद ने शम्बरासुर द्वारा हर ले जाना आदि सब कह दिया ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।
अभ्यनन्दन् बहूनब्दान् नष्टं मृतमिवागतम् ॥३७॥

पदच्छेद— तत् श्रुत्वा महत् आश्चर्यम् कृष्ण अन्तःपुर योषितः ।
अभ्यनन्दन् बहून्अब्दान् नष्टम् मृतम् इव आगतम् ॥

शब्दार्थ—

तत्	१. यह	अभ्यनन्दन्	९. इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं
श्रुत्वा	४. सुन कर	बहून्अब्दान्	८. बहुत वर्षों तक
महत्	२. महान्	नष्टम्	६. खोये (प्रद्युम्न का)
आश्चर्यम्	३. आश्चर्यमयी घटना	मृतम्	१२. मर कर
कृष्ण	५. श्रीकृष्ण के	इव	११. मानों
अन्तःपुर	६. अन्तःपुर की	आगतम् ॥	१३. जी उठे हों
योषितः ।	७. स्त्रियाँ		

श्लोकार्थ—यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुन कर श्रीकृष्ण के अन्तःपुर की स्त्रियाँ बहुत वर्षों तक खोये प्रद्युम्न का इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं मानों मर कर जी उठे हों ॥

अष्टत्रिंशः श्लोकः

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥३८॥

पदच्छेद— देवकी वसुदेवः च कृष्ण रामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणि च ययुः मुदम् ॥

शब्दार्थ—

देवकी	१. देवकी	दम्पती	१०. दम्पति का
वसुदेवः	२. वसुदेव	तौ	९. उन दोनों
च कृष्ण	३. और श्रीकृष्ण	परिष्वज्य	११. आलिंगन करके
रामौ	४. बलराम	रुक्मिणी च	८. रुक्मिणी और
तथा	५. तथा	ययुः	१३. प्राप्त हुये
स्त्रियः ।	६. स्त्रियाँ	मुदम् ॥	१२. आनन्द को

श्लोकार्थ—देवकी वसुदेव, और श्रीकृष्ण बलराम तथा स्त्रियाँ रुक्मिणी और उन दोनों दम्पति का आलिंगन करके आनन्द को प्राप्त हुये ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥३९॥

पदच्छेद— नष्टम् प्रद्युम्नम् आयातम् आकर्ण्यम् द्वारका ओकसः ।
अहो मृत इव आयातो दिष्ट्या इतिह अब्रुवन् ॥

शब्दार्थ— नष्टम्	३. खोये हुये	अहो	८.	अहा
प्रद्युम्नम्	४. प्रद्युम्न को	मृतः	११.	मर कर
आयातम्	५. आये हुये	इव	१०.	मानो
आकर्ण्य	६. सुन कर	आयातः	१२.	लौट आया है
द्वारका	१. द्वारका	दिष्ट्या इति ह	९.	भाग्य की बात है कि यह बालक
ओकसः ।	२. वासी	अब्रुवन् ॥	७.	कहने लगे

श्लोकार्थ—द्वारकावासी खोये हुये प्रद्युम्न को आये हुये सुन कर कहने लगे अहा भाग्य की बात है कि यह बालक मानों मर कर लौट आया है ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ४०

पदच्छेद—यम् वै मुहुः पितृ सरूप निजईश भावाः तत् मातरः यत् अभजन् रहः रूढभावाः ।
चित्रम् न तत् खलु रमा आस्पद बिम्बबिम्बे कामे स्मरे अक्षि विषये किम् उत अन्य नार्यः ॥

शब्दार्थ—यम्	१. जिन प्रद्युम्न को	चित्रम् न	१७.	आश्चर्य की बात नहीं है
वै मुहुः	३. रूप से बार-बार देख कर	तत् खलु	११.	यह निश्चित ही
पितृ सरूप	२. पिता श्रीकृष्ण के समान	रमा आस्पद	१२.	शोभा धाम (श्रीकृष्ण के)
निजईश	४. अपने स्वामी श्रीकृष्ण का	बिम्बबिम्बे	१३.	प्रतिबिम्ब स्वरूप
भावाः	५. भाव कर लेने वाली	कामे स्मरे	१४.	शरीर वाले काम देव के
तत् मातरः	६. उनकी मातायें	अक्षि	१५.	दृष्टि
यत्	७. जो	विषये	१६.	गोचर हो जाने पर
अभजन्	१०. हो जाती थीं	किम् उत	२०.	कहना ही क्या है
रहः	८. एकान्त में	अन्य	१८.	दूसरी
रूढभावाः ।	९. विभोर भाव	नार्यः ॥	१९.	स्त्रियों के बारे में तो

श्लोकार्थ—जिन प्रद्युम्न को पिता श्रीकृष्ण के समान रूप से बार-बार देख कर अपने स्वामी श्रीकृष्ण का भाव कर लेने वाली उनकी मातायें जो एकान्त में विभोर भाव हो जाती थीं। यह निश्चित ही शोभा धाम श्रीकृष्ण के प्रतिबिम्ब स्वरूप शरीर वाले काम देव के दृष्टि गोचर हो जाने पर आश्चर्य की बात नहीं है। दूसरी स्त्रियों के बारे में तो कहना ही क्या है ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः अध्यायः ॥५५॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

षट्पञ्चाशत्तमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

पदच्छेद— सत्राजितः स्वतनयाम् कृष्णाय कृत किल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयम् उद्यम्य दत्तवान् ॥

शब्दार्थ—

सत्राजितः	३.	सत्राजित ने	स्यमन्तकेन	६.	स्यमन्तक
स्वतनयाम्	८.	अपनी पुत्री (सत्यभामा)	मणिना	७.	मणि के साथ
कृष्णाय	९.	श्रीकृष्ण को	स्वयम्	४.	स्वयम्
कृत	२.	करने वाले	उद्यम्य	५.	प्रयत्न करके
किल्बिषः ।	१.	अपराध	दत्तवान् ॥	१०.	दे दी

श्लोकार्थ—अपराध करने वाले सत्राजितने स्वयम् प्रयत्न करके स्यमन्तक मणि के साथ अपनी पुत्री सत्यभामा श्रीकृष्ण को दे दी ॥

द्वितीयः श्लोकः

राजोवाच— सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम् ।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद् दत्ता सुता हरेः ॥२॥

पदच्छेद— सत्राजितः किम् अकरोत् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम् ।
स्यमन्तकः कुतः तस्य कस्मात् दत्ता सुता हरेः ॥

शब्दार्थ—

सत्राजितः	२.	सत्राजित ने	स्यमन्तकः	८.	स्यमन्तक मणि
किम्	४.	क्या	कुतः	९.	कहाँ से मिली (और)
अकरोत्	६.	किया था	तस्य	७.	उसे
ब्रह्मन्	१.	भगवान्	कस्मात्	१२.	क्यों
कृष्णस्य	३.	श्रीकृष्ण का	दत्ता	१३.	दी
किल्बिषम् ।	५.	अपराध	सुता	११.	अपनी पुत्री
			हरेः ॥	१०.	श्रीकृष्ण को

श्लोकार्थ—भगवान् सत्राजित ने श्रीकृष्ण का क्या अपराध किया था। उसे स्यमन्तकमणि कहाँ से मिली और श्रीकृष्ण को अपनी पुत्री क्यों दी ॥

तृतीयः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—आसीत् सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

पदच्छेद— आसीत् सत्राजितः सूर्यः भक्तस्य परमः सखा ।
प्रीतः तस्मै मणिम् प्रादात् सूर्यः तुष्टः स्यमन्तकम् ॥

शब्दार्थ—

आसीत्	६. थे	प्रीतः	१२. प्रीति पूर्वक
सत्राजितः	२. सत्राजित् के	तस्मै	९. उसे
सूर्यः	३. सूर्य	मणिम्	११. मणिम्
भक्तस्य	१. भक्त	प्रादात्	१३. दे दी
परमः	४. परम	सूर्यः	७. सूर्य ने
सखा ।	५. मित्र	तुष्टः	८. प्रसन्न होकर
		स्यमन्तकम् ॥	१०. स्यमन्तक

श्लोकार्थ—भक्त सत्राजित् सूर्य के परम मित्र थे । सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे स्यमन्तक मणि प्रीतिपूर्वक दे दी ॥

चतुर्थः श्लोकः

स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।
प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥४॥

पदच्छेद— सः तम् बिभ्रत् मणिम् कण्ठे भ्राजमानः यथा रविः ।
प्रविष्टः द्वारकाम् राजन् तेजसा न उपलक्षितः ॥

शब्दार्थ—

सः	६. वह (सत्राजित्)	प्रविष्टः	१०. प्रवेश करने पर
तम्	३. उस	द्वारकाम्	९. द्वारका में
बिभ्रत्	५. धारण किये हुये	राजन्	१. हे राजन् !
मणिम्	४. मणि को	तेजसा	११. तेज के कारण
कण्ठे	२. गले में	न	१२. (लोग उसे) नहीं
भ्राजमानः	८. चमकने लगा	उपलक्षितः ॥	१३. पहचान पाये
यथारविः ।	७. सूर्य के समान		

श्लोकार्थ—हे राजन् ! गले में उस मणि को धारण किये हुये वह सत्राजित सूर्य के समान चमकने लगा । द्वारका में प्रवेश करने पर तेज के कारण लोग उसे नहीं पहचान पाये ॥

पञ्चमः श्लोकः

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दिव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥५॥

पदच्छेद— तम् विलोक्य जनाः दूरात् तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दिव्यते अक्षैः भगवते शशंसुः सूर्यं शङ्किताः ॥

शब्दार्थ—

तम्	२. उसे	दिव्यते	११. खेलते हुये
विलोक्य	३. देख कर (उसके)	अक्षैः	१०. चौसर
जनाः	७. लोग	भगवते	१२. भगवान् से
दूरात्	१. दूर से	शशंसुः	१३. कहने लगे
तेजसा	४. तेज से	सूर्यं	८. सूर्य का
मुष्ट	५. चौंधियायी हुई	शङ्किताः ॥	९. सन्देह करके
दृष्टयः ।	६. आँखों वाले		

श्लोकार्थ—दूर से उसे देख कर उसके तेज से चौंधियायी हुई आँखों वाले लोग सूर्य का संदेह करके चौसर खेलते हुये भगवान् से कहने लगे ॥

षष्ठः श्लोकः

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥

पदच्छेद— नारायण नमस्ते अस्तु शङ्खचक्र गदाधर ।
दामोदर अरविन्दाक्ष गोविन्द यदु नन्दन ॥

शब्दार्थ—

नारायण	९. नारायण	दामोदर	४. दामोदर
नमस्ते	१०. आप को नमस्कार	अरविन्दाक्ष	५. कमल नयन
अस्तु	११. है	गोविन्द	६. गोविन्द
शङ्ख	१. शङ्ख	यदु	७. यदुवंशियों को
चक्र	२. चक्र और	नन्दन ॥	८. आनन्द देने वाले
गदाधर ।	३. गदा धारण करने वाले		

श्लोकार्थ—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले, दामोदर, कमलनयन, गोविन्द, यदुवंशियों को आनन्द देने वाले, नारायण आप को नमस्कार है ॥

सप्तमः श्लोकः

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥

पदच्छेद— एषः आयाति सविता त्वाम् दिदृक्षुः जगत्पते ।
मुष्णन् गभस्ति चक्रेण नृणाम् चक्षूंषि तिग्मगुः ॥

शब्दार्थ—

एषः	२. ये	मुष्णन्	११. चौंधियाते हुये
आयाति	१२. आ रहे हैं	गभस्ति	९. किरणों के
सविता	६. सूर्य	चक्रेण	१०. समूह से
त्वाम्	४. आप के	नृणाम्	७. लोगों की
दिदृक्षुः	५. दर्शन के इच्छुक	चक्षूंषि	८. आँखों को अपनी
जगत्पते ।	१. हे संसार के स्वामी !	तिग्मगुः ॥	३. चमकीली किरणों वाले एवं

श्लोकार्थ—हे संसार के स्वामी ! ये चमकीली किरणों वाले एवं आपके दर्शन के इच्छुक सूर्य लोगों की आँखों को अपनी किरणों के समूह से चौंधियाते हुये आ रहे हैं ॥

अष्टमः श्लोकः

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥

पदच्छेद— ननु अन्विच्छन्ति ते मार्गम् त्रिलोक्याम् विबुध ऋषभाः ।
ज्ञात्वा अद्य गूढम् यदुषु द्रष्टुम् त्वाम् याति अजः प्रभो ॥

शब्दार्थ—

ननु	४. निश्चित रूप से	ज्ञात्वा	१२. जान कर
अन्विच्छन्ति	७. ढूंढते रहते हैं	अद्य	८. आज
ते	५. आपको	गूढम्	११. छिपा हुआ
मार्गम्	६. मार्ग	यदुषु	१०. यदुवंश में
त्रिलोक्याम्	१. त्रिलोकी में	द्रष्टुम्	१४. दर्शन करने
विबुध	३. देवता	त्वाम्	९. आपको
ऋषभाः ।	२. श्रेष्ठ	याति	१५. आ रहे हैं
		अजः प्रभो ॥	१३. हे प्रभो ! सूर्य नारायण

श्लोकार्थ— त्रिलोकी में श्रेष्ठ देवता निश्चित रूप से आपका मार्ग ढूंढते रहते हैं। आज आपको यदुवंश में छिपा हुआ जानकर हे प्रभो ! सूर्य नारायण दर्शन करने आ रहे हैं ॥

नवमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥९॥

पदच्छेद— निशम्य बाल वचनम् प्रहस्य अम्बुज लोचनः ।
प्राह न असौ रविः देवः सत्राजित् मणिना ज्वलन् ॥

शब्दार्थ—

निशम्य	३.	सुनकर	प्राह	७.	बोले थे
बाल	१.	अनजान पुरुषों की	न असौ	१०.	नहीं हैं ये तो
वचनम्	२.	बात	रविः	८.	सूर्य
प्रहस्य	६.	हंसकर	देवः	९.	देव
अम्बुज	४.	कमल	सत्राजित्	१३.	सत्राजित् है
लोचनः ।	५.	नयन	मणिना	११.	मणि के कारण
			ज्वलन् ॥	१२.	चमकता हुआ

श्लोकार्थ—अनजान पुरुषों की बात सुनकर कमल नयन भगवान् बोले थे सूर्यदेव नहीं है । ये तो मणि के कारण चमकता हुआ सत्राजित् है ॥

दशमः श्लोकः

सत्राजित् स्वगृहं श्रीमत् कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥

पदच्छेद— सत्राजित् स्वगृहम् श्रीमत् कृत कौतुक मङ्गलम् ।
प्रविश्य देव सदने मणिम् विप्रैः न्यवेशयत् ॥

शब्दार्थ—

सत्राजित्	१.	सत्राजित् ने	प्रविश्य	७.	प्रवेश करके
स्वगृहम्	२.	अपने घर में जहाँ	देव सदने	९.	देव मन्दिर में
श्रीमत्	३.	शोभा सम्पन्न	मणिम्	१०.	मणि को
कृत	६.	मनाया जा रहा था	विप्रैः	८.	ब्राह्मणों के द्वारा
कौतुक	४.	उत्सव	न्यवेशयत् ॥	११.	स्थापित करा दिया
मङ्गलम् ।	५.	मङ्गल			

श्लोकार्थ—सत्राजित् ने शोभा सम्पन्न अपने घर में जहाँ उत्सव मङ्गल मनाया जा रहा था प्रवेश करके ब्राह्मणों के द्वारा देव मन्दिर में मणि को स्थापित करा दिया ॥

एकादशः श्लोकः

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥११॥

पदच्छेद— दिने दिने स्वर्ण भारान् अष्टौ स सृजति प्रभो।
दुर्भिक्ष मारी अरिष्टानि सर्प आधिव्याधयः शुभाः।
न सन्ति मायिनः तत्र-तत्र आस्ते अभ्यर्चितः मणिः ॥

शब्दार्थ—दिने दिने	६.	प्रति दिन	सर्प आधि	१४.	सर्पभय, मनोरोग
स्वर्ण भारान्	८.	भारसोना	व्याधयः	१५.	व्याधियाँ
अष्टौ	७.	आठ	अशुभाः	१७.	अशुभ
सः	६.	वह	न सन्ति	१८.	नहीं होते थे
सृजति	१०.	दिया करती थी	मायिनः	१६.	मायावियों का उपद्रवादि
प्रभो।	१.	हे परीक्षित्!	तत्र-यत्र	२.	जहाँ वह
दुर्भिक्ष	११.	वहाँ दुर्भिक्ष	आस्ते	५.	रहती थी
मारी	१२.	महामारी	अभ्यर्चितः	४.	पूजित होकर
अरिष्टानि	१३.	ग्रह पीड़ा	मणिः ॥	३.	वह मणि

श्लोकार्थ—हे परीक्षित्! जहाँ वह मणि पूजित होकर रहती थी। वहाँ वह आठ भार सोना प्रतिदिन दिया करती थी। वहाँ दुर्भिक्ष, महा मारी, ग्रह पीड़ा, सर्प भय, मनो रोग, व्याधियाँ तथा मायावियों का उपद्रवादि नहीं होते थे।

द्वादशः श्लोकः

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा।
नैवार्थकामुकः प्रादाद् याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥१२॥

पदच्छेद— सः याचितः मणिम् क्वापि यदु राजाय शौरिणा।
न एव अर्थ कामुकः प्रादात् याच्ञा-भङ्गम् अतर्कयन् ॥

शब्दार्थ—सः	६.	उस	न एव	९.	मणि नहीं
याचितः	५.	माँगने पर	अर्थ	७.	धन के
मणिम्	४.	मणि	कामुकः	८.	लोलुप ने
क्वापि	१.	एक बार	प्रादात्	१०.	दी
यदुराजाय	२.	उग्रसेन के लिये	याच्ञा	११.	आज्ञा
शौरिणा।	३.	श्रीकृष्ण द्वारा	भङ्गम्	१२.	भङ्ग होने की
			अतर्कयन् ॥	१३.	बिना परवाह किये।

श्लोकार्थ—एक बार उग्रसेन के लिये श्रीकृष्ण द्वारा मणि माँगने पर उस धन के लोलुप ने मणि नहीं दी, आज्ञाभङ्ग होने की बिना परवाह किये ॥

त्रयोदशः श्लोकः

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद् वने ॥१३॥

पदच्छेद— तम् एकदा मणिम् कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनः हयम् आरुह्य मृगयाम् व्यचरत् वने ॥

शब्दार्थ—

तम्	३. उस	प्रसेनः	७. प्रसेन
एकदा	१. एक बार	हयम्	८. घोड़े पर
मणिम्	४. मणि को	आरुह्य	६. सवार होकर
कण्ठे	५. गले में	मृगयाम्	१०. शिकार खेलने
प्रतिमुच्य	६. पहन कर	व्यचरत्	१२. चला गया
महाप्रभम् ।	२. बड़ी चमकीली	वने ॥	११. वन में

श्लोकार्थ—एक बार बड़ी चमकीली उस मणि को गले में पहनकर प्रसेन घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने वन चला गया ।

चतुर्दशः श्लोकः

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ।
गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥१४॥

पदच्छेद— प्रसेनम् सहयम् हत्वा मणिम् आच्छिद्य केसरी ।
गिरिम् विशन् जाम्बवता निहतः मणिम् इच्छता ॥

शब्दार्थ—

प्रसेन	२. प्रसेन को	गिरिम्	६. पर्वत में
सहयम्	१. घोड़े सहित	विशन्	७. प्रवेश करते हुये
हत्वा	३. मार कर	जाम्बवता	११. जाम्बवान् ने
मणिम्	४. मणि	निहतः	१२. मार डाला
आच्छिद्य	५. छीन कर	मणिम्	६. मणि को
केसरी ।	८. सिंह को	इच्छता ॥	१०. चाहते हुये

श्लोकार्थ—घोड़े सहित प्रसेन को मार कर मणि छीनकर पर्वत में प्रवेश करते हुये सिंह को मणि चाहते हुये जाम्बवान् ने मार डाला ॥

पञ्चदशः श्लोकः

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।

अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्यतप्यत ॥१५॥

पदच्छेद— सः अपि चक्रे कुमारस्य मणिम् क्रीडनकम् बिले ।
अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् परि अतप्यत ॥

शब्दार्थ—

सः	१. उसने	अपश्यन्	८. न देखकर
अपि	२. भी	भ्रातरम्	७. भाई (प्रसेन को)
चक्रे	७. दे दी	भ्राता	१०. भाई
कुमारस्य	५. बालक को	सत्राजित्	११. सत्राजित्
मणिम्	४. वह मणि	परि	१२. बड़ा
क्रीडनकम्	६. खेलने के लिये	अतप्यत ॥	१३. दुःखी हुआ
बिले ।	३. गुफा में		

श्लोकार्थ—उसने भी गुफा में वह मणि बालक को खेलने के लिये दे दी। भाई प्रसेन को न देखकर भाई सत्राजित् बड़ा दुःखी हुआ॥

षोडशः श्लोकः

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।

भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥१६॥

पदच्छेद— प्रायः कृष्णेन निहतः मणिग्रीवः वनम् गतः ।
भ्राता मम इति तत् श्रुत्वा कर्णे-कर्णे अजपन् जनाः ॥

शब्दार्थ—

प्रायः	५. सम्भव है	भ्राता	७. भाई को
कृष्णेन	८. श्रीकृष्ण ने	मम	६. मेरे
निहतः	९. मार डाला है	इति	१०. इस प्रकार (कहने लगा)
मणि	२. मणि डाल कर	तत्	११. यह
ग्रीवः	१. गले में	श्रुत्वा	१२. सुनकर
वनम्	३. वन में	कर्णे-कर्णे	१४. काना-फूँसी
गतः ।	४. गया था	अजपन्	१५. करने लगे
		जनाः ॥	१३. लोग

श्लोकार्थ—वह गले में मणि डाल कर वन में गया था। सम्भव है मेरे भाई को श्रीकृष्ण ने मार डाला है। इस प्रकार कहने लगा। यह सुनकर लोग काना-फूँसी करने लगे॥

सप्तदशः श्लोकः

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥

पदच्छेद— भगवान् तत् उपश्रुत्य दुर्यशः लिप्तम् आत्मनि ।
मार्ष्टुम् प्रसेन पदवीम् अनु अपद्यत नागरैः ॥

शब्दार्थ—

भगवान्	१. भगवान्		मार्ष्टुम्	७. धोने के लिये	
तत्	६. उसे		प्रसेन	९. प्रसेन का	
उपश्रुत्य	५. सुनकर		पदवीम्	१०. पता लगाने के लिये	
दुर्यशः	४. अपराध को		अनु	११. चल	
लिप्तम्	३. थोपे गये		अपद्यत	१२. पड़े	
आत्मनि ।	२. अपने ऊपर		नागरैः ॥	८. नागरिकों के साथ प्रसेन	

श्लोकार्थ—भगवान् अपने ऊपर थोपे गये अपराध को सुनकर उसे धोने के लिये नागरिकों के साथ प्रसेन का पता लगाने के लिये चल पड़े ॥

अष्टादशः श्लोकः

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

पदच्छेद— हतम् प्रसेनम् अश्वम् च वीक्ष्य केसरिणा वने ।
तम् च अद्रि पृष्ठे निहतम् ऋक्षेण ददृशुः जनाः ॥

शब्दार्थ—

हतम्	४. मारे गये	तम्	१३. उस सिंह को
प्रसेनम्	५. प्रसेन	च	१४. भी
अश्वम्	७. घोड़े को	अद्रि	९. पहाड़
च	६. और	पृष्ठे	१०. पर
वीक्ष्य	८. देखा (फिर)	निहतम्	११. मारे गये
केसरिणा	३. सिंह के द्वारा	ऋक्षेण	१२. एक रीछ के द्वारा
वने ।	१. वन में	ददृशुः	१५. देखा
		जनाः ॥	२. लोगों ने

श्लोकार्थ—वन में लोगों ने सिंह के द्वारा मारे गये प्रसेन और घोड़े को देखकर पहाड़ पर मारे गये एक रीछ के द्वारा उस सिंह को देखा ॥

एकोनविंशः श्लोकः

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसाऽऽवृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१६॥

पदच्छेद— ऋक्षराज बिलम् भीमम् अन्धेन तमसा आवृतम् ।
एकः विवेश भगवान् अवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥

शब्दार्थ—

ऋक्षराज	६.	ऋक्षराज की	एकः	५.	अकेले ही
बिलम्	११.	गुफा में	विवेश	१२.	प्रवेश किया
भीमम्	१०.	भयंकर	भगवान्	१.	भगवान् ने
अन्धेन	६.	घोर	अवस्थाप्य	४.	बैठा कर
तमसा	७.	अंधकार से	बहिः	३.	बाहर
आवृतम् ।	८.	भरी हुई	प्रजाः ॥	२.	लोगों को

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने लोगों को बाहर बैठाकर अकेले ही घोर अंधकार से भरी हुई ऋक्षराज की गुफा में प्रवेश किया ।

विंशः श्लोकः

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

पदच्छेद— तत्र दृष्ट्वा मणि श्रेष्ठम् बाल क्रीडनकम् कृतम् ।
हर्तुम् कृतमतिः तस्मिन् अवतस्थे अर्भक अन्तिके ॥

शब्दार्थ—

तत्र	१.	वहाँ	हर्तुम्	८.	हर
दृष्ट्वा	६.	देख कर	कृतम्	६.	लेने का
मणि श्रेष्ठम्	५.	उत्तम मणि	मतिः	१०.	विचार करके
बाल	२.	बच्चों का	तस्मिन्	७.	उसे
क्रीडनकम्	३.	खिलौना	अवतस्थे	१३.	खड़े हो गये
कृतम् ।	४.	बनी हुई	अर्भक	११.	बच्चे के
			अन्तिके ॥	१२.	पास

श्लोकार्थ—वहाँ बच्चों का खिलौना बनी हुई उत्तम मणि देखकर उसे हर लेने का विचार करके बच्चे के पास खड़े हो गये ।

एकविंशः श्लोकः

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत् क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः ॥२१॥

पदच्छेद— तम् अपूर्वम् नरम् दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तत् श्रुत्वा अभ्यद्रवत् क्रुद्धः जाम्बवान् बलिनाम् वरः ॥

शब्दार्थ—

तम्	१. उस	तत्	८. उसे
अपूर्वम्	२. अपरिचित	श्रुत्वा	९. सुन कर
नरम्	३. मनुष्य को	अभ्यद्रवत्	१४. दौड़ आये
दृष्ट्वा	४. देख कर	क्रुद्धः	१३. क्रोधित होकर
धात्री	५. धाय	जाम्बवान्	१२. जाम्बवान्
चुक्रोश	७. चिल्ला उठी	बलिनाम्	१०. बलवानों में
भीतवत् ।	६. भयभीत के समान	वरः ॥	११. श्रेष्ठ

श्लोकार्थ—उस अपरिचित मनुष्य को देख कर धाय भयभीत के समान चिल्ला उठी । उसे सुन कर बलवानों में श्रेष्ठ जाम्बवान् क्रोधित होकर दौड़ आये ॥

द्वाविंशः श्लोकः

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥

पदच्छेद— सः वै भगवता तेन युयुधे स्वामिना आत्मनः ।
पुरुषम् प्राकृतम् मत्वा कुपितः न अनुभाववित् ॥

शब्दार्थ—

सः वै	३. वह जाम्बवान्	पुरुषम्	५. मनुष्य
भगवता	११. भगवान् श्रीकृष्ण से	प्राकृतम्	४. साधारण
तेन	१०. उन	मत्वा	६. जान कर
युयुधे	१२. युद्ध करने लगे	कुपितः	७. कुपित हो गया
स्वामिना	९. स्वामी	न	२. नहीं
आत्मनः ।	८. अपने	अनुभाववित् ॥	१. प्रभाव को जानने वाला

श्लोकार्थ—प्रभाव को नहीं जानने वाला वह जाम्बवान् साधारण मनुष्य जान कर कुपित होकर उन भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगा ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

पदच्छेद— द्वन्द्व युद्धम् सुतुमुलम् उभयोः विजिगीषतोः ।
आयुध अश्म द्रुमैः दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोः इव ॥

शब्दार्थ—

द्वन्द्व	८.	आपस में	आयुध अश्म	५.	अस्त्र-शस्त्रों, पत्थरों
युद्धम्	१०.	युद्ध करने लगे	द्रुमैः	६.	वृक्षों और
सुतुमुलम्	९.	घमासान	दोर्भिः	७.	बाँहों से
उभयोः	३.	वे दोनों	क्रव्यार्थे	१.	मांस के लिये
विजिगीषतोः ।	४.	विजय चाहने वाले	श्येनयोः इव ॥	२.	जैसे दो बाज युद्ध कर रहे हों

श्लोकार्थ— जैसे दो बाज मांस के लिये युद्ध कर रहे हों । वे दोनों विजय चाहने वाले अस्त्र-शस्त्र-पत्थरों, वृक्षों और बाँहों से आपस में घमासान युद्ध करने लगे ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥२४॥

पदच्छेद— आसीत् तत् अष्टाविंश अहम् इतरेतर मुष्टिभिः ।
वज्र निष्पेष परुषैः अविश्रमम् अहर्निशम् ॥

शब्दार्थ—

आसीत्	११.	चलता रहा	वज्र	१.	वज्र
तत्	९.	वह युद्ध	निष्पेष	२.	प्रहार के समान
अष्टाविंश	१०.	अट्ठाइस दिनों तक	परुषैः	३.	कठोर
अहम्	४.	एक	अविश्रमम्	७.	बिना विश्राम के
इतरेतर	५.	दूसरों के	अहर्निशम् ॥	८.	रात-दिन
मुष्टिभिः ।	६.	घूसों से			

श्लोकार्थ—वज्र के प्रहार के समान कठोर एक दूसरों के घूंसों से बिना विश्राम के रात-दिन वह युद्ध अट्ठाइस दिनों तक चलता रहा ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥२५॥

पदच्छेद— कृष्ण मुष्टि विनिष्पात निष्पिष्ट अङ्ग उरु बन्धनः ।
क्षीण सत्त्वः स्विन्न गात्रः तम् आह अतीव विस्मितः ॥

शब्दार्थ—

कृष्ण	१. श्रीकृष्ण के	क्षीण	८. हीन तथा
मुष्टि	२. घूंसों की	सत्त्वः	७. उत्साह से
विनिष्पात	३. चोट से (उसके)	स्विन्न गात्रः	९. पसीने से लथपथ शरीर उसने
निष्पिष्ट	६. चूर-चूर हो गये	तम् आह	१०. उस (भगवान् से) कहा
अङ्ग	४. अङ्ग	अतीव	११. अत्यन्त
उरु बन्धनः ।	५. गाँठें और जोड़	विस्मितः ॥	१२. आश्चर्य चकित होकर

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण के घूंसों की चोट से उसके अङ्ग, गाँठें और जोड़ चूर-चूर हो गये। उत्साह से हीन, पसीने से लथपथ शरीर उसने उन भगवान् से आश्चर्य चकित होकर कहा ॥

षड्विंशः श्लोकः

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥२६॥

पदच्छेद— जाने त्वाम् सर्वभूतानाम् प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुम् पुराण पुरुषम् प्रभविष्णुम् अधीश्वरम् ॥

शब्दार्थ—

जाने	१०. जानता हूँ	विष्णुम्	९. भगवान् विष्णु
त्वाम्	८. आप को मैं	पुराण	४. पुराण
सर्वभूतानाम्	१. सभी प्राणियों के	पुरुषम्	५. पुरुष
प्राण ओजः	२. प्राण इन्द्रिय बल	प्रभविष्णुम्	६. रक्षक एवम्
सहो बलम् ।	३. मनोबल, शरीर बल	अधीश्वरम् ॥	७. स्वामी

श्लोकार्थ—सभी प्राणियों के प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीर बल, पुराण पुरुष, रक्षक एवम् स्वामी आप को मैं भगवान् विष्णु जानता हूँ ॥

सप्तविंशः श्लोकः

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथाऽऽत्मनाम् ॥२७॥

पदच्छेद— त्वम् हि विश्वसृजाम् स्रष्टा सृज्यानाम् अपि यत् च सत् ।
कालः कलयताम् ईशः परः आत्मा तथा आत्मनाम् ॥

शब्दार्थ— त्वम्	१. आप	कालः	१०.	परम काल
हि	२. ही	कलयताम्	८.	काल के अवयवों के
विश्वसृजाम्	३. विश्व के रचयिता	ईशः	९.	नियामक
स्रष्टा	४. ब्रह्मा आदि के बनाने वाले हैं	परः	१३.	परम
सृज्यानाम्	५. बनाये हुये पदार्थों की	आत्मा	१४.	आत्मा भी आप ही हैं
अपि यत् च	६. भी जो और	तथा	११.	तथा
सत् ।	७. सत्ता है (वह भी आप हैं)	आत्मनाम् ॥	१२.	अन्तरात्माओं के

श्लोकार्थ—आप ही विश्व के रचयिता ब्रह्मा आदि के बनाने वाले हैं। बनाये हुये पदार्थों की भी जो और सत्ता है वह भी आप हैं। काल के अवयवों के नियामक परम काल तथा अन्तरात्माओं के परम आत्मा भी आप ही हैं ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥

पदच्छेद—यस्य ईषत् उत्कलित रोष कटाक्षमोक्षैः वर्त्म आदिशत् क्षुभित नक्र तिमिङ्गिलः अब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षः शिरांसि भुवि पेतुः इषु क्षतानि ॥

शब्दार्थ—यस्य	१. जिन आप के	सेतुः कृतः	११.	पुल बाँधा था
ईषत्	३. किञ्चित्	स्वयश	१०.	अपने यशः स्वरूप आपने
उत्कलित	४. भाव से युक्त	उज्ज्वलिता	१३.	विध्वंस किया था
रोष	२. क्रोध के	च लङ्का	१२.	और लङ्का को
कटाक्षमोक्षैः	५. तिरछी दृष्टि डालते ही	रक्षः शिरांसि	१६.	राक्षसों के सिर
वर्त्म	८. मार्ग	भुवि	१७.	पृथ्वी पर
आदिशत्	९. दे दिया था	पेतुः	१८.	गिरने लगे थे
क्षुभित नक्र	६. क्षुब्ध घड़ियाल और	इषु	१४.	बाणों से
तिमिङ्गिलः अब्धिः ।	७. मगरमच्छ वाले समुद्र ने	क्षतानि ॥	१५.	कटे हुये

श्लोकार्थ—जिन आप के क्रोध के भाव से युक्त तिरछी दृष्टि डालते ही क्षुब्ध घड़ियाल और मगरमच्छ वाले समुद्र ने मार्ग दे दिया था। आपने अपने यशः स्वरूप पुल बाँधा था और लङ्का का विध्वंस किया था। बाणों से कटे हुये राक्षसों के सिर पृथ्वी पर गिरने लगे थे ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२६॥

पदच्छेद— इति विज्ञात विज्ञानम् ऋक्षराजानम् अच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान् देवकी सुतः ॥

शब्दार्थ—

इति	२.	इस प्रकार	व्याजहार	१०.	कहा
विज्ञात	४.	प्राप्त किये हुये	महाराज	१.	हे परीक्षित !
विज्ञानम्	३.	वास्तविक ज्ञान को	भगवान्	८.	भगवान्
ऋक्षराजानम्	५.	ऋक्षराज से	देवकी	६.	देवकी
अच्युतः ।	६.	श्रीकृष्ण ने	सुतः ॥	७.	पुत्र

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! इस प्रकार वास्तविक ज्ञान प्राप्त किये हुये ऋक्षराज से देवकी पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ॥

त्रिंशः श्लोकः

अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शङ्करेण तम् ।
कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

पदच्छेद— अभिमृश्य अरविन्दाक्षः पाणिना शङ्करेण तम् ।
कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥

शब्दार्थ—

अभिमृश्य	८.	स्पर्श करके	कृपया	३.	कृपा करके
अरविन्दाक्षः	१.	कमल नयन (भगवान्) ने	परया	२.	परम
पाणिना	५.	हाथ से	भक्तम्	७.	भक्त जाम्बवान् का
शङ्करेण	४.	कल्याणकारी	प्रेम	६.	प्रेम पूर्वक
तम् ।	६.	उस	गम्भीरया	१०.	गम्भीर
			गिरा ॥	११.	वाणी से कहा

श्लोकार्थ—कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण ने परम कृपा करके कल्याणकारी हाथ से उस भक्त जाम्बवान् का स्पर्श करके प्रेम पूर्वक गम्भीर वाणी से कहा ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥३१॥

पदच्छेद— मणि हेतोः इह प्राप्ताः वयम् ऋक्षपते बिलम् ।
मिथ्या अभिशापम् प्रमृजन् आत्मनः मणिना अमुना ॥

शब्दार्थ—

मणि हेतोः	२.	मणि के लिये	मिथ्या	१०.	झूठे
इह	४.	इस	अभिशापम्	११.	कलंक को
प्राप्ताः	६.	आये हैं	प्रमृजन्	१२.	मिटाना है
वयम्	३.	हम	आत्मनः	६.	अपने ऊपर लगे
ऋक्षपते	१.	हे ऋक्षराज	मणिना	८.	मणि के द्वारा
बिलम् ।	५.	गुफा में	अमुना ॥	७.	क्योंकि इस

श्लोकार्थ—हे ऋक्षराज ! मणि के लिये हम इस गुफा में आये हैं, क्योंकि इस मणि के द्वारा अपने ऊपर लगे झूठे कलंक को मिटाना है ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥

पदच्छेद— इति उक्तः स्वाम् दुहितरम् कन्याम् जाम्बवतीम् मुदा ।
अर्हण अर्थम् सः मणिना कृष्णाय उपजहार ह ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	ऐसा	अर्हण	९.	उनकी पूजा करने
उक्तः	२.	कहने पर	अर्थम्	१०.	के लिये
स्वाम्	४.	अपनी	सः	३.	उस जाम्बवान् ने
दुहितरम्	५.	पुत्री	मणिना	८.	मणि के साथ
कन्याम्	६.	कुमारी	कृष्णाय	१२.	श्रीकृष्ण को
जाम्बवतीम्	७.	जाम्बवती को	उपजहार ह ॥	१३.	समर्पित कर दिया
मुदा ।	११.	हर्ष पूर्वक			

श्लोकार्थ—ऐसा कहने पर उस जाम्बवान् ने अपनी पुत्री कुमारी जाम्बवती को मणि के साथ उनकी पूजा करने के लिये हर्ष पूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया ।

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥

पदच्छेद— अदृष्ट्वा निर्गमम् शौरेः प्रविष्टस्य बिलम् जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादश अहानि दुःखिताः स्व पुरम् ययुः ॥

शब्दार्थ—

अदृष्ट्वा	५. न देखकर	प्रतीक्ष्य	८. प्रतीक्षा करके
निर्गमम्	४. बाहर आना	द्वादश	७. बारह
शौरेः	३. श्रीकृष्ण का	अहानि	८. दिनों तक
प्रविष्टस्य	२. गये हुये	दुःखिताः	१०. दुःखी होकर
बिलम्	१. गुफा में	स्व पुरम्	११. अपने नगर को
जनाः ।	६. लोग	ययुः ॥	१२. लौट आये

श्लोकार्थ—गुफा में गये हुये श्रीकृष्ण का बाहर आना न देखकर लोग बारह दिनों तक प्रतीक्षा करके दुःखी होकर अपने नगर को लौट आये ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् बिलात् कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥

पदच्छेद— निशम्य देवकी देवी रुक्मिणी आनक दुन्दुभिः ।
सुहृदः ज्ञातयः अशोचन् बिलात् कृष्णम् अनिर्गतम् ॥

शब्दार्थ—

निशम्य	१. समाचार सुनकर	सुहृदः	६. मित्र तथा
देवकी	२. देवकी	ज्ञातयः	७. सम्बन्धी लोग
देवी	३. देवी	अशोचन्	१०. शोक करने लगे
रुक्मिणी	४. रुक्मिणी	बिलात्	८. गुफा से
आनक दुन्दुभिः	५. वसुदेव जी	कृष्णम्	११. श्रीकृष्ण के लिये
		अनिर्गतम् ॥	९. न निकले हुये

श्लोकार्थ—समाचार सुनकर देवकी देवी रुक्मिणी, वसुदेव जी, मित्र तथा सम्बन्धी लोग गुफा से न निकले हुये श्रीकृष्ण के लिये शोक करने लगे ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

पदच्छेद— सत्राजितम् शपन्तः ते दुःखिता द्वारकौकसः।
उपतस्थुः महामायाम् दुर्गाम् कृष्ण उपलब्धये ॥

शब्दार्थ—

सत्राजितम्	४. सत्राजित को	उपतस्थुः	१२. शरण में गये
शपन्तः	५. कोसते हुये	महामायाम्	८. महामाया
ते दुःखिताः	१. वे दुःखी	दुर्गाम्	६. देवी दुर्गा की
द्वारका	२. द्वारका	कृष्ण	६. श्रीकृष्ण को
ओकसः।	३. निवासी	उपलब्धये ॥	७. प्राप्ति के लिये

श्लोकार्थ—वे दुःखी द्वारका निवासी सत्राजित को कोसते हुये श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये महामाया दुर्गा देवी की शरण में गये ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

तेषां तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा स च।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः ॥३६॥

पदच्छेद— तेषाम् तु देवी उपस्थानात् प्रति आदिष्ट आशिषा स च।
प्रादुः बभूव सिद्धार्थः सदारः हर्षयन् हरिः ॥

शब्दार्थ—

तेषाम् तु	१. उनके द्वारा की गई	प्रादुः बभूव	१२. प्रकट हो गये
देवी	२. देवी की	सिद्ध	८. सफल
उपस्थानात्	३. उपासना से	अर्थः	६. मनोरथ होकर
प्रति आदिष्ट	४ दिये गये	सदारः	१०. पत्नी के साथ
आशिषा	५ आशीर्वाद के	हर्षयन्	११. सबको हर्षित करते हुये
स च।	६. कारण वे	हरिः ॥	७. भगवान् श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—उनके द्वारा की गई देवी की उपासना से दिये गये आशीर्वाद के कारण वे भगवान् श्रीकृष्ण सफल मनोरथ होकर पत्नी के साथ सबको हर्षित करते हुये प्रकट हो गये ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

पदच्छेद— उपलभ्य हृषीकेशम् मृतम् पुनः इव आगतम् ।
सह पत्न्या मणि ग्रीवम् सर्वे जात महोत्सवाः ॥

शब्दार्थ—

उपलभ्य	६. पाकर	सह	४. साथ और
हृषीकेशम्	२. श्रीकृष्ण	पत्न्या	३. पत्नी के
मृतम्	१०. कोई मर कर	मणि ग्रीवम्	५. गले में मणि पहने हुये
पुनः	११. फिर	सर्वे	१. सभी नागरिक
इव	९. मानों	जात	८. मग्न हो गये
आगतम् ।	१२. लौट आया हो	महोत्सवाः ।	७. परमानन्द में

श्लोकार्थ—सभी नागरिक श्रीकृष्ण को पत्नी के साथ और गले में मणि पहने हुये पाकर परमानन्द में मग्न हो गये । मानों कोई मर कर फिर लौट आया हो ॥

अष्टत्रिंशः श्लोकः

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

पदच्छेद— सत्राजितम् सम् आहूय सभायाम् राज सन्निधौ ।
प्राप्तिम् च आख्याय भगवान् मणिम् तस्मै न्यवेदयत् ॥

शब्दार्थ—

सत्राजितम्	२. सत्राजित को	प्राप्तिम् च	७. और मणि की प्राप्ति
सम् आहूय	६. बुला कर	आख्याय	८. बता कर
सभायाम्	३. सभा में	भगवान्	१. भगवान् श्रीकृष्ण ने
राज	४. राजा के	मणिम् तस्मै	९. वह मणि उसको
सन्निधौ ।	५. समीप	न्यवेदयत् ॥	१०. दे दी

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्राजित को सभा में राजा के समीप बुला कर और मणि की प्राप्ति बता कर वह मणि उसको दे दी ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत् स्वेन पाप्मना ॥३९॥

पदच्छेद— स: च अतिव्रीडित: रत्नम् गृहीत्वा अवाङ् मुख: तत: ।
अनुतप्यमान: भवनम् अगमत् स्वेन पाप्मना ॥

शब्दार्थ—

स: च	१.	वह	अनुतप्यमान:	८.	पश्चात्ताप करता हुआ
अतिव्रीडित:	२.	अत्यन्त लज्जित होकर	भवनम्	१०.	घर को
रत्नम्	३.	मणि	अगमत्	११.	चला गया
गृहीत्वा	४.	लेकर	स्वेन	६.	अपने
अवाङ् मुख:	५.	नीचे की ओर मुंह करके	पाप्मना ॥	७.	अपराध पर
तत: ।	९.	वहाँ से			

श्लोकार्थ—वह अत्यन्त लज्जित होकर मणि लेकर नीचे की ओर मुंह करके अपने अपराध पर पश्चात्ताप करता हुआ वहाँ से घर को चला गया ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद् वाच्युतः कथम् ॥४०॥

पदच्छेद— स: अनुध्यायन् तद् एव अघम् बलवत् विग्रह आकुल: ।
कथम् मृजामि आत्मरज: प्रसीदेत् वा अच्युत: कथम् ॥

शब्दार्थ—

स:	४.	वह (सत्राजित)	कथम्	९.	किस प्रकार
अनुध्यायन्	७.	सोचता रहता कि	मृजामि	१०.	मार्जन करूँ
तद् एव	५.	वही	आत्मरज:	८.	अपने अपराध का
अघम्	६.	अपराध पर	प्रसीदेत्	१४.	प्रसन्न होंगे
बलवत्	१.	बलवान् के साथ	वा	११.	अथवा ये
विग्रह	२.	विरोध करने के कारण	अच्युत:	१२.	श्रीकृष्ण
आकुल: ।	३.	व्याकुल होकर	कथम् ॥	१३.	कैसे

श्लोकार्थ—बलवान् के साथ विरोध करने के कारण व्याकुल होकर वह सत्राजित वही अपराध सोचता रहता कि अपने अपराध का किस प्रकार मार्जन करूँ। अथवा ये श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न होंगे ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद् वा जनो यथा।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

पदच्छेद— किम् कृत्वा साधु मह्यं स्यात् न शपेत् वा जनः यथा।
अदीर्घ दर्शनम् क्षुद्रम् मूढम् द्रविण लोलुपम् ॥

शब्दार्थ—

किम् कृत्वा	१.	क्या करने से	अदीर्घ	६.	अदूर
साधु मह्यं	२.	मेरा कल्याण	दर्शनम्	७.	दर्शी
स्यात्	३.	होगा	क्षुद्रम्	८.	क्षुद्र
न शपेत्	१२.	न कोसें	मूढम्	९.	मूर्ख और
वा जनः	४.	अथवा लोग	द्रविण	१०.	धन के
यथा।	५.	जिससे	लोलुपम् ॥	११.	लोभी मुझ को

श्लोकार्थ—क्या करने से मेरा कल्याण होगा। अथवा लोग जिससे अदूर-दर्शी, क्षुद्र, मूर्ख और धन के लोभी मुझ को न कोसें ॥

द्वाचत्वारिंशः श्लोकः

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥

पदच्छेद— दास्ये दुहितरम् तस्मै स्त्रीरत्नम् रत्नम् एव च।
उपायः अयम् समीचीनः तस्य शान्तिर्न च अन्यथा ॥

शब्दार्थ—

दास्ये	७.	दे दूँ	उपायः	९.	उपाय
दुहितरम्	३.	पुत्री (सत्यभामा)	अयम्	८.	यह
तस्मै	१.	उनको	समीचीनः	१०.	बहुत अच्छा है
स्त्रीरत्नम्	२.	स्त्रियों में रत्न के समान	तस्य	१२.	इस (अपराध) का
रत्नम्	५.	मणि दोनों	शान्तिर्न	१३.	मार्जन नहीं
एव	६.	ही	च	१४.	हो सकता है
च।	४.	और	अन्यथा ॥	११.	दूसरे प्रकार से

श्लोकार्थ—उनको स्त्रियों में रत्न के समान पुत्री सत्यभामा और मणि दोनों ही दे दूँ। यह उपाय बहुत अच्छा है। दूसरे प्रकार से उस अपराध का मार्जन नहीं हो सकता है ॥

त्रयश्चत्वारिंशः श्लोकः

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

पदच्छेद— एवम् व्यवसितः बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुताम् शुभाम् ।
मणिम् च स्वयम् उद्यम्य कृष्णाय उपजहार ह ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	मणिम्	८.	मणि को
व्यवसितः	३.	निश्चय करके	च	७.	और
बुद्ध्या	२.	बुद्धि से	स्वयम्	९.	स्वयम्
सत्राजित्	४.	सत्राजित् ने	उद्यम्य	१०.	ले जा कर
स्वसुताम्	६.	अपनी पुत्री (सत्यभामा)	कृष्णाय	११.	श्रीकृष्ण को
शुभाम् ।	५.	शुभमूर्ति	उपजहार ह ॥	१२.	अर्पित कर दी

श्लोकार्थ—इस प्रकार बुद्धि से निश्चय करके सत्राजित् ने शुभ मूर्ति अपनी पुत्री सत्यभामा और मणि को स्वयम् ले जा कर श्रीकृष्ण को अर्पित कर दी ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

पदच्छेद— ताम् सत्यभामाम् भगवान् उपयेमे यथा विधि ।
बहुभिः याचिताम् शीलरूप औदार्य गुण अन्विताम् ॥

शब्दार्थ—

ताम्	८.	उस	बहुभिः	२.	बहुतों के द्वारा
सत्यभामाम्	९.	सत्यभामा से	याचिताम्	३.	माँगी गई,
भगवान्	१.	भगवान् ने	शीलरूप	४.	शील, सुन्दरता और
उपयेमे	१२.	विवाह कर लिया	औदार्य	५.	उदारता रूप
यथा	११.	पूर्वक	गुण	६.	गुणों से
विधि ।	१०.	विधि	अन्विताम् ॥	७.	युक्त

श्लोकार्थ—भगवान् ने बहुतों के द्वारा माँगी गई शील, सुन्दरता और उदारता रूप गुणों से युक्त उस सत्यभामा से विधि पूर्वक विवाह कर लिया ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

पदच्छेद—

भगवान् आह न मणिम् प्रतीच्छामः वयम् नृप ।
तव आस्ताम् देव भक्तस्य वयम् च फल भागिनः ॥

शब्दार्थ—

भगवान्	२. भगवान् श्रीकृष्ण ने	तव	८. आप ही के पास
आह	३. कहा	आस्ताम्	९. यह रहे
न मणिम्	५. मणि नहीं	देवभक्तस्य	७. सूर्य देव के भक्त
प्रतीच्छामः	६. लेंगे	वयम् च	१०. हम तो
वयम्	४. हम	फल	११. उसके फल सुवर्ण के
नृप !	१. हे राजन् !	भागिनः ॥	१२. अधिकारी हैं

श्लोकार्थ—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हम मणि नहीं लेंगे । सूर्यदेव के भक्त आप ही के पास यह रहे । हम तो उसके फल सुवर्ण के अधिकारी हैं ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
स्यमन्तकोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमः अध्यायः ॥५६॥



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

सप्तपञ्चाशत्तमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥१॥

पदच्छेद— विज्ञात अर्थः अपि गोविन्दः दग्धान् आकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीम् च कुल्यकरणे सहरामः ययौ कुरून् ॥

शब्दार्थ—

विज्ञात	७. मालूम हो जाने पर	कुन्तीम्	३. कुन्ती के
अर्थः अपि	६. सही स्थिति भी	च	२. और
गोविन्दः	८. श्रीकृष्ण	कुल्यकरणे	६. कुलोचित व्यवहार
दग्धान्	४. जल जाने की बात	सहरामः	१०. बलराम जी के साथ
आकर्ण्य	५. सुनकर	ययौ	१२. गये
पाण्डवान् ।	१. पाण्डवों के	कुरून् ॥	११. हस्तिनापुर

श्लोकार्थ—पाण्डवों के और कुन्ती के जल जाने की बात सुनकर सही स्थिति भी मालूम हो जाने पर श्रीकृष्ण कुलोचित व्यवहार करने के लिये बलराम जी के साथ हस्तिनापुर गये ॥

द्वितीयः श्लोकः

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ।
तुल्यदुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥२॥

पदच्छेद— भीष्मम् कृपम् सविदुरम् गान्धारीम् द्रोणम् एव च ।
तुल्य दुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टम् इति ह ऊचतुः ॥

शब्दार्थ—

भीष्मम्	१. भीष्म पितामह	तुल्य दुःखौ	८. समवेदना प्रकट करते हुये
कृपम्	२. कृपाचार्य	सङ्गम्य	७. मिलकर
सविदुरम्	३. विदुर	हा कष्टम्	११. हाय कष्ट की बात है
गान्धारीम्	४. गान्धारी	इति	६. यह
द्रोणम्	६. द्रोणाचार्य से	ह ऊचतुः ॥	१०. कहा
एव च ।	५. और		

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्य से मिल कर समवेदना प्रकट करते हुये यह कहा—हाय कष्ट की बात है ॥

तृतीयः श्लोकः

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ।
अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥३॥

पदच्छेद— लब्ध्वा एतद् अन्तरम् राजन् शतधन्वानम् ऊचतुः ।
अक्रूर कृतवर्माणौ मणिः कस्मात् न गृह्यते ॥

शब्दार्थ—

लब्ध्वा	४. पाकर	अक्रूर	५. अक्रूर और
एतद्	२. उन (श्रीकृष्ण के चले जाने का)	कृतवर्माणौ	६. कृतवर्मा ने
अन्तरम्	३. अवसर	मणिः	९. मणि
राजन्	१. हे राजन् !	कस्मात्	१०. क्यों
शतधन्वानम्	७. शतधन्वा से आकर	न	११. नहीं
ऊचतुः ।	८. कहा (सत्राजित से)	गृह्यते ॥	१२. ले लेते

श्लोकार्थ—हे राजन् ! उन श्रीकृष्ण के चले जाने का अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से कहा—सत्राजित से मणि क्यों नहीं ले लेते ॥

चतुर्थः श्लोकः

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ।
कृष्णायादान्न सत्राजित् कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ॥४॥

पदच्छेद— यः अस्मभ्यम् संप्रतिश्रुत्य कन्या रत्नम् विगर्ह्य नः ।
कृष्णाय अदात् न सत्राजित् कस्मात् भ्रातरम् अन्वियात् ॥

शब्दार्थ—

यः	१. जिसने (अपनी)	कृष्णाय	८. कन्या श्रीकृष्ण को
अस्मभ्यम्	४. हमें	अदात्	९. दे दी
संप्रतिश्रुत्य	५. देने का वायदा करके	न	१३. न
कन्या	२. श्रेष्ठ कन्या	सत्राजित्	१०. वह सत्राजित् अपने
रत्नम्	३. रत्न	कस्मात्	१२. क्यों
विगर्ह्य	७. तिरस्कार करके	भ्रातरम्	११. भाई प्रसेन का
नः ।	६. हमारा	अन्वियात् ॥	१४. अनुगमन करे (मारा जाय)

श्लोकार्थ—जिसने अपनी श्रेष्ठ कन्या रत्न हमें देने का वायदा करके हमारा तिरस्कार करके कन्या श्रीकृष्ण को दे दी, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेन का क्यों न अनुगमन करे (मारा जाय) ॥

पञ्चमः श्लोकः

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः।
शयानमवधील्लोभात् स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥

पदच्छेद— एवम् भिन्न मतिः ताभ्याम् सत्राजितम् असत्तमः।
शयानम् अवधीत् लोभात् सः पापः क्षीणजीवितः ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	शयनम्	१०.	सोये हुये
भिन्नमतिः	३.	बहकाये गये	अवधीत्	१३.	मार डाला
ताभ्याम्	२.	उन दोनों के द्वारा	लोभात्	१२.	लोभ वश
सत्राजितम्	११.	सत्राजित को	सः	४.	उस
असत्तमः।	५.	दुष्ट एवं	पापः	८.	पापी (शतधन्वा) ने
			क्षीणजीवितः ॥	६.	स्वल्प जीवन वाले

श्लोकार्थ—इस प्रकार उन दोनों के द्वारा बहकाये गये उस दुष्ट पापी एवं स्वल्प जीवन वाले शतधन्वा ने सोये हुये सत्राजित को लोभवश मार डाला ॥

षष्ठः श्लोकः

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्।
हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥

पदच्छेद— स्त्रीणाम् विक्रोशमानानाम् क्रन्दन्तीनाम् अनाथवत्।
हत्वा पशून् सौनिकवत् मणिम् आदाय जग्मिवान् ॥

शब्दार्थ—

स्त्रीणाम्	१.	स्त्रियों के	हत्वा	८.	मारता है (वैसे ही मार कर) वह
विक्रोशमानानाम्	३.	चिल्लाने पर भी	पशून्	७.	पशुओं को
क्रन्दन्तीनाम्	२.	रोने तथा	सौनिकवत्	६.	जैसे कसाई
अनाथ	४.	अनाथ के	मणिम्	९.	मणि को
वत्।	५.	समान	आदाय	१०.	लेकर
			जग्मिवान् ॥	११.	चला गया

श्लोकार्थ—स्त्रियों के रोने तथा चिल्लाने पर भी अनाथ के समान जैसे कसाई पशुओं को मारता है, वैसे ही मार कर वह मणि को लेकर चला गया ॥

सप्तमः श्लोकः

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥७॥

पदच्छेद— सत्यभामा च पितरम् हतम् वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत् तात तात इति हा हता अस्मीति मुह्यती ॥

शब्दार्थ—

सत्यभामा	२. सत्यभामा	व्यलपत्	१०. विलाप करने लगीं
च	१. तथा	तात	७. पिता जी
पितरम्	३. पिता को	तात	८. पिता जी
हतम्	४. निहत	इति	९. यह कहकर
वीक्ष्य	५. देखकर	हा हता	११. हाय मैं मारी गई
शुचार्पिता ।	६. शोक के अधीन होकर	अस्मीति	१२. हूँ
		मुह्यती ॥	१३. यह कहकर बेहोश हो गईं

श्लोकार्थ—तथा सत्यभामा पिता निहत को देखकर शोक के अधीन होकर पिता जी पिता जी यह कहकर विलाप करने लगीं। और हाय मैं मारी गई हूँ यह कहकर बेहोश हो गईं ॥

अष्टमः श्लोकः

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ।
कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥८॥

पदच्छेद— तैल द्रोण्याम् मृतम् प्रास्य जगाम गज साह्वयम् ।
कृष्णाय विदित अर्थाय तप्ता आचख्यौ पितुः वधम् ॥

शब्दार्थ—

तैल	१. तैल के	कृष्णाय	९. श्रीकृष्ण को
द्रोण्याम्	२. कढ़ाय में	विदित	८. पहले से ही जानने वाले
मृतम्	३. मृतक को	अर्थाय	७. सारी स्थिति को
प्रास्य	४. रखकर	तप्ता	१०. दुःखी होकर
जगाम	६. गईं (और)	आचख्यौ	१२. बताने लगीं
गजसाह्वयम् ।	५. हस्तिनापुर को	पितुः वधम् ॥	११. पिता के वध की बात

श्लोकार्थ—तैल के कढ़ाये में मृतक को रखकर हस्तिनापुर को गईं। सारी स्थिति को पहले से ही जानने वाले श्रीकृष्ण को दुःखी होकर पिता के वध की बात बताने लगीं ॥

नवमः श्लोकः

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥

पदच्छेद— तत् आकर्ण्य ईश्वरौ राजन् अनुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमम् कष्टम् इति अस्राक्षौ विलेपतुः ॥

शब्दार्थ—

तत्	२.	वह	अहो	८.	आह !
आकर्ण्य	३.	सुनकर	नः	९.	हम लोगों पर
ईश्वरौ	४.	प्रभु श्रीकृष्ण और बलराम	परमम्	१०.	बड़ी
राजन्	१.	हे राजन् !	कष्टम्	११.	विपत्ति आ गयी
अनुसृत्य	६.	अनुसरण करते हुये	इति	१२.	यह कहकर
नृलोकताम् ।	५.	मनुष्य लोक का	अस्राक्षौ	७.	आँखों में आँसू भरकर
			विलेपतुः ॥	१३.	विलाप करने लगे

श्लोकार्थ—हे राजन् ! प्रभु श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्य लोक का अनुसरण करते हुये आँखों में आँसू भरकर आह ! हम लोगों पर बड़ी विपत्ति आ गयी यह कहकर विलाप करने लगे ॥

दशमः श्लोकः

आगत्य भगवांस्तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

पदच्छेद— आगत्य भगवान् तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानम् आरेभे हन्तुम् हर्तुम् मणिम् ततः ॥

शब्दार्थ—

आगत्य	६.	आकर	शतधन्वानम्	७.	शतधन्वा को
भगवान्	१.	भगवान् श्रीकृष्ण	आरेभे	१२.	उद्योग करने लगे
तस्मात्	४.	वहाँ से	हन्तुम्	८.	मारने का
सभार्यः	२.	पत्नी सहित और	हर्तुम्	११.	छीनने का
साग्रजः	३.	बड़े भाई बलराम के साथ	मणिम्	१०.	मणि
पुरम् ।	५.	द्वारकापुरी में	ततः ॥	९.	तथा उससे

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण पत्नी सहित और बड़े भाई बलराम के साथ वहाँ से द्वारकापुरी में आकर शतधन्वा को मारने का तथा उससे मणि छीनने का उद्योग करने लगे ॥

एकादशः श्लोकः

सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥११॥

पदच्छेद— सः अपि कृष्ण उद्यमम् ज्ञात्वा भीतः प्राण परीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणम् अयाचत सः च अब्रवीत् ॥

शब्दार्थ—

सः	१. उसने	साहाय्ये	८. सहायता		
अपि	२. भी	कृतवर्माणम्	७. कृतवर्मा से		
कृष्ण	३. श्रीकृष्ण का	अयाचत	९. माँगी		
उद्यमम्	४. प्रयत्न	सः	११. उस कृतवर्मा ने		
ज्ञात्वा भीतः	५. जान कर भयभीत होकर	च	१०. तब		
प्राणपरीप्सया ।	६. प्राण बचाने के लिये	अब्रवीत् ॥	१२. कहा		

श्लोकार्थ—उसने भी श्रीकृष्ण का प्रयत्न जान कर भयभीत हो कर प्राण बचाने के लिये कृतवर्मा से सहायता माँगी, तब उस कृतवर्मा ने कहा ॥

द्वादशः श्लोकः

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥

पदच्छेद— नः अहम् ईश्वरयोः कुर्याम् हेलनम् राम कृष्णयोः ।
कः नु क्षेमाय कल्पेत तयोः वृजिनम् आचरन् ॥

शब्दार्थ—

न	५. नहीं	कः नु	१०. कौन
अहम् ईश्वरयोः	१. मैं सर्वशक्तिमान्	क्षेमाय	११. कुशल से
कुर्याम्	६. कर सकता	कल्पेत	१२. रह सकता है
हेलनम्	४. तिरस्कार	तयोः	७. उन दोनों का
राम	२. बलराम और	वृजिनम्	८. अपराध
कृष्णयोः ।	३. श्रीकृष्ण का	आचरन् ॥	९. करके

श्लोकार्थ—मैं सर्वशक्तिमान् बलराम और श्रीकृष्ण का तिरस्कार नहीं कर सकता । उन दोनों का अपराध करके कौन कुशल से रह सकता है ॥

त्रयोदशः श्लोकः

कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ।
जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥१३॥

पदच्छेद— कंसः सह अनुगः अपीतः यत् द्वेषात् त्याजितः श्रिया ।
जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथः गतः ॥

शब्दार्थ—

कंसः सह	२.	कंस साथ	जरासन्धः	७.	जरासन्ध
अनुगः	३.	अनुयायियों के	सप्तदश	८.	सत्रह बार
अपीतः	४.	मारा गया (तथा)	संयुगान्	९.	युद्धों में
यत् द्वेषात्	१.	जिनसे द्वेष करने से	विरथः	१०.	रथ हीन होकर
त्याजितः	६.	खो बैठा (तथा)	गतः ॥	११.	भाग गया
श्रिया ।	५.	लक्ष्मी को			

श्लोकार्थ—जिनसे द्वेष करने से कंस अनुयायियों के साथ मारा गया और लक्ष्मी को खो बैठा। तथा जरासन्ध सत्रह बार युद्ध में रथ हीन होकर भाग गया ।।

चतुर्दशः श्लोकः

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ।।१४।।

पदच्छेद— प्रति आख्यातः सः च अक्रूरम् पार्ष्णिग्राहम् अयाचत ।
सः अपि आह कः विरुध्येत विद्वान् ईश्वरयोः बलम् ।।

शब्दार्थ—

प्रति आख्यातः	१.	कृतवर्मा के अस्वीकार करने पर	सः अपि	६.	उस अक्रूर ने भी
सः च	२.	उसने	आह कः	७.	कहा कौन
अक्रूरम्	३.	अक्रूर से	विरुध्येत	११.	विरोध करे
पार्ष्णिग्राहम्	४.	सहायता को	विद्वान्	८.	समझदार व्यक्ति
अयाचत ।	५.	याचना की	ईश्वरयोः	९.	दो सर्वशक्तिमानों के
			बलम् ।।	१०.	बल का

श्लोकार्थ—कृतवर्मा के अस्वीकार करने पर उसने अक्रूर से सहायता की याचना की। उस अक्रूर ने कहा कौन समझदार व्यक्ति दो सर्व शक्तिमानों के बल का विरोध करे ।।

पञ्चदशः श्लोकः

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥१५॥

पदच्छेद—
य: इदम् लीलया विश्वम् सृजति अवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजः यस्य न विदुः मोहित अजया ॥

शब्दार्थ—

यः	१. जो	चेष्टाम्	६. चेष्टा को
इदम्	३. इस	विश्वसृजः	१२. ब्रह्मा भी
लीलया	२. खेल-खेल में	यस्य	८. जिनकी
विश्वम्	४. संसार की	न विदुः	१३. नहीं जानते हैं
सृजति	५. सृष्टि	मोहित	११. मोहित होकर
अवति	६. रक्षा	अजया ॥	१०. माया से
हन्ति च ।	७. और संहार करता है		

श्लोकार्थ—जो खेल-खेल में इस संसार की सृष्टि रचना और संहार करते हैं। जिनकी चेष्टा को माया से मोहित होकर ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं ॥

षोडशः श्लोकः

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥१६॥

पदच्छेद—
यः सप्तहायनः शैलम् उत्पाट्य एकेन पाणिना ।
दधार लीलया बालः उच्छिलीन्ध्रम् इव अर्भकः ॥

शब्दार्थ—

यः	१. जिन	दधार	९. धारण किया
सप्तहायनः	२. सात वर्ष के	लीलया	८. लीला पूर्वक
शैलम्	४. पहाड़ को	बालः	३. बालक ने
उत्पाट्य	७. उखाड़ कर	उच्छिलीन्ध्रम्	१२. गोबर के छत्ते को (उखाड़ लेता है)
एकेन	५. एक	इव	१०. जैसे
पाणिना ।	६. हाथ से	अर्भकः ॥	११. बालक

श्लोकार्थ—जिन सात वर्ष के बालक ने पहाड़ को एक हाथ से उखाड़ कर लीलापूर्वक धारण किया जैसे बालक गोबर के छत्ते को उखाड़ लेता है ॥

सप्तदशः श्लोक

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥

पदच्छेद— नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अद्भुत कर्मणे ।
अनन्ताय आदि भूताय कूटस्थाय आत्मने नमः ॥

शब्दार्थ—

नमः	४. नमस्कार है	अनन्ताय	७. अनन्त
तस्मै	१. उन	आदि	८. सबके आदि
भगवते	२. भगवान्	भूताय	९. बने हुये
कृष्णाय	३. श्रीकृष्ण को	कूटस्थाय	१०. एक रस
अद्भुत	५. अद्भुत	आत्मने	११. आत्म स्वरूप को
कर्मणे ।	६. कर्म वाले	नमः ॥	१२. नमस्कार है

श्लोकार्थ— उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। अद्भुत कर्म करने वाले, अनन्त, सबके आदि बने हुये, एक रस, आत्म स्वरूप को नमस्कार है ॥

अष्टादशः श्लोकः

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

पदच्छेद— प्रति आख्यातः सः तेन अपि शत धन्वा महामणिम् ।
तस्मिन् न्यस्य अश्वम् आरुह्य शतयोजनगम् ययौ ॥

शब्दार्थ—

प्रति आख्यातः	३. अस्वीकार कर देने पर	तस्मिन्	७. उसी के पास
सः	४. वह	न्यस्य	८. रखकर
तेन	१. उस अक्रूर के	अश्वम्	११. घोड़े पर
अपि	२. भी	आरुह्य	१२. चढ़कर
शतधन्वा	५. शतधन्वा	शतयोजन	९. सौ योजन
महामणिम् ।	६. महामणि को	गम्	१०. लगातार चलने वाले
		ययौ ॥	१३. भाग गया

श्लोकार्थ—उस अक्रूर के भी अस्वीकार कर देने पर वह शतधन्वा महामणि को उसी के पास रखकर सौ योजन लगातार चलने वाले घोड़े पर चढ़कर भाग गया ॥

एकोनविंशः श्लोकः

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

पदच्छेद— गरुडध्वजम् आरुह्य रथम् राम जनार्दनौ ।
अन्वयाताम् महावेगैः अश्वैः राजन् गुरुद्रुहम् ॥

शब्दार्थ—

गरुडध्वजम्	२.	गरुड़ चिह्न से युक्त (तथा)	अन्वयाताम्	१०.	पीछा किया
आरुह्य	६.	चढ़ कर	महावेगैः	३.	बड़े वेग वाले
रथम्	५.	रथ पर	अश्वैः	४.	घोड़े जुते हुये
राम	[illegible].	बलराम और	राजन्	१.	हे राजन् !
जनार्दनौ ।	८.	श्रीकृष्ण ने	गुरुद्रुहम् ॥	९.	गुरु से द्रोह करने वाले का

श्लोकार्थ—हे राजन् ! गरुड़ चिह्न से युक्त तथा बड़े वेग वाले घोड़े जुते हुये रथ पर चढ़ कर बलराम और श्रीकृष्ण ने गुरु से द्रोह करने वाले का पीछा किया ॥

विंशः श्लोकः

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।
पद्भ्यामधावत् सन्त्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद् रुषा ॥२०॥

पदच्छेद— मिथिलायाम् उपवने विसृज्य पतितम् हयम् ।
पद्भ्याम् अधावत् सन्त्रस्तः कृष्णः अपि अन्वद्रवत् रुषा ॥

शब्दार्थ—

मिथिलायाम्	१.	मिथिला के पास	पद्भ्याम्	७.	पैदल ही
उपवने	२.	उपवन में	अधावत्	८.	भागा
विसृज्य	५.	छोड़ कर	सन्त्रस्तः	६.	भयभीत (शतधन्वा)
पतितम्	३.	गिरे हुये	कृष्णः अपि	९.	श्रीकृष्ण भी
हयम् ।	४.	घोड़े को	अन्वद्रवत्	११.	उसके पीछे दौड़े
			रुषा ॥	१०.	क्रोध से

श्लोकार्थ—मिथिला के पास उपवन में गिरे हुये घोड़े को छोड़ कर भयभीत शतधन्वा पैदल ही भागा । श्रीकृष्ण भी क्रोध से उसके पीछे दौड़े ॥

एकविंशः श्लोकः

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससो व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥

पदच्छेद— पदातेः भगवान् तस्य पदातिः तिग्म नेमिना ।
चक्रेण शिरः उत्कृत्य वाससः व्यचिनोत् मणिम् ॥

शब्दार्थ—

पदातेः	३. पैदल भागते हुये	चक्रेण	७. चक्र से
भगवान्	२. भगवान् ने	शिरः	८. सिर
तस्य	४. उसका	उत्कृत्य	९. उतार कर
पदातिः	१. पैदल	वाससः	१०. वस्त्रों में
तिग्म	५. तीक्ष्ण	व्यचिनोत्	१२. ढूंढा
नेमिना ।	६. धार वाले	मणिम् ॥	११. मणि को

श्लोकार्थ—पैदल भगवान् ने पैदल भागते हुये उसका तीक्ष्ण धार वाले चक्र से सिर उतार कर वस्त्रों में मणि को ढूंढा ॥

द्वाविंशः श्लोकः

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥२२॥

पदच्छेद— अलब्ध मणिः आगत्य कृष्णः आह अग्रज अन्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुः मणिः तत्र न विद्यते ॥

शब्दार्थ—

अलब्ध	२. न मिलने पर	वृथा	९. व्यर्थ
मणिः	१. मणि के	हतः	१०. मारा
आगत्य	६. आकर	शतधनुः	८. शतधन्वा को
कृष्णः	३. श्रीकृष्ण ने	मणिः	१२. स्यमन्तक मणि
आह	७. कहा	तत्र	११. उसके पास
अग्रज	४. बड़े भाई के	न	१३. नहीं
अन्तिकम् ।	५. पास	विद्यते ॥	१४. है

श्लोकार्थ—मणि के न मिलने पर श्रीकृष्ण ने बड़े भाई के पास आकर कहा। शतधन्वा को व्यर्थ मारा उसके पास मणि नहीं है ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

पदच्छेद— तत आह बलः नूनम् सः मणिः शतधन्वना ।
कस्मिन् चित् पुरुषे न्यस्तः तम् अन्वेष पुरम् व्रज ॥

शब्दार्थ—

ततः	१. इस पर	कस्मिन्श्चित्	८. किसी
आह	३. कहा	पुरुषे	९. पुरुष के पास
बलः	२. बलराम ने	न्यस्तः	१०. रख दिया है
नूनम्	४. निश्चित ही	तम्	१३. उसका
सः	५. उस	अन्वेष	१४. पता लगाओ
मणिः	६. मणि को	पुरम्	११. तुम द्वारका
शतधन्वना ।	७. शतधन्वाने	व्रज ॥	१२. जाओ (और)

श्लोकार्थ—इस पर बलराम ने कहा निश्चित ही उस मणि को शतधन्वाने किसी पुरुष के पास रख दिया है । तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

पदच्छेद— अहम् विदेहम् इच्छामि द्रष्टुम् प्रियतमम् मम ।
इति उक्त्वा मिथिलाम् राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥

शब्दार्थ—

अहम्	१. मैं	इति	८. यह
विदेहम्	४. मिथिलापति जनक से	उक्त्वा	९. कहकर
इच्छामि	६. चाहता हूँ	मिथिलाम्	११. मिथिला नगरी में
द्रष्टुम्	५. मिलना	राजन्	७. हे राजन् !
प्रियतमम्	३. अत्यन्त प्रिय	विवेश	१२. प्रवेश किया
मम ।	२. अपने	यदुनन्दनः ॥	१०. यदुनन्दन बलराम जी ने

श्लोकार्थ—मैं अपने अत्यन्त प्रिय मिथिलापति जनक से मिलना चाहता हूँ । हे राजन् ! यह कहकर यदुनन्दन बलराम जी ने मिथिला में प्रवेश किया ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ।।२५।।

पदच्छेद — तम् दृष्ट्वा सहसा उत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयामास विधिवत् अर्हणीयम् सम् अर्हणैः ।।

शब्दार्थ— तम्	१.	उन्हें	अर्हयामास	११.	पूजा की
दृष्ट्वा	२.	देखकर	विधिवत्	१०.	विधिवत्
सहसा	३.	एकाएक	अर्हणीयम्	७.	पूजनीय बलराम जी को
उत्थाय	४.	उठकर	सम्	८.	अनेक प्रकार की
मैथिलः	५.	मिथिला नरेश ने	अर्हणैः ।।	९.	सामग्रियों से
प्रीतमानसः ।	६.	मन में प्रसन्न होकर			

श्लोकार्थ—उन्हें देखकर एकाएक उठकर मिथिला नरेश ने मन में प्रसन्न होकर पूजनीय बलराम जी की अनेक प्रकार की सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजा की ।।

षड्विंशः श्लोकः

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षद् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।।२६।।

पदच्छेद— उवास तस्याम् कतिचिन्मिथिलायाम् समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षत् गदाम् काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।।

शब्दार्थ— उवास	१०.	रह गये	जनकेन	३.	जनक के द्वारा
तस्याम्	८.	उसी	महात्मना	२.	महात्मा
कतिचित्	६.	कुछ	ततः	११.	तत्पश्चात्
मिथिलायाम्	९.	मिथिलापुरी में	अशिक्षत्	१६.	शिक्षा ग्रहण की
समाः	७.	वर्षों तक	गदाम्	१५.	गदा की
विभुः	५.	प्रभु बलराम जी	काले	१२.	समय पर
मानितः	४.	सम्मानित	धार्तराष्ट्रः	१३.	धृतराष्ट्र-पुत्र
प्रीतियुक्तेन	१.	आनन्द युक्त	सुयोधनः ।।	१४.	दुर्योधन ने उनसे

श्लोकार्थ—आनन्द युक्त महात्मा जनक के द्वारा सम्मानित प्रभु बलराम जी ने कुछ वर्षों तक उसी मिथिलापुरी में रह गये। तत्पश्चात् समय पर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन ने उनसे गदा की शिक्षा ग्रहण की ।।

सप्तविंशः श्लोकः

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद् विभुः ॥२७॥

पदच्छेद— केशवः द्वारकाम् एत्य निधनम् शतधन्वनः ।
अप्राप्तिम् च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद् विभुः ॥

शब्दार्थ—

			अप्राप्तिम्	९.	न मिलने का समाचार
केशवः	४.	श्रीकृष्ण ने	च मणेः	१०.	और मणि
द्वारकाम्	५.	द्वारका में	प्राह	११.	बता दिया
एत्य	६.	आकर	प्रियायाः	१.	प्रिया का
निधनम्	८.	मृत्यु का	प्रियकृद्	२.	प्रिय कार्य करने वाले
शतधन्वनः ।	७.	शतधन्वा की	विभुः ॥	३.	भगवान्

श्लोकार्थ—प्रिया का प्रिय कार्य करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारका में आकर शतधन्वा की मृत्यु और मणि न मिलने का समाचार बता दिया ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
साकं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः साम्परायिकाः ॥२८॥

पदच्छेद— ततः सः कारयामास क्रियाः बन्धोः हतस्य वै ।
साकम् सुहृद्भिः भगवान् याः याः स्युः साम्परायिकाः ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	साकम्	११.	साथ
सः	२.	उन	सुहृद्भिः	१०.	भाई बन्धुओं के
कारयामास	१२.	करवायीं	भगवान्	३.	भगवान् ने
क्रियाः	८.	श्राद्ध क्रियायें	याः याः	६.	जो-जो
बन्धोः	५.	बन्धु (श्वशुर) की	स्युः	९.	होती हैं (वे सब)
हतस्य वै ।	४.	मारे गये	साम्परायिकः ॥	७	और्ध्वदैहिक

श्लोकार्थ—तदनन्तर उन भगवान् ने मारे गये बन्धु श्वशुर की जो-जो और्ध्वदैहिक श्राद्ध क्रियायें होती हैं वे सब भाई बन्धुओं के साथ करवायीं ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

पदच्छेद— अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधन्वनः वधम् ।
व्यूषतुः भय वित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥

शब्दार्थ—

अक्रूरः	२.	अक्रूर	व्यूषतुः	१०.	भाग खड़े हुये
कृतवर्मा च	३.	कृतवर्मा और	भय	७.	भय से
श्रुत्वा	६.	सुनकर	वित्रस्तौ	८.	घबड़ा कर
शतधन्वनः	४.	शतधन्वा का	द्वारकायाः	९.	द्वारका से
वधम् ।	५.	वध	प्रयोजकौ ॥	१.	उत्तेजित करने वाले

श्लोकार्थ—उत्तेजित करने वाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वा का वध सुनकर भय से घबराकर द्वारका से भाग खड़े हुये ॥

त्रिंशः श्लोकः

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥३०॥

पदच्छेद— अक्रूरे प्रोषिते अरिष्टानि आसन् वै द्वारका ओकसाम् ।
शारीराः मानसाः तापाः मुहुः दैविक भौतिकाः ॥

शब्दार्थ—

अक्रूरे	१.	अक्रूर के	शारीराः	१०.	शारीरिक तथा
प्रोषिते	२.	द्वारका से चले जाने पर	मानसाः	११.	मानसिक
अरिष्टानि	५.	अनेक उपद्रव	तापाः	१२.	कष्ट हुये
आसन् वै	६.	हुये	मुहुः	७.	बार-बार
द्वारका	३.	द्वारका	दैविक	८.	दैविक और
ओकसाम् ।	४.	वासियों को	भौतिकाः ॥	९.	भौतिक निमित्तों से

श्लोकार्थ—अक्रूर के द्वारका से चले जाने पर द्वारकावासियों को अनेक उपद्रव हुये । बार-बार दैविक-भौतिक निमित्तों से शारीरिक तथा मानसिक कष्ट हुये ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥३१॥

पदच्छेद— इति अङ्ग उपदिशन्ति एके विस्मृत्य प्राक् उदाहृतम् ।
मुनिवास निवासे किम् घटेत अरिष्ट दर्शनम् ॥

शब्दार्थ—

इति	६. इस प्रकार	मुनि	९. मुनियों के
अङ्ग	१. हे परीक्षित् !	वास	१०. निवास भूत (भगवान् के)
उपदिशन्ति	७. कहते हैं (भला)	निवासे	११. निवास स्थान (द्वारका में)
एके	२. कुछ लोग	किम्	१२. क्या
विस्मृत्य	५. भूल कर	घटेत	१५. हो सकता है
प्राक्	३. पहले कही हुई	अरिष्ट	१३. अरिष्टों का
उदाहृतम् ।	४. बात को	दर्शनम् ॥	१४. दर्शन

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! कुछ लोग पहले कही हुई बात को भूलकर इस प्रकार कहते हैं। भला मुनियों के निवास भूत भगवान् के निवास स्थान द्वारका में क्या अरिष्टों का दर्शन हो सकता है ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततोऽवर्षत् स्म काशिषु ॥३२॥

पदच्छेद— देवे अवर्षति काशीशः श्वफल्काय आगताय वै ।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततः अवर्षत् स्म काशिषु ॥

शब्दार्थ—

देवे	१. एक बार इन्द्रदेव के	स्वसुताम्	६. अपनी पुत्री
अवर्षति	२. वर्षा न करने पर	गान्दिनीम्	७. गान्दिनी
काशीशः	३. काशी नरेश ने	प्रादात् ततः	८. ब्याह दी तब
श्वफल्काय	५. अक्रूर के पिता श्वफल्क को	अवर्षत् स्म	१०. वर्षा हुई
आगताय वै ।	४. अपने राज्य में आये हुये	काशिषु ॥	९. काशी राज्य में

श्लोकार्थ—एक बार इन्द्रदेव के वर्षा न करने पर काशी नरेश ने अपने राज्य में आये हुये अक्रूर के पिता श्वफल्क को अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी तब काशी राज्य में वर्षा हुई ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

पदच्छेद— तत् सुतः तत् प्रभावः असौ अक्रूरः यत्र यत्र ह।
देवः अभिवर्षते तत्र न उपतापाः न मारिकाः ॥

शब्दार्थ—

तत्	१. श्वफल्क का	देवः	९. इन्द्र
सुतः	२. पुत्र भी	अभिवर्षते	१०. वर्षा करते हैं तथा
तत्	३. वैसा ही	तत्र	८. वहाँ
प्रभावः	४. प्रभाव रखता है और	न	११. न तो
असौ	५. वह	उपतापाः	१२. कष्ट होते हैं और
अक्रूरः	६. अक्रूर भी	न	१३. न
यत्र यत्र ह।	७. जहाँ-जहाँ रहता है	मारिकाः ॥	१४. महामारी होती है

श्लोकार्थ—श्वफल्क का पुत्र भी वैसा ही प्रभाव रखता है। और वह अक्रूर भी जहाँ-जहाँ रहता है, इन्द्र वर्षा करते हैं। तथा वहाँ न तो कष्ट होते हैं, और न महामारी होती है ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम्।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

पदच्छेद— इति वृद्ध वचः श्रुत्वा न एतावत् इह कारणम्।
इति मत्वा समानाय्य प्राह अक्रूरम् जनार्दनः ॥

शब्दार्थ—

इति	१. यह	इति	८. यह
वृद्ध	२. वृद्धों का	मत्वा	९. मानकर
वचः	३. वचन	समानाय्य	११. बुलवाकर
श्रुत्वा न	४. सुनकर नहीं है	प्राह	१३. कहा
एतावत्	६. इतना ही	अक्रूरम्	१०. अक्रूर को
इह	५. यहाँ	जनार्दनः ॥	१२. श्रीकृष्ण ने
कारणम्।	७. कारण		

श्लोकार्थ—यह वृद्धों का वचन सुनकर यहाँ इतना ही कारण नहीं है, यह मान कर अक्रूर को बुलवाकर श्रीकृष्ण ने कहा ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

पदच्छेद — पूजयित्वा अभिभाष्य एनम् कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञात अखिल चित्तज्ञः स्मयमानः उवाच ह ॥

शब्दार्थ—

पूजयित्वा	५.	स्वागत करके	विज्ञात	१.	पहले से जाने हुये
अभिभाष्य	६.	सम्भाषण किया और	अखिल	२.	सम्पूर्ण
एनम्	४.	उसका	चित्तज्ञः	३.	चित्तों के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने
कथयित्वा	९.	कह कर	स्मयमानः	१०.	मुस्कराते हुये
प्रियाः	७.	प्रिय	उवाच ह ॥	११.	कहा
कथाः ।	८.	बातें			

श्लोकार्थ—पहले से जाने हुये सम्पूर्ण चित्तों के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने उसका स्वागत करके सम्भाषण किया और प्रिय बातें कह कर मुस्कराते हुये कहा ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥

पदच्छेद — ननु दानपते न्यस्तः त्वयि आस्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तकः मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वम् एव नः ॥

शब्दार्थ—

ननु	१.	हे	स्यमन्तकः	९.	स्यमन्तक
दानपते	२.	दान धर्म के पालक	मणिः	१०.	मणि
न्यस्तः	११.	रख छोड़ा	श्रीमान्	८.	प्रकाशमान
त्वयि	७.	आपके पास	विदितः	५.	मालूम है कि
आस्ते	१२.	है	पूर्वम्	४.	पहले से ही
शतधन्वना ।	६.	शतधन्वा ने	एव नः ॥	३.	हमें

श्लोकार्थ—हे दानधर्म के पालक ! हमें पहले से ही मालूम है कि शतधन्वा ने आपके पास प्रकाशमान स्यमन्तक मणि रख छोड़ी है ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयापः पिण्डान् विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥३७॥

पदच्छेद— सत्राजितः अनपत्यत्वात् गृह्णीयुः दुहितुः सुताः ।
दायम् निनीय आपः पिण्डान् विमुच्य ऋणं च शेषितम् ॥

शब्दार्थ—

सत्राजितः	१. सत्राजित के	दायम्	१०. उनकी सम्पत्ति का भाग
अनपत्यत्वात्	२. पुत्र न होने से	निनीय	७. देकर
गृह्णीयुः	११. ग्रहण करेंगे	आपः	५. तिलाञ्जलि और
दुहितुः	३. उनकी पुत्री के	पिण्डान्	६. पिण्ड
सुताः ।	४. पुत्र	विमुच्य ऋणं	९. ऋण चुका कर
		च शेषितम् ॥	८. और शेष

श्लोकार्थ— सत्राजित् के पुत्र न होने से उनकी पुत्री के पुत्र तिलाञ्जलि और पिण्ड देकर और शेष ऋण चुका कर उनकी सम्पत्ति का भाग ग्रहण करेंगे ॥

अष्टत्रिंशः श्लोकः

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥३८॥

पदच्छेद— तथापि दुर्धरः तु अन्यैः त्वयि आस्ताम् सुव्रते मणिः ।
किन्तु माम् अग्रजः सम्यक् न प्रतिएति मणिम् प्रति ॥

शब्दार्थ—

तथापि	१. तो भी (मणि का रखना)	किन्तु	८. किन्तु
दुर्धरः तु	३. अत्यन्त कठिन है	माम्	१२. मुझ पर
अन्यैः	२. दूसरों के लिये	अग्रजः	९. बड़े भाई बलराम जी
त्वयि	६. आप ही के पास	सम्यक्	१३. पूरा
आस्ताम्	७. रहे	न प्रतिएति	१४. विश्वास नहीं करते
सुव्रते	४. हे व्रतनिष्ठ	मणिम्	१०. मणि के
मणिम् ।	५. मणि	प्रति ॥	११. सम्बन्ध में

श्लोकार्थ—तो भी मणि का रखना दूसरों के लिये अत्यन्त कठिन है । हे व्रतनिष्ठ ! मणि आप ही के पास रहे । किन्तु बड़े भाई बलराम जी मणि के सम्बन्ध में मुझ पर पूरा विश्वास नहीं करते ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥३९॥

पदच्छेद—
दर्शयस्व महाभाग बन्धूनाम् शान्तिम् आवह ।
अव्युच्छिन्नाः मखाः ते अद्य वर्तन्ते रुक्म वेदयः ॥

शब्दार्थ—

दर्शयस्व	३. मणि दिखा कर (मुझे)	अव्युच्छिन्नाः	८. लगातार
महाभाग	१. हे महाभाग आप	मखाः	८. यज्ञ
बन्धूनाम्	२. मेरे बन्धुओं को	ते अद्य	६. आजकल आपके
शान्तिम्	४. शान्ति	वर्तन्ते	१०. चल रहे हैं
आवह ।	५. प्रदान कीजिये (क्योंकि)	रुक्म वेदयः ।	७. सोने की वेदियों वाले

श्लोकार्थ—हे महाभाग ! आप मेरे बन्धुओं को मणि दिखाकर मुझे शान्ति प्रदान कीजिये । क्योंकि आज कल आपके सोने की वेदियों वाले यज्ञ बराबर चल रहे हैं ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥४०॥

पदच्छेद—
एवम् सामभिः आलब्धः श्वफल्क तनयः मणिम् ।
आदाय वाससा आच्छन्नम् ददौ सूर्य समप्रभम् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. इस प्रकार	आदाय	११. लाकर
सामभिः	२. सांत्वनाओं से	वाससा	६. वस्त्र में
आलब्धः	३. आश्वस्त होकर	आच्छन्नम्	७. लपेटी हुई
श्वफल्क	४. श्वफल्क के	ददौ	१२. दे दी
तनयः	५. पुत्र अक्रूर ने	सूर्य	८. सूर्य के
मणिम् ।	१०. मणि	समप्रभम् ॥	९. समान कान्ति वाली वह

श्लोकार्थ—इस प्रकार सांत्वनाओं से आश्वस्त होकर श्वफल्क के पुत्र अक्रूर ने वस्त्र में लपेटी हुई सूर्य के समान कान्ति वाली वह मणि लाकर दे दी ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः ॥४१॥

पदच्छेद— स्यमन्तकम् दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यः रजः आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयः तस्मै प्रतिअर्पयत् प्रभुः ॥

शब्दार्थ—

स्यमन्तकम्	२.	स्यमन्तक मणि	विमृज्य	७.	मिटाकर
दर्शयित्वा	४.	दिखाकर	मणिना	८.	मणि
ज्ञातिभ्यः	३.	जाति भाइयों को	भूयः	९.	पुनः
रजः	६.	कलंक	तस्मै	१०.	अक्रूर को
आत्मनः ।	५.	अपना	प्रतिअर्पयत्	११.	लौटा दी
			प्रभुः ॥	१.	भगवान् श्रीकृष्ण ने

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक मणि जाति भाइयों को दिखाकर और अपना कलंक मिटा कर पुनः अक्रूर को लौटा दी ॥

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

पदच्छेद—यः तु एतत् भगवतः ईश्वरस्य विष्णोः वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलम् च ।
आख्यानम् पठतिशृणोति अनुस्मरेत् वा दुष्कीर्तिम् अपोह्य याति शान्तिम् ॥

शब्दार्थ—

यः तु	१.	जो	आख्यानम्	९.	आख्यान
एतत्	२.	यह	पठति शृणोति	१०.	पढ़ता है सुनता है
भगवतः	४.	भगवान्	अनुस्मरेत् वा	११.	या स्मरण करता है वह
ईश्वरस्य	३.	सर्वशक्तिमान्	दुष्कीर्तिम्	१२.	कलंक और
विष्णोः	५.	विष्णु का	दुरितम्	१३.	पाप से
वीर्याढ्यम्	६.	पराक्रम से युक्त	अपोह्य	१४.	छूटकर
वृजिन हरम्	७.	पाप हारी	याति	१६.	प्राप्त करता
सुमङ्गलम् च ।	८.	और अतिमङ्गलकारी	शान्तिम् ॥	१५.	शान्ति को

श्लोकार्थ—जो यह सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण का पराक्रम से युक्त पाप हारी और अतिमङ्गलकारी आख्यान पढ़ता है, सुनता है, या स्मरण करता है। वह पाप से छूटकर शान्ति को प्राप्त करता है ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमः अध्यायः ॥५७॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

अष्टपञ्चाशत्तमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥

पदच्छेद— एकदा पाण्डवान् द्रष्टुम् प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ।
इन्द्र प्रस्थम् गतः श्रीमान् युयुधान आदिभिः वृतः ॥

शब्दार्थ—

एकदा	१.	एक बार	इन्द्र प्रस्थम्	९.	इन्द्रप्रस्थ
पाण्डवान्	४.	पाण्डवों से	गतः	१०.	पधारे
द्रष्टुम्	५.	मिलने के लिये	श्रीमान्	६.	श्रीमान्
प्रतीतान्	३.	विश्वस्त	युयुधान आदिभिः	७.	सात्यकि आदि से
पुरुषोत्तमः ।	२.	श्रीकृष्ण	वृतः ॥	८.	युक्त होकर

श्लोकार्थ— एक बार श्रीकृष्ण विश्वस्त पाण्डवों से मिलने के लिये श्रीमान् सात्यकि आदि से युक्त होकर इन्द्र प्रस्थ पधारे ॥

द्वितीयः श्लोकः

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद् वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥२॥

पदच्छेद— दृष्ट्वा तम् आगतम् पार्थाः मुकुन्दम् अखिलईश्वरम् ।
उत्तस्थुः युगपद् वीराः प्राणाः मुख्यम् इव आगतम् ॥

शब्दार्थ—

दृष्ट्वा	५.	देखकर	उत्तस्थुः	९.	उठ खड़े हुये
तम्	२.	उन	युगपद्	८	एक साथ
आगतम्	४.	आये हुये	वीराः	६.	वीर
पार्थाः	७.	पाण्डव (वैसे ही)	प्राणाः	१२.	प्राण के इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं
मुकुन्दम्	३.	श्रीकृष्ण को	मुख्यम्	११.	मुख्य
अखिलेश्वरम् ।	१.	सबके ईश्वर	इव आगतम् ॥	१०.	जैसे आने पर

श्लोकार्थ—सबके ईश्वर उन श्रीकृष्ण को आये हुये देखकर वीर पाण्डव वैसे ही एक साथ उठ खड़े हुये जैसे मुख्य प्राण के आने पर इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं ॥

तृतीयः श्लोकः

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥३॥

पदच्छेद— परिष्वज्य अच्युतम् वीराः अङ्ग सङ्ग हत एनसः ।
स अनुरागस्मितम् वक्त्रम् वीक्ष्य तस्य मुदम् ययुः ॥

शब्दार्थ—

परिष्वज्य	२.	आलिंगन करके	स अनुराग	८.	अनुराग भरी
अच्युतम्	१.	श्रीकृष्ण का	स्मितम्	९.	मुसकराहट से युक्त
वीराः	६.	वीर पाण्डव	वक्त्रम्	१०.	मुख को
अङ्ग-सङ्ग	३.	उनके अङ्गों के सङ्ग से	वीक्ष्य	११.	देखकर
हत	४.	विनष्ट	तस्य	७.	उनकी
एनसः ।	५.	पाप वाले	मुदम् ययुः ॥	१२.	आनन्द को प्राप्त हुये

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण का आलिंगन करके उनके अङ्गों के सङ्ग से विनष्ट पाप वाले वीर पाण्डव उनकी अनुराग भरी मुसकराहट से युक्त मुख को देखकर आनन्द को प्राप्त हुये ॥

चतुर्थः श्लोकः

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥४॥

पदच्छेद— युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पाद अभिवन्दनम् ।
फाल्गुनम् परिरभ्य अथ यमाभ्याम् च अभिवन्दितः ॥

शब्दार्थ—

युधिष्ठिरस्य	१.	श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर	फाल्गुनम्	६.	अर्जुन का
भीमस्य	२.	और भीमसेन के	परिरभ्यअथ	७.	आलिङ्गन किया
कृत्वा	५.	करके	यमाभ्याम्	९.	नकुल-सहदेव ने
पाद	३.	चरणों में	च	८.	और
अभिवन्दनम् ।	४.	प्रणाम	अभिवन्दितः ॥	१०.	उनकी वन्दना की

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर और भीमसेन के चरणों में प्रणाम करके अर्जुन का आलिगन किया और नकुल-सहदेव ने उनकी वन्दना की ॥

पञ्चमः श्लोकः

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥५॥

पदच्छेद— परमासने आसीनम् कृष्णा कृष्णम् अनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किञ्चित् शनैः एत्य अभ्यवन्दत ॥

शब्दार्थ—

परमासन	७.	श्रेष्ठ आसन पर	नवोढा	३.	नवविवाहिता होने के कारण
आसीनम्	८.	बैठे हुये	व्रीडिता	५.	लजाती हुई
कृष्णा	२.	द्रौपदी ने	किञ्चित्	४.	कुछ
कृष्णम्	९.	श्रीकृष्ण को	शनैः एत्य	६.	धीरे-धीरे आकर
अनिन्दिता ।	१.	अति सुन्दरी	अभ्यवन्दत ॥	१०	प्रणाम किया

श्लोकार्थ—अति सुन्दरी द्रौपदी ने नवविवाहिता होने के कारण कुछ लजाती हुई धीरे-धीरे आकर श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुये श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥

षष्ठः श्लोकः

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥६॥

पदच्छेद— तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितः च अभिवन्दितः ।
निषसाद आसने अन्ये च पूजिताः परि उपासत ॥

शब्दार्थ—

तथैव	१.	उसी प्रकार	निषसाद	८.	बैठ गये
सात्यकिः	३.	सात्यकि का	आसने	७.	एक आसन पर
पार्थैः	२.	पाण्डवों ने	अन्ये च	९.	दूसरे यदुवंशी भी
पूजितः	४.	पूजन	पूजिताः	१०.	सत्कृत होने पर
च	५.	और	परि	११.	चारों ओर
अभिवन्दितः ।	६.	अभिवन्दन किया (वे)	उपासत ॥	१२.	बैठे गये

श्लोकार्थ—उसी प्रकार पाण्डवों ने सात्यकि का पूजन और अभिवन्दन किया । वे एक आसन पर बैठ गये । दूसरे यदुवंशी भी सत्कृत होने पर चारों ओर बैठ गये ॥

सप्तमः श्लोकः

पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥७॥

पदच्छेद— पृथाम् समागत्य कृत अभिवादनः तया अतिहार्द आर्द्रदृशा अभिरम्भितः ।
आपृष्टवान् ताम् कुशलम् सहस्नुषाम् पितृष्वसारम् परिपृष्ट बान्धवः ॥

शब्दार्थ—

पृथाम्	१.	इसके बाद कुन्ती के पास	आपृष्टवान्	१५.	पूछा
समागत्य	२.	जाकर	ताम्	१३.	उनका
कृत	४.	किया	कुशलम्	१४.	कुशल
अभिवादनः	३.	प्रणाम	सहस्नुषाम्	१२.	पतोहू द्रौपदी सहित
तया	५.	उन्होंने	पितृष्वसारम्	११.	फुआ से
अतिहार्द	६.	अत्यन्त स्नेह वश	परिपृष्ट	१०.	पूछा (श्रीकृष्ण ने भी)
आर्द्रदृशा	७.	गीली आँखों से (श्रीकृष्ण का)	बान्धवः ॥	९.	बन्धुओं का कुशल मङ्गल
अभिरम्भितः ।	८.	आलिंगन किया (और)			

श्लोकार्थ— इसके बाद कुन्ती के पास जाकर प्रणाम किया । उन्होंने अत्यन्त स्नेह वश गीली आँखों से श्रीकृष्ण का आलिङ्गन न किया उत्तर बन्धुओं का कुशल मङ्गल पूछा । श्रीकृष्ण ने भी फुआ से पतोहू द्रौपदी सहित उनका कुशल पूछा ॥

अष्टमः श्लोकः

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ।
स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥

पदच्छेद— तम् आह प्रेम वैक्लव्य रुद्धकण्ठा अश्रु लोचना ।
स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशअपाय आत्मदर्शनम् ॥

शब्दार्थ—

तम्	११.	उन भगवान् से	स्मरन्ती	८.	स्मरण करती हुई (कुन्ती)
आह	१२.	बोली	तान्	५.	उन
प्रेम	१.	स्नेह की	बहून्	६.	बहुत से
वैक्लव्य	२.	विह्वलता से	क्लेशान्	७.	क्लेशों का
रुद्धकण्ठा	३.	रुंधे हुये गले से	क्लेशअपाय	१०.	क्लेशों को मिटाने वाले
अश्रु लोचना ।	४.	डबडबाई आँखों वाली	आत्मदर्शनम् ॥	९.	अपने दर्शन से

श्लोकार्थ— स्नेह की विह्वलता से रुंधे हुये गले से डबडबाई आँखों वाली उन बहुत से क्लेशों का स्मरण करती हुई कुन्ती अपने दर्शन से क्लेशों को मिटाने वाले उन भगवान् से बोलीं ॥

नवमः श्लोकः

तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ।
ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥९॥

पदच्छेद— तदैव कुशलम् नः अभूत् सनाथाः ते कृताः वयम् ।
ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितः त्वया ॥

शब्दार्थ—

तदैव	७.	उसी समय	ज्ञातीन् नः	२.	हमारे सम्बन्धियों को
कुशलम् नः	८.	हमारा कल्याण	स्मरता	३.	स्मरण करते हुये
अभूत्	९.	हो गया	कृष्ण	१.	हे कृष्ण ! जब
सनाथाः ते	११.	उसने सनाथ	भ्राता मे	५.	मेरे भाई अक्रूर को
कृताः	१२.	कर दिया	प्रेषितः	६.	भेजा
वयम् ।	१०.	हमें	त्वया ॥	४.	तुमने

श्लोकार्थ—हे कृष्ण ! जब हम सम्बन्धियों का स्मरण करते हुये तुमने मेरे भाई अक्रूर को भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हमें तुमने सनाथ कर दिया ॥

दशमः श्लोकः

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ।
तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

पदच्छेद— न ते अस्ति स्वपर भ्रान्तिः विश्वस्य सुहृद् आत्मनः ।
तथापि स्मरताम् शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥

शब्दार्थ—

न	६.	नहीं	तथापि	८.	तो भी
ते	३.	स्वामी तुम्हें	स्मरताम्	१०.	स्मरण करने वालों के
अस्ति	७.	है	शश्वत्	९.	सदा
स्वपर	४.	अपने और पराये का	क्लेशान्	१३.	क्लेशों को
भ्रान्तिः	५.	भ्रम	हंसि	१४.	मिटा देते हैं
विश्वस्य	१.	हे संसार के !	हृदय	११.	हृदय में
सुहृद् आत्मनः ।	२.	मित्र एवं आत्मस्वरूप	स्थितः ॥	१२.	स्थित होकर

श्लोकार्थ—हे संसार के मित्र ! एवं आत्म स्वरूप स्वामी ! तुम्हें अपने और पराये का भ्रम नहीं है । तो भी सदा स्मरण करने वालों के हृदय में स्थित होकर क्लेशों को मिटा देते हो ॥

एकादशः श्लोकः

युधिष्ठिर उवाच— किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

पदच्छेद— किम् नः आचरितम् श्रेयः न वेद अहम् अधीश्वर।
योगेश्वराणाम् दुर्दर्शः यत् नः दृष्टः कुमेधसाम् ॥

शब्दार्थ—

किम् नः	२.	हमारा कौन सा	योगेश्वराणाम्	८.	योगेश्वरों को भी
आचरितम्	४.	साधन	दुर्दर्शः	९.	कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले
श्रेयः	३.	कल्याणकारी	यत्	७.	क्योंकि
न वेद	६.	नहीं जानती हूँ	नः	१०.	हम
अहम्	५.	यह मैं	दृष्टः	१२.	दिखलाई पड़े हो
अधीश्वर।	१.	हे सर्वेश्वर!	कुमेधसाम् ॥	११.	कुबुद्धियों को (आप)

श्लोकार्थ—हे सर्वेश्वर! हमारा कौन सा कल्याणकारी साधन है, यह मैं नहीं जानती हूँ। क्योंकि योगेश्वरों को भी कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले, हम कुबुद्धियों को आप दिखाई पड़े हो ॥

द्वादशः श्लोकः

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम्।
जनयन् नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥१२॥

पदच्छेद— इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सः अभ्यर्थितः सुखम्।
जनयन् नयनानन्दम् इन्द्रप्रस्थ ओकसाम् विभुः ॥

शब्दार्थ—

इति वै	५	इस प्रकार	जनयन्	८.	देते हुये
वार्षिकान्	९.	बरसात के	नयनानन्दम्	७.	नेत्रों का आनन्द
मासान्	१०.	चार महीनों तक	इन्द्रप्रस्थ	५.	इन्द्रप्रस्थ के
राज्ञा	२.	राजा युधिष्ठिर के	ओकसाम्	६.	निवासियों को
सः अभ्यर्थितः	३.	प्रार्थना करने पर वे	विभुः ॥	४.	भगवान् श्रीकृष्ण
सुखम्।	११.	सुख पूर्वक (वहीं रहे)			

श्लोकार्थ—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर के प्रार्थना करने पर वे भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के निवासियों को नेत्रों का आनन्द देते हुये बरसात के चार महीनों तक सुख पूर्वक वहीं पर रहे ॥

त्रयोदशः श्लोकः

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥१३॥

पदच्छेद— एकदा रथम् आरुह्य विजयः वानर ध्वजम् ।
गाण्डीवम् धनुः आदाय तूणौ च अक्षय सायकौ ॥

शब्दार्थ—

एकदा	१.	एक बार	गाण्डीवम्	२.	गाण्डीव नामक
रथम्	११.	रथ पर	धनुः	३.	धनुष
आरुह्य	१२.	चढ़कर (प्रस्थान किया)	आदाय	७.	लेकर
विजयः	८.	अर्जुन ने	तूणौ	६.	दो तरकश
वानर	९.	वानर के चिह्न की	च	४.	तथा
ध्वजम् ।	१०.	ध्वजा वाले	अक्षय सायकौ ॥	५.	अक्षय बाण वाले

श्लोकार्थ—एक बार गाण्डीव नामक धनुष लेकर तथा अक्षय बाण वाले दो तरकश लेकर अर्जुन ने वानर चिह्न की ध्वजा वाले रथ पर चढ़कर प्रस्थान किया ॥

चतुर्दशः श्लोकः

साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् ।
बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥१४॥

पदच्छेद— साकम् कृष्णेन सन्नद्धः विहर्तुम् विपिनम् वनम् ।
बहु व्यालमृग आकीर्णम् प्राविशत् पर वीरहा ॥

शब्दार्थ—

साकम्	४.	साथ	बहु	६.	बहुत से
कृष्णेन	३.	श्रीकृष्ण के	व्यालमृग	७.	सर्पों और पशुओं से
सन्नद्धः	५.	कवच पहन कर	आकीर्णम्	८.	भरे हुये
विहर्तुम्	११.	शिकार के लिये	प्राविशत्	१२.	प्रवेश किया
विपिनम्	९.	घने	पर	१.	शत्रु
वनम् ।	१०.	वन में	वीरहा ॥	२.	वीरों को मारने वाले (अर्जुन ने)

श्लोकार्थ—शत्रु वीरों को मारने वाले अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ कवच पहन कर बहुत से सर्पों और पशुओं से भरे हुये घने वन में शिकार के लिये प्रवेश किया ॥

पञ्चदशः श्लोकः

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् ।
शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥१५॥

पदच्छेद— तत्र अविध्यत् शरैः व्याघ्रान् शूकरान् महिषान् रुरून् ।
शरभान् गवयान् खगड्गान् हरिणान् शश शल्लकान् ॥

शब्दार्थ—

तत्र	१.	वहाँ पर उन्होंने	शरभान्	६.	शरभों
अविध्यत	१२.	बेध दिया	गवयान्	७.	गवयों (बड़े हिरन)
शरैः	२.	बाणों से	खड्गान्	८.	गैंडों
व्याघ्रान्	३.	बाघों	हरिणान्	९.	हिरणों
शूकरान्	४.	सूकरों	शश	१०.	खरगोशों तथा
महिषान् रुरून् ।	५.	भैंसों और काले हरिणों को	शल्लकान् ॥	११.	साहियों को

श्लोकार्थ—वहाँ पर उन्होंने बाणों से बाघों, सूकरों, भैंसों और काले हरिणों को शरभों, गवयों (बड़े हिरन), गैंडों, हिरणों, खरगोशों तथा साहियों को बेध दिया ॥

षोडशः श्लोकः

तान् निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्वण्युपागते ।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥१६॥

पदच्छेद— तान् निन्युः किङ्कराः राज्ञे मेध्यान् पर्वणि उपागते ।
तृट् परीतः परिश्रान्तः बीभत्सुः यमुनाम् अगात् ॥

शब्दार्थ—

तान्	३.	उनमें से	उपागते ।	२.	आ जाने पर
निन्युः	७.	ले गये और	तृट् परीतः	८.	प्यासे एवम्
किङ्कराः	५	सेवक गण	परिश्रान्तः	९.	थके
राज्ञे	६.	राजा युधिष्ठिर के पास	बीभत्सुः	१०.	अर्जुन
मेध्यान्	४.	पवित्र पशुओं को	यमुनाम्	११.	यमुना के किनारे
पर्वणि	१.	पर्व	अगात् ॥	१२.	गये

श्लोकार्थ—पर्व आने पर उनमें से पवित्र पशुओं को सेवक गण राजा युधिष्ठिर के पास ले गये। और प्यासे एवम् थके अर्जुन यमुना के किनारे गये ॥

सप्तदशः श्लोकः

नत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

पदच्छेद— तत्र उपस्पृश्य विशदम् पीत्वा वारि महारथौ ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्याम् चरन्तीम् चारु दर्शनाम् ॥

शब्दार्थ—

तत्र	१.	वहाँ	कृष्णौ	७.	श्रीकृष्ण और अर्जुन ने
उपस्पृश्य	२.	आचमन करके	ददृशतुः	१२.	देखा
विशदम्	३.	स्वच्छ	कन्याम्	१०.	एक कन्या को
पीत्वा	५.	पीकर	चरन्तीम्	११.	तप करते हुये
वारि	४.	जल	चारु	८.	सुन्दर
महारथौ ।	६.	दोनों महारथी	दर्शनाम् ॥	९.	दीखने वाली

श्लोकार्थ— वहाँ आचमन करके स्वच्छ जल पीकर दोनों महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन ने सुन्दर दीखने वाली एक कन्या को तप करते हुये देखा ॥

अष्टादशः श्लोकः

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥१८॥

पदच्छेद— ताम् आसाद्य वरारोहाम् सुद्विजाम् रुचिर आननाम् ।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदा उत्तमाम् ॥

शब्दार्थ—

ताम्	११.	उससे	पप्रच्छ	१२.	पूछा
आसाद्य	१०.	पहुँचकर	प्रेषितः	२.	भेजे गये
वरारोहा	९.	सुन्दरी के पास	सख्या	१.	मित्र श्रीकृष्ण के द्वारा
सुद्विजाम्	४.	सुन्दर दाँतों वाली	फाल्गुनः	३.	अर्जुन ने
रुचिर	५.	सुन्दर	प्रमदा	७.	स्त्रियों में
आननाम् ।	६.	मुख वाली और	उत्तमाम् ॥	८.	श्रेष्ठ

श्लोकार्थ—मित्र श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे गये अर्जुन ने सुन्दर दाँतों वाली, सुन्दर मुख वाली और स्त्रियों में श्रेष्ठ सुन्दरी के पास पहुँचकर उससे पूछा ॥

एकोनविंशः श्लोकः

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ।
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१६॥

पदच्छेद— का त्वम् कस्य असि सुश्रोणि कुतः असि किम् चिकीर्षसि ।
मन्ये त्वाम् पतिम् इच्छन्तीम् सर्वम् कथय शोभने ॥

शब्दार्थ—

का त्वम्	२. तुम कौन हो	मन्ये	९. मानता हूँ
कस्यअसि	३. किसकी कन्या हो	त्वाम् पतिम्	७. मैं तुम्हें पति को
सुश्रोणि	१. सुन्दर नितम्बों वाली	इच्छन्तीम्	८. इच्छा वाली
कुतः असि	४. कहाँ से आयी हो	सर्वम्	११. सब बातें
किम्	५. क्या	कथय	१२. बताओ
चिकीर्षसि ।	६. करना चाहती हो	शोभने ॥	१०. हे सुन्दरी !

श्लोकार्थ—सुन्दर नितम्बों वाली तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, कहाँ से आयी हो, क्या करना चाहती हो। मैं तुम्हें पति की इच्छा वाली मानता हूँ। हे सुन्दरी! सब बातें बताओ ॥

विंशः श्लोकः

कालिन्द्युवाच—अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥२०॥

पदच्छेद— अहम् देवस्य सवितुः दुहिता पतिम् इच्छती ।
विष्णुम् वरेण्यम् वरदम् तपः परमम् आस्थिता ॥

शब्दार्थ—

अहम्	१. मैं	विष्णुम्	७. विष्णु को
देवस्य	३. देव को	वरेण्यम्	५. श्रेष्ठ एवं
सवितुः	२. सूर्य	वरदम्	६. वरदायक
दुहिता	४. पुत्री हूँ और	तपः	११. तपस्या
पतिम्	८. पति के रूप में	परमम्	१०. कठोर
इच्छति ।	९. चाहती हूँ (इसलिये)	आस्थिता ॥	१२. कर रही हूँ

श्लोकार्थ—मैं सूर्यदेव की पुत्री हूँ। वरदायक, श्रेष्ठ एवं विष्णु को पति के रूप में चाहती हूँ। इसलिये कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥

एकविंशः श्लोकः

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥२१॥

पदच्छेद— न अन्यम् पतिम् वृणे वीर तम् ऋते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यताम् मे सः भगवान् मुकुन्दः अनाथ संश्रयः ॥

शब्दार्थ—

न	६.	नहीं कर सकती	तुष्यताम्	१२.	प्रसन्न हों
अन्यम्	४.	दूसरे	मे	११.	मुझ पर
पतिम् वृणे	५.	पति का वरण	सः भगवान्	९.	वे भगवान्
वीर तम्	१.	हे वीर ! मैं उन भगवान् को	मुकुन्दः	१०.	श्रीकृष्ण
ऋते	३.	छोड़ कर	अनाथ	७.	अनाथों के
श्रीनिकेतनम् ।	२.	लक्ष्मी के आश्रय	संश्रयः ॥	८.	आश्रय

श्लोकार्थ—हे वीर ! मैं लक्ष्मी के आश्रय उन भगवान् को छोड़ कर दूसरे पति का वरण नहीं कर सकती हूँ । अनाथों के आश्रय वे भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ।।

द्वाविंशः श्लोकः

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥२२॥

पदच्छेद— कालिन्दी इति समाख्याता वसामि यमुना जले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावत् अच्युत दर्शनम् ॥

शब्दार्थ—

कालिन्दी	१.	कालिन्दी	निर्मिते	७.	बनाये गये
इति	२.	यह (मेरा)	भवने	८.	भवन में
समाख्याता	३.	नाम है	पित्रा	६.	पिता जी के द्वारा
वसामि	९.	मैं रहती हूँ	यावत्	१०.	जब-तक
यमुना	४.	यमुना के	अच्युत	११.	भगवान् का
जले ।	५.	जल में	दर्शनम् ॥	१२.	दर्शन नहीं होगा (यहीं रहूँगी)

श्लोकार्थ—कालिन्दी यह मेरा नाम है । यमुना के जल में पिता जी के द्वारा बनाये भवन में मैं रहती हूँ । जब-तक भगवान् का दर्शन नहीं होगा यहीं रहूँगी ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

तथावदत् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ।
रथमारोप्य तद् विद्वान् धर्मराजमुपागमत् ॥२३॥

पदच्छेद— तथा अवदत् गुडाकेशः वासुदेवाय सः अपि ताम् ।
रथम् आरोप्य तत् विद्वान् धर्मराजम् उपागमत् ॥

शब्दार्थ—

तथा	५. सारी बातें	रथम्	१०. रथ पर
अवदत्	६. कह दीं	आरोप्य	११. बैठा कर
गुडाकेशः	२. अर्जुन ने	तत्	७. उसको
वासुदेवाय	४. श्रीकृष्ण से	विद्वान्	८. जानने वाले श्रीकृष्ण
सः	१. उन	धर्मराजम्	१२. युधिष्ठिर के
अपि	३. भी	उपागमत् ॥	१३. पास चले गये
ताम् ।	९. उसको		

श्लोकार्थ—उन अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से सारी बातें कह दीं। उसको जानने वाले श्रीकृष्ण उस कालिन्दी को रथ पर बैठा कर युधिष्ठिर के पास चले गये ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

यदैव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

पदच्छेद— यदा एव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानाम् परम अद्भुतम् ।
कारयामास नगरम् विचित्रम् विश्व कर्मणा ॥

शब्दार्थ—

यदा एव	१. जब	कारयामास	११. बनवा दिया
कृष्णः	२. श्रीकृष्ण से	नगरम्	८. नगर
सन्दिष्टः	३. निवेदन किया (तब उन्होंने)	विचित्रम्	७. और विचित्र
पार्थानाम्	४. पाण्डवों के लिये	विश्व	९. विश्व
परम	५. एक अत्यन्त	कर्मणा ॥	१०. कर्मा के द्वारा
अद्भुतम् ।	६. अद्भुत		

श्लोकार्थ—जब श्रीकृष्ण से निवेदन किया। तब उन्होंने पाण्डवों के लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विश्वकर्मा द्वारा बनवा दिया ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥२५॥

पदच्छेद— भगवान् तत्र निवसन् स्वानाम् प्रिय चिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवम् दातुम् अर्जुनस्य आस सारथिः ॥

शब्दार्थ—

भगवान्	३. भगवान्		अग्नये	७. अग्निदेव को	
तत्र	१. वहाँ		खाण्डवम्	८. खाण्डव वन	
निवसन्	२. निवास करते हुये		दातुम्	९. देने के लिये	
स्वानाम्	४. आत्मीय जनों का		अर्जुनस्य	१०. अर्जुन के	
प्रिय	५. हित		आस	१२. बने	
चिकीर्षया ।	६. करने की इच्छा से		सारथिः ॥	११. सारथी	

श्लोकार्थ—वहाँ निवास करते हुये भगवान् आत्मीय जनों का हित करने की इच्छा से अग्निदेव को खाण्डव वन देने के लिये अर्जुन के सारथी बने ॥

षड्विंशः श्लोकः

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान्श्वेतान् रथं नृप ।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥

पदच्छेद— सः अग्निः तुष्टः धनुः अदात् हयान् श्वेतान् रथम् नृप ।
अर्जुनाय अक्षयौ तूणौ वर्म च अभेद्यम् अस्त्रिभिः ॥

शब्दार्थ—

सः अग्निः	३. उन अग्निदेव ने	अर्जुनाय	४. अर्जुन को
तुष्टः	२. सन्तुष्ट हुये	अक्षयौ	८. दो अक्षय
धनुः	५. धनुष	तूणौ	९. तरकस
अदात्	१४. दिये	वर्म	१३. कवच
हयान् श्वेतान्	६. उजले घोड़े	च	१०. और
रथम्	७. रथ	अभेद्यम्	१२. न भेदन करने योग्य
नृप ।	१. हे राजन् !	अस्त्रिभिः ॥	११. अस्त्र धारियों द्वारा

श्लोकार्थ—हे राजन् ! सन्तुष्ट हुये उन अग्निदेव ने अर्जुन को उजले धनुष, घोड़े, रथ, दो अक्षय तरकस और अस्त्र धारियों द्वारा न भेद न करने योग्य कवच दिये ॥

सप्तविंशः श्लोकः

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ।
यस्मिन् दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥

पदच्छेद— मयः च मोचितः वह्नेः सभाम् सख्ये उपाहरत् ।
यस्मिन् दुर्योधनस्य आसीत् जल-स्थल दृशि भ्रमः ॥

शब्दार्थ—

मयः	२. मय दानव को	यस्मिन्	८. जहाँ पर
च	१. और अर्जुन ने	दुर्योधनस्य	९. दुर्योधन को
मोचितः	४. बचा लिया था (उसने)	आसीत्	१४. हो गया था
वह्नेः	३. अग्नि से	जल	१०. जल और
सभाम्	६. एक सभा भवन	स्थल	११. स्थल में
सख्ये	५. मित्र अर्जुन के लिये	दृशि	१२. दृष्टि का
उपाहरत् ।	७. बना दिया	भ्रमः ॥	१३. भ्रम

श्लोकार्थ—और अर्जुन ने मय दानव को अग्नि से बचा लिया था। उसने मित्र अर्जुन के लिये एक सभा भवन बना दिया। जहाँ पर दुर्योधन को जल में, स्थल और स्थल में जल का भ्रम हो गया था ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥२८॥

पदच्छेद— सः तेन सम् अनुज्ञातः सुहृद्भिः च अनुमोदितः ।
आययौ द्वारकाम् भूयः सात्यकि प्रमुखैः वृतः ॥

शब्दार्थ—

सः	१. वे भगवान् श्रीकृष्ण	आययौ	१२. लौट आये
तेन	२. उन अर्जुन से	द्वारकाम्	११. द्वारका में
समनुज्ञातः	३. अनुमति	भूयः	१०. पुनः
सुहृद्भिः	५. सम्बन्धियों से	सात्यकि	७. सात्यकि
च	४. और	प्रमुखैः	८. आदि के
अनुमोदितः ।	६. अनुमोदन पाकर	वृतः ॥	९. साथ

श्लोकार्थ—वे भगवान् श्रीकृष्ण उन अर्जुन से अनुमति और सम्बन्धियों से अनुमोदन पाकर सात्यकि आदि के साथ पुनः द्वारका में लौट आये ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ।
वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

पदच्छेद— अथ उपयेमे कालिन्दीम् सुपुण्य ऋतु ऋक्षे ऊर्जिते ।
वितन्वन् परमानन्दम् स्वानाम् परम मङ्गलम् ॥

शब्दार्थ—

अथ	१. भगवान् श्रीकृष्ण ने	वितन्वन्	६. विस्तार करते हुये
उपयेमे	११. विवाह कर लिया	परमानन्दम्	३. परम आनन्द तथा
कालिन्दीम्	१०. कालिन्दी से	स्वानाम्	२. स्वजन सम्बन्धियों के
सुपुण्य	७. पवित्र	परम	४. परम
ऋतु ऋक्षे	८. ऋतु और लग्न में	मङ्गलम् ॥	५. मङ्गल का
ऊर्जिते ।	९. शोभित काल में		

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वजन सम्बन्धियों के परम आनन्द तथा परम मङ्गल का विस्तार करते हुये पवित्र ऋतु और लग्न में शोभित काल में कालिन्दी से विवाह किया ॥

त्रिंशः श्लोकः

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

पदच्छेद— विन्द अनुविन्दौ आवन्त्यौ दुर्योधन वश अनुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्ताम् न्यषेधताम् ॥

शब्दार्थ—

विन्द	५. विन्द और	स्वयंवरे	७. स्वयंवर में
अनुविन्द	६. अनुविन्द ने	स्वभगिनीं	१०. अपनी बहन को
आवन्त्यौ	४. अवन्ती (उज्जैन) के रहने वाले	कृष्णे	८. श्रीकृष्ण के प्रति
दुर्योधन	१. दुर्योधन के	सक्ताम्	९. आसक्त
वश	२. वशवर्ती और	न्यषेधताम् ॥	११. रोक दिया
अनुगौ ।	३. अनुयायी		

श्लोकार्थ—दुर्योधन के वशवर्ती और अनुयायी अवन्ती (उज्जैन) के रहने वाले विन्द और अनुविन्द ने स्वयंवर में श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त अपनी बहन को रोक दिया ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

पदच्छेद— राजाधिदेव्याः तनयाम् मित्रविन्दाम् पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णः राजन् राज्ञाम् प्रपश्यताम् ॥

शब्दार्थ—

राजाधिदेव्याः	४. राजाधिदेवी की	हृतवान्	१०. हर ले गये
तनयाम्	५. कन्या	कृष्णः	२. श्रीकृष्ण
मित्रविन्दाम्	६. मित्रविन्दा को	राजन्	१. हे राजन्
पितृष्वसुः ।	३. अपनी फुआ	राज्ञाम्	७. राजाओं के
प्रसह्य	६. बल पूर्वक	प्रपश्यताम् ॥	८. देखते-देखते

श्लोकार्थ—हे राजन् ! श्रीकृष्ण अपनी फुआ राजाधिदेवी की कन्या मित्रविन्दा को राजाओं के देखते-देखते बलपूर्वक हर ले गये ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद् राजातिधार्मिकः ।
तस्य सत्याभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

पदच्छेद— नग्नजित् नाम कौसल्यः आसीत् राजा अति धार्मिकः ।
तस्य सत्या अभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥

शब्दार्थ—

नग्नजित्	३. नग्नजित्	तस्य	६. उसकी
नाम	४. नामक	सत्या	१०. सत्या (एवम्)
कौसल्यः	२. कोशल देश का	अभवत्	१४. थी
आसीत्	८. था	कन्या	१३. एक कन्या
राजा	७. राजा	देवी	१२. सुन्दरी
अति	५. अत्यन्त	नाग्नजिती	११. नाग्नजिती नाम की
धार्मिकः ।	६. धार्मिक	नृप ॥	१. हे परीक्षित् !

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! कौशल देश का नग्नजित् नामक अत्यन्त धार्मिक राजा था । उसकी सत्या एवं नाग्नजिती नाम की एक सुन्दरी कन्या थी ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ।
तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान् ॥३३॥

पदच्छेद— न ताम् शेकुः नृपाः वोढुम् अजित्वा सप्तगोवृषान् ।
तीक्ष्ण शृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीर गन्ध असहान् खलान् ॥

शब्दार्थ—

न	१३.	नहीं कर	तीक्ष्ण	१.	तीखे
ताम्	११.	उस सत्या से	शृङ्गान्	२.	सींगों वाले
शेकुः	१४.	सके	सुदुर्धर्षान्	४.	दुर्दान्त
नृपाः	१०.	राजा लोग	वीर	५.	वीरों की
वोढुम्	१२.	विवाह	गन्ध	६.	गन्ध भी
अजित्वा	९.	न जीत सकने के कारण	असहान्	७.	सहन न करने वाले
सप्तगोवृषान् ।	८.	सात बैलों को	खलान् ॥	३.	दुष्ट

श्लोकार्थ—तीखे सींगों वाले दुष्ट दुर्दान्त वीरों की गन्ध भी सहन न करने वाले सात बैलों को न जीत सकने के कारण राजा लोग उस सत्या से विवाह नहीं कर सके ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः ।
जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

पदच्छेद— ताम् श्रुत्वा वृषजित् लभ्याम् भगवान् सात्वताम् पतिः ।
जगाम कौसल्य पुरम् सैन्येन महता वृतः ॥

शब्दार्थ—

ताम्	३.	उस सत्या के बारे में	जगाम	१२.	पहुँचे
श्रुत्वा	४.	सुनकर	कौसल्य	१०.	कौसल्यपुर
वृषजित्	१.	बैलों को जीतनेवाले के द्वारा	पुरम्	११.	अयोध्या में
लभ्याम्	२.	प्राप्त करने योग्य	सैन्येन	८.	सेना
भगवान्	६.	श्रीकृष्ण	महता	७.	बहुत बड़ी
सात्वताम् पतिः	५.	यदुवंशियों के स्वामी	वृतः ॥	९.	लेकर

श्लोकार्थ—बैलों को जीतने वाले के द्वारा प्राप्त करने योग्य उस सत्या के बारे में सुनकर यदुवंशियों के स्वामी श्रीकृष्ण बहुत बड़ी सेना लेकर कौसल्यपुर अयोध्या में पहुँचे ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

स: कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।
अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥३५॥

पदच्छेद— स: कोसलपतिः प्रीतः प्रति उत्थान आसन आदिभिः ।
अर्हणेन अपि गुरुणा पूजयन् प्रति नन्दितः ॥

शब्दार्थ—

स:	१.	उन	अर्हणेन	८.	पूजा सामग्री से
कोसलपतिः	२.	कोसल नरेश ने	अपि	९.	भी उनकी
प्रीतः	३.	आनन्दित होकर	गुरुणा	७.	बहुत बड़ी
प्रतिउत्थान	४.	उनकी अगवानी की	पूजयन्	१०.	पूजा की (तब)
आसन	५.	और आसन	प्रति	११.	श्रीकृष्ण ने उनका
आदिभिः ।	६.	आदि देकर	नन्दितः ॥	१२.	अभिनन्दन किया

श्लोकार्थ—उन कोसल नरेश ने आनन्दित होकर उनकी अगवानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा सामग्री से भी उनकी पूजा की । तब श्रीकृष्ण ने उनका अभिनन्दन किया ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥३६॥

पदच्छेद— वरम् विलोक्य अभिमतम् समागतम् नरेन्द्र कन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयात् अयम् मे पतिः आशिषः अमलाः करोतु सत्याः यदि मे धृतः व्रतैः ॥

शब्दार्थ—

वरम्	२.	वर को	भूयात्	१४.	होवें (और मेरी)
विलोक्य	४.	देखकर	अयम्	१२.	यही
अभिमतम्	१.	अभीष्ट	मे पतिः	१३.	मेरे पति
समागतम्	३.	आये हुये	आशिषः	१६.	लालसाओं को
नरेन्द्र	५.	राजा की	अमलाः	१५.	विशुद्ध
कन्या	६.	कन्या ने	करोतु सत्याः	१७.	पूर्ण करें
चकमे	८.	अभिलाषा की	यदि मे	९.	यदि मैंने
रमापतिम् ।	७.	लक्ष्मी पति की	धृतः	११.	धारण किया है तो
			व्रतैः ॥	१०.	व्रतों के द्वारा(हृदय में)इनको

श्लोकार्थ—अभीष्ट वर को आये हुये देखकर राजा की कन्या ने लक्ष्मी पति की अभिलाषा की । यदि मैंने व्रतों के द्वारा हृदय में इनको धारण किया है तो यही मेरे पति हों । और मेरी विशुद्ध लालसाओं को पूर्ण करें ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।
लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥३७॥

पदच्छेद – यत् पाद पङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीः अब्जजः सगिरिशः सहलोक पालैः ।
लीलातनूः स्वकृत सेतु परीप्सया ईशः काले दधत् सः भगवान् मम केन तुष्येत् ॥

शब्दार्थ—

यत्पाद	१.	जिनके चरण	स्वकृत	९.	अपनी बनाई हुई
पङ्कजरजः	२.	कमलों की धूलि को	सेतुपरीप्सया	१०.	मर्यादा का पालन करने के लिये
शिरसा	६.	सिर पर	ईशः	८.	जो प्रभु
बिभर्ति	७.	धारण करते हैं	काले	११.	समय-समय पर
श्रीः अब्जजः	३.	लक्ष्मी और ब्रह्मा	दधत्	१३.	ग्रहण करते हैं
सगिरिशः	४.	शंकर सहित	सः भगवान्	१४.	वे भगवान्
सहलोकपालैः ।	५.	साथ अपने लोक पालों के	मम केन	१५.	मेरे किस व्रत से
लीला तनूः	१२.	लीलावतार	तुष्येत्	१६.	सन्तुष्ट होंगे

श्लोकार्थ— जिनके चरण कमलों की धूलि को लक्ष्मी और ब्रह्मा शंकर सहित लोक पालों के साथ सिर पर धारण करते हैं, जो प्रभु अपनी बनाई हुई मर्यादा का पालन करने के लिये समय-समय पर लीलावतार ग्रहण करते हैं, वे भगवान् मेरे किस व्रत से सन्तुष्ट होंगे ॥

अष्टात्रिंशः श्लोकः

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥३८॥

पदच्छेद— अर्चितम् पुनः इति आह नारायण जगत्पते ।
आत्म आनन्देन पूर्णस्य करवाणि किम् अल्पकः ॥

शब्दार्थ—

अर्चितम्	२.	पूजित भगवान् से	आत्म	८.	अपने स्वरूप भूत
पुनः	१.	फिर	आनन्देन	९.	आनन्द से
इति	३.	यह	पूर्णस्य	१०.	परिपूर्ण आपकी
आह	४.	कहा	करवाणि	१२.	सेवा करूँ
नारायण	५.	हे नारायण !	किम्	११.	क्या
जगत्पते ।	६.	हे जगत्पते !	अल्पकः ॥	७.	मैं तुच्छ मनुष्य

श्लोकार्थ— फिर पूजित भगवान् से यह कहा हे नारायण ! हे जगत्पते ! मैं तुच्छ मनुष्य अपने स्वरूप भूत आनन्द से परिपूर्ण आपकी क्या सेवा करूँ ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

श्रीशुक उवाच— तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३९॥

पदच्छेद— तम् आह भगवान् हृष्टः कृत आसन परिग्रहः ।
मेघ गम्भीरया वाचा सस्मितम् कुरु नन्दन ॥

शब्दार्थ—

तम्	११. उनसे	परिग्रहः ।	३. ग्रहण
आह	१२. कहा	मेघ	७. मेघ के
भगवान्	६. भगवान् ने	गम्भीरया	८. समान गम्भीर
हृष्टः	५. प्रसन्न (मन से)	वाचा	९. वाणी में
कृत	४. किये हुये	सस्मितम्	१०. मुसकराते हुये
आसन	२. आसन	कुरुनन्दन ॥	१. हे परीक्षित् !

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! आसन ग्रहण किये हुये प्रसन्न मन से भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से मुसकराते हुये उनसे कहा ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच—

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

पदच्छेद— नरेन्द्र याच्ञा कविभिः विगर्हिता राजन्य बन्धोः निजधर्म वर्तिनः ।
तथापि याचे तव सौहृद इच्छया कन्याम् त्वदीयाम् न हि शुल्कदा वयम् ॥

शब्दार्थ—

नरेन्द्र	१. हे राजन् !	याचे	१३. चाहता हूँ (किन्तु)
याच्ञा	५. याचना का	तवसौहृद	९. आपसे सौहार्द स्थापित करने की
कविभिः	६. विद्वानों ने	इच्छया	१०. इच्छा से (मैं)
विगर्हिता	७. निन्दा की है	कन्याम्	१२. कन्या
राजन्य	३. क्षत्रिय	त्वदीयाम्	११. आपकी
बन्धोः	४. बन्धु की	न हि	१६. नहीं हैं
निज-धर्मवर्तिनः ।	२. अपने धर्म पर आरूढ	शुल्कदा	१५. शुल्क देने वाले
तथापि	८. तो भी	वयम् ॥	१४. हम

श्लोकार्थ—हे राजन् ! अपने धर्म पर आरूढ क्षत्रिय बन्धु की याचना का विद्वानों ने निन्दा की है। तो भी आपसे सौहार्द स्थापित करने की इच्छा से मैं आपकी कन्या चाहता हूँ। किन्तु हम शुल्क देने वाले नहीं हैं ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

राजोवाच— कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ।
गुणैकधाम्नो यस्याङ्के श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥४१॥

पदच्छेद— कः अन्यः ते अभिअधिकः नाथ कन्या वर इह ईप्सितः ।
गुण एक धाम्नः यस्य अङ्के श्रीः वसति अनपायिनी ॥

शब्दार्थ—

कः अन्यः	७.	दूसरा कौन हो सकता है	गुण	८.	गुणों के
ते	५.	आप से	एक	९.	एक मात्र
अभिअधिकः	६.	श्रेष्ठ	धाम्नः	१०.	धाम
नाथ	१.	हे प्रभो !	यस्य	११.	जिन आपके
कन्या	२.	कन्या के लिये	अङ्के श्रीः	१२.	अङ्क में लक्ष्मी
वर इह	४.	वर यहाँ	वसति	१४.	निवास करती हैं
ईप्सितः ।	३.	अभीष्ट	अनपायिनी ॥	१३.	निरन्तर

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! कन्या के लिये अभीष्ट वर यहाँ आप से श्रेष्ठ कौन हो सकता है। गुणों के एक मात्र धाम जिन आप के अङ्क में लक्ष्मी निरन्तर निवास करती है ॥

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥

पदच्छेद— किन्तु अस्माभिः कृतः पूर्वम् समयः सात्वतर्षभ ।
पुंसाम् वीर्य परीक्षार्थम् कन्या वर परीप्सया ॥

शब्दार्थ—

किन्तु	१.	परन्तु	पुंसाम्	६.	पुरुषों के
अस्माभिः	९.	हमने	वीर्य	७.	बल की
कृतः	१२.	किया था	परीक्षार्थम्	८.	परीक्षा करने के लिये
पूर्वम्	१०.	पहले	कन्या	३.	कन्या के
समयः	११.	एक प्रण	वर	४.	वर की
सात्वतर्षभ ।	२.	हे यदुवंश शिरोमणि !	परीप्सया ॥	५.	इच्छा से

श्लोकार्थ—परन्तु हे यदुवंशशिरोमणि ! कन्या के वर की इच्छा से पुरुषों के बल को परीक्षा करने के लिये हमने पहले एक प्रण किया था ॥

त्रयश्चत्वारिंशः श्लोकः

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥

पदच्छेद— सप्त एते गोवृषाः वीर दुर्दान्त दुरवग्रहाः ।
एतैः भग्नाः सुबहवः भिन्नगात्राः नृपात्मजाः ॥

शब्दार्थ—,

सप्तएते	२. ये सातों	एतैः	६. इन्होंने
गोवृषाः	३. बैल (किसी के)	भग्नाः	१०. उत्साह भङ्ग कर दिया है
वीर	१. हे वीर !	सुबहवः	७. बहुत से
दुर्दान्ताः	४. वश में न आने वाले और	भिन्नगात्राः	९. अङ्गों को खण्डित करके
दुरवग्रहाः ।	५. बिना सधाये हुये हैं	नृपात्मजाः ॥	८. राजकुमारों के

श्लोकार्थ—हे वीर ! ये सातों बैल किसी के वश में न आने वाले और बिना सधाये हुये हैं । इन्होंने बहुत से राजकुमारों के अङ्गों को खण्डित करके उनका उत्साह भङ्ग कर दिया है ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

यदिमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥४४॥

पदच्छेद— यत् इमे निगृहीताःस्युः त्वया एव यदुनन्दन ।
वरः भवान् अभिमतः दुहितुः मे श्रियः पते ॥

शब्दार्थ—

यत्	२. यदि	वरः	१२. वर होंगे
इमे	५. इन्हें	भवान्	१०. आप
निगृहीताः स्युः	६. नाथ लें तो	अभिमतः	११. अभीष्ट
त्वया	३. आप	दुहितुः	९. पुत्री के लिये
एव	४. ही	मे	८. मेरी
यदुनन्दन ।	१. हे श्रीकृष्ण !	श्रियः पते ॥	७. हे लक्ष्मीपति !

श्लोकार्थ—हे श्रीकृष्ण ! यदि आप ही इन्हें नाथ लें तो मेरी पुत्री के लिये आप ही अभीष्ट वर होंगे ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥४५॥

पदच्छेद— एवम् समयम् आकर्ण्य बद्ध्वा परिकरम् प्रभुः ।
आत्मानम् सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णात् लीलया एव तान् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. ऐसा	आत्मानम्	७. अपने
समयम्	२. प्रण	सप्तधा	८. सात रूप
आकर्ण्य	३. सुनकर	कृत्वा	९. बनाकर
बद्ध्वा	६. कसकर	न्यगृह्णात्	१३. नाथ दिया
परिकरम्	५. कमर	लीलया	१०. खेल-खेल में
प्रभुः ।	४. भगवान् ने	एव	११. ही
		तान् ॥	१२. उन बैलों को

श्लोकार्थ—ऐसा प्रण सुनकर भगवान् ने कमर कसकर अपने सात रूप बनाकर खेल-खेल में ही उन बैलों को नाथ दिया ॥

षट्चत्वारिंशः श्लोकः

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः ।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान् बालो दारुमयान् यथा ॥४६॥

पदच्छेद— बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिः भग्न दर्पान् हत ओजसः ।
व्यकर्षत् लीलया बद्धान् बालः दारुमयान् यथा ॥

शब्दार्थ—

बद्ध्वा	४. बांधकर	व्यकर्षत्	९. खींचने लगे
तान्	२. उन्हें	लीलया	८. लीला पूर्वक
दामभिः	३. रस्सियों से	बद्धान्	१३. बांधकर घसीटता है
शौरिः	१. श्रीकृष्ण ने	बालः	११. बालक
भग्न	६. भङ्ग करते हुये	दारुमयान्	१२. काठ के बने बैलों को
दर्पान्	५. अभिमान	यथा ॥	१०. जैसे
हत ओजसः ।	७. पौरुष रहित करके		

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने उन्हें रस्सियों से बांधकर अभिमान भङ्ग करते हुये पौरुष रहित करके लीला पूर्वक खींचने लगे, जैसे बालक काठ के बने बैलों को बांध कर घसीटता है ॥

सप्तचत्वारिंशः श्लोकः

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
तां प्रत्यगृह्णाद् भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ॥४७॥

पदच्छेद— ततः प्रीतः सुताम् राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
ताम् प्रति अगृह्णाद् भगवान् विधिवत सदृशीं प्रभुः ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	विस्मितः ।	२.	आश्चर्य चकित
प्रीतः	४.	प्रसन्न होकर	ताम्	११.	उस कन्या का
सुताम्	५.	अपनी कन्या	प्रतिअगृह्णात्	१२.	पाणिग्रहण किया
राजा	३.	राजा ने	भगवान्	८.	भगवान्
ददौ	७.	प्रदान कर दी	विधिवत्	१०	विधिपूर्वक
कृष्णाय	६.	श्रीकृष्ण को	सदृशीम् प्रभुः ॥	९.	प्रभु ने अपने अनुरूप

श्लोकार्थ—तदनन्तर आश्चर्य चकित राजा ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या श्रीकृष्ण को प्रदान कर दी। भगवान् प्रभु ने अपने अनुरूप विधिपूर्वक उस कन्या का पाणिग्रहण किया ॥

अष्टचत्वारिंशः श्लोकः

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥४८॥

पदच्छेद— राजपत्न्यः च दुहितुः कृष्णम् लब्ध्वा प्रियम् पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दम् जातः च परम उत्सवः ॥

शब्दार्थ—

राजपत्न्यः	२.	रानियाँ भी	लेभिरे	१०.	प्राप्त हुईं
च	१.	और	परम	८.	परम
दुहितुः	४.	अपनी पुत्री के	आनन्दम्	९.	आनन्द को
कृष्णम्	३.	होने लगा	जातः	१४.	होने लगा
लब्ध्वा	[illegible].	पाकर	च	११.	और (सब ओर)
प्रियम्	५.	प्रिय	परम	१२.	महान्
पतिम् ।	६.	पति के रूप में	उत्सवः ॥	१३.	उत्सव

श्लोकार्थ—और रानियाँ भी श्रीकृष्ण को अपनी पुत्री के प्रिय पति के रूप में पाकर परम आनन्द को प्राप्त हुईं। और सब ओर महान् उत्सव होने लगा ॥

एकोनपञ्चाशत्तमः श्लोकः

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ।
नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रगलङ्कृताः ॥४९॥

पदच्छेद— शङ्ख भेरी आनकाः नेदुः गीत वाद्य द्विजआशिषः ।
नराः नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रक् अलङ्कृताः ॥

शब्दार्थ—

शङ्ख	१.	शङ्ख	नराः	११.	नर
भेरी	२.	ढोल	नार्यः	१२.	नारियाँ
आनकाः	३.	नगारे	प्रमुदिताः	१३.	आनन्द मनाने लगे
नेदुः	४.	बजाने लगे	सुवासः	८.	सुन्दर वस्त्र
गीत	५.	गाना बजाना	स्रक्	९.	पुष्पों के हार और
द्विज	६.	और ब्राह्मणों के	अलङ्कृताः ॥	१०.	गहनों से सज कर
आशिषः ।	७.	आशीर्वाद होने लगे			

श्लोकार्थ—शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे । गाना, बजाना और ब्राह्मणों के आशीर्वाद होने लगे । सुन्दर वस्त्र, पुष्पों के हार और गहनों से सज कर नर नारियाँ आनन्द मनाने लगे ॥

पञ्चाशत्तमः श्लोकः

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद् विभुः ।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥५०॥

पदच्छेद— दशधेनु सहस्राणि पारिबर्हम् अदात् विभुः ।
युवतीनाम् त्रिसाहस्रम् निष्कग्रीव सुवाससाम् ॥

शब्दार्थ—

दश	२.	दश	युवतीनाम्	६.	युवती दासियाँ
धेनु	४.	गौएँ और	त्रिसाहस्रम्	५.	तीन हजार
सहस्राणि	३.	हजार	निष्क	९.	स्वर्णहार पहने थीं
पारिबर्हम्	१०.	दहेज में	ग्रीव	८.	गले में
अदात्	११.	दीं	सुवाससाम् ॥	७.	जो सुन्दर वस्त्र तथा
विभुः ।	१.	राजा ने			

श्लोकार्थ—राजा ने दश हजार गौएँ और तीन हजार युवती दासियाँ जो सुन्दर वस्त्र तथा गले में स्वर्णहार पहने थीं, दहेज में दीं ॥

द्विपञ्चाशत्तमः श्लोकः

नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् ।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान् नरान् ॥५१॥

पदच्छेद— नव नाग सहस्राणि नागात् शतगुणान् रथान् ।
रथात् शतगुणान् अश्वान् अश्वात् शतगुणान् नरान् ॥

शब्दार्थ—

नव	१. नौ	रथों से	७. रथों से
नाग	३. हाथी	शतगुणान्	८. सौ गुने
सहस्राणि	२. हजार	अश्वान्	९. घोड़े
नागात्	४. हाथियों से	अश्वात्	१०. घोड़ों से
शतगुणान्	५. सौ गुने	शतगुणान्	११. सौ गुने
रथान् ।	६. रथ	नरान् ॥	१२. सेवक दिये

श्लोकार्थ—राजा नग्नजित् ने नौ हजार हाथी, हाथियों से सौ गुने रथ, रथों से सौ गुने घोड़े, घोड़ों से सौ गुने सेवक दिये ॥

एकपञ्चाशत्तमः श्लोकः

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥५२॥

पदच्छेद— दम्पती रथम् आरोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेह प्रक्लिन्न हृदयः यापयामास कोसलः ॥

शब्दार्थ—

दम्पती	५. वर-वधू को	स्नेह	१. वात्सल्य स्नेह से
रथम्	६. रथ पर	प्रक्लिन्न	२. द्रवित
आरोप्य	७. चढ़ाकर	हृदयः	३. हृदय वाले
महत्या	८. एक बड़ी	यापयामास	११. बिदा किया
सेनया	९. सेना के	कोसलः ॥	४. कौसल नरेश ने
वृतौ ।	१०. साथ		

श्लोकार्थ—वात्सल्य स्नेह से द्रवित हृदय वाले कौसल नरेश ने वर-वधू को रथ पर चढ़ाकर एक बड़ी सेना के साथ बिदा किया ॥

त्रिशपञ्चाशत्तमः श्लोकः

श्रुत्वैतद् रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥५३॥

पदच्छेद— श्रुत्वा एतद् रुरुधुः भूपाः नयन्तम् पथि कन्यकाम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षाः यदुभिः गोवृषैः पुरा ॥

शब्दार्थ—

श्रुत्वा	२.	सुनकर	भग्न	५.	नष्ट किये गये
एतद्	१.	यह	वीर्याः	६.	पौरुष वाले और
रुरुधुः	१३.	घेर लिया	सुदुर्मर्षाः	७.	अत्यन्त असहनशील
भूपाः	८.	राजाओं ने	यदुभिः	१२.	यदुवंशियों के साथ
नयन्तम्	११.	ले जाते हुए श्रीकृष्ण को	गोवृषैः	४.	बैलों के द्वारा
पथि	९.	मार्ग में	पुरा ॥	३.	पहले
कन्यकाम् ।	१०.	कन्या को ।			

श्लोकार्थ—यह सुनकर पहले बैलों के द्वारा नष्ट किये गये पौरुष वाले और अत्यन्त असहन शील राजाओं ने मार्ग में कन्या को ले जाते हुये श्रीकृष्ण को यदुवंशियों के साथ घेर लिया ॥

चतुःपञ्चाशत्तमः श्लोकः

तानस्यतः शरव्रातान् बन्धुप्रियकृदर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥

पदच्छेद— तान् अस्यतः शरव्रातान् बन्धु प्रिय कृत् अर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्र मृगान् इव ॥

शब्दार्थ—

तान्	८.	उन राजाओं को	गाण्डीवी	४.	गाण्डीव धनुष धारण करने वाले
अस्यतः	७.	छोड़ते हुये	कालयामास	९.	खदेड़ दिया
शरव्रातान्	६.	बाण समूह	सिंहः	११.	सिंह
बन्धु	१.	बन्धुओं का	क्षुद्र	१२.	क्षुद्र
प्रिय	२.	प्रिय	मृगान्	१३.	पशुओं को (खदेड़ देता है)
कृत्	३.	करने वाले तथा	इव ॥	१०.	जैसे
अर्जुनः ।	५.	अर्जुन ने			

श्लोकार्थ—बन्धुओं का प्रिय करने वाले तथा गाण्डीव धनुष धारण करने वाले अर्जुन ने बाण समूह को छोड़ते हुये उन राजाओं को खदेड़ दिया जैसे सिंह क्षुद्र पशुओं को खदेड़ देता है ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमः श्लोकः

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।
रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः ॥५५॥

पदच्छेद— पारिबर्हम् उपागृह्य द्वारकाम् एत्य सत्यया ।
रेमे यदूनाम् ऋषभः भगवान् देवकी सुतः ॥

शब्दार्थ—

पारिबर्हम्	१. दहेज	रेमे	१०. विहार करने लगे
उपागृह्य	२. ग्रहण करके	यदूनाम्	५. यदुवंशियों में
द्वारकाम्	३. द्वारका	ऋषभः	६. श्रेष्ठ
एत्य	४. आकर	भगवान्	७. भगवान् श्रीकृष्ण
सत्यया ।	९. सत्या के साथ	देवकी सुतः ॥	८. देवकी के पुत्र

श्लोकार्थ—दहेज ग्रहण करके द्वारका आकर यदुवंशियों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण देवकी के पुत्र सत्या के साथ विहार करने लगे ॥

षट्पञ्चाशत्तमः श्लोकः

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः सन्तर्दनादिभिः ॥५६॥

पदच्छेद— श्रुत कीर्तेः सुताम् भद्राम् उपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिः दत्ताम् कृष्णः सन्तर्दन आदिभिः ॥

शब्दार्थ—

श्रुत कीर्तेः	२. श्रुत कीर्ति की	कैकेयी	८. केकय देश की राजकुमारी
सुताम्	३. पुत्री	भ्रातृभिः	६. भाइयों के द्वारा
भद्राम्	९. भद्रा का	दत्ताम्	७. दी गयी
उपयेमे	११. पाणिग्रहण किया	कृष्णः	१०. श्रीकृष्ण ने
पितृष्वसुः ।	१. फुआ	सन्तर्दन	४. सन्तर्दन
		आदिभिः ॥	५. आदि

श्लोकार्थ—फुआ श्रुतकीर्ति की पुत्री, सन्तर्दन आदि भाइयों के द्वारा दी गयी केकय देश की राजकुमारी भद्रा का श्रीकृष्ण ने पाणिग्रहण किया ॥

सप्तपञ्चाशत्तमः श्लोकः

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥

पदच्छेद— सुताम् च मद्र अधिपतेः लक्ष्माम् लक्षणैः युताम् ।
स्वयंवरे जहार एकः सः सुपर्णः सुधाम् इव ॥

शब्दार्थ—

सुताम्	४.	पुत्री	स्वयंवरे	८.	स्वयंवर में
च	१.	और	जहार	११.	हरण कर लिया
मद्र	२.	मद्र देश के	एकः	९.	अकेले ही
अधिपतेः	३.	राजा की	सः	१०.	श्रीकृष्ण ने
लक्ष्मणाम्	७.	लक्ष्मणा का	सुपर्णः	१३.	गरुड़ ने
लक्षणैः	५.	सुलक्षणों से	सुधाम्	१४.	अमृत का (हरण किया था)
युताम् ।	६.	युक्त	इव ॥	१२.	जैसे

श्लोकार्थ—और मद्र देश के राजा की पुत्री सुलक्षणों से युक्त लक्ष्मणा का स्वयंवर में अकेले ही श्रीकृष्ण ने हरण कर लिया, जैसे गरुड़ ने अमृत का हरण किया था ॥

अष्टपञ्चाशत्तमः श्लोकः

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥५८॥

पदच्छेद— अन्याः च एवम् विधाः भार्याः कृष्णस्य आसन् सहस्रशः ।
भौमम् हत्वा तत् निरोधात् आहृताः चारु दर्शनाः ॥

शब्दार्थ—

अन्याः च	३.	और भी	भौमम्	९.	भौमासुर को
एवम् विधाः	१.	इस प्रकार	हत्वा तत्	१०.	मार कर उसके
भार्याः	५.	पत्नियाँ	निरोधात्	११.	बन्दीगृह से
कृष्णस्य	२.	श्रीकृष्ण की	आहृताः	१२.	छुड़ा लाये थे
आसन्	६.	थीं	चारु	७.	सुन्दर
सहस्रशः ।	४.	हजारों	दर्शनाः ॥	८.	दिखने वाली उन स्त्रियों को

श्लोकार्थ—इस प्रकार श्रीकृष्ण की और भी हजारों पत्नियाँ थीं । सुन्दर दिखने वाली उन स्त्रियों को भौमासुर को मार कर उसके बन्दीगृह से छुड़ा लाये थे ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
अष्टमहिष्युद्वाहो अष्टपञ्चाशत्तमः अध्यायः ॥५८॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

एकोनषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

राजोवाच— यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥१॥

पदच्छेद— यथा हतः भगवता भौमः येन च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धाः एतद् आचक्ष्व विक्रमम् शार्ङ्गधन्वनः ॥

शब्दार्थ—यथा	४.	जिस प्रकार	निरुद्धाः	३.	बन्दीगृह में डाल रखा था और
हतः	७.	मारा था	एतद्	८.	वह
भगवता	५.	भगवान ने	आचक्ष्व	११.	बताइये
भौमः	६.	भौमासुर को	विक्रमम्	१०.	पराक्रम
येन च	१.	जिसने	शार्ङ्गधन्वनः ॥	९.	श्रीकृष्ण का
ताः स्त्रियः ।	२.	उन स्त्रियों को			

श्लोकार्थ—जिसने उन स्त्रियों को बन्दीगृह में डाल रखा था, और जिस प्रकार भगवान् ने भौमासुर को मारा था वह श्रीकृष्ण का पराक्रम बताइये ॥

द्वितीयः श्लोकः

श्रीशुक उवाच— इन्द्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ।
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥

पदच्छेद— इन्द्रेण हृत छत्रेण हृत कुण्डल बन्धुना ।
हृत अमर अद्रि स्थानेन ज्ञापितः भौमचेष्टितम् ।
सभार्यः गरुड आरूढः प्राग्ज्योतिषपुरम् ययौ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रेण	८.	इन्द्र ने (जब)	स्थानेन	६.	स्थान के
हृत	४.	छीन लिये जाने पर तथा	ज्ञापितोः	१०.	बताई (तब श्रीकृष्ण)
छत्रेण	२.	(भौमासुर द्वारा) छत्र और	भौमचेष्टितम् ।	९.	भौमासुर की करतूत
हृत कुण्डल	३.	कुण्डल	सभार्यः	११.	पत्नी सत्यभामा सहित
बन्धुना ।	१.	बन्धु (वरुण और अदिति) के	गरुड आरूढः	१२.	गरुड़ पर चढ़ कर
हृत	७.	छिन जाने पर	प्राग्ज्योतिषपुरम्	१३.	प्राग्ज्योतिष पुर में
अमर आदि	५.	देवताओं के मणि पर्वत	ययौ ॥	१४.	गये

श्लोकार्थ—बन्धु (वरुण और अदिति) के भौमासुर द्वारा छत्र और कुण्डल छीन लिये जाने पर तथा देवताओं का स्थान मणि पर्वत छिन जाने पर इन्द्र ने जब भौमासुर की करतूत बताई तब श्रीकृष्ण पत्नी सत्यभामा सहित गरुड़ पर चढ़ कर प्राग्ज्योतिष पुर गये ॥

तृतीयः श्लोकः

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ।।३।।

पदच्छेद - गिरि दुर्गैः शस्त्रदुर्गैः जल अग्नि अनिल दुर्गमम् ।
मुरपाश अयुतैः घोरैः दृढैः सर्वतः आवृतम् ।।

शब्दार्थ—

गिरि	१. (वह पुर) पर्वतों को	मुरपाश	७. मुर दैत्य के द्वारा
दुर्गैः	२. किलेबन्दियों से	अयुतैः	८. दस हजार
शस्त्रदुर्गैः	३. शस्त्रों के किलों	घोरैः	९. भयंकर एवम्
जल अग्नि	४. जल अग्नि तथा	दृढैः	१०. सुदृढ़ जालों से
अनिल	५. वायु के घेरे के कारण	सर्वतः	११. सब ओर
दुर्गमम् ।	६. कठिनाई से पहुँचने योग्य	आवृतम् ।।	१२. घिरा हुआ था

श्लोकार्थ—वह पुर पर्वतों को किले बन्दियों से शस्त्रों के किलों, जल, अग्नि तथा वायु के घेरे के कारण कठिनाई से पहुँचने योग्य, मुरदैत्य के द्वारा दस हजार भयंकर एवम् सुदृढ़ जालों से सब ओर से घिरा हुआ था ।

चतुर्थः श्लोकः

गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ।।४।।

पदच्छेद— गदया निर्बिभेद अद्रीन् शस्त्र दुर्गाणि सायकैः ।
चक्रेण अग्निम् जलम् वायुम् मुर पाशान् तथा असिना ।।

शब्दार्थ—

गदया	१. गदा से	चक्रेण	७. चक्र से
निर्बिभेद	६. तोड़-फोड़ डाला	अग्निम्	८. अग्नि
अद्रीन्	२ पहाड़ों को तथा	जलम्	९. जल और
शस्त्र	४. शस्त्रों के	वायुम्	१०. वायु के घेरों को
दुर्गाणि	५. किलों को	मुर पाशान्	१२. मुर के जालों को (काट डाला)
सायकैः ।	३. बाणों से	तथा असिना ।।	११. तथा तलवार से

श्लोकार्थ—गदा से पहाड़ों को, बाणों से शस्त्रों के किलों को तोड़-फोड़ डाला । चक्र से अग्नि जल और वायु के घेरों को तथा तलवार से मुर के जालों काट डाला ।।

पञ्चमः श्लोकः

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ।।५।।

पदच्छेद— शङ्ख नादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारम् गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ।।

शब्दार्थ—

शङ्ख	२. शङ्ख को	प्राकारम्	९. नगर के पर कोटे को
नादेन	३. ध्वनि से	गदया	८. गदा से
यन्त्राणि	४. मन्त्रों तथा	गुर्व्या	७. और भारी
हृदयानि	६. हृदयों को	निर्बिभेद	१०. ध्वस्त कर डाला
मनस्विनाम् ।	५. वीर पुरुषों के	गदाधरः ।।	१. गदाधर भगवान् ने

श्लोकार्थ—गदाधर भगवान् ने शङ्ख की ध्वनि से मन्त्रों तथा पुरुषों के हृदयों को और भारी गदा से नगर के पर कोटे को ध्वस्त कर दिया ।।

षष्ठः श्लोकः

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ।
मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ।।६।।

पदच्छेद— पाञ्चजन्य ध्वनिम् श्रुत्वा युगान्त अशनिभीषणम् ।
मुरः शयानः उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिराः जलात् ।।

शब्दार्थ—

पाञ्चजन्य	४. पाञ्चजन्य शंख के	मुरः	१०. मुर
ध्वनिम्	५. नाद को	शयानः	८. सोया हुआ
श्रुत्वा	६. सुनकर	उत्तस्थौ	१२. उठ खड़ा हुआ
युगान्त	१. प्रलय कालीन	दैत्यः	११. दैत्य
अशनि	२. बिजली की	पञ्चशिराः	९. पांच शिरों वाला
भीषणम् ।	३. कड़क के समान	जलात् ।।	७. जल के भीतर

श्लोकार्थ—प्रलय कालीन बिजली की कड़क के समान पाञ्चजन्य शंख के नाद को सुनकर जल के भीतर सोया हुआ पांच सिरों वाला मुर दैत्य उठ खड़ा हुआ ।।

सप्तमः श्लोकः

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥७॥

पदच्छेद— त्रिशूलम् उद्यम्य सुदुर्निरीक्षणः युगान्त सूर्य अनल रोचिः उल्बणः ।
ग्रसन् त्रिलोकीम् इव पञ्चभिः मुखैः अभ्यद्रवत् तार्क्ष्य सुतम् यथा उरगः ॥

शब्दार्थ—

त्रिशूलम्	७.	त्रिशूल	ग्रसन्	१३.	निगलता हुआ
उद्यम्य	८.	उठाकर	त्रिलोकीम्	१२.	तीनों लोक को
सुदुर्निरीक्षणः	६.	अत्यन्त कठिनाई से दिखने योग्य मुर	इव	११.	मानों
युगान्त	१.	प्रलय कालीन	पञ्चभिः	९.	अपने पाँचों
सूर्य	२.	सूर्य और	मुखैः	१०.	मुखों से
अनल	३.	अग्नि के समान	अभ्यद्रवत्	१४.	भगवान् की ओर दौड़ा
रोचिः	५.	तेजस्वी	तार्क्ष्य सुतम्	१६.	गरुड़ पर टूट पड़े
उल्बणः ।	४.	प्रचण्ड	यथा उरगः ॥	१५.	जैसे साँप

श्लोकार्थ—प्रलय कालीन सूर्य और अग्नि के समान प्रचण्ड तेजस्वी अत्यन्त कठिनाई से दिखाई देने योग्य मुर त्रिशूल उठाकर अपने पाँचों मुखों से मानों त्रिलोकी को निगलता हुआ भगवान् की ओर दौड़ा, जैसे साँप गरुड़ पर टूट पड़े ॥

अष्टमः श्लोकः

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत् स पञ्चभिः ।
स रोदसी सर्वदिशोऽन्तरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥८॥

पदच्छेद— आविध्य शूलम् तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैः व्यनदत् सः पञ्चभिः ।
सः रोदसी सर्वदिशः अन्तरम् महान् आपूरयन् अण्डकटाहम् आवृणोत् ॥

शब्दार्थ—

आविध्य	३.	घुमाकर	सः	९.	उस
शूलं तरसा	२.	त्रिशूल को बड़े वेग से	रोदसी	११.	पृथ्वी, आकाश
गरुत्मते	४.	गरुड़ पर	सर्वदिशः	१३.	दसों दिशाओं को
निरस्य	५.	चलाया और	अन्तरम्	१२.	पाताल और
वक्त्रैः	७.	मुखों से	महान्	१०.	महान् शब्द ने
व्यनदत्	८.	सिंह नाद किया	आपूरयन्	१४.	भरते हुये
सः	१.	उसने	अण्डकटाहम्	१५.	सारे ब्रह्माण्ड को
पञ्चभिः ।	६.	पाँचों	आवृणोत् ॥	१६.	ढक लिया

श्लोकार्थ—उसने त्रिशूल को बड़े वेग से गरुड़ पर चलाया और पाँचों मुखों से सिंह नाद किया। उस महान् शब्द ने पृथ्वी आकाश, पाताल और दसों दिशाओं को भरते हुये सारे ब्रह्माण्ड को ढक लिया ॥

नवमः श्लोकः

तदापतद् वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत् तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥९॥

पदच्छेद— तदा पतत् वै त्रिशिखम् गरुत्मते हरिः शराभ्याम् अभिनत् त्रिधा ओजसा ।
मुखेषु तम् च अपि शरैः अताडयत् तस्मै गदाम् सः अपि रुषा व्यमुञ्चत ॥

शब्दार्थ—

तदा	१.	तब	मुखेषु तम्	९.	उस दैत्य के मुख में
पतत् वै	४.	वेग से गिरते हुये	च अपि	१०.	भी
त्रिशिखम्	५.	त्रिशूल को	शरैः अताडयत्	११	बहुत से बाण मारे
गरुत्मते	३.	गरुड़ पर	तस्मै	१४.	उन पर अपनी
हरिः	२.	श्रीकृष्ण ने	गदाम्	१५.	गदा
शराभ्याम्	६.	दो बाणों से	सः अपि	१२.	उस दैत्य ने भी
अभिनत् त्रिधा	८.	काटकर तीन टुकड़े कर दिये	रुषा	१३.	क्रोध से
ओजसा ।	७.	फुर्ती से	व्यमुञ्चत ॥	१६.	चलाई

श्लोकार्थ—तब श्रीकृष्ण ने गरुड़ पर वेग से गिरते हुये त्रिशूल को दो बाणों से फुर्ती से काटकर तीन टुकड़े कर दिये। उस दैत्य के मुख में भी बहुत से बाण मारे। उस दैत्य ने क्रोध से उन पर अपनी गदा चलाई ॥

दशमः श्लोकः

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

पदच्छेद— ताम् आपतन्तीम् गदया गदाम् मृधे गदअग्रजः निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहून् अभिधावतः अजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥

शब्दार्थ—

ताम्	२.	उस	उद्यम्य	१०.	फैलाकर
आपतन्तीम्	१.	आती हुई	बाहून्	९.	भुजायें
गदया	४.	अपनी गदा से	अभिधावतः	११.	अपनी ओर दौड़ते हुये
गदाम् मृधे	३.	गदा के युद्ध में	अजितः	८.	श्रीकृष्ण ने
गदअग्रजः	५.	श्रीकृष्ण ने	शिरांसि	१२.	उसके सिरों को
निर्बिभिदे	७.	टुकड़े कर दिये	चक्रेण जहार	१४.	अपने चक्र से काट दिया
सहस्रधा ।	६.	सैकड़ों टुकड़े	लीलया ॥	१३.	खेल ही खेल में

श्लोकार्थ—आती हुई उस गदा के, युद्ध में अपनी गदा से श्री कृष्ण ने सैकड़ों टुकड़े कर दिये। श्रीकृष्ण ने भुजायें फैलाकर अपनी ओर दौड़ते हुये उसके सिरों को खेल ही खेल में अपने चक्र से काट दिया ॥

एकादशः श्लोकः

व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥

पदच्छेद— व्यसुः पपात अम्भसि कृत्तशीर्षः निकृत्तशृङ्गः अद्रिः इव इन्द्र तेजसा।
तस्य आत्मजाः सप्त पितुः वधः आतुराः प्रतिक्रिया अमर्ष जुषःसमुद्यताः॥

शब्दार्थ—

व्यसुः	५.	निष्प्राण होकर	तस्य	८.	उसके
पपात	७.	गिर पड़ा	आत्मजाः सप्त	९.	सात पुत्र
अम्भसि	६.	जल में	पितुः वध	१०.	पिता की हत्या से
कृत्तशीर्षः	३.	कटे हुये सिर वाला	आतुराः	११.	व्याकुल हो गये और
निकृत्तशृङ्गः	२.	काटी गई चोटी वाले	प्रतिक्रिया	१२.	बदला लेने के लिये
अद्रिः इव	४.	पर्वत के समान (मुरदैत्य)	अमर्ष जुषः	१३.	क्रोध से भर कर
इन्द्र तेजसा।	१.	इन्द्र के वज्र से	समुद्यताः॥	१४.	युद्ध के लिये तैयार हो गये

श्लोकार्थ—इन्द्र के वज्र से काटी गई चोटी वाले पर्वत के समान कटे हुये सिर वाला मुरदैत्य निष्प्राण होकर जल में गिर पड़ा। उसके सात पुत्र पिता की हत्या से व्याकुल हो गये। और क्रोध से भर कर युद्ध के लिये तैयार हो गये॥

द्वाविंशः श्लोकः

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥१२॥

पदच्छेद— ताम्रः अन्तरिक्षः श्रवणः विभावसुः वसुः नभस्वान् अरुणः च सप्तमः।
पीठम् पुरस्कृत्य चमूपतिम् मृधे भौम प्रयुक्ताः निरगन् धृत आयुधाः॥

शब्दार्थ—

ताम्रः	१.	ताम्र	पीठम्	९.	पीठ नामक दैत्य को
अन्तरिक्षः	२.	अन्तरिक्ष	पुरस्कृत्य	११.	बना कर
श्रवणः	३.	श्रवण	चमूपतिम्	१०.	सेना पति
विभावसुः	४.	विभावसु	मृधे	१५.	युद्ध के लिये
वसुः	५.	वसु	भौम	१२.	भौमासुर की
नभस्वान्	६.	नभस्वान्	प्रयुक्ताः	१३.	प्रेरणा से
अरुण	८.	अरुण नामक (मुरदैत्य का पुत्र)	निरगन्	१६.	निकल पड़े
च सप्तमः।	७.	और सातवाँ	धृत आयुधाः॥	१४.	शस्त्र धारण करके

श्लोकार्थ—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभा वसु, वसु, नभस्वान् और सातवाँ अरुण नामक मुरदैत्य का पुत्र पीठ नामक दैत्य को सेनापति बना कर भौमासुर की प्रेरणा से शस्त्र धारण करके युद्ध के लिये निकल पड़े॥

त्रयोदशः श्लोकः

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥

पदच्छेद— प्रायुञ्जत आसाद्य शरान् असीन् गदाः शक्ति ऋष्टि शूलानि अजिते रुषा उल्बणाः ।
तत् शस्त्र कूटम् भगवान् स्वमार्गणैः अमोघवीर्यः तिलशः चकर्त ह ॥

शब्दार्थ—

प्रायुञ्जत	८.	चलाया	तत्	१२.	उसके
आसाद्य	१.	वहाँ आकर उसने	शस्त्र	१३.	शस्त्र
शरान् असीन्	४.	बाणों खड्गों	कूटम्	१४.	समूह को
गदाः शक्ति	५.	गदा शक्ति	भगवान्	१०.	भगवान् ने
ऋष्टि	६.	ऋष्टि और	स्वमार्गणैः	११.	अपने बाणों से
शूलानि	७.	त्रिशूलों को	अमोघवीर्यः	९.	अमोघ शक्ति वाले
अजिते	२.	श्रीकृष्ण पर	तिलशः	१५.	तिल-तिल कर
रुषा उल्बणाः ।	३.	क्रोध से प्रचण्ड	चकर्त ह ॥	१६.	काट डाला

श्लोकार्थ—वहाँ आकर उसने श्रीकृष्ण पर क्रोध से प्रचण्ड बाणों, खड्गों, गदा, शक्ति ऋष्टि और त्रिशूलों को चलाया । अमोघवीर्य भगवान् ने अपने बाणों से उसके शस्त्र-समूह को तिल-तिल कर काट डाला ॥

चतुर्दशः श्लोकः

तान् पीठमुख्याननयद् यमक्षयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान् नरको धरासुतः ॥१४॥

पदच्छेद— तान् पीठ मुख्यान् अनयत् यमक्षयम् निकृत्त शीर्ष उरु भुजा अङ्घ्रि वर्मणः ।
स्व अनीकपान् अच्युत चक्र सायकैः तथा निरस्तान् नरकः धरासुतः ॥

शब्दार्थ—

तान्	१.	श्रीकृष्ण ने उन	स्व	१३.	अपने
पीठ मुख्यान्	२.	पीठ आदि दैत्यों के	अनीकपान्	१४.	सेनापतियों को देख कर
अनयत्	८.	पहुँचा दिया	अच्युत चक्र	९.	श्रीकृष्ण के चक्र
यमक्षयम्	७.	यमराज के घर	सायकैः	११.	बाणों से
निकृत्त	६.	काट कर (उन्हें)	तथा	१०.	तथा
शीर्ष उरु	३.	सिर जाँघें	निरस्तान्	१२.	विनष्ट किये गये
भुजा अङ्घ्रि	४.	भुजायें, पैर	नरकः	१६.	भौमासुर (अत्यन्त कुपित हुआ)
वर्मणः ।	५.	और कवच	धरासुतः ॥	१५.	पृथ्वी का पुत्र

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने उन पीठ आदि दैत्यों के सिर, जाँघें, भुजायें पैर और कवच काट कर उन्हें यमराज के घर पहुँचा दिया । श्रीकृष्ण के चक्र तथा बाणों से विनष्ट किये गये अपने सेनापतियों को देख कर पृथ्वी का पुत्र भौमासुर अत्यन्त कुपित हुआ ॥

पञ्चदशः श्लोकः

**निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ।
दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात् सतडिद्घनं यथा ।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥**

पदच्छेद— निरीक्ष्य दुर्मर्षणः आस्रवत् मदैः गजैः पयोधि प्रभवैः निराक्रमत् ।
दृष्ट्वा सभार्यम् गरुडोपरि स्थितम् सूर्य उपरिष्टात् सतडिद्घनम् यथा ।
कृष्णम् सः तस्मै व्यसृजत् शतघ्नीम् योधाः च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥

शब्दार्थ—

निरीक्ष्य दुर्मर्षणः	१. यह देखकर उसे	सूर्य उपरिष्टात्	७. सूर्य के ऊपर
आस्रवत्	२. असह्य क्रोध हुआ	सतडिद्घनम्	८. बिजली के साथ मेघ के
मदैः	४. मद चुआने वाले	यथा	९. समान
गजैः	५. हाथियों की सेना लेकर वह	कृष्णम्	१२. श्रीकृष्ण को
पयोधिप्रभवैः	३. समुद्र तट पर उत्पन्न	सः तस्मै	१४. उसने उनके ऊपर
निराक्रमत्	६. नगर के बाहर निकला	व्यसृजत्	१६. चलाई
दृष्ट्वा	१३. देखकर	शतघ्नीम्	१५. शतघ्नी नामक शक्ति
सभार्यम्	११. पत्नी के साथ	योधाः च सर्वे	१७. और सभी योद्धा भी
गरुडोपरिस्थितम् ।	१०. गरुड़ पर स्थित	युगपत् स्म विव्यधुः ॥	१८. एक साथ प्रहार करने लगे

श्लोकार्थ—यह देखकर उसे असह्य क्रोध हुआ, समुद्रतट पर उत्पन्न मद चुआने वाले हाथियों की सेना लेकर वह नगर के बाहर निकला। सूर्य के ऊपर बिजली के साथ मेघ के समान गरुड़ पर स्थित पत्नी के साथ श्रीकृष्ण को देखकर उसने उनके ऊपर शतघ्नी नामक शक्ति चलाई और सभी योद्धा भी एक साथ प्रहार करने लगे ॥

षोडशः श्लोकः

**तद् भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥**

पदच्छेद— तत् भौम सैन्यं भगवान् गदाग्रजः विचित्र वाजैः निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्त बाहु ऊरु शिरोध्र विग्रहम् चकार तर्हि एव हत अश्व कुञ्जरम् ॥

शब्दार्थ—तत्	६. उस	निकृत्त	१२. काटने लगे और
भौम	७. भौमासुर की	बाहु ऊरु	९. बाँहें जाँघें
सैन्यम्	८. सेना की	शिरोध्र	१०. गर्दन और
भगवान्	१. भगवान्	विग्रहम्	११. धड़
गदाग्रजः	२. श्रीकृष्ण	चकार	१६. गिरने लगे
विचित्र वाजैः	३. चित्र विचित्र पंख वाले	तर्हि एव	१३. उसी समय
निशितैः	४. तीखे	हत अश्व	१५. घोड़े भी मर कर
शिलीमुखैः ।	५. बाणों से	कुञ्जरम् ॥	१४. हाथी

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण चित्र विचित्र पंख वाले तीखे बाणों से उस भौमासुर की सेना की बाँहें, जाँघें, गर्दन और धड़ काटने लगे। और उसी समय हाथी घोड़े भी मरकर गिरने लगे ॥

सप्तदशः श्लोकः

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥१७॥

पदच्छेद— यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्र अस्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिः तानि अच्छिनत् तीक्ष्णैः शरैः एकैकशः त्रिभिः ॥

शब्दार्थ—

यानि	३.	जो	हरिः	६.	श्रीकृष्ण ने
योधैः	२.	सैनिकों ने	तानि	७.	उनमें से
प्रयुक्तानि	६.	चलाने	अच्छिनत्	१२.	काट डाला
शस्त्र	४.	शस्त्र	तीक्ष्णैः शरैः	११.	तीखे बाणों से
अस्त्राणि	५.	अस्त्र	एकैकशः	८.	प्रत्येक को
कुरूद्वह ।	१.	हे परीक्षित् !	त्रिभिः ॥	१०.	तीन-तीन

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! सैनिकों ने जो शस्त्र-अस्त्र चलाये उनमें से प्रत्येक को श्रीकृष्ण ने तीन-तीन तीखे बाणों से काट डाला ॥

अष्टादशः श्लोकः

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ।
गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥१८॥

पदच्छेद— उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्याम् निघ्नता गजान् ।
गरुत्मता हन्यमानाः तुण्डपक्ष नखैः गजाः ॥

शब्दार्थ—

उह्यमानः	५.	सवार थे और	गरुत्मता	६.	गरुड़ की
सुपर्णेन	४.	गरुड़ पर (भगवान्)	हन्यमानाः	१०.	मारे जा रहे थे
पक्षाभ्याम्	१.	दोनों पंखों से	तुण्डपक्ष	७.	चोंच, पंख और
निघ्नता	३.	मारते हुये	नखैः	८.	नखों से
गजान् ।	२.	हाथियों को	गजाः ॥	६.	हाथी

श्लोकार्थ—दोनों पंखों से हाथियों को मारते हुये गरुड़ पर भगवान् सवार थे । और गरुड़ जी की चोंच, पंख और नखों से हाथी मारे जा रहे थे ॥

एकोनविंशः श्लोकः

पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ।
दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥१९॥

पदच्छेद— पुरम् एव अविशन् आर्ताः नरकः युधि अयुध्यत ।
दृष्ट्वा विद्रावितम् सैन्यम् गरुडेन अर्दितम् स्वकम् ॥

शब्दार्थ—

पुरम्	२.	नगर में	दृष्ट्वा	१४.	देखा
एव	३.	ही	विद्रावितम्	१३.	भागते हुये
अविशन्	४.	घुस गये (और)	सैन्यम्	९.	सेना को
आर्ताः	१.	पीडित हाथी	गरुडेन	१०.	गरुड़ के द्वारा
नरकः	५.	नरकासुर	अर्दितम्	११.	पीडित होकर
युधि	६.	रण में	स्वकम् ॥	८.	(उसने) अपनी
अयुध्यत ।	७.	युद्ध करता रहा			

श्लोकार्थ—पीडित हाथी नगर में ही घुस गये। और नरकासुर रण में युद्ध करता रहा। उसने अपनी सेना को गरुड़ के द्वारा पीडित होकर भागते हुये देखा॥

विंशः श्लोकः

तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ।
नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

पदच्छेद— तम् भौमः प्राहरत् शक्त्या वज्रः प्रतिहतः यतः ।
न अकम्पत तया विद्धः माला हृतः इव द्विपः ॥

शब्दार्थ—

तम्	१.	उन पर	न	११.	नहीं हुये
भौमः	२.	भौमासुर ने	अकम्पत	१०.	उसी प्रकार विचलित
प्राहरत्	४.	प्रहार किया	तया	८.	उससे
शक्त्या	३.	शक्ति से	विद्धः	९.	विध जाने पर भी (गरुड़)
वज्रः	६.	वज्र को	मालाहृतः	१३.	फूलों की माला से प्रहार करने पर
प्रतिहतः	७.	विफल कर दिया था	इव	१२.	जैसे
यतः ।	५.	जिस (शक्ति) ने	द्विपः ॥	१४.	हाथी(विचलित नहींहोताहै)

श्लोकार्थ—उन पर भौमासुर ने शक्ति से प्रहार किया। जिस शक्ति ने वज्र को विफल कर दिया था। उससे विध जाने पर भी गरुड़ उसी प्रकार विचलित नहीं हुये जैसे फूलों की माला से प्रहार करने पर हाथी विचलित नहीं होता है।

एकविंशः श्लोकः

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ।
तद्विसर्गात् पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ।
अपाहरद् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

पदच्छेद— शूलम् भौमः अच्युतम् हन्तुम् आददे वितथ उद्यमः ।
तत् विसर्गात् पूर्वम् एव नरकस्य शिरः हरिः ।
अपाहरत् गजस्थस्य चक्रेण क्षुर नेमिना ॥

शब्दार्थ—शूलम्	४.	त्रिशूल	नरकस्य	११.	नरकासुर के
भौमः	१.	नरकासुर ने	शिरः	१२.	सिर को
अच्युतम्	२.	श्रीकृष्ण को	हरिः	९.	भगवान् श्रीकृष्ण ने
हन्तुम्	३.	मारने के लिये	अपाहरत्	१६.	काट डाला
आददे	५.	उठाया (किन्तु उसका)	गजस्थस्य	१०.	हाथी पर बैठे हुये
वितथ उद्यमः	६.	प्रयत्न व्यर्थ हुआ	चक्रेण	१५.	चक्र से
तत् विसर्गात्	७.	उसके छोड़ने से	क्षुर	१३.	छुरे के समान
पूर्वम् एव ।	८.	पहले ही	नेमिना ॥	१४.	तीखी धार वाले

श्लोकार्थ—नरकासुर ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये त्रिशूल उठाया किन्तु उसका प्रयत्न विफल हुआ । उसके छोड़ने से पहले ही भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथी पर बैठे हुये नरकासुर के सिर को छूरे के समान तीखी धार वाले चक्र से काट डाला ॥

द्वाविंशः श्लोकः

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ।
हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

पदच्छेद— सकुण्डलम् चारु किरीट भूषणम् बभौ पृथिव्याम् पतितम् समुज्ज्वलम् ।
हाहाइति साधु इति ऋषयः सुरेश्वराः माल्यैः मुकुन्दम् विकिरन्तः ईडिरे ॥

शब्दार्थ— सकुण्डलम्	२.	कुण्डल	हाहाइति	८.	उसके सगे संबंधी हाय-हाय
चारु किरीट	३.	सुन्दर किरीट और	साधु इति	१०.	साधु-साधु
भूषणम्	४.	आभूषण के सहित	ऋषयः	९.	ऋषि गण
बभौ	७.	शोभित होने लगा	सुरेश्वराः	११.	देवेन्द्र गण
पृथिव्याम्	५.	पृथ्वी पर	माल्यैः	१२.	पुष्प मालायें
पतितम्	६.	गिर कर	मुकुन्दम्	१३.	भगवान् पर
समुज्ज्वलम् ।	१.	उसका जगमगाता हुआ सिर	विकिरन्तः	१४.	बिखेरते हुये
			ईडिरे ॥	१५.	स्तुति करने लगे

श्लोकार्थ—उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल, सुन्दर किरीट और आभूषण के सहित पृथ्वी पर गिर कर शोभित होने लगा । उसके सगे सम्बन्धी हाय-हाय, ऋषिगण साधु-साधु और देवेन्द्र गण पुष्प मालायें भगवान् पर बिखेरते हुये स्तुति करने लगे ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।
सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत् प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥

पदच्छेद— ततः च भूः कृष्णम् उपेत्य कुण्डले प्रतप्त जाम्बूनद रत्नभास्वरे ।
स वैजयन्त्या वनमालया अर्पयत् प्राचेतसम् छत्रम् अथो महामणिम् ॥

शब्दार्थ—

ततः च	१. तदनन्तर	सवैजयन्त्या	८. वैजयन्ती के साथ
भूः कृष्णम्	२. पृथिवी ने श्रीकृष्ण के	वनमालया	९. वनमाला
उपेत्य	३. पास जाकर	अर्पयत्	१४. समर्पित की
कुण्डले	७. कुण्डल	प्राचेतसम्	१०. वरुण का
प्रतप्त	४. तपाये हुये	छत्रम्	११. छत्र
जाम्बूनद	५. सोने के	अथो	१२. और
रत्नभास्वरे।	६. रत्नजटित	महामणिम् ॥	१३. एक महामणि

श्लोकार्थ- तदनन्तर पृथ्वी ने श्रीकृष्ण के पास जाकर तपाये हुये सोने के रत्न जड़ित कुण्डल, वैजयन्ती के साथ वनमाला, वरुण का छत्र और एक महामणि समर्पित की ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया ॥२४॥

पदच्छेद— अस्तौषीत् अथ विश्वेशम् देवी देववर अर्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्ति प्रवणया धिया ॥

शब्दार्थ—

अस्तौषीत्	१२. स्तुति करने	प्राञ्जलिः	७. हाथ जोड़कर
अथ	२. अनन्तर	प्रणता	८. प्रणाम करके
विश्वेशम्	६. विश्वेश्वर भगवान् को	राजन्	१. हे राजन् !
देवी	३. पृथ्वी देवी	भक्ति	९. भक्ति भाव
देववर	४. बड़े-बड़े देवताओं के द्वारा	प्रवणया	१०. भरी
अर्चितम् ।	५. पूजित	धिया ॥	११. बुद्धि से

श्लोकार्थ—हे राजन् ! अनन्तर पृथ्वी देवी बड़े-बड़े देवताओं के द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् को हाथ जोड़कर प्रणाम करके भक्ति-भाव से भरी बुद्धि से स्तुति करने लगी ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

भूमिरुवाच— नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२५॥

पदच्छेद— नमस्ते देव देवेश शङ्ख चक्र गदाधर ।
भक्त इच्छा उपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥

शब्दार्थ—

नमस्ते	२. आपको नमस्कार है	भक्त इच्छा	७. भक्तों की इच्छा के
देव	१. हे देव	उपात्त	८. अधीन
देवेश	३. देवताओं के ईश्वर	रूपाय	९. रूप धारण करने वाले
शङ्ख	४. शङ्ख	परमात्मन्	१०. परमात्मन्
चक्र	५. चक्र और	नमोऽस्तु	१२. नमस्कार है
गदाधर ।	६. गदा धारण करने वाले	ते ॥	११. आपको

श्लोकार्थ—हे देव ! आपको नमस्कार है। देवताओं के ईश्वर ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले, भक्तों की इच्छा के अधीन रूप धारण करने वाले परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥

षड्विंश श्लोकः

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२६॥

पदच्छेद— नमः पङ्कज नाभाय नमः पङ्कज मालिने ।
नमः पङ्कज नेत्राय नमस्ते पङ्कज अङ्घ्रये ॥

शब्दार्थ—

नमः	३. नमस्कार है	नमः	९ नमस्कार है
पङ्कज	२. कमल वाले को	पङ्कज	७. कमल के समान
नाभाय	१. नाभि में	नेत्राय	८. नेत्र वाले को
नमः	६. नमस्कार है	नमस्ते	१२. नमस्कार है
पङ्कज	४. कमलों की	पङ्कज	१०. कमल के समान
मालिने ।	५. माला पहनने वाले को	अङ्घ्रये ॥	११. चरण वाले आपको

श्लोकार्थ—नाभि में कमल वाले को नमस्कार है। कमलों की माला पहनने वाले को नमस्कार है। कमल के समान नेत्र वाले को नमस्कार है। कमल के समान चरण वाले आपको नमस्कार है ॥

सप्तविंशः श्लोकः

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

पदच्छेद— नमः भगवते तुभ्यम् वासुदेवाय विष्णवे।
पुरुषाय आदि बीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥

शब्दार्थ—

नमः	३. नमस्कार है	पुरुषाय	६. पुरुष
भगवते	२. भगवान् को	आदि	७. आदि
तुभ्यम्	१. आप	बीजाय	८. कारण और
वासुदेवाय	४. वसुदेव पुत्र	पूर्णबोधाय	९. पूर्णज्ञान स्वरूप
विष्णवे।	५. विष्णु	ते नमः ॥	१०. आपको नमस्कार है

श्लोकार्थ—आप भगवान् को नमस्कार है। वसुदेवपुत्र, विष्णु, पुरुष, आदि कारण और पूर्ण ज्ञान स्वरूप आपको नमस्कार है ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२८॥

पदच्छेद— अजाय जनयित्रे अस्य ब्रह्मणे अनन्तशक्तये।
परावर आत्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥

शब्दार्थ—

अजाय	१. जन्म रहित	परावर	७. कार्य और कारण
जनयित्रे	३. जन्मदाता	आत्मन्	८. रूप
अस्य	२. इस जगत् के	भूतात्मन्	९. प्राणी और अप्राणी रूप
ब्रह्मणे	६. ब्रह्म	परमात्मन्	१०. परमात्मा
अनन्त	४. अनन्त	नमोऽस्तु	१२. नमस्कार है
शक्तये।	५. शक्ति स्वरूप	ते ॥	११. आप को

श्लोकार्थ—जन्म रहित इस जगत् के जन्मदाता, अनन्त शक्ति स्वरूप ब्रह्म कार्य और कारण रूप प्राणी और अप्राणी रूप परमात्मा आपको नमस्कार है ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥

पदच्छेद— त्वम् वै सिसृक्षुः रजः उत्कटं प्रभो तमः निरोधाय बिभर्षि असंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वम् जगतः जगत्पते कालः प्रधानम् पुरुषः भवान् परः ॥

शब्दार्थ—

त्वम् वै	३. आप निश्चित रूप से	स्थानाय	८. पालन करने के लिये
सिसृक्षुः	२. सृष्टि करने के इच्छुक	सत्त्वम्	९. सत्त्वगुण को
रजः उत्कटं	४. प्रबल रजोगुण को	जगतः	७. संसार का
प्रभो	१. हे प्रभो !	जगत्पते	१२. संसार के स्वामी
तमः	६. तमोगुण को और	कालः	१५. काल और इनसे
निरोधाय	५. संहार करने के लिये	प्रधानम्	१४. प्रकृति
बिभर्षि	१०. धारण करते हैं	पुरुषः भवान्	१३. आप पुरुष
असंवृतः ।	११. आप इन गुणों से नहीं ढकते हैं	परः ॥	१६. परे भी हैं

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! सृष्टि करने के इच्छुक आप निश्चित रूप से प्रबल रजो गुण को, संहार करने के लिये तमोगुण को और संसार का पालन करने के लिये सत्त्वगुण को धारण करते हैं । आप इन गुणों से नहीं ढकते हैं । संसार के स्वामी ! आप पुरुष, प्रकृति, काल और इनसे परे भी हैं ॥

त्रिंशः श्लोकः

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

पदच्छेद— अहम् पयः ज्योतिः अथ अनिलः नभः मात्राणि देवाः मनः इन्द्रियाणि ।
कर्ता महान् इति अखिलम् चराचरम् त्वयि अद्वितीये भगवन् अयम् भ्रमः ॥

शब्दार्थ—

अहम्	२. मैं	कर्ता	१०. अहंकार और
पयः	३. जल	महान् इति	११. महत्त्व यह
ज्योतिः	४. अग्नि	अखिलम्	१२. सम्पूर्ण
अथ अनिलः	५. और वायु	चराचरम्	१३. चराचर जगत्
नभः	६. आकाश	त्वयि	१४. आपके
मात्राणि	७. पञ्चतन्मात्रायें	अद्वितीये	१५. अद्वितीय (रूप में प्रतीत हो रहा है)
देवाः मनः	८. देवता, मन	भगवन्	१. हे भगवन् !
इन्द्रियाणि ।	९. इन्द्रिय	अयम् भ्रमः ॥	१६. यह भ्रम है

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! मैं जल, अग्नि, वायु और आकाश, पञ्चतन्मात्रायें, देवता, मन, इन्द्रिय, अहंकार और महत्तत्त्व यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय रूप में प्रतीत हो रहा है, वह भ्रम ही है ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥३१॥

पदच्छेद— तस्य आत्मजः अयम् तव पाद पङ्कजम् भीतः प्रपन्नार्तिहरः उपसादितः ।
तत् पालय एनम् कुरु हस्तपङ्कजम् शिरसि अमुष्य अखिल कल्मष अपहम् ॥

शब्दार्थ—

तस्य	२. उस (भौमासुर के)	तत्	९. आप
आत्मजः	५. पुत्र को	पालय एनम्	१०. इसकी रक्षा कीजिये
अयम्	३. इस	कुरु	१६. रखिये
तव	६. आपके	हस्तपङ्कजम्	१३. अपना कर कमल
पाद पङ्कजम्	७. चरण कमल में	शिरसि	१५. सिर पर
भीतः	४. भयभीत	अमुष्य	१४. इसके
प्रपन्नार्तिहरः	१. हे शरणागत वत्सल !	अखिल कल्मष	११. सम्पूर्ण जगत् के पाप-तापको
उपसादितः ।	८. ले आयी हूँ	अपहम् ॥	१२. नष्ट करने वाला

श्लोकार्थ—हे शरणागत वत्सल ! उस भौमासुर के इस भयभीत पुत्र को आपके चरण कमल में ले आयी हूँ । आप इसकी रक्षा कीजिये । सम्पूर्ण जगत् के पाप-ताप को नष्ट करने वाला अपना कर कमल इसके सिर पर रखिये ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

श्रीशुक उवाच - इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाभयं भौमगृहं प्राविशत् सकलर्द्धिमत् ॥३२॥

पदच्छेद— इति भूम्याः अर्थितः वाग्भि भगवान् भक्तिनम्रया ।
दत्त्वा अभयम् भौमगृहम् प्राविशत् सकल ऋद्धिमत् ॥

शब्दार्थ—

इति	१. इस प्रकार	दत्त्वा	८. देकर
भूम्याः	३. पृथ्वी के द्वारा	अभयम्	७. अभयदान
अर्थितः	५. प्रार्थना किये जाने पर	भौमगृहम्	११. भौमासुर के घर में
वाग्भि	४. वाणी से	प्राविशत्	१२. प्रवेश किया
भगवान्	६. भगवान् ने	सकल	९. समस्त
भक्तिनम्रया ।	२. भक्तिभाव से विनम्र	ऋद्धिमत् ॥	१०. सम्पत्तियों से युक्त

श्लोकार्थ—इस प्रकार भक्तिभाव से विनम्र पृथ्वी के द्वारा वाणी से प्रार्थना किये जाने पर भगवान् ने अभय दान देकर समस्त सम्पत्तियों से युक्त भौमासुर के घर में प्रवेश किया ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥३३॥

पदच्छेद— तत्र राजन्य कन्यानाम् षट्सहस्र अधिक आयुतम् ।
भौम आहृतानाम् विक्रम्य राजभ्यः ददृशे हरिः ।।

शब्दार्थ—

तत्र	१. वहाँ	भौम	९. भौमासुर ने
राजन्य	५. राज	आहृतानाम्	१२. छीन लिया था
कन्यानाम्	६. कुमारियों को	विक्रम्य	११. बल पूर्वक
षट्सहस्र	२. छः हजार	राजभ्य	१०. राजाओं से
अधिक	४. अधिक सोलह हजार	ददृशे	८. देखा। जिन्हें
अयुतम् ।	३. दस हजार से	हरिः ।।	७. श्रीकृष्ण ने

श्लोकार्थ—वहाँ छः हजार, दस हजार से अधिक अर्थात् (सोलह हजार) राजकुमारियों को श्रीकृष्ण ने देखा। जिन्हें भौमासुर ने राजाओं से बलपूर्वक छीन लिया था ।।

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥

पदच्छेद— तम् प्रविष्टम् स्त्रियः वीक्ष्य नरवीरम् विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरे अभीष्टम् पतिम् दैव उपसादितम् ।।

शब्दार्थ—

तम्	२. उन	मनसा	११. मन ही मन
प्रविष्टम्	१. अन्तःपुर में पधारे हुये	वव्रिरे	१२. वरण कर लिया
स्त्रियः	५. स्त्रियों	अभीष्टम्	९. अपने अभीष्ट
वीक्ष्य	४. देखकर	पतिम्	१०. पति के रूप में
नरवीरम्	३. नर श्रेष्ठ भगवान् को	दैव	७. उन्होंने भाग्य से
विमोहिताः ।	६. अति मोहित हो गई	उपसादितम् ।।	८. प्राप्त उनको

श्लोकार्थ—अन्तःपुर में पधारे हुये उन नर श्रेष्ठ भगवान् को देखकर स्त्रियाँ अति मोहित हो गई। उन्होंने भाग्य से प्राप्त उनको अपने अभीष्ट पति के रूप में वरण कर लिया ।।

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

पदच्छेद — भूयात् पतिः अयम् मह्यम् धाता तत् अनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयम् दधुः ॥

शब्दार्थ—

भूयात्	४.	हों	इति	८.	इस प्रकार
पतिः	३.	पति	सर्वाः	९.	सभी स्त्रियों ने
अयम्	१.	ये	पृथक्	११.	अलग-अलग
मह्यम्	२.	मेरे	कृष्णे	१०.	श्रीकृष्ण के प्रति
धाता	५.	विधाता	भावेन	१२.	प्रेमभाव से
तत्	६	इसका	हृदयम्	१३.	अपना हृदय
अनुमोदताम् ।	७.	अनुमोदन करें	दधुः ॥	१४.	निछावर कर दिया

श्लोकार्थ—ये मेरे पति हों, विधाता इसका अनुमोदन करें। इस प्रकार सभी स्त्रियों ने श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमभाव से अपना हृदय निछावर कर दिया ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

ताः प्राहिणोद् द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥

पदच्छेद— ताः प्राहिणोद् द्वारवतीम् सुमृष्ट विरजः अम्बराः ।
नरयानैः महाकोशान् रथअश्वान् द्रविणम् महत् ॥

शब्दार्थ—

ताः	१.	श्रीकृष्ण ने उन राजकुमारियों को	नरयानैः	५.	पालकियों से
प्राहिणोद्	७.	भेज दिया (उनके साथ)	महाकोशान्	८.	बहुत से खजाने
द्वारवतीम्	६.	द्वारका	रथाश्वान्	९.	रथ, घोड़े और
सुमृष्ट	२.	सुन्दर-सुन्दर	द्रविणम्	११.	सम्पत्ति भी भेजी
विरजः	३.	निर्मल	महत् ॥	१०.	अतुल
अम्बराः ।	४.	वस्त्राभूषण पहना कर			

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने उन राजकुमारियों को सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्र पहिनाकर पालकियों से द्वारका भेज दिया । उनके साथ बहुत खजाने, रथ, घोड़े और अतुल सम्पत्ति भी भेजी ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

पदच्छेद— ऐरावतकुल इभान् च चतुर्दन्तान् तरस्विनः ।
पाण्डुरान् च चतुःषष्टिम् प्रेषयामास केशवः ॥

शब्दार्थ—

ऐरावतकुल	१.	ऐरावत के वंश में उत्पन्न	पाण्डुरान्	५.	सफेद रंग के
इभान्	७.	हाथी	च	४.	और
च	८.	भी	चतुःषष्टिम्	६.	चौंसठ
चतुर्दन्तान्	३.	चार-चार दाँतों वाले	प्रेषयामास	१०.	भेजे
तरस्विनः ।	२.	अत्यन्त वेगवान्	केशवः ॥	९.	भगवान् श्रीकृष्ण ने

श्लोकार्थ—ऐरावत के वंश में उत्पन्न, अत्यन्त वेगवान्, चार-चार दाँतों वाले और सफेद रंग के चौंसठ हाथी भी भगवान् श्रीकृष्ण ने भेजे ।

अष्टत्रिंशः श्लोकः

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

पदच्छेद— गत्वा सुरेन्द्र भवनम् दत्त्वा अदित्यै च कुण्डले ।
पूजितः त्रिदशइन्द्रेण सहइन्द्राण्या च सप्रियः ॥

शब्दार्थ—

गत्वा	३.	जाकर	च	४.	और
सुरेन्द्र	१.	देवराज के	कुण्डले	६.	कुण्डल
भवनम्	२.	भवन में	पूजितः	११.	पूजित हुये
दत्त्वा	७.	देकर	त्रिदशइन्द्रेण	९.	इन्द्र के द्वारा
अदित्यै ।	५.	अदिति को	सहइन्द्राण्या	८.	इन्द्राणी सहित
			च सप्रियः ॥	१०.	सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—देवराज के भवन में जाकर और अदिति को कुण्डल देकर इन्द्राणी सहित इन्द्र के द्वारा सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण पूजित हुये ।

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान् विबुधान् निर्जित्योपानयत् पुरम् ॥३९॥

पदच्छेद— चोदितः भार्यया उत्पाट्य पारिजातम् गरुत्मति ।
आरोप्य सइन्द्रान् विबुधान् निर्जित्य उपानयत् पुरम् ॥

शब्दार्थ—

चोदितः	२.	कहने पर (श्रीकृष्ण ने)	आरोप्य	६.	रख कर
भार्यया	१.	पत्नी सत्यभामा के	सइन्द्रान्	७.	इन्द्र सहित
उत्पाट्य	४.	उखाड़ कर	विबुधान्	८.	देवताओं को
पारिजातम्	३.	कल्पवृक्ष को	निर्जित्य	९.	जीत कर
गरुत्मति ।	५.	गरुड पर	उपानयत्	११.	ले आये
			पुरम् ॥	१०.	द्वारका में

श्लोकार्थ— पत्नी सत्यभामा के कहने पर श्रीकृष्ण ने कल्प वृक्ष को उखाड़ कर गरुड पर रख कर इन्द्र सहित देवताओं को जीत कर द्वारका में ले आये ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात् तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥

पदच्छेद— स्थापितः सत्यभामायाः गृह उद्यान उपशोभनः ।
अन्वगुः भ्रमराः स्वर्गात् तत्गन्ध आसव लम्पटाः ॥

शब्दार्थ—

स्थापितः	५.	लगा दिया	अन्वगुः	१०.	द्वारका चले आये
सत्यभामायाः	१.	सत्यभामा के	भ्रमराः	९.	भौंरे
गृह	२.	महल के	स्वर्गात् तत्गन्ध	६.	स्वर्ग से उसकी गन्ध और
उद्यान	३.	बगीचे में	आसव	७.	मकरन्द के
उपशोभनः ।	४.	शोभाशाली कल्पवृक्ष को	लम्पटाः ॥	८.	लोभी

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के महल के बगीचे में शोभाशाली कल्पवृक्ष को लगा दिया । स्वर्ग से उसकी गन्ध और मकरन्द के लोभी भौंरे द्वारका चले आये ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

यथाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहोसुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥४१॥

पदच्छेद— यथाचे आनम्य किरीट कोटिभिः पादौ स्पृशन् अच्युतम् अर्थ साधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महान् अहोसुराणाम् च तमः धिग् आढ्यताम् ॥

शब्दार्थ—

यथा च	७. सहायता याचना की थी	सिद्धार्थ	८. काम निकल जाने पर
आनम्य	१. (इन्द्र ने) सिर झुकाकर	एतेन	९. उन्होंने
किरीट कोटिभिः	२. मुकुट की नोकों से	विगृह्यते महान्	१०. श्रीकृष्ण से वैर कर लिया
पादौ स्पृशन्	६. चरणों का स्पर्श करते हुए	अहोसुराणाम्	११. अहो देवताओं का
अच्युतम्	५. श्रीकृष्ण के	च तमः	१२. भी कैसा तमोगुण है उनकी
अर्थ	३. प्रयोजन	धिग्	१४. धिक्कार है
साधनम् ।	४. सिद्ध करने के लिए	आढ्यताम् ॥	१३. धनाढ्यता को

श्लोकार्थ—इन्द्र ने सिर झुकाकर मुकुट की नोकों से प्रयोजन सिद्ध करने के लिये श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श करते हुए सहायता। की काम निकल जाने पर उन्होंने श्रीकृष्ण से वैर कर लिया। अहो! देवताओं का भी कैसा तमोगुण है। उनकी धनाढ्यता को धिक्कार है।

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥४२॥

पदच्छेद— अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
यथा उपयेमे भगवान् तावद्रूपधरः अव्ययः ॥

शब्दार्थ—

अथो	१. तदनन्तर	स्त्रियः ।	१०. स्त्रियों से
मुहूर्त	३. मुहुर्त में	यथा	११. जिस प्रकार
एकस्मिन्	२. एक ही	उपयेमे	१२. विवाह क्रिया (उसे कहिये)
नाना	४. अनेक	भगवान्	८. भगवान् ने
आगारेषु	५. भवनों में	तावद्रूपधरः	६. उतने रूप धारण करके
ताः	९ उन	अव्ययः ॥	७. अविनाशी

श्लोकार्थ—तदनन्तर एक ही मुहूर्त में अनेक भवनों में उतने रूप धारण करके अविनाशी भगवान् ने उन स्त्रियों से जिस प्रकार विवाह किया उसे कहिये ॥

त्रिचत्वारिंशः श्लोकः

गृहेषु तासामनपाय्यतर्ककृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ।
रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥४३॥

पदच्छेद— गृहेषु तासाम् अनपायि अतर्क्यकृत् निरस्त साम्यअतिशयेषु अवस्थितः ।
रेमे रमाभिः निजकाम संप्लुतः यथाइतरः गार्हकम् अधिकान् चरन् ॥

शब्दार्थ— गृहेषु	५. भवनों में	रेमे	१०. वैसे ही रमण करते थे
तासाम्	१. उन पत्नियों के	रमाभिः	९. उन रमणियों के साथ
अनपायि	५. निर्दोष	निजकाम	७. आत्मानन्द में
अतर्क्यकृत्	६. मति-गति से परे की लीला करने वाले	संप्लुतः	८. मग्न रहने वाले भगवान्
निरस्त	४. परे	यथाइतरः	११. जैसे साधारण मनुष्य
साम्यअतिशयेषु	२. समता एवम्	गार्हकम्	१२. घर गृहस्थी में रहकर
अवस्थितः ।	६. अवस्थित होकर	अधिकान्	१३. गृहस्थ धर्म के अनुसार
		चरन् ॥	१४. आचरण करता है

श्लोकार्थ—उन पत्नियों के समता एवम् अधिकता से परे भवनों में अवस्थित होकर निर्दोष, मति-गति से परे लीला करने वाले, आत्मानन्द में मग्न रहने वाले भगवान् उन रमणियों के साथ वैसे ही रमण करते थे जैसे साधारण मनुष्य घर-गृहस्थी में रहकर गृहस्थ धर्म के अनुसार आचरण करता है ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥४४॥

पदच्छेद—इत्थम् रमापतिम् अवाप्य पतिम् स्त्रियः ताः ब्रह्मा आदयः अपि न विदुः पदवीम् यदीयाम् ।
भेजुः मुदा अविरतम् एधितया अनुराग हास अवलोक नव सङ्गम जल्प लज्जाः ॥

शब्दार्थ—इत्थम्	७. इस प्रकार	भेजुः	१६. सेवा करती थीं
रमापतिम्	५. लक्ष्मी पति को	मुदा	११. आनन्द से
अवाप्यपतिम्	८. पाकर पति रूप में	अविरतम्	९. निरन्तर
स्त्रियः ताः	६. वे स्त्रियाँ	एधितया	१०. बढ़ते हुये
ब्रह्मा आदयः	३. ब्रह्मा आदि	अनुराग	१२. प्रेम
अपि न विदुः	४. भी नहीं जानते हैं उन	हास अवलोक	१३. हास चितवन
पदवीम्	२. मार्ग को	नव सङ्गम	१४. नव समागम
यदीयाम् ।	१. जिनकी प्राप्ति के	जल्पलज्जाः ॥	१५. वार्ता तथा लज्जा से युक्त होकर

श्लोकार्थ—जिनकी प्राप्ति के मार्ग को ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते हैं, उन लक्ष्मी पति को वे स्त्रियाँ इस प्रकार पति के रूप में पाकर निरन्तर बढ़ते हुये आनन्द से प्रेम हास, चितवन, नव समागम वार्ता तथा लज्जा से युक्त होकर सेवा करती रहती थीं ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

पदच्छेद—

प्रत्युद्गम आसनवर अर्हण पादशौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्ध माल्यैः ।
केश प्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ।।

शब्दार्थ—

प्रत्युद्गम	३.	अगवानी करना	केश प्रसार	११.	केश संवारना
आसनवर	४.	उत्तम आसन पर बैठाना	शयनस्नपन	१२.	सुलाना स्नान कराना
अर्हण	५.	पूजन करना	उपहार्यैः	१३.	अनेक प्रकार के भोजन कराना
पादशौच	६.	चरणों को धोना	दासीशता	१.	सैकड़ों दासियों के रहने पर
ताम्बूल	७.	पान खिलाना	अपि	२.	भी वे रानियाँ
विश्रमण	८.	थकान मिटाना	विभोः	१४.	भगवान् की
वीजन	९.	पंखा झलना	विदधुः स्म	१६.	किया करती थीं
गन्धमाल्यैः ।	१०.	सुगन्धित माला पहिनाना	दास्यम्	१५.	सेवा

श्लोकार्थ—

हे राजन् ! सैकड़ों दासियों के रहने पर भी वे रानियाँ अगवानी करना, उत्तम आसन पर बैठाना, पूजन करना, चरणों को धोना, पान खिलाना, थकान मिटाना, पंखा झलना, सुगन्धित माला पहिनाना, केश संवारना, सुलाना, स्नान कराना, अनेक प्रकार के भोजन कराना इत्यादि से भगवान् की सेवा किया करतीं थीं ।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
पारिजातहरणनरकवधो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

षष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥१॥

पदच्छेद— कर्हिचित् सुखम् आसीनम् स्वतल्पस्थम् जगद् गुरुम् ।
पतिम् पर्यचरत् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥

शब्दार्थ—

कर्हिचित्	१.	किसी समय	पतिम्	६.	श्रीकृष्ण की
सुखम्	३.	सुखपूर्वक	पर्यचरत्	१०.	सेवा कर रही थीं
आसीनम्	४.	बैठे हुये	भैष्मी	७.	रुक्मिणी जी
स्वतल्पस्थम्	२.	पलंग पर	व्यजनेन	९.	पंखा झलकर
जगद् गुरुम् ।	५.	संसार के गुरु	सखीजनैः ॥	८.	सखियों के साथ

श्लोकार्थ—किसी समय पलंग पर सुख पूर्वक बैठे हुये संसार के गुरु श्रीकृष्ण की रुक्मिणी जी सखियों के साथ सेवा कर रही थीं ॥

द्वितीयः श्लोकः

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥२॥

पदच्छेद— यः तु एतत् लीलया विश्वम् सृजति अत्ति अवति ईश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनाम् गोपीथाय यदुषु अजः ॥

शब्दार्थ—

यः तु	१.	जो	सः हि	८.	वे ही
एतत्	४.	इस	जातः	१४.	अवतीर्ण हुये हैं
लीलया	३.	खेल-खेल में ही	स्व	१०.	अपनी
विश्वम्	५.	संसार की	सेतूनाम्	११.	धर्म मर्यादाओं की
सृजति	६.	सृष्टि	गोपीथाय	१२.	रक्षा के लिये
अत्तिअवति	७	पालन और संसार करते हैं	यदुषु	१३.	यदुवंशियों में
ईश्वरः ।	२.	ईश्वर	अजः ॥	९.	अजन्मा

श्लोकार्थ—जो ईश्वर खेल-खेल में ही इस संसार की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वे ही अजन्मा अपनी धर्म-मर्यादाओं की रक्षा के लिये यदुवंशियों में अवतीर्ण हुये हैं ॥

तृतीयः श्लोकः

तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥३॥

पदच्छेद— तस्मिन् अन्तर्गृहे भ्राजन् मुक्तादाम विलम्बिना ।
विराजिते वितानेन दीपैः मणिमयैः अपि ॥

शब्दार्थ—

तस्मिन्	१. उस	विराजिते	२. शोभायमान
अन्तर्गृहे	३. भीतरी महल में	वितानेन	४. चँदोवे तने हुये थे
भ्राजन्	५. चमकते हुये	दीपैः	९. दीपक
मुक्तादाम	६. मोतियों की झालर	मणिमयैः	८. और वहाँ मणियों के
विलम्बिना ।	७. लटक रही थी	अपि ॥	१०. भी जगमगा रहे थे

श्लोकार्थ—उस शोभायमान भीतरी महल में चँदोवे तने हुये थे जिन में चमकते हुये मोतियों की झालरें लटक रही थीं। और वहाँ मणियों के दीपक भी जगमगा रहे थे ॥

चतुर्थः श्लोकः

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादितैः ।
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥४॥

पदच्छेद— मल्लिका दामभिः पुष्पैः द्विरेफ कुलनादितैः ।
जालरन्ध्र प्रविष्टैः च गोभिः चन्द्रमसः अमलैः ॥

शब्दार्थ—

मल्लिका	४. बेला चमेली के	जाल	८. झरोखे की जालियों के
दामभिः	५. हार और	रन्ध्र	९. छेद से
पुष्पैः	६. फूल महक रहे थे	प्रविष्टैः	१०. प्रविष्ट
द्विरेफ	१. भौंरों के	च	७. तथा
कुल	२. झुण्ड से	गोभिः	१३. किरणें छिटक रही थीं
नादितैः ।	३. शब्दायमान	चन्द्रमसः	११. चन्द्रमा की
		अमलैः ॥	१२. शुभ्र

श्लोकार्थ—भौंरों के झुण्ड से शब्दायमान बेला-चमेली के हार और फूल महक रहे थे। तथा झरोखों की जालियों के छेद से प्रविष्ट चन्द्रमा की शुभ्र किरणें छिटक रही थीं ॥

पञ्चमः श्लोकः

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।
धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥५॥

पदच्छेद— पारिजात वन आमोद वायुना उद्यान शालिना ।
धूपैः अगुरुजैः राजन् जाल रन्ध्र विनिर्गतैः ॥

शब्दार्थ—

पारिजात	४. कल्पवृक्ष के	धूपैः	९. धूप
वन	५. वन के	अगुरुजैः	८. अगर के
आमोद	६. सुगन्ध से युक्त	राजन्	१. हे राजन् !
वायुना।	७. वायु बह रहा था	जाल	१०. जालियों के
उद्यान	२. उद्यान में	रन्ध्र	११. छेद से
शालिना ।	३. शोभायमान	विनिर्गतैः ॥	१२. निकल रहे थे

श्लोकार्थ—हे राजन् ! उद्यान में शोभायमान कल्पवृक्ष के वन के सुगन्ध से युक्त वायु बह रहा था । अगर के धूप जालियों के छेद से निकल रहे थे ॥

षष्ठः श्लोकः

पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥६॥

पदच्छेद— पयः फेन निभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपु उत्तमे ।
उपतस्थे सुख आसीनम् जगताम् ईश्वरम् पतिम् ॥

शब्दार्थ—

पयः	१. दूध के	उपतस्थे	१२. उनकी सेवा कर रही थीं
फेन	२. फेन के	सुख	७. सुख पूर्वक
निभे	३. समान	आसीनम्	८. बैठे हुये
शुभ्रे	४. उज्ज्वल और	जगताम्	९. त्रिलोकी के
पर्यङ्के	६. पलंग पर	ईश्वरम्	१०. स्वामी को
कशिपु उत्तमे ।	५. उत्तम बिछौनों से युक्त	पतिम् ॥	११. पति के रूप में पाकर (रुक्मिणी)

श्लोकार्थ—दूध के फेन के समान उज्ज्वल और उत्तम बिछौने से युक्त पलंग पर सुख पूर्वक बैठे हुये त्रिलोकी के स्वामी को पति रूप में पाकर रुक्मिणी उनकी सेवा कर रही थीं ॥

सप्तमः श्लोकः

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥७॥

पदच्छेद— वालव्यजनम् आदाय रत्न दण्डम् सखी करात् ।
तेन वीजयती देवी उपासाम् चक्रे ईश्वरम् ॥

शब्दार्थ—

वालव्यजनम्	३.	चँवर	तेन	७.	उस से
आदाय	६.	लेकर	वीजयती	८.	पंखा झलती हुई
रत्न	१.	रत्नों को	देवी	६.	रुक्मिणी देवी
दण्डम्	२.	डांड़ी से युक्त	उपासाम्	११.	सेवा
सखी	४.	सखी के	चक्रे	१२.	करने लगीं
करात् ।	५.	हाथ से	ईश्वरम् ॥	१०.	श्रीकृष्ण की

श्लोकार्थ—रत्नों की डांड़ी से युक्त चँवर सखी के हाथ से लेकर उससे पंखा झलती हुई रुक्मिणी देवी श्रीकृष्ण की सेवा करने लगीं ॥

अष्टमः श्लोकः

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥८॥

पदच्छेद—स उपअच्युतम् क्वणयती मणिनूपुराभ्याम् रेजे अङ्गुलीय वलय व्यजन अग्रहस्ता ।
वस्त्रान्त गूढ कुचकुङ्कुम शोणहारभासा नितम्ब धृतया च परार्ध्य काञ्च्या ॥

शब्दार्थ—

सः	४.	वह	वस्त्रान्त	८.	आंचल के नीचे
उपअच्युतम्	२.	श्रीकृष्ण के समीप	गूढ	६.	छिपे हुये
क्वणयती	३.	शब्द करती हुई	कुचकुङ्कुम	१०.	स्तनों के कुङ्कुम से
मणिनूपुराभ्याम्	१.	मणिनिर्मित नूपुरों से	शोणहार भासा	११.	लाल बने हुये हार की कान्ति से
रेजे	१६.	शोभा पा रहीं थीं	नितम्ब	१२.	कमर में
अङ्गुलीय वलय	६.	अंगूठी, कंगन और	धृतया च	१३.	धारण की गई
व्यजन	७.	चँवर से तथा	परार्ध्य	१४.	बहुमूल्य
अग्रहस्ता ।	५.	हाथों में	काञ्च्या ॥	१५.	करधनी से

श्लोकार्थ—मणि निर्मित नूपुरों से श्रीकृष्ण के समीप शब्द करती हुई वह हाथों में अंगूठी, कंगन और चँवर से, तथा आंचल के नीचे छिपे हुये स्तनों के कुंकुम से लाल बने हुये हार की कान्ति से कमर में धारण की गई बहुमूल्य करधनी से शोभा पा रही थीं ॥

नवमः श्लोकः

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥९॥

पदच्छेद— ताम् रूपिणीम् श्रियम् अनन्यगतिम् निरीक्ष्य या लीलया धृत तनोः अनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन् अलक कुण्डल निष्ककण्ठ वक्त्र उल्लसत् स्मित सुधाम् हरिःआबभाषे ॥

शब्दार्थ—

ताम्	५. उस	प्रीतः स्मयन्	९. प्रसन्न होकर मुसकराते हुये
रूपिणीम् श्रियम्	६. सुन्दरी लक्ष्मी को	अलक कुण्डल	१०. घुंघराले बाल-कुण्डल तथा
अनन्यगतिम्	७. श्रीकृष्ण परायण	निष्ककण्ठ	११. गले में स्वर्ण हार से शोभित
निरीक्ष्य	८. देख कर	वक्त्र	१२. मुख से
या लीलया	१. जिसने लीला के लिये	उल्लसत्	१४. करती हुई रुक्मिणी से
धृत	३. धारण करने वाले श्रीकृष्ण के	स्मित सुधाम्	१३. मुसकराहट की अमृत वर्षा
तनोः	२. शरीर	हरिः	१५. श्रीकृष्ण ने
अनुरूपरूपा ।	४. अनुरूप रूप प्रकट किया था	आबभाषे ॥	१६. कहा

श्लोकार्थ—जिसने लीला के लिये शरीर धारण करने वाले श्रीकृष्ण के अनुरूप रूप प्रकट किया था उस सुन्दरी लक्ष्मी को श्रीकृष्ण परायण देख कर प्रसन्न होकर मुसकराते हुये श्रीकृष्ण ने घुंघराले बाल, कुण्डल तथा गले में स्वर्णहार से शोभित मुख से मुसकराहट की अमृत वर्षा करती हुई रुक्मिणी से कहा ॥

दशमः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच— राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥

पदच्छेद— राजपुत्री ईप्सिता भूपैः लोकपाल विभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भिः रूप औदार्य बल उर्जितैः ॥

शब्दार्थ—

राजपुत्री	१. हे राजकुमारी !	महानुभावैः	४. प्रभावशाली
ईप्सिता	१०. तुम्हें चाहते थे	श्रीमद्भिः	५. सम्पत्ति शाली
भूपैः	९. राजा लोग	रूप औदार्य	६. एवम् सुन्दरता, उदारता
लोकपाल	२. लोकपालों के समान	बल	७. और बल में भी
विभूतिभिः ।	३. ऐश्वर्यशाली	उर्जितैः ॥	८. आगे बढ़े हुये

श्लोकार्थ—हे राजकुमारी ! लोकपालों के समान ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली, सम्पत्तिशाली एवम् सुन्दरता, उदारता और बल में भी आगे बढ़े हुये राजालोग तुम्हें चाहते थे ॥

नवमः श्लोकः

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥९॥

पदच्छेद— ताम् रूपिणीम् श्रियम् अनन्यगतिम् निरीक्ष्य या लीलया धृत तनोः अनुरूपरूपा।
प्रीतः स्मयन् अलक कुण्डल निष्ककण्ठ वक्त्र उल्लसत् स्मित सुधाम् हरिः आबभाषे॥

शब्दार्थ—

ताम्	५. उस	प्रीतः स्मयन्	८. प्रसन्न होकर मुसकराते हुये
रूपिणीम् श्रियम्	६. सुन्दरी लक्ष्मी को	अलक कुण्डल	१०. घुंघराले बाल-कुण्डल तथा
अनन्यगतिम्	७. श्रीकृष्ण परायण	निष्ककण्ठ	११. गले में स्वर्ण हार से शोभित
निरीक्ष्य	८. देख कर	वक्त्र	१२. मुख से
या लीलया	१. जिसने लीला के लिये	उल्लसत्	१४. करती हुई रुक्मिणी से
धृत	३. धारण करने वाले श्रीकृष्ण के	स्मित सुधाम्	१३. मुसकराहट की अमृत वर्षा
तनोः	२. शरीर	हरिः	१५. श्रीकृष्ण ने
अनुरूपरूपा।	४. अनुरूप रूप प्रकट किया था	आबभाषे॥	१६. कहा

श्लोकार्थ—जिसने लीला के लिये शरीर धारण करने वाले श्रीकृष्ण के अनुरूप रूप प्रकट किया था उस सुन्दरी लक्ष्मी को श्रीकृष्ण परायण देख कर प्रसन्न होकर मुसकराते हुये श्रीकृष्ण ने घुंघराले बाल, कुण्डल तथा गले में स्वर्णहार से शोभित मुख से मुसकराहट की अमृत वर्षा करती हुई रुक्मिणी से कहा॥

दशमः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच— **राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः।**
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥

पदच्छेद— राजपुत्री ईप्सिता भूपैः लोकपाल विभूतिभिः।
महानुभावैः श्रीमद्भिः रूप औदार्य बल उर्जितैः॥

शब्दार्थ—

राजपुत्री	१. हे राजकुमारी!	महानुभावैः	४. प्रभावशाली
ईप्सिता	१०. तुम्हें चाहते थे	श्रीमद्भिः	५. सम्पत्ति शाली
भूपैः	९. राजा लोग	रूप औदार्य	६. एवम् सुन्दरता, उदारता
लोकपाल	२. लोकपालों के समान	बल	७. और बल में भी
विभूतिभिः।	३. ऐश्वर्यशाली	उर्जितैः॥	८. आगे बढ़े हुये

श्लोकार्थ—हे राजकुमारी! लोकपालों के समान ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली, सम्पत्तिशाली एवम् सुन्दरता, उदारता और बल में भी आगे बढ़े हुये राजालोग तुम्हें चाहते थे॥

एकादशः श्लोकः

तान् प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥११॥

पदच्छेद— तान् प्राप्तान् अर्थिनः हित्वा चैद्य आदीन् स्मर दुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मात् नः ववृषे असमान् ॥

शब्दार्थ—

तान्	२. उन	दत्ता	६. उन्हें दी गई तुमने		
प्राप्तान्	४. आये हुये	भ्रात्रा	८. भाई के द्वारा		
अर्थिनः	३. प्राप्त करने के लिये	स्वपित्रा च	७. अपने पिता और		
हित्वा	६. त्याग कर	कस्मात्	१२. क्यों		
चैद्य आदीन्	५. शिशुपाल आदि को	नः	१०. मुझे		
स्मर दुर्मदान् ।	१. काम से उन्मत्त	ववृषे	१३. वरण किया		
		असमान् ॥	११. जो अपने समान नहीं हैं		

श्लोकार्थ—काम से उन्मत्त उन प्राप्त करने के लिये आये हुये शिशुपाल आदि को त्याग कर अपने पिता और भाई के द्वारा दी गई तुमने मुझे, जो अपने समान नहीं है, क्यों वरण किया।

द्वादशः श्लोकः

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रु समुद्रं शरणं गतान् ।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

पदच्छेद— राजभ्यः बिभ्यतः सुभ्रुः समुद्रम् शरणम् गतान् ।
बलवद्भिः कृत द्वेषान् प्रायः त्यक्त नृपआसनान् ।

शब्दार्थ—

राजभ्यः	२. राजाओं से	बलवद्भिः	७. बलवानों से
बिभ्यतः	३. डर कर	कृत	८. करने वाले (हम तो)
सुभ्रुः	१. हे सुन्दरी !	द्वेषान्	८. द्वेष
समुद्रम्	४ समुद्र की	प्रायः	१०. प्रायः
शरणम्	५. शरण में	त्यक्त	१२. वञ्चित ही हैं
गतान् ।	६. आ बसे हुये तथा	नृपआसनान् ॥	११. राज-सिंहासन से भी

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! राजाओं से डर कर समुद्र की शरण में आ बसे हुये तथा बलवानों से द्वेष करने वाले हम तो प्रायः राजसिंहासन से भी वञ्चित ही हैं ॥

त्रयोदशः श्लोकः

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

पदच्छेद— अस्पष्ट वर्त्मनाम् पुंसाम् अलोक पथम् ईयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीम् सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥

शब्दार्थ—

अस्पष्ट	२.	अस्पष्ट	आस्थिताः	९.	चलने वाली
वर्त्मनाम्	३.	मार्ग वाले और	पदवीम्	८.	मार्ग पर
पुंसाम्	७.	पुरुषों के	सुभ्रूः	१.	हे सुन्दरी !
अलोक	४.	लौकिक	प्रायः	११.	प्रायः
पथम्	५.	व्यवहार का पालन	सीदन्ति	१२.	दुःख भोगती हैं
ईयुषाम् ।	६.	न करने वाले	योषितः ॥	१०.	स्त्रियाँ

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! अस्पष्ट मार्ग वाले और लौकिक व्यवहार का पालन न करने वाले पुरुषों के मार्ग पर चलने वाली स्त्रियाँ प्रायः दुःख भोगती हैं ॥

चतुर्दशः श्लोकः

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥

पदच्छेद— निष्किञ्चनाः वयम् शश्वत् निष्किञ्चन जन प्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण नहि आढ्याः माम् भजन्ति सुमध्यमे ॥

शब्दार्थ—

निष्किञ्चनाः	४.	अकिञ्चन हैं और	तस्मात्	८.	इसलिये
वयम्	२.	हम तो	प्रायेण	१०.	प्रायः
शश्वत्	३.	सदा के	नहि	१२.	नहीं
निष्किञ्चन	५.	अकिञ्चन	आढ्याः	९.	धनी-मानी लोग
जन	६.	लोग ही	माम्	११.	मुझसे
प्रियाः ।	७.	हमें प्रिय हैं	भजन्ति	१३.	प्रेम करते हैं
			सुमध्यमे ॥	१.	हे सुन्दरी !

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! हम तो सदा के अकिञ्चन हैं और अकिञ्चन लोग ही हमें प्रिय हैं । इसलिये धनी-मानी लोग प्रायः मुझसे प्रेम नहीं करते हैं ॥

पञ्चदशः श्लोकः

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥१५॥

पदच्छेद— ययोः आत्मसमम् वित्तम् जन्म ऐश्वर्यं आकृतिः भवः ।
तयोः विवाहः मैत्री च न उत्तम अधमयोः क्वचित् ।

शब्दार्थ—

ययोः	१. जिन दोनों का	तयोः	७. उन्हीं दोनों में
आत्मसमम्	६. अपने समान होते हैं	विवाहः	८. विवाह और
वित्तम्	२. धन	मैत्री च	९. मित्रता होनी चाहिये
जन्म ऐश्वर्य	३. कुल ऐश्वर्य	न	१३. नहीं (होनी चाहिये)
आकृतिः	४. सौन्दर्य और	उत्तमः	१०. श्रेष्ठ और
भवः ।	५. जन्म	अधमयोः	११. अधम में
		क्वचित् ॥	१२. कहीं

श्लोकार्थ—जिन दोनों का धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और जन्म अपने समान होते हैं। उन्हीं दोनों में विवाह और मित्रता होनी चाहिये। श्रेष्ठ और अधम में कहीं नहीं होनी चाहिये ॥

षोडशः श्लोकः

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया ।
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥१६॥

पदच्छेद— वैदर्भि एतद् अविज्ञाय त्वया अदीर्घ समीक्षया ।
वृताः वयम् गुणैः हीनाः भिक्षुभिः श्लाघिताः मुधा ॥

शब्दार्थ—

वैदर्भि	१. विदर्भ राजकुमारी	वृताः	१३. वरण कर लिया
एतद्	२. इस बात को	वयम्	१२. हमारा
अविज्ञाय	३. बिना जाने बूझे	गुणैः	९. गुणों से
त्वया	६. तुमने	हीनाः	१०. हीन
अदीर्घ	४. दूर तक	भिक्षुभिः	७. भिक्षुकों से
समीक्षया ।	५. न सोचने वाली	श्लाघिताः	८. प्रशंसित (किन्तु)
		मुधा ॥	११. व्यर्थ ही

श्लोकार्थ—विदर्भ-राजकुमारी ! इस बात को बिना जाने बूझे दूर तक न सोचने वाली तुमने भिक्षुकों से प्रशंसित किन्तु गुणों से हीन व्यर्थ ही हमारा वरण कर लिया ॥

सप्तदशः श्लोकः

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

पदच्छेद— अथ आत्मनः अनुरूपम् वै भजस्व क्षत्रिय ऋषभम् ।
येन त्वम् आशिषः सत्याः इह अमुत्र च लप्स्यसे ॥

शब्दार्थ—

अथ	१.	अब	येन त्वम्	८.	जिससे तुम
आत्मनः	२.	अपने	आशिषः	१२.	अभिलाषा को
अनुरूपम्	३.	अनुरूप (किसी)	सत्याः	१३.	पूर्ण
वै	६.	निश्चित रूप से	इह	९.	इस लोक में
भजस्व	७.	वरण करलो	अमुत्र	११.	परलोक में (अपनी
क्षत्रिय	५.	क्षत्रिय का	च	१०.	और
ऋषभम् ।	४.	श्रेष्ठ	लप्स्यसे ॥	१४.	कर लोगी

श्लोकार्थ—अब अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय का निश्चित रूप से वरण कर लो। जिससे तुम इस लोक में और परलोक में अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर लोगी ॥

अष्टादशः श्लोकः

चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्त्रादयो नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥१८॥

पदच्छेद— चैद्य शाल्व जरासन्ध दन्तवक्त्र आदयः नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी च अपि तव अग्रजः ॥

शब्दार्थ—

चैद्य	२.	शिशुपाल	मम	११.	मुझसे
शाल्व	३.	शाल्व	द्विषन्ति	१२.	द्वेष करते हैं
जरासन्ध	४.	जरासन्ध	वामोरु	१.	हे सुन्दरी !
दन्तवक्त्र	५.	दन्तवक्त्र	रुक्मी	१०.	रुक्मी भी
आदयः	६.	आदि	अपि	८.	और
नृपाः ।	७.	राजा लोग	तव अग्रजः ॥	९.	तुम्हारा भाई

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, आदि, राजा लोग और तुम्हारा भाई रुक्मी भी मुझसे द्वेष करते हैं ॥

एकोनविंशः श्लोकः

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये।
आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरतासताम् ॥१९॥

पदच्छेद— तेषाम् वीर्य मदान्धानाम् दृप्तानाम् स्मय नुत्तये।
आनीता: असि मया भद्रे तेजः अपहरत असताम् ॥

शब्दार्थ—

तेषाम्	५.	उन राजाओं का	आनीताः	११.	तुम्हारा हरण किया
वीर्य	२.	बल के	असि	१२.	है
मदान्धानाम्	३.	मद से अन्धे और	मया	१०.	मैंने
दृप्तानाम्	४.	गर्वीले	भद्रे	१.	हे कल्याणि !
स्मय	६.	घमंड	तेजः अपहरत	९.	तेज अपहरण करने वाले
नुत्तये।	७.	दूर करने के लिये	असताम् ॥	८.	दुष्टों का

श्लोकार्थ—हे कल्याणी ! बल के मद से अन्धे और गर्वीले उन राजाओं का घमंड दूर करने के लिये दुष्टों का तेज अपहरण करने वाले मैंने तुम्हारा हरण किया है ॥

विंशः श्लोकः

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥२०॥

पदच्छेद— उदासीनाः वयम् नूनम् न स्त्री अपत्य अर्थकामुकाः।
आत्म लब्ध्या आस्महे पूर्णाः गेहयोः ज्योतिः अक्रियाः ॥

शब्दार्थ—

उदासीनाः	३.	उदासीन हैं	आत्म	९.	आत्म
वयम्	२.	हम	लब्ध्या	१०.	साक्षात्कार से
नूनम्	१.	निश्चय ही	आस्महे	१२.	हैं
न	६.	नहीं हैं हम	पूर्णाः	११.	पूर्ण
स्त्री अपत्य	४.	स्त्री-सन्तान और	गेहयोः	७.	स्थूल और सूक्ष्म शरीर के
अर्थ कामुकाः।	५.	धन के लोलुप	ज्योतिः अक्रियाः ॥	८.	प्रकाशक निष्क्रिय तथा

श्लोकार्थ—निश्चय ही हम उदासीन हैं, स्त्री सन्तान और धन के लोलुप नहीं हैं। हम स्थूल और सूक्ष्म शरीर के प्रकाशक निष्क्रिय तथा आत्म साक्षात्कार से पूर्ण हैं ॥

एकविंशः श्लोकः

श्रीशुकउवाच— एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ।
मन्यमानामविश्लेषात् तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

पदच्छेद— एतावत् उक्त्वा भगवान् आत्मानम् वल्लभाम् इव ।
मन्यमानाम् अविश्लेषात् तत् दर्पघ्नः उपारमत् ॥

शब्दार्थ—

एतावत्	१०.	इतना	मन्यमानाम्	५.	समझने वाली
उक्त्वा	११.	कह कर (चुप हो गये)	अविश्लेषात्	१.	कभी अलग न होने के कारण
भगवान्	९.	भगवान्	तत्	६.	उन (रुक्मिणी) के
आत्मानम्	३.	अपने को	दर्पघ्नः	७.	गर्व की
वल्लभाम्	४.	सबसे बढ़ कर प्रिय	उपारमत् ॥	८.	शान्ति के लिये
इव ।	२.	मानों			

श्लोकार्थ—कभी अलग न होने के कारण मानों अपने को सब से बढ़ कर प्रिय समझने वाली उन रुक्मिणी के गर्व की शान्ति के लिये भगवान् इतना कह कर चुप हो गये ॥

द्वाविंशः श्लोकः

इति त्रिलोकेशपतेस्तदाऽऽत्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।
आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

पदच्छेद— इति त्रिलोकेशपतेः तदा आत्मनः प्रियस्य देवी अश्रुत पूर्वम् अप्रियम् ।
आश्रुत्य भीताः हृदि जातवेपथुः चिन्ताम् दुरन्ताम् रुदती जगाम ह ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	इस प्रकार	आश्रुत्य	८.	सुन कर
त्रिलोकेशपतेः	४.	त्रिलोकी पति भगवान् की	भीता	१०.	डर गई (उनका)
तदा आत्मनः	२.	तब अपने	हृदि	११.	हृदय
प्रियस्य	३.	प्रियतम	जातवेपथुः	१२.	धड़कने लगा
देवी	९.	देवी (रुक्मिणी)	चिन्ताम्	१५.	चिन्ता में
अश्रुत	६.	न सुनी गई	दुरन्ताम्	१४.	अगाध
पूर्वम्	५.	पहले	रुदती	१३.	और वे रोती हुई
अप्रियम् ।	७.	अप्रिय वाणी	जगाम ह ॥	१६.	निमग्न हो गई

श्लोकार्थ—इस प्रकार तब अपने प्रियतम त्रिलोकी पति भगवान् की पहले न सुनी गई अप्रियवाणी सुन कर देवी रुक्मिणी डर गईं। उनका हृदय धड़कने लगा। और वे रोती हुई अगाध चिन्ता में निमग्न हो गईं ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥२३॥

पदच्छेद— पदा सुजातेन नख अरुण श्रिया भुवम् लिखन्ती अश्रुभिः अञ्जन आसितैः ।
आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थौ अधोमुखी अति दुःख रुद्ध वाक् ॥

शब्दार्थ—

पदा	४. पैर से	आसिञ्चती	१०. सींचती हुई
सुजातेन	१. कमल के समान कोमल	कुङ्कुमरूषितौ	८. केसर से रङ्गे हुये
नख अरुण	२. नखों की लालिमा से	स्तनौ	९. स्तनों को
श्रिया	३. शोभित	तस्थौ	१२. स्थित हुई
भुवम् लिखन्ती	५. धरती को कुरेदती हुई	अधोमुखी	११. मुख नीचे करके
अश्रुभिः	७. आँसुओं से	अति दुःख	१३. अत्यन्त दुःख के कारण
अञ्जन असितैः ।	६. काजल से काले	रुद्ध वाक् ॥	१४. उनकी वाणी रुक गई

श्लोकार्थ—कमल के समान कोमल नखों की लालिमा से शोभित पैर से धरती को कुरेदती हुई। काजल से काले आंसुओं से, केसर से रङ्गे हुये स्तनों को सींचती हुई मुख नीचे करके स्थित हुई अत्यन्त दुःख के कारण उनकी वाणी रुक गई ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन् रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥२४॥

पदच्छेद— तस्याः सुदुःखभय शोकविनष्ट बुद्धेः हस्तात् श्लथद् वलयतः व्यजनम्पपात ।
देहःच विक्लवधियः सहसा एव मुह्यन् रम्भा इव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥

शब्दार्थ—

तस्याः	४. उनके	देहःच	९. शरीर भी
सुदुःखभय	१. अत्यन्त दुःख और शोक के कारण	विक्लवधियः	८. बुद्धि की विकलता के कारण
शोकविनष्ट	२. लुप्त हुई	सहसा एव	१०. एकाएक अचेत हो गया
बुद्धेः	३. बुद्धि वाली	मुह्यन् रम्भा इव	१४. केले के खम्भे के समान गिर पड़ी
हस्तात् श्लथद्	६. हाथ ढीले पड़ गये	वायुविहता	१३. वायु वेग से उखड़े हुये
वलयतः	५. कङ्गन वाले	प्रविकीर्य	१२. बिखेर कर
व्यजनम् पपात ।	७. चँवर गिर पड़ा	केशान् ॥	११. बालों को

श्लोकार्थ—अत्यन्त दुःख और शोक के कारण लुप्त हुई बुद्धि वाली उनके कंगन वाले हाथ ढीले पड़ गये, चँवर गिर पड़ा। बुद्धि की विकलता के कारण शरीर भी एकाएक अचेत हो गया। बालों को बिखेर कर वायु वेग से उखड़े हुये केले के खम्भे के समान गिर पड़ीं ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

तद् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ।
हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥

पदच्छेद— तत् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेम बन्धनम् ।
हास्य प्रौढिम् अजानन्त्याः करुणः सः अन्वकम्पत ॥

शब्दार्थ—

तत्	५.	वह	हास्य	१.	हास्य-विनोद की
दृष्ट्वा	८.	देख कर	प्रौढिम्	२.	गम्भीरता को
भगवान्	११.	भगवान्	अजानन्त्याः	३.	न जानती हुई
कृष्णः	१२.	श्रीकृष्ण	करुणः	१०.	दयालु
प्रियायाः	४.	प्रिया का	सः	९.	वे
प्रेम	६.	प्रेम	अन्वकम्पत ॥	१३.	करुणा से भर गये
बन्धनम् ।	७.	बन्धन			

श्लोकार्थ—हास्य विनोद की गम्भीरता को न जानती हुई प्रिया का वह प्रेम बन्धन देख कर वे दयालु भगवान् श्रीकृष्ण करुणा से भर गये ।

षड्विंशः श्लोकः

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥२६॥

पदच्छेद— पर्यङ्कात् अवरुह्य आशु ताम् उत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान् समुह्य तत् वक्त्रम् प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥

शब्दार्थ—

पर्यङ्कात्	३.	पलंग से	केशान्	७.	उनके केशों को
अवरुह्य	४.	उतर कर	समुह्य	८.	बाँध कर
आशु	२.	शीघ्र	तत्	९.	उनके
ताम्	५.	रुक्मिणी को	वक्त्रम्	१०.	मुख को (अपने)
उत्थाप्य	६.	उठा कर	प्रामृजत्	१२.	पोंछ दिया
चतुर्भुजः ।	१.	चार भुजाओं वाले श्रीकृष्ण ने	पद्मपाणिना ॥	११.	कर कमलों से

श्लोकार्थ—चार भुजाओं वाले श्रीकृष्ण ने शीघ्र पलंग से उतर कर रुक्मिणी को उठा कर उनके केशों को बाँध कर उनके मुख को अपने कर कमलों से पोंछ दिया ॥

सप्तविंशः श्लोकः

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥

पदच्छेद— प्रमृज्य अश्रुकले नेत्रे स्तनौ च उपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजन् अनन्य विषयां सतीम् ॥

शब्दार्थ—

प्रमृज्य	७. पोंछ कर	आश्लिष्य	१२. भर लिया
अश्रुकले	२. आँसू से भरे	बाहुना	११. बाँहों में
नेत्रे	३. नेत्रों को	राजन्	१. हे राजन् !
स्तनौ च	६. स्तनों को	अनन्य	८. अनन्य
उपहतौ	५. सिकुड़े हुये	विषयां	९. प्रेम रखने वाली
शुचा ।	४. और शोक से	सतीम् ॥	१०. पतिव्रता (रुक्मिणी) को

श्लोकार्थ—हे राजन् ! आँसू से भरे नेत्रों को, शोक से सिकुड़े हुये स्तनों को पोंछकर अनन्य प्रेम रखने वाली पतिव्रता रुक्मिणी को बाँहों में भर लिया ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥२८॥

पदच्छेद— सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणाम् प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमत् चित्ताम् अतद् अर्हाम् सताम् गतिः ॥

शब्दार्थ—

सान्त्वयामास	१०. समझाने लगे	हास्यप्रौढि	५. हास्य के कारण
सान्त्वज्ञः	१. सान्त्वना के विशेषज्ञ और	भ्रमत्	६. चकराते हुये
कृपया	४. कृपा करके	चित्ताम्	७. चित्त वाली और
कृपणाम्	९. दीन (रुक्मिणी) को	अतद् अर्हाम्	८. इसके अयोग्य
प्रभुः ।	३. भगवान् श्रीकृष्ण	सताम् गतिः ।	२. सज्जनों के आश्रय

श्लोकार्थ—सान्त्वना के विशेषज्ञ और सज्जनों के आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके हास्य के कारण चकराते हुये चित्त वाली और उसके अयोग्य, दीन रुक्मिणी को समझाने लगे ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच—मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याऽऽचरितमङ्गने ॥२९॥

पदच्छेद— मा मा वैदर्भि असूयेथाः जाने त्वाम् मत् परायणाम् ।
त्वद् वचः श्रोतु कामेन क्ष्वेल्या आचरितम् अङ्गने ॥

शब्दार्थ—

मा मा	२.	मत	त्वद्	९.	तुम्हारी
वैदर्भि	१.	विदर्भ राजकुमारी	वचः	१०.	बात
असूयेथाः	३.	बुरा मानो	श्रोतु	११.	सुनने की
जाने	४.	मैं जानता हूँ कि	कामेन	१२.	कामना से ही
त्वाम्	५.	तुम	क्ष्वेल्या	१३.	मैंने हंसी करी थी
मत्	६.	मेरी	आचरितम्	१४.	यह
परायणाम् ।	७.	अनन्य भक्त हो	अङ्गने ॥	८.	हे सुन्दरी

श्लोकार्थ—विदर्भ राजकुमारी, मत बुरा मानों, मैं जानता हूँ कि तुम मेरी अनन्य भक्त हो। हे सुन्दरी ! तुम्हारी बात सुनने की कामना से ही मैंने यह हंसी करी थी ॥

त्रिंशः श्लोकः

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।
कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥३०॥

पदच्छेद— मुखम् प्रेमसंरम्भ स्फुरित अधरम् ईक्षितुम् ।
कटाक्षेप अरुण अपाङ्गम् सुन्दर भ्रुकुटीतटम् ॥

शब्दार्थ—

मुखम्	९.	मुख को	कटाक्षेप	४.	कटाक्ष पूर्वक देखने से
प्रेमसंरम्भ	१.	प्रणय कोप से	अरुण	५.	लाल
स्फुरित	२.	फड़कते हुये	अपाङ्गम्	६.	आँखों के कोर वाले
अधरम्	३.	होठों वाले	सुन्दर	७.	सुन्दर
ईक्षितुम् ।	१०.	देखने के लिये ही (ऐसा कहा था)	भ्रुकुटीतटम् ॥	८.	भौंहों के तट वाले (तुम्हारे

श्लोकार्थ—प्रणय कोप से फड़कते हुये होठों वाले, कटाक्ष पूर्वक देखने से लाल आँखों के कोर वाले, सुन्दर भौंहों के तट वाले, तुम्हारे मुख को देखने के लिये ही ऐसा कहा था ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥३१॥

पदच्छेद— अयम् हि परमः लाभ गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यत् नर्मैः नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥

शब्दार्थ—

अयम्	४.	यह	यत्	८.	जो कि
हि	५.	ही तो	नर्मैः	९.	हास-परिहास करते हुये
परमः	६.	परम	नीयते	१२.	बिता ली जाती हैं
लाभः	७.	लाभ है	यामः	११.	कुछ घड़ियाँ
गृहेषु	२.	गृह कार्य में लगे हुये	प्रियया	१०.	प्रिया के साथ
गृहमेधिनाम् ।	३.	गृहस्थों के लिये	भीरु भामिनि ॥	१.	डरपोक हे सुन्दरी !

श्लोकार्थ—डरपोक सुन्दरी ! गृह कार्य में लगे हुये गृहस्थों के लिये यह ही तो परम लाभ है, जो कि हास-परिहास करते हुये प्रिया के साथ कुछ घड़ियाँ बिता ली जाती हैं ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—**सैवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ।**
ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥३२॥

पदच्छेद— सा एवम् भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ।
ज्ञात्वा तत् परिहास उक्तिम् प्रियत्याग भयम् जहौ ॥

शब्दार्थ—

सा	३.	उस	ज्ञात्वा	१०.	जान कर
एवम्	५.	इस प्रकार	तत्	७.	तब उसने उसे
भगवता	२.	भगवान् ने	परिहास	८.	परिहास की
राजन्	१.	हे राजन् !	उक्तिम्	९.	बात
वैदर्भी	४.	रुक्मिणी को	प्रियत्याग	११.	प्रियतम के त्यागने का
परिसान्त्विता ।	६.	सान्त्वना दी	भयम् जहौ ॥	१२.	भय छोड़ दिया

श्लोकार्थ—हे राजन् ! भगवान् ने उस रुक्मिणी को इस प्रकार सान्त्वना दी । तब उसने उसे परिहास की बात जान कर प्रियतम के त्यागने का भय छोड़ दिया ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।
सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥३३॥

पदच्छेद— बभाषे ऋषभम् पुंसाम् वीक्षन्ती भगवन् मुखम् ।
सव्रीड हास रुचिर स्निग्ध अपाङ्गेन भारत ॥

शब्दार्थ—बभाषे	१२.	बोलीं	सव्रीड	२.	लज्जा
ऋषभम्	११.	श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से	हास	३.	हास्य और
पुंसाम्	१०.	पुरुषों में	रुचिर	४.	सुन्दर
वीक्षन्ती	९.	देखती हुई रुक्मिणी	स्निग्ध	५.	प्रेम पूर्ण
भगवन्	७.	भगवान् का	अपाङ्गेन	६.	चितवन से
मुखम् ।	८.	मुख	भारत ॥	१.	हे परीक्षित् !

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! लज्जा, हास्य और सुन्दर प्रेम पूर्ण चितवन से भगवान् का मुख देखती हुई रुक्मिणी पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से बोलीं ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

रुक्मिण्युवाच—

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥३४॥

पदच्छेद—ननु एवम् एतद् अरविन्द विलोचन आह यद् वै भवान् भगवतः असदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्नि अभिरतः भगवान् त्रिअधीशः क्वअहम् गुण प्रकृतिः अज्ञ गृहीतपादा ॥

शब्दार्थ—ननु	४. निश्चित रूप से	क्व स्वे	१०. कहाँ अपनी
एवम्	६. ठीक इस प्रकार	महिम्नि	११. अखण्ड महिमा में
एतद्	५. यह	अभिरतः भगवान्	१३. स्थित आप भगवान्
अरविन्द	१. हे कमल	त्रिअधीशः	१२. तीनों गुणों के स्वामी
विलोचन	२. नयन भगवान् !	क्वअहम्	१४. कहाँ मैं
आह यद् वै	७. कहा है कि	गुण	१५. तीनों गुणों के अनुसार
भवान्	३. आपने	प्रकृतिः	१६. स्वभाव वाली एवम्
भगवतः असदृशी	९. आपके अनुरूप मैं नहीं हूँ	अज्ञ	१७. अज्ञानी लोगों के द्वारा
विभूम्नः ।	८. ऐश्वर्य शाली	गृहीतपादा ॥	१८. सेवित पैरों वाली मैं हूँ

श्लोकार्थ—हे कमल नयन भगवान् ! आपने यह निश्चित रूप से इस प्रकार ठीक ही कहा है कि ऐश्वर्य शाली आपके अनुरूप मैं नहीं हूँ ! कहाँ अखण्ड महिमा में स्थित तीनों गुणों के स्वामी आप भगवान् और कहाँ मैं तीनों गुणों के अनुरूप स्वभाव वाली एवम् अज्ञानी लोगों के द्वारा सेवित पैरों वाली मैं हूँ ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ।।३५।।

पदच्छेद—सत्यम् भयात् इव गुणेभ्यः उरुक्रम अन्तः शेते समुद्रे उपलम्भनमात्रः आत्मा ।
नित्यम् कत् इन्द्रियगणैः कृत विग्रहः त्वम् त्वत् सेवकैः नृपपदम् विधुतम् तमः अन्धम् ।।

शब्दार्थ—सत्यम्	२. सत्य है कि आप	आत्मा ।	८. आत्मा के रूप में
भयात्	४. भय से	नित्यम्	१२. नित्य
इव गुणेभ्यः	३. मानों तीनों गुण रूपी राजाओं के	कत्	१०. दुष्ट
उरुक्रमः	१. हे स्वामिन् !	इन्द्रियगणैः	११. इन्द्रिय समूह रूप राजाओं से
अन्तः	५. अन्तः करण रूप	कृत विग्रहः	१३. बैर ठानने वाले हैं
शेते	९. सोते हैं	त्वम् त्वत् सेवकैः	१४. आपके सेवकों ने
समुद्र	६. समुद्र में	नृपपदम् विधुतम्	१६. राजा के पद को ठुकरा दिया है
उपलम्भनमात्रः	७. चैतन्य स्वरूप	तमःअन्धम् ।।	१५. घोर अज्ञान समझ कर

श्लोकार्थ—हे स्वामिन् ! सत्य है कि आप मानों तीनों गुण रूपी राजाओं के भय से अन्तः करण रूप समुद्र में चैतन्य स्वरूप आत्मा के रूप में सोते हैं। आप दुष्ट इन्द्रिय समूह रूप राजाओं से नित्य बैर ठानने वाले हैं। आपके सेवकों ने घोर अज्ञान समझ कर राजा के पद को ठुकरा दिया है ।।

षट्त्रिंशः श्लोकः

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ।।३६।।

पदच्छेद—त्वत् पाद पद्ममकरन्द जुषाम् मुनीनाम् वर्त्म अस्फुटम् नृपशुभिः ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मात् अलौकिकम् इव ईहितम् ईश्वरस्य भूमन् तव ईहितम् अथो अनु ये भवन्तम् ।।

शब्दार्थ—त्वत् पाद	१. आपके चरण	ईहितम्	१८. चेष्टा के बारे में क्या कहना है
पद्ममकरन्द	२. कमलों के पराग का	ईश्वरस्य	१७. ईश्वर की
जुषाम्	३. सेवन करने वाले	भूमन्	८. हे अनन्त !
मुनीनाम्वर्त्म	४. मुनियों का मार्ग	तव	१६. आप
अस्फुटम्	५. अस्पष्ट और	ईहितम्	१३. चेष्टा
नृपशुभिः	६. नर-पशुओं के लिये	अथो	१५. तब
ननुदुर्विभाव्यम् ।	७. निश्चित ही कठिन है	अनु	१२. अनुगामी है उनको
यस्मात्	९. जब	ये	११. जो
अलौकिकम् इव	१४. मानों अनोखी	भवन्तम् ।।	१०. आपके

श्लोकार्थ—आपके चरण कमलों के पराग का सेवन करने वाले मुनियों का मार्ग अस्पष्ट है, और नर पशुओं के लिये निश्चित ही कठिन है। हे अनन्त ! जब आपके जो अनुगामी हैं उनकी चेष्टा मानों अनोखी है तब आप ईश्वर के बारे में क्या कहना है ।।

सप्तत्रिंशः श्लोकः

निष्किञ्चनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किञ्चिद्
यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।
न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः
प्रेष्ठो भवान् बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥३७॥

पदच्छेद–निष्किञ्चनः ननु भवान् न यतः अस्ति किञ्चित् यस्मै बलिम् बलिभुजः अपि हरन्ति अज आद्याः ।
न त्वा विदन्ति असुतृपः अन्तकम् आढ्यता अन्धाः प्रेष्ठः भवान् बलिभुजाम् अपि ते अपि तुभ्यम् ॥

शब्दार्थ–

निष्किञ्चनः	२. अकिञ्चन हैं	न त्वा	१२. आपको नहीं
ननु भवान्	१. आप निश्चित रूप से	विदन्ति	१३. जानते हैं
न यतः अस्ति	४. आपसे अलग नहीं है	असुतृपः	१०. प्राणों को तृप्त करने वाले लोग
किञ्चित्	३. कुछ भी	अन्तकम्	११. कालरूप
यस्मैबलिम्	७. आपको उपहार	आढ्यता अन्धाः	९. धनमद से अन्धे और
बलिभुजः अपि	६. पूजोपहार लेने वाले	प्रेष्ठः	१५. अति प्रिय हैं
हरन्ति	८. देते हैं	भवान् बलिभुजाम् अपि	१४. आप पूजा देने वाले को भी
अजआद्याः ।	५. ब्रह्मा आदि भी	ते अपितुभ्यम् ॥	१६. वे भी आपको अत्यन्त प्रिय हैं

श्लोकार्थ–आप निश्चित रूप से अकिञ्चन हैं। कुछ भी आपसे अलग नहीं है। ब्रह्मा आदि भी पूजोपहार लेने वाले आपको उपहार देते हैं। धनमद से अन्धे और प्राणों को तृप्त करने वाले लोग कालरूप आपको नहीं जानते हैं। आप पूजा देने वाले को भी अति प्रिय हैं। वे भी आपको अत्यन्त प्रिय हैं।

अष्टात्रिंशः श्लोकः

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥३८

पदच्छेद– त्वम् वैसमस्त पुरुषार्थमयः फलआत्मा यत्वाञ्छया सुमतयः विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषाम्विभो समुचितः भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाः च रतयोः सुःख दुःखिनोः न ॥

शब्दार्थ–

त्वम् वै	१. आप निश्चित रूप से	तेषाम्	१०. उन लोगों का
समस्त	२. समस्त	विभो	५. हे प्रभो !
पुरुषार्थमयः	३. पुरुषार्थों के	समुचितः	१३. उचित है (किन्तु)
फल आत्मा	४. फल स्वरूप हैं	भवतः	११. आपके साथ
यत्वाञ्छया	६. जिन आपको पाने की इच्छा से	समाजः	१२. सम्बन्ध होना
सुमतयः	७. विचार शील पुरुष	पुंसः स्त्रियाः च	१४. स्त्री और पुरुष के
विसृजन्ति	९. छोड़ देते हैं	रतयोः	१५. सहवास से
कृत्स्नम् ।	८. सब कुछ	सुखदुःखिनोः न ॥	१६. सुखी दुःखी होने वाले का उचित नहीं है

श्लोकार्थ–आप निश्चितरूप से समस्त पुरुषार्थों के फलस्वरूप हैं, हे प्रभो ! जिन आपको पाने की इच्छा से विचार शील पुरुष सब कुछ छोड़ देते हैं, उन लोगों का आपके साथ सम्बन्ध होना उचित है। किन्तु स्त्री-पुरुष के सहवास से सुखी-दुःखी होने वाले का उचित नहीं है ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्माऽऽत्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।
हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन् कुतोऽन्ये ।३९

पदच्छेद—त्वम् न्यस्तदण्डमुनिभिः गदित अनुभाव आत्मा आत्मदः च जगताम् इति मे वृतः असि ।
हित्वा भवद्भ्रुव उदीरित कालवेग ध्वस्त आशिषः अब्जभवनाक पतीन् कुतः अन्ये ॥

शब्दार्थ—त्वम्	३.	आपके	हित्वा	१४.	छोड़कर
न्यस्तदण्ड	१.	दण्ड देना त्यागने वाले	भवद्भ्रुव	८.	आपकी भौंहों से
मुनिभिः	२.	मुनियों ने	उदीरित	९.	प्रेरित
गदितअनुभावः	४.	प्रभाव का वर्णन किया है	कालवेग ध्वस्त	१०.	काल के वेग से नष्ट
आत्मा	६.	आत्मा और (भक्तों को)	आशिषः	११.	आशा अभिलाषा वाले
आत्मदः	७.	आत्म दान देने वाले हैं	अब्जभव	१२.	ब्रह्मा और
जगताम्	५.	आप सारे जगत् के	नाकपतीन्	१३.	देवराज इन्द्र आदि को
इति मे	१५.	इसलिये मैंने	कुतः	१८.	बात ही क्या है
वृतः असि ।	१६.	आपका वरण किया है	अन्ये ॥	१७.	दूसरे (शिशुपालादि की)तः

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! दण्ड देना त्यागने वाले मुनियों ने आपके प्रभाव का वर्णन किया है। आप सारे जगत् के आत्मा और भक्तों को आत्म दान देने वाले हैं। इसलिये आपकी भौंहों से प्रेरित काल के वेग से नष्ट आशा अभिलाषा वाले ब्रह्मा और देवराज इन्द्र आदि को छोड़कर मैंने आप का वरण किया है। दूसरे शिशुपालादि की तो बात ही क्या है ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान् विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं तेभ्यो भयाद् यदुदधिं शरणं प्रपन्नः॥४०

पदच्छेद—जाड्यम् वचः तव गदअग्रज यः तु भूपान् विद्राव्यशार्ङ्ग निनदेन जहर्थमाम् त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिम् ईश पशून् स्वभागम् तेभ्यः भयात् यत् उदधिम् शरणम् प्रपन्नः ॥

शब्दार्थ-जाड्यम्	३.	युक्ति संगत नहीं है	सिंहो यथा	१६.	जिस प्रकार सिंह
वचः तव	२.	आपका यह वचन	स्वबलिम्	१५.	अपना भाग ले लिया
गदाग्रज	१.	हे आर्य पुत्र !	ईश	९.	हे प्रभो !
यः तु	१०.	आपने तो	पशून्	१७.	पशुओं को भगाकर
भूपान्	१२.	राजाओं को	स्वभागम्	१८.	अपना भाग ले लेता है
विद्राव्य	१३.	खदेड़कर	तेभ्यः भयात्	५.	उन राजाओं के भय से
शार्ङ्गनिनदेन	११.	धनुष की टंकार से	यत् उदधिम्	६.	समुद्र में
जहर्थ माम्	१४.	मेरा हरण कर लिया और	शरणम्	७.	शरण
त्वम् ।	४.	आप ने	प्रपन्नः ॥	८.	लिया है ॥

श्लोकार्थ—हे आर्य पुत्र ! आपका यह वचन युक्ति संगत नहीं है। आपने उन राजाओं के भय से समुद्र में शरण लिया है। हे प्रभो ! आपने तो धनुष की टंकार से राजाओं को खदेड़ कर मेरा हरण कर लिया और अपना भाग ले लिया। जिस प्रकार सिंह पशुओं को भगा कर अपना भाग ले लेता है ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम्॥४१

पदच्छेद– यत् वाञ्छया नृप शिखामणयः अङ्ग वैन्य जायन्त नाहुष गय आदयः ऐकपत्यम् ।
राज्यम् विसृज्य विविशुः वनम् अम्बुज अक्ष सीदन्ति ते अनुपदवीम् इह आस्थिताः किम् ॥

शब्दार्थ–					
यत् वाञ्छया	११.	आपको पाने की इच्छा से	राज्यम्	९	राज्य
नृप शिखामणयः	२.	राज शिरोमणि	विसृज्य	१०.	छोड़कर
अङ्ग वैन्य	३.	अङ्ग पृथु	विविशुः वनम्	१२.	वन में चले गये थे
जायन्त	४.	भरत	अम्बुज अक्ष	१.	हे कमल नयन !
नाहुष	५.	ययाति और	सीदन्ति	१६.	कष्ट उठा रहे हैं
गय आदयः	६.	गय आदि	ते अनुपदवीम्	१४.	आपके मार्ग पर
ऐक	७.	एक	इह आस्थिताः	१५.	आश्रित होकर यहाँ
पत्यम् ।	८.	छत्र	किम् ॥	१३.	क्या वे

श्लोकार्थ—हे कमल नयन ! राजशिरोमणि अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि एक छत्र राज्य छोड़ कर आपको पाने की इच्छा से वन में चले गये थे। क्या वे आपके मार्ग पर आश्रित होकर कष्ट उठा रहे हैं ॥

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥४२॥

पदच्छेद—का अन्यम् श्रयेत तव पाद सरोज गन्धम् आघ्राय सन्मुखरितम् जनताप वर्गम् ।
लक्ष्मीआलयम् तु अविगणय्य गुण आलयस्य मर्त्या सदाउरुभयम् अर्थ विविक्त दृष्टिः ॥

शब्दार्थ—					
का	९.	कौन	लक्ष्म्यालयम्	४.	लक्ष्मी के निवास स्थल
अन्यम् श्रयेत	१६	दूसरे पुरुष का आश्रय लेगी	तु	८.	फिर
तव पाद	५.	आपके चरण	अविगणय्य	१४	आप का तिरस्कार करके
सरोज गन्धम्	६.	कमलों की सुगन्ध	गुण आलयस्य	१३.	गुणों के एक मात्र आश्रय
आघ्राय	७.	सूंघ कर	मर्त्या	१२.	मानवी
सन्मुखरितम्	१.	सत्पुरुषों द्वारा वर्णित	सदाउरुभयम्	१५.	सदा महान् भय से युक्त
जनताप	२.	लोगों का ताप	अर्थ	१०.	स्वार्थ और परमार्थ को
वर्गम् ।	३.	मिटाने वाले और	विविक्तदृष्टिः॥	११.	समझने वाली

श्लोकार्थ—सत्पुरुषों द्वारा वर्णित लोगों का ताप मिटाने वाले और लक्ष्मी के निवास स्थल आपके चरण कमलों की सुगन्ध सूंघकर फिर कौन स्वार्थ और परमार्थ को समझने वाली मानवी गुणों के एक मात्र आश्रय आपका तिरस्कार करके सदा महान्भय से युक्त दूसरे पुरुष का आश्रय लेगी ॥

त्रिचत्वारिंशः श्लोकः

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यान्मे तवाङ्घ्रिरशरणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः॥४३॥

पदच्छेद—तम् त्वा अनुरूपम् अभजम् जगताम् अधीशम् आत्मानम् अत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यात् मे तव अङ्घ्रिः अरणम् सृतिभिः भ्रमन्त्याः यः वै भजन्तम् उपयाति अनृत अपवर्गः ॥

शब्दार्थ—					
तम्	६.	उस	स्यात्	१२.	हो
त्वा अनुरूपम्	७.	आपको अपने अनुरूप (समझकर)	मे तव	१०.	मुझे आपका
अभजम्	८.	मैंने वरण किया है	अङ्घ्रिः अरणम्	११.	चरण रक्षक
जगताम् अधीशम्	१.	सारे जगत् के स्वामी	सृतिभिः भ्रमन्त्याः	९.	विभिन्न योनियों में भटकती हुई
आत्मानम्	२.	आत्मा	यः वै	१३.	जो
अत्र च	३.	इस लोक में और	भजन्तम्	१४.	भजन करने वाले के
परत्र च	४.	परलोक में भी	उपयाति	१५.	पास जाता है
कामपूरम् ।	५.	कामनाओं को पूर्ण करने वाले	अनृत अपवर्गः ॥	१६.	और मिथ्या संसार भ्रम मिटा देता है

श्लोकार्थ—सारे जगत् के स्वामी, आत्मा, इस लोक में और परलोक में भी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन आपको अपने अनुरूप समझकर मैंने वरण किया है। विभिन्नयोनियों में भटकती हुई मुझे आपका चरण रक्षक हो। जो भजन करने वाले के पास जाता है और मिथ्या संसार-भ्रम मिटा देता है ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद् युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥४४॥

पदच्छेद—तस्याः स्युः अच्युत नृपाः भवतः उपदिष्टाः स्त्रीणाम् गृहेषु खरगोश्व बिडाल भृत्याः ।
यत् कर्ण मूलम् अरिकर्षण न उपयायात् युष्मत् कथा मृडविरिञ्च सभासु गीता ॥

शब्दार्थ—					
तस्याः स्युः	९.	उस स्त्री के पति हों	यत् कर्ण	१०.	जिनके कानों
अच्युत	१.	हे श्रीकृष्ण !	मूलम्	११.	तक
नृपाः	८.	राजा लोग	अरिकर्षण	२.	शत्रु नाशन
भवतः उपदिष्टाः	३.	आपके बताये हुये	न उपयायात्	१६.	न पहुँचे
स्त्रीणाम्	४.	स्त्रियों के	युष्मत् कथा	१५.	आपकी कथा
गृहेषु	५.	घरों में रहने वाले	मृडविरिञ्च	१२.	शंकर-ब्रह्मा आदि की
खर-गो अश्व	६.	गधा, बैल, घोड़े	सभासु	१३.	सभाओं में
बिडालभृत्याः ।	७.	विलाव तथा क्रीत दास के समान	गीता ॥	१४.	गायी जाने वाली

श्लोकार्थ—हे श्रीकृष्ण ! शत्रुनाशन आपके बताये हुये स्त्रियों के घरों में रहने वाले गधा, घोड़े बिलाव तथा क्रीत दास के समान राजा लोग उस स्त्री के पति हों, जिसके कानों तक शंकर-ब्रह्मा आदि की सभाओं में गायी जाने वाली आपकी कथा न पहुँचे ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

**त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥४५॥**

पदच्छेद—त्वक् श्मश्रु रोम नख केश पिनद्धम् अन्तर्मांस अस्थिरक्त कृमिविट् कफ पित्त वातम् ।
जीवत् शवम् भजति कान्तमतिः विमूढा या ते पदाब्ज मकरन्दम् अजिघ्रती स्त्री ॥

शब्दार्थ—त्वक्	५.	त्वचा	जीवत्	१४.	जीवित होने पर भी
श्मश्रु	६.	दाढ़ी-मूँछ	शवम्	१५.	मृतक के समान मानव शरीर को
रोमनख	७.	रोएँ नख	भजति	१७.	उसका सेवन करती है
केश	८.	केशों से	कान्तमतिः	१६.	अपना प्रियतम समझकर
पिनद्धम्	९.	ढका हुआ तथा	विमूढा या	१८.	वह स्त्री मूर्ख है
अन्तर्मांस	१०.	भीतर मांस	ते पदाब्ज	२.	आपके चरण कमल के
अस्थिरक्त	११.	हड्डी रक्त	मकरन्दम्	३.	मकरन्द को
कृमिविट्कफ	१२.	कीड़े, मल, कफ	अजिघ्रती	४.	नहीं सूँघा है वही
पित्त वातम् ।	१३.	पित्त और वायु से युक्त एवम् स्त्री ॥		१.	जिस स्त्री ने

श्लोकार्थ—जिस स्त्री ने आपके चरण कमल के मकरन्द को नहीं सूँघा है, वही त्वचा, दाढ़ी-मूँछ, रोयें, नख, केशों से ढका हुआ तथा भीतर माँस, हड्डी, कीड़े, मल, कफ, पित्त और वायु से युक्त एवम् जीवित होने पर भी मृतक के समान मानव शरीर को अपना प्रियतम मानकर उसका सेवन करती है, वह स्त्री मूर्ख है ॥

षट्चत्वारिंशः श्लोकः

**अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।
यर्हि अस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥४६॥**

पदच्छेद—अस्तु अम्बुज अक्ष ममते चरण अनुराग आत्मन् रतस्यमयि च अनतिरिक्त दृष्टेः ।
यर्हि अस्य वृद्धये उपात्त रजः अतिमात्रः माम् ईक्षसे तत् उह नः परम अनुकम्पा ॥

शब्दार्थ—अस्तु	९.	होते	यर्हि अस्य	१०.	जब इस संसार की
अम्बुजअक्ष	१.	हे कमल नयन !	वृद्धये	११.	अभिवृद्धि के लिये
मम	६.	मेरा	उपात्त	१४.	स्वीकार करके आप
ते चरण	७.	आपके चरणों में	रजः	१३.	रजो गुण को
अनुराग	८.	अनुराग	अतिमात्रः	१२.	प्रबल
आत्मन् रतस्य	२.	आत्मा में रमण करने वाले	माम् ईक्षसे	१५.	मेरी ओर देखते हैं
मयि च	३.	और मुझ पर	तत् उ ह	१६.	तब वह भी
अनतिरिक्त	४.	अधिक	नः परम	१७.	मुझ पर आपका परम
दृष्टेः ।	५.	दृष्टि न रखने वाले	अनुकम्पा ॥	१८.	अनुग्रह ही है

श्लोकार्थ—हे कमल नयन ! आत्मा में रमण करने वाले और मुझ पर अधिक दृष्टि न रखने वाले मेरा आपके चरणों में अनुराग होते । जब इस संसार की अभिवृद्धि के लिये प्रबल रजो गुण को स्वीकार करके आप मेरी ओर देखते हैं । तब वह भी मुझ पर आपका परम अनुग्रह ही है ॥

सप्तचत्वारिंशः श्लोकः

नैवालीकमहं　मन्ये　वचस्ते　मधुसूदन ।
अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद् रतिः क्वचित् ॥४७॥

पदच्छेद— न एव अलीकम् अहम् मन्ये वचः ते मधुसूदन ।
अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्यात् रतिः क्वचित् ॥

शब्दार्थ—

न एव	६. नहीं	अम्बायाः	१२. (काशी नरेश की पुत्री) अम्बा के
अलीकम्	५. मिथ्या	इव	१३. समान
अहम्	२. मैं	हि	८. क्योंकि
मन्ये	७. मानती हूँ	प्रायः	११. प्रायः
वचः	४. वचन को	कन्यायाः	९. कन्या की
ते	३. आपके	स्यात्	१५. रहती है
मधुसूदन !	१. हे मधुसूदन !	रतिः	१०. प्रीति
		क्वचित् ॥	१४. कहीं (दूसरे पुरुष में भी)

श्लोकार्थ—हे मधुसूदन ! मैं आपके वचन को मिथ्या नहीं मानती हूँ। क्योंकि कन्या की प्रीति प्रायः काशी नरेश की पुत्री अम्बा के समान किसी दूसरे पुरुष में भी रहती है ॥

अष्टचत्वारिंशः श्लोक

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।
बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥

पदच्छेद— व्यूढायाः च अपि पुंश्चल्याः मनः अभ्येति नवम्-नवम् ।
बुधः असतीम् न बिभृयात् ताम् बिभ्रत् उभय अच्युतः ॥

शब्दार्थ—

व्यूढायाः	४. विवाह हो जाने पर	बुधः	८. विद्वान् व्यक्ति
च	१. और	असतीम्	९. कुलटा स्त्री का
अपि	५. भी	न	११. न करे
पुंश्चल्याः	२. कुलटा स्त्री का	बिभृयात्	१०. भरण-पोषण
मनः	३. मन तो	ताम् बिभ्रत्	१२. उसका भरण-पोषण करने वाला
अभ्येति	७. खिंचता रहता है	उभय	१३. दोनों लोकों से
नवम्-नवम् ।	६. नये-नये पुरुषों की ओर	च्युतः ॥	१४. भ्रष्ट हो जाता है

श्लोकार्थ—और कुलटा स्त्री का मन तो विवाह हो जाने पर भी नये-नये पुरुषों की ओर खिंचता रहता है। विद्वान् व्यक्ति कुलटा स्त्री का भरण-पोषण न करे। उसका भरण पोषण करने वाला दोनों लोकों से भ्रष्ट हो जाता है ॥

एकोनपञ्चाशत्तमः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच—साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ।
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत् सत्यमेव हि ॥४९॥

पदच्छेद — साध्वि एतत् श्रोतुकामैः त्वम् राजपुत्रि प्रलम्भिता ।
मया उदितम् यत् अनुआत्थ सर्वम् तत् सत्यम् एव हि ॥

शब्दार्थ—

साध्वि	१.	पतिव्रते	मया	८.	मेरे
एतत्	३.	यह	उदितम्	९.	कहने को
श्रोतु	४.	सुनने के	यत्	१०.	जो
कामैः	५.	इच्छुक मैंने	अनु	११.	तुमने
त्वम्	६.	तुम्हारे साथ	आत्थ	१२.	व्याख्या की
राजपुत्रि	२	राजकुमारी	सर्वम् तत्	१३,	वह सब
प्रलम्भिता ।	७.	छल किया था	सत्यम् एव हि ॥	१४.	सत्य ही है ॥

श्लोकार्थ—पतिव्रते, राजकुमारी, यह सुनने के इच्छुक मैंने तुम्हारे साथ छल किया था । मेरे कहने को जो तुमने व्याख्या की वह सब सत्य ही है ॥

पञ्चाशत्तमः श्लोकः

यान् यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि ।
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

पदच्छेद— यान्यान् कामयसे कामान् मयि अकामान् भामिनि ।
सन्ति हि एकान्त भक्तायाः तव कल्याणि नित्यदा ॥

शब्दार्थ—

यान्-यान्	३.	जिन-जिन	सन्ति हि	११.	ही है (और वे तुम्हें)
कामयसे	६	चाहती हो (वे तो मेरी)	एकान्त	७.	अनन्य
कामान्	४.	कामनाओं को	भक्तायाः	८.	भक्त
मयि	५.	मुझ मे	तव	९.	तुम्हें
अकामान्	१२	बन्धन में नहीं डालेंगी	कल्याणि	२.	मंगलमयी (तुम)
भामिनि ।	१.	हे सुन्दरी !	नित्यदा ॥	१०.	नित्य प्राप्त

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! मंगलमयी तुम जिन-जिन कामनाओं को मुझसे चाहती हो वे तो मेरी अनन्य भक्त तुम्हें नित्य प्राप्त ही हैं और वे तुम्हें बन्धन में नहीं डालेंगी ॥

एकपञ्चाशत्तमः श्लोकः

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।
यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥५१॥

पदच्छेद— उपलब्धम् पतिप्रेम पातिव्रत्यं च ते अनघे ।
यत् वाक्यैः चाल्यमानायाः न धीः मयि अपकर्षिता ॥

शब्दार्थ—

उपलब्धम्	६.	भली-भाँति देख लिया	यत्	७.	क्योंकि
पतिप्रेम	३.	पति प्रेम	वाक्यैः	८.	बातों से
पातिव्रत्यम्	५.	पाति व्रत्य धर्म	चाल्यमानायाः	९.	चलायमान
च	४.	और	न धीः	१०.	तुम्हारी बुद्धि नहीं हुई
ते	२.	तुम्हारा	मयि	११.	मुझसे तनिक भी
अनघे।	१.	पुण्य मयी प्रिये	अपकर्षिता ॥	१२.	इधर-उधर

श्लोकार्थ—पुण्यमयि प्रिये ! तुम्हारा पति प्रेम और पातिव्रत धर्म भली-भाँति देख लिया । क्योंकि बातों से चलायमान तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी इधर-उधर नहीं हुई ॥

द्विपञ्चाशत्तमः श्लोकः

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

पदच्छेद— ये माम् भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रत चर्यया ।
काम आत्मानः अपवर्ग ईशम् मोहिताः मम मायया ॥

शब्दार्थ—

ये	१.	जो	काम	२.	सकाम
माम्	८.	मेरा	आत्मानः	३.	पुरुष
भजन्ति	१०.	भजन करते हैं वे	अपवर्ग	७.	मोक्ष के
दाम्पत्ये	६.	दाम्पत्य सुख के लिये	ईशम्	८.	स्वामी
तपसा	५.	तपस्या करके	मोहिताः	१२.	मोहित हैं
व्रत चर्यया।	४.	व्रत आचरण और	मम मायया ॥	११.	मेरी माया से

श्लोकार्थ—जो सकाम पुरुष व्रत, आचरण और तपस्या करके दाम्पत्य सुख के लिये मोक्ष के स्वामी मेरा भजन करते हैं, वे मेरी माया से मोहित हैं ॥

त्रिपञ्चाशत्तमः श्लोकः

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥५३॥

पदच्छेद—माम् प्राप्य मानिनि अपवर्ग सम्पदम् वाञ्छन्ति ये सम्पदः एव तत् पतिम् ।
ते मन्द भाग्या निरये अपि ये नृणाम् मात्रा आत्मकत्वात् निरयः सुसङ्गमः ॥

शब्दार्थ—माम् प्राप्य	५.	मुझे पाकर	ते मन्द भाग्या	९.	वे मन्द भागी हैं क्योंकि
मानिनि	१.	हे मानवती !	निरये	१३.	नरक में
अपवर्ग	२.	मोक्ष	अपि	१४.	भी
सम्पदम्	३.	सम्पत्ति और	ये	१२.	विषय सुख
वाञ्छन्ति	८	चाहते हैं	नृणाम्	१५.	मनुष्यों की
ये सम्पदः	६.	जो सम्पदा को	मात्रा	१०.	विषय और इन्द्रियों के
एव	७	ही केवल	आत्मकत्वात्	११.	संयोग से उत्पन्न
तत् पतिम् ।	४.	उसके पति	निरयः सुसङ्गमः ॥	१६.	प्राप्त होता है

श्लोकार्थ—हे मानवती ! मोक्ष, सम्पत्ति और उसके पति मुझे पाकर जो सम्पदा को ही केवल चाहते हैं, वे मन्द भागी हैं। क्योंकि विषय और इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न विषय सुख नरक में भी प्राप्त होता है ॥

चतुःपञ्चाशत्तमः श्लोकः

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ।
सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुम्भरायां निकृतिञ्जुषः स्त्रियाः ॥५४॥

पदच्छेद—दिष्ट्या गृहेश्वरी असकृत्मयि त्वया कृत अनुवृत्तिः भवमोचनी खलैः ।
सुदुष्करम् असौ सुतराम् दुराशिषः हि असुम्भरायाः निकृतिम् जुषः स्त्रियाः ॥

शब्दार्थ—दिष्टया	२.	आनन्द की बात है कि	सुदुष्करम्	९.	अत्यन्त कठिन है फिर
गृहेश्वरी	१.	हे गृह स्वामिनी !	असौ	८.	वह सेवा
असकृत्मयि	५.	मेरी बार-बार	सुतराम्	१६.	और भी कठिन है
त्वया	३.	तुमने	दुराशिषः	११.	दूषित कामना वाली
कृत	७.	की है	असुम्भरायाः	१२.	इन्द्रियों की तृप्ति में तत्पर
अनुवृत्ति	६.	सेवा	निकृतिम्	१३.	तथा कपट
भवमोचनी	४.	संसार बन्धन से मुक्त करने वाली	जुषः	१४.	रखने वाली
खलैः ।	१०.	दुष्टों के लिये	स्त्रियाः ॥	१५.	स्त्री के लिये तो

श्लोकार्थ—हे गृहस्वामिनी ! आनन्द की बात है कि तुमने संसार बन्धन से मुक्त करने वाली मेरी बार-बार सेवा की है। वह सेवा अत्यन्त कठिन है। फिर दुष्टों के लिये दूषित कामना वाली इन्द्रियों की तृप्ति में तत्पर तथा कपट रखने वाली स्त्री के लिये तो और भी कठिन है ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमः श्लोकः

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान् नृपानवगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ।।५५।।

पदच्छेद—न त्वादृशीम् प्रणयिनीम् गृहिणीम् गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्व विवाह काले ।
प्राप्तान् नृपान् अवगणय्य रहः हरः मे प्रस्थापितः द्विजः उपश्रुत सत्कथस्य ।।

शब्दार्थ—न	६.	नहीं	प्राप्तान्	१०.	आये हुये
त्वादृशी	३.	तुम्हारे समान	नृपान्	११.	राजाओं की
प्रणयिनीम्	४.	प्रेम करने वाली	अवगणय्य	१२.	उपेक्षा करके
गृहिणीम्	५.	भार्या कोई	रहः हरः	१७.	गुप्त सन्देश
गृहेषु	२.	मुझे अपने घर में	मे	१६.	मेरे पास
पश्यामि	७.	दिखाई देती है	प्रस्थापितः	१८.	भेजा था
मानिनि	१.	मानवती	द्विजः	१३.	ब्राह्मण द्वारा
ययास्व	८.	क्योंकि तुमने अपने	उपश्रुत्य	१५.	सुनकर
विवाह काले ।	९.	विवाह के समय	सत्कथस्य ।।	१४.	केवल मेरी प्रशंसा

श्लोकार्थ—मानवती ! मुझे अपने घर में तुम्हारे समान प्रेम करने वाली भार्या कोई नहीं दिखाई देती है । क्योंकि तुमने अपने विवाह के समय आये हुये राजाओं की उपेक्षा करके ब्राह्मण द्वारा केवल मेरी प्रशंसा सुनकर मेरे पास गुप्त सन्देश भेजा था ।।

षट्पञ्चाशत्तमः श्लोकः

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ।।५६।।

पदच्छेद—भ्रातुः विरूपकरणम् युधि निर्जितस्य प्रोद्वाह पर्वणि चतत् वधम् अक्ष गोष्ठ्याम् ।
दुःखम् समुत्थम् असहः अस्मत् अयोग भीत्या न एव अब्रवीः किमपि तेन वयम् जिताः ।।

शब्दार्थ—भ्रातुः	२.	तुम्हारे भाई को हमने	दुःखम्	१०.	दुःख को
विरूपकरणम्	३.	विरूप कर दिया	समुत्थम्	९.	उठे हुए
युधिनिर्जितस्य	१.	युद्ध में जीते गये	असहः	११.	तुमने सह लिया
प्रोद्वाह	५.	अनिरुद्ध के विवाह के	अस्मत्	१२.	पर हमसे
पर्वणि	६.	उत्सव में	अयोगभीत्या	१३.	वियोग हो जाने के भय से
च	४.	और	न एव अब्रवीः	१५.	नहीं बोली
तत्वधम्	८.	उसका वध कर दिया (इससे)	किमपि	१४.	तुम कुछ भी
अक्षगोष्ठ्याम् ।	७.	चौसर खेलने की सभा में	तेन वयम् जिताः ।।	१६.	इससे हम तुम्हारे वश में हो गये है

श्लोकार्थ—हे भामिनी ! युद्ध में जीते गये तुम्हारे भाई को हमने विरूप कर दिया और अनिरुद्ध के विवाह के उत्सव में चौसर खेलने की सभा में उसका वध कर दिया । इससे उठे हुए दुःख को तुमने सह लिया पर हम से वियोग हो जाने के भय से तुम कुछ भी नहीं बोली ।।

सप्तपञ्चाशत्तमः श्लोकः

दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।
मत्वाजिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

पदच्छेद—दूतः त्वया आत्मलभने सुविविक्त मन्त्रः प्रस्थापितः मयि चिरायति शून्यम् एतत् ।
मत्वा जिहास इदम् अङ्गम् अनन्य योग्यम् तिष्ठेत तत् त्वयि वयम् प्रतिनन्दयामः ॥

शब्दार्थ—

दूतः	४.	दूत	मत्वाजिहास	१२.	समझकर छोड़ना चाहा था
त्वया	२.	तुमने	इदम् अङ्गम्	९.	तथा इस सुन्दर शरीर को
आत्मलभने	१.	मेरी प्राप्ति के लिये	अनन्य	१०.	दूसरे के
सुविविक्त मन्त्रः	३.	अत्यन्त गुप्त सन्देश देकर	योग्यम्	११.	योग्य न
प्रस्थापितः	५.	भेजा था (फिर)	तिष्ठेत	१४.	रहे
मयि	६.	मेरे	तत्त्वयि	१३.	यह प्रेम भाव तुम में ही
चिरायति	७.	विलम्ब करने पर	वयम्	१५.	हम
शून्यम् एतत् ।	८.	इस संसार को शून्य	प्रतिनन्दयामः ॥	१६.	तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं

श्लोकार्थ—मेरी प्राप्ति के लिये तुमने अत्यन्त गुप्त सन्देश देकर दूत भेजा था। फिर मेरे विलम्ब करने पर इस संसार को शून्य तथा इस शरीर को दूसरे के योग्य न समझकर छोड़ना चाहा था, यह प्रेम भाव तुम में ही रहे। हम तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं॥

अष्टपञ्चाशत्तमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच— एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ।
स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

पदच्छेद— एवम् सौरत संलापैः भगवान् जगदीश्वरः ।
स्वरतः रमया रेमे नरलोकम् विडम्बयन् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	स्वरतः	९.	स्वछन्दता पूर्वक
सौरत	४.	सुरत सम्बन्धी	रमया	८.	लक्ष्मी रूपिणी (रुक्मिणी के साथ)
संलापैः	५.	वार्तालाप से	रेमे	१०.	रमण करने लगे
भगवान्	३.	भगवान्	नरलोकम्	६.	मनुष्य लोक की सी
जगदीश्वरः ।	२.	जगत् के ईश्वर	विडम्बयन् ॥	७.	लीला करते हुये

श्लोकार्थ—इस प्रकार जगत् के ईश्वर भगवान् सुरत सम्बन्धी वार्तालाप से मनुष्य लोक की सी लीला करते हुये लक्ष्मी रूपिणी रुक्मिणी के साथ स्वछन्दता पूर्वक रमण करने लगे ॥

एकोनषष्टितमः श्लोकः

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ।
आस्थितो गृहमेधीयान् धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः ॥५६॥

पदच्छेद—

तथा अन्यासाम् अपि विभुः गृहेषु गृहवान् इव ।
आस्थितः गृहमेधीयान धर्मान् लोक गुरुः हरिः ॥

शब्दार्थ—

तथा	१.	इसी प्रकार	आस्थितः	१०.	रहते हुये
अन्यासाम्	६.	दूसरी पत्नियों के	गृहमेधीयान	११.	गृहस्थोचित
अपि	८.	भी	धर्मान्	१२.	धर्मों का पालन करते थे
विभुः	५.	परमात्मा	लोक	२.	लोगों के
गृहेषु	७.	महलों में	गुरुः	३.	गुरु
गृहवान् इव ।	९.	गृहस्थ के समान	हरिः ॥	४.	श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—

इसी प्रकार लोगों के गुरु श्री कृष्ण परमात्मा दूसरी पत्नियों के महलों में भी गृहस्थ के समान रहते हुये गृहस्थोचित धर्मों का पालन करते थे ।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो
नाम षष्टितमोऽध्यायः ।। ६० ।।



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

अष्टपञ्चाशत्तमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाबलाः ।
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥१॥

पदच्छेद— एक एकशः ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश-दश अबलाः ।
अजीजनत् अनवमान् पितुः सर्व आत्म सम्पदा ॥

शब्दार्थ—

एक एकशः	४.	एक-एक करके	अजीजनत्	७.	उत्पन्न किये जो
ताः	२.	उन	अनवमान्	१२.	किसी बात में कम न थे
कृष्णस्य	१.	श्रीकृष्ण की	पितुः	८.	पिता से
पुत्रान्	६.	पुत्र	सर्व	९.	सभी
दश-दश	५.	दश-दश	आत्म	१०.	आत्म-
अबलाः ।	३.	पत्नियों ने	सम्पदा ॥	११.	गुणों में

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण की उन पत्नियों ने एक-एक करके दश-दश पुत्र उत्पन्न किये। जो पिता से सभी आत्म-गुणों में किसी बात में कम नहीं थे ॥

द्वितीयः श्लोकः

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ।
प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥२॥

पदच्छेद— गृहात् अनपगम् वीक्ष्य राजपुत्र्यः अच्युतम् स्थितम् ।
प्रेष्ठम् न्यमंसत स्वम् स्वम् न तत्त्वविदः स्त्रियः ॥

शब्दार्थ—

गृहात्	१.	घर से	प्रेष्ठम्	८.	उनको सबसे अधिक प्यारी
अनपगम्	२.	न जाने वाले	न्यमंसत	९.	समझती थीं
वीक्ष्य	५.	देख कर	स्वम् स्वम्	७.	अपने को
राजपुत्र्याः	६.	राजकुमारियाँ	न तत्	११.	उन भगवान् की
अच्युतम्	४.	श्री कृष्ण को	तत्त्वविदनः	१२.	महिमा नहीं जानती थीं
स्थितम् ।	३.	सदा वहीं रहने वाले	स्त्रियः ॥	१०.	वे स्त्रियाँ

श्लोकार्थ—घर से न जाने वाले सदा वहीं रहने वाले श्री कृष्ण को देखकर राजकुमारियाँ अपने को भगवान् श्रीकृष्ण की सबसे अधिक प्यारी समझती थीं। वे स्त्रियाँ उनकी महिमा को नहीं जानती थीं ॥

तृतीयः श्लोकः

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ।
सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥३॥

पदच्छेद— चारु अब्जकोश वदन आयत बाहु नेत्र सप्रेम हास-रस वीक्षित वल्गु जल्पैः ।
सम्मोहिता भगवतः न मनः विजेतुम् स्वैः विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥

शब्दार्थ—

चारु	५.	सुन्दर	सम्मोहिता	१२.	मोहित रहती थीं (अत एव)
अब्जकोश	४.	कमल-कली के समान	भगवतः	३.	भगवान् श्रीकृष्ण के
वदन	६.	मुख	न मनः	१४.	उनके मन को
आयत बाहुनेत्र	७.	विशाल बाहु और नेत्र	विजेतुम्	१५.	जीतने में
सप्रेम	८.	प्रेम भरी	स्वैः-विभ्रमैः	१३.	अपने हाव-भावों से
हास-रस	९.	मुसकान रस मयी	समशकन्	१६.	समर्थ न हो सकीं
वीक्षितवल्गु	१०.	चितवन और मधुर	वनिताः	२.	वे सुन्दरियाँ
जल्पैः ।	११	वाणी से	विभूम्नः ॥	१.	आत्मानन्द में एक रस स्थित

श्लोकार्थ—आत्मानन्द में एक रस स्थित वे सुन्दरियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के कमल को कली के समान सुन्दर मुख, विशाल, बाहु और नेत्र प्रेम भरी, मुसकान, रस मयी, चितवन और मधुर वाणी से मोहित रहती थीं। अत एव उनके मन को अपने हाव-भावों से जीतने में समर्थ न हो सकीं।

चतुर्थः श्लोकः

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥४॥

पदच्छेद—स्माय अवलोक लव दर्शित भावहारि भ्रूमण्डल प्रहित सौरत मन्त्र शौण्डैः ।
पत्न्यः तु षोडश सहस्रम् अनङ्ग बाणैः यस्य इन्द्रियम् विमथितुम् करणैः न शेकुः ॥

शब्दार्थ—

स्माय	४.	मन्द-मन्द मुसकान एवम्	पत्न्यः तु	३.	पत्नियाँ
अवलोकलव	५.	तिरछी चितवन द्वारा	षोडश	१.	सोलह
दर्शित	६.	दिखाये गये	सहस्रम्	२.	हजार
भाव हारि	७.	भाव और	अनङ्ग बाणैः	१२.	काम बाणों से
भ्रूमण्डल	८.	भौंहों के	यस्य इन्द्रियम्	१३.	जिनकी इन्द्रियों को
प्रहित	९.	इशारे से	विमथितुम्	१४.	अपनी ओर खींचने में
सौरतमन्त्र	१०.	सुरत की मन्त्रणा में	करणैः	१५.	किसी प्रकार
शौण्डैः ।	११.	कुशल	न शेकुः ॥	१६.	समर्थ न हो सकीं

श्लोकार्थ—सोलह हजार पत्नियाँ मन्द-मन्द मुसकान एवम् तिरछी चितवन द्वारा दिखाये गये भाव और भौंहों के इशारे से सुरत की मन्त्रणा में कुशल काम बाणों से जिनकी इन्द्रियों को अपनी ओर खींचने में किसी प्रकार समर्थ न हो सकीं ॥

पञ्चमः श्लोकः

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुरागहासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥५॥

पदच्छेद—इत्थम् रमापतिम् अवाप्य पतिम् स्त्रियःताः ब्रह्मा आदयः अपि न विदुः पदवीम् यदीयाम् ।
भेजुः मुदा अविरतम् एधितया अनुराग हास अवलोक नवसङ्गम लालसा आद्यम् ॥

शब्दार्थ—

इत्थम्	६.	इस प्रकार	भेजुः	१६.	कहने लगीं
रमापतिम्	५.	लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण को	मुदा	११.	आनन्द से
अवाप्य पतिम्	७.	पति के रूप में पाकर	अविरतम्	९.	निरन्तर
स्त्रियः ताः	८.	वे स्त्रियाँ	एधितया	१०.	बढ़े हुये
ब्रह्मा आदयः अपि	१.	ब्रह्मा आदि भी	अनुराग	१२.	प्रेमभरी
न विदुः	४.	नहीं जानते हैं उन	हास अवलोक	१३.	मुसकराहट मधुर चितवन
पदवीम्	३.	मार्ग को	नव सङ्गम	१४.	नव समागम की
यदीयाम् ।	२.	जिनके	लालसा आद्यम् ॥	१५.	लालसा आदि से

श्लोकार्थ—ब्रह्मा आदि भी जिनके मार्ग को नहीं जानते हैं, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण को इस प्रकार पति के रूप में पाकर वे स्त्रियाँ निरन्तर बढ़े हुये आनन्द से प्रेम भरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नव समागम की लालसा आदि से कहने लगीं ॥

षष्ठः श्लोकः

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

पदच्छेद—प्रति उद्गम आसन वरार्हण पाद शौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्ध माल्यैः ।
केश प्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ॥

शब्दार्थ—

प्रतिउद्गम	१.	अगवानी	केश प्रसार	८.	केश संवारना
आसनवरार्हण	२.	आसन उत्तम सामग्रियों से पूजन	शयनस्नपन	९.	सुलाना नहलाना और
पाद शौच	३.	चरण प्रक्षालन	उपहार्यैः	१०.	अनेक प्रकार के भोजन इत्यादि
ताम्बूल	४.	ताम्बूल	दासीशता	११.	सैकड़ों दासियों के रहते हुये
विश्रमण	५.	विश्राम कराना	अपि विभोः	१२.	भी वे पत्नियाँ भगवान् की स्वयं
वीजन	६.	पंखा झलना	विदधुः स्म	१४	किया करती थीं
गन्धमाल्यैः ।	७.	सुगन्ध लगाना फूलों के हार और	दास्यम् ॥	१३.	सेवा

श्लोकार्थ—अगवानी, आसन, उत्तम सामग्रियों से पूजन, चरण-प्रक्षालन, ताम्बूल, विश्राम कराना, सुगन्ध लगाना, फूलों के हार पहिनाना, केश संवारना, सुलाना, नहलाना और अनेक प्रकार के भोजन इत्यादि कराना सैकड़ों दासियों के रहते हुये भी वे पत्नियाँ भगवान् की स्वयं सेवा करती थीं ॥

सप्तमः श्लोकः

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान् प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते ॥७॥

पदच्छेद— तासाम् याः दश पुत्राणाम् कृष्ण स्त्रीणाम् पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यः तत् पुत्रान् प्रद्युम्न आदीन् गृणामि ते ॥

शब्दार्थ—

तासाम्	१. उन	अष्टौ	६. जो आठ
याः दश	२. दस-दस	महिष्यः	७. पटरानियाँ
पुत्राणाम्	३. पुत्रों वाली	तत्	९. उनके
कृष्ण	४. कृष्ण	पुत्रान्	१२. पुत्रों को
स्त्रीणाम्	५. पत्नियों में	प्रद्युम्न	१०. प्रद्युम्न
पुरोदिताः ।	८. पहले बताई जा चुकी हैं	आदीन्	११. आदि
		गृणामि ते ॥	१३. तुमसे बता रहा हूँ

श्लोकार्थ—उन दस, दस पुत्रों वाली कृष्ण-पत्नियों में जो आठ पटरानियाँ पहले बताई जा चुकी हैं उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रों को तुमसे बता रहा हूँ ॥

अष्टमः श्लोकः

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥८॥

पदच्छेद— चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुः चारुगुप्तः च भद्रचारुः तथा अपरः ॥

शब्दार्थ—

चारुदेष्णः	१. चारुदेष्ण	सुचारुः	७. सुचारु
सुदेष्णः	२. सुदेष्ण	चारुगुप्तः	९. चारुगुप्त
च	३. और	च	८. और
चारुदेहः	५. चारुदेह	भद्रचारुः	१२. भद्रचारु था
च	६. तथा	तथा	१०. तथा
वीर्यवान् ।	४. पराक्रमी	अपरः ।	११. दूसरा

श्लोकार्थ—चारुदेष्ण, सुदेष्ण और पराक्रमी चारुदेह तथा सुचारु और चारुगुप्त तथा दूसरा भद्रचारु था ॥

नवमः श्लोकः

चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।
प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥६॥

पदच्छेद— चारुचन्द्रः विचारुः च चारुः च दशमः हरेः ।
प्रद्युम्न प्रमुखाः जाताः रुक्मिण्याम् न अवमाः पितुः ॥

शब्दार्थ—

चारुचन्द्रः	१.	चारुचन्द्र	प्रद्युम्न	६.	प्रद्युम्न
विचारुः	२.	विचारु	प्रमुखाः	७.	आदि
च	३.	और	जाताः	१०.	उत्पन्न हुये जो
चारुः च	४.	चारु तथा	रुक्मिण्याम्	६	रुक्मिणी के गर्भ से
दशमः	५.	दशम	न अवमाः	१२	किसी बात में कम नहीं थे
हरेः ।	८.	श्रीकृष्ण के पुत्र	पितुः ॥	११.	पिता से

श्लोकार्थ—चारुचन्द्र, विचारु और चारु तथा दशम प्रद्युम्नादि रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुये। जो पिता से किसी बात में कम नहीं थे ॥

दशमः श्लोकः

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥

पदच्छेद— भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुः भानुमान् तथा ।
चन्द्रभानुः बृहद्भानुः अतिभानुः तथा अष्टमः ॥

शब्दार्थ—

भानुः	१.	भानु	चन्द्रभानुः	७.	चन्द्रभानु
सुभानुः	२.	सुभानु	बृहद्भानुः	८.	बृहद्भानु
स्वर्भानुः	३.	स्वर्भानु	अतिभानुः	११.	अतिभानु था
प्रभानुः	४.	प्रभानु	तथा	६.	तथा
भानुमान्	५.	भानुमान्	अष्टमः ॥	१०.	आठवाँ
तथा ।	६.	तथा			

श्लोकार्थ—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान् तथा चन्द्रभानु, बृहद्भानु तथा आठवाँ अतिभानु था ।

एकादशः श्लोकः

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥११॥

पदच्छेद— श्रीभानुः प्रतिभानुः च सत्यभामा आत्मजाः दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजित् शतजित् च सहस्रजित् ॥

शब्दार्थ—

श्रीभानुः	१. श्रीभानु	साम्बः	७. साम्ब
प्रतिभानुः	३. प्रतिभानु	सुमित्रः	८. सुमित्र
च	२. और	पुरुजित्	९. पुरुजित
सत्यभामा	६. सत्यभामा के थे	शतजित्	१०. शतजित्
आत्मजाः	५. पुत्र	च	११. और
दश ।	४. वे दश	सहस्रजित् ॥	१२. सहस्रजित्

श्लोकार्थ—श्रीभानु और प्रतिभानु ये दश पुत्र सत्यभामा के थे। साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित् और सहस्रजित् ॥

द्वादशः श्लोकः

विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ।
जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः ॥१२॥

पदच्छेद— विजय चित्रकेतुः च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ।
जाम्बवत्याः सुताः हि एते साम्बआद्याः पितृ संमता ॥

शब्दार्थ—

विजय	१. विजय	जाम्बवत्याः	८. जाम्बवती के
चित्रकेतुः	२. चित्रकेतु	सुताः	९. पुत्र थे
च	५. और	एते	७. ये
वसुमान्	३. वसुमान्	साम्ब	१०. साम्ब
द्रविडः	४. द्रविड	आद्याः	११. आदि
क्रतुः ।	६. क्रतु	पितृ	१२. पिता (श्रीकृष्ण को)
		संमताः ॥	१३. बहुत प्यारे थे

श्लोकार्थ—विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु ये जाम्बवती के पुत्र थे। साम्ब आदि पिता श्रीकृष्ण को बहुत प्यारे थे ॥

त्रयोदशः श्लोकः

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ।
आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

पदच्छेद— वीरः चन्द्रः अश्वसेनः च चित्रगुः वेगवान् वृषः ।
आमः शङ्कुः वसुः श्रीमान् कुन्तिः नाग्नजितेः सुताः ॥

शब्दार्थ—

वीरः	१. वीर	आमः	८. आम
चन्द्रः	२. चन्द्र	शङ्कुः	९. शङ्कु
अश्वसेनः	३. अश्वसेन	वसुः	१०. वसु और
च	४. और	श्रीमान्	११. परम तेजस्वी
चित्रगुः	५. चित्रगु	कुन्तिः	१२. कुन्ति ये
वेगवान्	६. वेगवान्	नाग्नजितेः	१३. नाग्नजिति के
वृषः ।	७. वृष	सुताः ॥	१४. पुत्र थे

श्लोकार्थ—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, और चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और परमतेजस्वी कुन्ति ये नाग्नजिति के पुत्र थे ॥

चतुर्दशः श्लोकः

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥१४॥

पदच्छेद— श्रुतः कविः वृषः वीरः सुबाहुः भद्रः एकलः ।
शान्तिः दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकः अवरः ॥

शब्दार्थ—

श्रुतः	१. श्रुत	शान्तिः	८. शान्ति
कविः	२. कवि	दर्शः	९. दर्श
वृषः	३. वृष	पूर्णमासः	१०. पूर्णमास
वीरः	४. वीर	कालिन्द्याः	१३. कालिन्दी के पुत्र थे
सुबाहुः	५. सुबाहु	सोमकः	१२. सोमक ये
भद्रः	६. भद्र	अवरः ॥	११. सबसे छोटा
एकलः ।	७. एक		

श्लोकार्थ—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एक शान्ति, दर्श, पूर्णमास, सबसे छोटा सोमक ये कालिन्दी के पुत्र थे ॥

पञ्चदशः श्लोकः

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ।
माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥१५॥

पदच्छेद— प्रघोषः गात्रवान् सिंहः बलः प्रबलः ऊर्ध्वगः ।
माद्र्याः पुत्राः महाशक्तिः सह ओजः अपराजितः ॥

शब्दार्थ—

प्रघोषः	१. प्रघोष	माद्र्याः	११. माद्री के
गात्रवान्	२. गात्रवान्	पुत्राः	१२. पुत्र थे
सिंहः	३. सिंह	महाशक्तिः	७. महाशक्ति
बलः	४. बल	सहः	८. सह
प्रबलः	५. प्रबल	ओजः	९. ओज और
ऊर्ध्वगः ।	६. ऊर्ध्वग	अपराजितः ॥	१०. अपराजित ये

श्लोकार्थ—प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित ये माद्री के पुत्र थे ॥

षोडशः श्लोकः

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ।
महांशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥

पदच्छेद— वृकः हर्षः अनिलः गृध्रः वर्धनः उन्नादः एव च ।
महांशः पावनः वह्निः मित्रविन्दा आत्मजाः क्षुधिः ॥

शब्दार्थ—

वृकः	१. वृक	महांशः	८. महांश
हर्षः	२. हर्ष	पावनः	९. पावन
अनिलः	३. अनिल	वह्निः	१०. वह्नि और
गृध्रः	४. गृध्र	मित्रविन्दा	१२. मित्रविन्दा के
वर्धनः	५. वर्धन	आत्मजाः	१३. पुत्र थे
उन्नादः	६. उन्नाद	क्षुधिः ॥	११. क्षुधि ये
एव च ।	७. और		

श्लोकार्थ—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद और महांश, पावन, वह्नि और क्षुधि ये मित्रविन्दा के पुत्र थे ॥

सप्तदशः श्लोकः

संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।
जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥१७॥

पदच्छेद— संग्रामजित् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणः अरिजित् ।
जयः सुभद्रः भद्रायाः वामः आयुः च सत्यकः ॥

शब्दार्थ—

संग्रामजित्	१.	संग्रामजित्	जयः	६.	जय
बृहत्सेनः	२.	बृहत्सेन	सुभद्रः	७.	सुभद्र
शूरः	३.	शूर	भद्रायाः	११.	भद्रा के पुत्र थे
प्रहरणः	४.	प्रहरण	वामः	८.	वाम
अरिजित् ।	५.	अरिजित्	आयुः च	९.	आयु और
			सत्यकः ॥	१०.	सत्यक ये

श्लोकार्थ—संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ये भद्रा के पुत्र थे ॥

अष्टादशः श्लोकः

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ।
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

पदच्छेद— दीप्तिमान् ताम्रतप्त आद्याः रोहिण्याः तनयाः हरेः ।
प्रद्युम्नात् च अनिरुद्धः अभूत् रुक्मवत्याम् महाबलः ॥

शब्दार्थ—

दीप्तिमान्	३.	दीप्तिमान्	प्रद्युम्नात् च	७.	और प्रद्युम्न से
ताम्रतप्त	४.	ताम्रतप्त	अनिरुद्धः	१०.	अनिरुद्ध
आद्याः	५.	आदि	अभूत्	११.	हुये
रोहिण्याः	२.	रोहिणी से	रुक्मवत्याम्	८.	रुक्मवती के
तनयाः	६.	पुत्र हुये	महाबलः ॥	९.	महाबली
हरेः ।	१.	श्रीकृष्ण की पत्नी			

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण की पत्नी रोहिणी से दीप्तिमान्, ताम्रतप्त, आदि पुत्र हुये । और प्रद्युम्न से रुक्मवती के महाबली अनिरुद्ध हुये ॥

एकोनविंशः श्लोकः

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप।
मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

पदच्छेद— पुत्र्याम् तु रुक्मिणः राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे।
एतेषाम् पुत्र-पौत्राः च बभूवुः कोटिशः नृप।
मातरः कृष्ण जातानाम् सहस्राणि च षोडशः ॥

शब्दार्थ—पुत्र्याम् तु	५.	पुत्री थी	नृप।	१०.	हे राजन्!
रुक्मिणः	४.	रुक्मी की एक	मातरः	१३.	मातायें
राजन्	१.	हे राजन्!	कृष्ण	११.	श्रीकृष्ण के
नाम्ना	३.	नामक	जातानाम्	१२.	पुत्रों की
भोजकटे पुरे।	२.	भोजकटपुरी में	सहस्राणि	१५.	हजार से (अधिक थीं)
एतेषाम्	६.	इन सबके	च	९.	क्योंकि
पुत्र-पौत्राः	७.	पुत्र और पौत्र	षोडशः ॥	१४.	सोलह
बभूवुः कोटिशः	८.	करोड़ों की संख्या में हुये			

श्लोकार्थ—हे राजन्! भोजकट नामक नगर में रुक्मी की एक पुत्री रुक्मवती थी। इन सबके पुत्र और पौत्र करोड़ों की संख्या में हुये। क्योंकि हे राजन्! श्रीकृष्ण के पुत्रों की मातायें सोलह हजार से अधिक थीं ॥

विंशः श्लोकः

राजोवाच— कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि।
कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते।
एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥२०॥

पदच्छेद— कथम् रुक्मी अरिपुत्राय प्रादात् दुहितरम् युधि।
कृष्णेन परिभूतः तम् हन्तुम् रन्ध्रम् प्रतीक्षते।
एतद् आख्याहि मे विद्वन् द्विषोः वैवाहिकम् मिथः ॥

शब्दार्थ—कथम्	६.	कैसे	हन्तुम् रन्ध्रम्	९.	मारने के लिये अवसर की
रुक्मी	३.	रुक्मी ने	प्रतीक्षते।	१०.	प्रतीक्षा में था (फिर)
अरिपुत्राय	४.	शत्रु के पुत्र को (अपनी)	एतद् आख्याहि	१४.	यह बतलाइये
प्रादात् दुहितरम्	५.	पुत्री दी	मे	१३.	मुझे
युधि कृष्णेन	१.	युद्ध में श्रीकृष्ण से	विद्वन्	७.	हे विद्वन् (रुक्मी तो)
परिभूतः	२.	तिरस्कृत	द्विषोः	११.	दो शत्रुओं में
तम्।	८.	कृष्ण को	वैवाहिकम् मिथः ॥	१२.	परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ

श्लोकार्थ—युद्ध में श्रीकृष्ण से तिरस्कृत रुक्मी ने शत्रु के पुत्र को अपनी पुत्री कैसे दी। कृष्ण को मारने के लिये वह अवसर की प्रतीक्षा में था। फिर दो शत्रुओं में वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ। मुझे यह बतलाइये ॥

एकविंशः श्लोकः

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ।
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

पदच्छेद— अनागतम् अतीतम् च वर्तमानम् अतीन्द्रियम् ।
विप्रकृष्टम् व्यवहितम् सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥

शब्दार्थ—

अनागतम्	२. भविष्य	विप्रकृष्टम्	७. बहुत दूर या
अतीतम्	३. भूत	व्यवहितम्	८. आड़ में पड़ी हैं
च	४. और	सम्यक्	९. भली-भाँति
वर्तमानम्	५. वर्तमान की सभी बातें	पश्यन्ति	१०. जानते हैं
अतीन्द्रियम् ।	६. जो इन्द्रियों से परे	योगिनः ॥	१. योगी जन

श्लोकार्थ—योगी जन भविष्य, भूत और वर्तमान की सभी बातें, जो इन्द्रियों से परे, बहुत दूर या आड़ में पड़ी हैं, भली-भाँति जानते हैं ॥

द्वाविंशः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ।
राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

पदच्छेद— वृतः स्वयंवरे साक्षात् अनङ्गः अङ्गयुतः तया ।
राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहार एकरथः युधि ॥

शब्दार्थ—

वृतः	६. वरण कर लिया	राज्ञः	८. राजाओं को
स्वयंवरे	१. स्वयंवर में	समेतान्	७. वहाँ पर इकट्ठे हुये
साक्षात्	४. साक्षात्	निर्जित्य	११. जीत कर
अनङ्गः	५. कामदेव (अनिरुद्ध) को	जहार	१२. रुक्मवती को हर लाये
अङ्गयुतः	३. शरीरधारी	एकरथः	१०. अकेले ही वे
तया ।	२. रुक्मवती ने	युधि ॥	९. युद्ध में

श्लोकार्थ—स्वयंवर में रुक्मवती ने शरीरधारी साक्षात् कामदेव को वरण कर लिया। वहाँ पर इकट्ठे हुये राजाओं को युद्ध में अकेले ही वे जीतकर रुक्मवती को हर लाये ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

यद्यप्यनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः।
व्यतरद् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

पदच्छेद— यद्यपि अनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्ण अवमानितः।
व्यतरत् भागिनेयाय सुताम् कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥

शब्दार्थ—

यद्यपि	१. यद्यपि	व्यतरत्	१२. ब्याह दी
अनुस्मरन्	६. स्मरण था (फिर भी उसने)	भागिनेयाय	१०. भानजे को
वैरम्	५. शत्रुता का	सुताम्	११. अपनी बेटी
रुक्मी	४. रुक्मी को	कुर्वन्	९. करने के लिये
कृष्ण	२. श्रीकृष्ण से	स्वसुः	७. बहन को
अवमानितः।	३. अपमानित	प्रियम् ॥	८. प्रसन्न

श्लोकार्थ—यद्यपि श्रीकृष्ण से अपमानित रुक्मी को शत्रुता का स्मरण था। फिर भी उसने बहन को प्रसन्न करने के लिये भानजे को अपनी बेटी ब्याह दी ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

रुक्मिण्यास्तनयां राजन् कृतवर्मसुतो बली।
उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

पदच्छेद— रुक्मिण्याः तनयाम् राजन् कृतवर्म सुतः बली।
उपयेमे विशालाक्षीम् कन्याम् चारुमतीम् किल ॥

शब्दार्थ—

रुक्मिण्याः	२. रुक्मिणी की	उपयेमे	१०. विवाह किया
तनयाम्	३. पुत्री	विशालाक्षीम्	४. बड़ी-बड़ी आँखों वाली
राजन्	१. हे राजन्!	कन्याम्	६. कन्या से
कृतवर्म	७. कृतवर्मा के	चारुमतीम्	५. चारुमती नामक
सुतः	८. पुत्र	किल ॥	११. ऐसा सुना जाता है
बली।	९. बली ने		

श्लोकार्थ—हे राजन्! रुक्मिणी की पुत्री बड़ी-बड़ी आँखों वाली चारुमती नामक कन्या से कृतवर्मा के पुत्र बली ने विवाह किया। ऐसा सुना जाता है ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया।
जानन्नधर्मं तद् यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः॥२५॥

पदच्छेद— दौहित्राय अनिरुद्धाय पौत्रीम् रुक्मी अददात् हरेः।
रोचनाम् बद्धवैरः अपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया।
जानन् अधर्मम् तत् यौनम् स्नेह पाश अनुबन्धनः॥

शब्दार्थ—

दौहित्राय	१२.	नाती	स्वसुः	६.	बहन रुक्मिणी को
अनिरुद्धाय	१३.	अनिरुद्ध को	प्रियचिकीर्षया।	७.	प्रसन्न करने की इच्छा से
पौत्रीम्	१४.	पौत्री	जानन्	११.	जानते हुये भी
रुक्मी	३.	रुक्मी ने	अधर्मम्	१०.	धर्म के प्रतिकूल
अददात्।	१६.	ब्याह दी	तत	८.	उस
हरेः	१.	श्रीकृष्ण से	यौनम्	९.	विवाह सम्बन्ध
रोचनाम्	१५.	रोचना	स्नेह पाश	४.	स्नेह बन्धन में
बद्ध वैरः अपि	२.	शत्रुता में बँधे होने पर भी	अनुबन्धनः॥	५.	बँध कर

श्लोकार्थ— श्रीकृष्ण से शत्रुता में बँधे होने पर भी रुक्मी ने स्नेह बन्धन में बँधकर बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने की इच्छा से उस विवाह सम्बन्ध को धर्म के प्रतिकूल जानते हुये भी नाती अनिरुद्ध को पौत्री रोचना से ब्याह दी॥

षड्विंशः श्लोकः

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ।
पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः॥२६॥

पदच्छेद— तस्मिन् अभ्युदये राजन् रुक्मिणी राम केशवौ।
पुरम् भोजकटम् जग्मुः साम्ब प्रद्युम्नक आदयः॥

शब्दार्थ—

तस्मिन्	२.	उस	पुरम्	११.	नगर में
अभ्युदये	३.	विवाहोत्सव में	भोजकटम्	१०.	भोजकट
राजन्	१.	हे राजन्!	जग्मुः	१२.	गये
रुक्मिणी	४.	रुक्मिणी	साम्बः	७.	साम्ब
राम	५.	बलराम	प्रद्युम्नक	८.	प्रद्युम्न
केशवौ।	६.	श्रीकृष्ण	आदयः॥	९.	आदि

श्लोकार्थ—हे राजन्! उस विवाहोत्सव में रुक्मिणी, बलराम, श्रीकृष्ण, साम्ब, प्रद्युम्न आदि भोजकट नगर में गये॥

सप्तविंशः श्लोकः

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ।
दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥२७॥

पदच्छेद— तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्ग प्रमुखाः नृपाः ।
दृप्ताः ते रुक्मिणम् प्रोचुः बलम् अक्षैः विनिर्जय ॥

शब्दार्थ—

तस्मिन्	१. उस	दृप्ताः	८. घमंडी
निवृत्त	३. सम्पन्न हो जाने पर	ते	७. उस
उद्वाहे	२. विवाह के	रुक्मिणम्	९. रुक्मी से
कालिङ्ग	४. कलिङ्ग नरेश	प्रोचुः	१०. कहा कि
प्रमुखाः	५. आदि	बलम्	११. बलराम को
नृपाः ।	६. राजाओं ने	अक्षैः	१२. पासों के खेल में
		विनिर्जय ॥	१३. जीत लो

श्लोकार्थ—उस विवाह के सम्पन्न हो जाने पर कलिङ्ग नरेश आदि राजाओं ने उस घमंडी रुक्मी से कहा कि बलराम को पासों के खेल में जीत लो ॥

अष्टविंशः श्लोकः

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥

पदच्छेद— अनक्षज्ञः हि अयम् राजन् अपि तत् व्यसनम् महत् ।
इति उक्तः बलम् आहूय तेन अक्षैः रुक्मी अदीव्यत ॥

शब्दार्थ—

अनक्षज्ञः	४. पासों का खेल नहीं जानता है	इति	९. ऐसा
हि	३. निश्चित ही	उक्तः	१०. कहा जाने पर
अयम्	२. वह	बलम्	११. बलराम को
राजन्	१. हे राजन् !	आहूय	१२. बुलाकर
अपि	५. फिर भी	तेन	१३. उनके साथ
तत्	६. उसे (इसका)	अक्षैः	१५. चौसर
व्यसनम्	८. व्यसन है	रुक्मी	१४. रुक्मी
महत् ।	७. बहुत बड़ा	अदीव्यत ॥	१६. खेलने लगा

श्लोकार्थ—हे राजन् ! वह निश्चित ही पासों का खेल नहीं जानता है। फिर भी उसे इसका बहुत बड़ा व्यसन है। ऐसा कहा जाने पर बलराम को बुलाकर उनके साथ रुक्मी चौसर खेलने लगा ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्रादधे पणम् ।
तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ।
दन्तान सन्दर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥२९॥

पदच्छेद— शतम् सहस्रम् अयुतम् रामः तत्र आददे पणम् ।
तम् तु रुक्मी अजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ।
दन्तान् सन्दर्शयन् उच्चैः न अमृष्यत् तद् हल आयुधः ॥

शब्दार्थ—शतम् सहस्रम्	२. सौ हजार और	कालिंग	१०. कालिंग नरेश
अयुतम्	३. दस हजार (मुहरों का)	प्राहसद्	१५. हँसने लगा
रामः तत्र	१. वहाँ बलराम ने	बलम् ।	१४. बलराम पर
आददे	५. लगाया	दन्तान्	११. दाँतों को
पणम् ।	४. दाँव	सन्दर्शयन्	१२. दिखाकर
तम् तु	६. उसे तो	उच्चैः	१३. जोर से
रुक्मी	७. रुक्मी ने	न अमृष्यत्	१८. सहन नहीं किया
अजयत्	९. जीत लिया	तद्	१६. उसे
तत्र	८ वहाँ	हल आयुधम् ॥	१७. बलराम ने

श्लोकार्थ—वहाँ बलराम ने सौ हजार और दस हजार मुहरों का दाँव लगाया। उसे तो रुक्मी ने वहाँ जीत लिया। कलिंग नरेश दाँतों को दिखाकर जोर से बलराम पर हँसने लगा। उसे बलराम ने सहन नहीं किया ॥

त्रिंशः श्लोकः

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद् बलः ।
जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥

पदच्छेद— ततः लक्षम् रुक्मी अगृह्णाद् ग्लहम् तत्र अजयत् बलः ।
जितवान् अहम् इति आह रुक्मी कैतवम् आश्रितः ॥

शब्दार्थ— ततः	१. तब	जितवान्	१४. जीता है
लक्षम्	४. एक लाख का	अहम्	१३. मैंने
रुक्मी	२. रुक्मी ने	इति	१२. यह
अगृह्णात्	६. लगाया उसे	आह	११. कहने लगा
ग्लहम्	५. दाँव	रुक्मी	८. रुक्मी
तत्र	३. वहाँ	कैतवम्	९. धूर्तता का
अजयत् बलम् ।	७. बलराम ने जीत लिया	आश्रितः ॥	१०. आश्रय लेकर

श्लोकार्थ— तब रुक्मी ने वहाँ एक लाख का दाँव लगाया। उसे बलराम ने जीत लिया। रुक्मी धूर्तता से कहने लगा यह मैंने जीता है ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ।
जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥३१॥

पदच्छेद— मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ।
जात्या अरुण अक्षः अतिरुषा न्यर्बुदम् ग्लहम् आददे ॥

शब्दार्थ—

मन्युना	२.	क्रोध से	जात्या	७.	स्वभाव से ही
क्षुभितः	३.	क्षुब्ध हो गये	अरुण	८.	लाल
श्रीमान्	१.	बलराम जी	अक्षः	९.	आँखों वाले उन्होंने
समुद्र	६.	समुद्र में ज्वार आ गया है	अतिरुषा	१०.	अत्यन्त क्रोध से
इव	४.	मानों	न्यर्बुदम्	११.	दस करोड़ मुद्रा का
पर्वणि ।	५.	पूर्णिमा के दिन	ग्लहम् आददे ॥	१२.	दाँव लगा दिया

श्लोकार्थ—बलराम जी क्रोध से क्षुब्ध हो गये । मानों पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आ गया हो । स्वभाव से ही लाल आँखों वाले उन्होंने अत्यन्त क्रोध से दस करोड़ मुद्रा का दाँव लगा दिया ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

तं चापि जितवान् रामो धर्मेणच्छलमाश्रितः ।
रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

पदच्छेद— तम् च अपि जितवान् रामः धर्मेण छलम् आश्रितः ।
रुक्मी जितम् मया अत्र इमे वदन्तु प्राश्निकाः इति ॥

शब्दार्थ—

तम् च	१.	उसे	रुक्मी	६.	रुक्मी ने
अपि	२.	भी	जितम्	१०.	जीता है
जितवान्	५.	जीत लिया (परन्तु)	मया	९.	मैंने
रामः	३.	बलराम ने	अत्र इमे	११.	यहाँ ये
धर्मेण	४.	धर्म से	वदन्तु	१४.	निर्णय दें
छलम्	७.	छल का	प्राश्निकाः	१२.	कलिंग नरेशादि सभासद
आश्रितः ।	८.	आश्रय लेकर (कहा)	इति	१३.	इसका

श्लोकार्थ—उसे भी बलराम ने धर्म से जीत लिया । परन्तु रुक्मी ने छल का आश्रय लेकर कहा, मैंने जीता है । यहाँ ये कलिंग नरेशादि सभासद इसका निर्णय दें ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।
धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

पदच्छेद— तदा अब्रवीत् नभः वाणी बलेन एव जितः ग्लहः ।
धर्मतः वचनेन एव रुक्मी वदति वै मृषा ॥

शब्दार्थ—

तदा	१.	तब	धर्मतः	४.	धर्मपूर्वक
अब्रवीत्	३.	कहा कि	वचनेन	५.	कहने से
नभः वाणी	२.	आकाशवाणी ने	एव	१३.	ही
बलेन	६.	बलराम ने	रुक्मी	१०.	रुक्मी
एव	७.	ही	वदति	१४.	कह रहा है
जितः	९.	जीता है	वै	११.	निश्चित रूप से
ग्लहः ।	८.	दाँव	मृषा ॥	१२.	मिथ्या

श्लोकार्थ—तब आकाशवाणी ने कहा कि धर्मपूर्वक कहने से बलराम ने ही दाँव जीता है। रुक्मी निश्चित रूप से मिथ्या ही कह रहा है ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।
सङ्कर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

पदच्छेद— ताम् अनादृत्य वैदर्भः दुष्टराजन्य चोदितः ।
सङ्कर्षणम् परिहसन् बभाषे काल चोदितः ॥

शब्दार्थ—

ताम्	१.	उस (आकाशवाणी का)	सङ्कर्षणम्	९.	बलराम जो की
अनादृत्य	२.	तिरस्कार करके	परिहसन्	१०.	हंसी उड़ाते हुये
वैदर्भः	६.	विदर्भ पति रुक्मी	बभाषे	११.	बोला
दुष्ट	३.	दुष्ट	काल	७.	जिसके सिर पर मौत
राजन्य	४.	राजाओं से	चोदितः ॥	८.	सवार थी
चोदितः ।	५.	प्रेरित			

श्लोकार्थ—उस आकाशवाणी का तिरस्कार करके दुष्ट राजाओं से प्रेरित विदर्भ-पति रुक्मी, जिसके सिर पर मौत सवार थी, बलराम जी की हंसी उड़ाते हुये बोला ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥

पदच्छेद— न एव अक्षकोविदाः यूयम् गोपालाः वन गोचराः।
अक्षैः दीव्यन्ति राजानः बाणैः च न भवादृशाः ॥

शब्दार्थ—

न एव	७. नहीं हैं	अक्षैः	८. पासों से
अक्ष	५. जुआ खेलने में	दीव्यन्ति	१२. खेलते हैं
कोविदाः	६. निपुण	राजानः	११. राजा लोग
यूयम्	१. आप लोग	बाणैः	१०. बाणों से
गोपालाः	४. ग्वाले हैं	च	९. और
वन	२. वन में	न	१४. नहीं
गोचराः ॥	३. घूमने वाले	भवादृशाः ॥	१३. आप जैसे (क्या जाने)

श्लोकार्थ—आप लोग वन में घूमने वाले ग्वाले हैं। जुआ खेलने में निपुण नहीं हैं। पासों से और बाणों से राजा लोग खेलते हैं। आप जैसे क्या जानें ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः।
क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

पदच्छेद— रुक्मिणा एवम् अधिक्षिप्तः राजभिः च उपहासितः।
क्रुद्धः परिघम् उद्यम्य जघ्ने तम् नृम्ण संसदि ॥

शब्दार्थ—

रुक्मिणा	१. रुक्मी के	परिघम्	७. मुद्गर
एवम्	२. इस प्रकार	उद्यम्य	८. उठाकर
अधिक्षिप्तः	३. आक्षेप और	जघ्ने	१२. मार डाला
राजभिः	४. राजाओं के	तम्	९. उस (रुक्मी को)
उपहासितः।	५. उपहास करने पर	नृम्ण	१०. मांगलिक
क्रुद्धः	६. क्रुद्ध हुये बलराम ने	संसदि ॥	११. सभा में ही

श्लोकार्थ - रुक्मी के इस प्रकार आक्षेप और राजाओं के उपहास करने पर क्रुद्ध हुये बलराम ने मुद्गर उठा कर उस रुक्मी को मांगलिक सभा में ही मार डाला ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे।
दन्तानपातयत् क्रुद्धो योऽहसद् विवृतैर्द्विजैः ॥३७॥

पदच्छेद— कलिङ्ग राजम् तरसा गृहीत्वा दशमे पदे।
दन्तान् अपातयत् क्रुद्धः यः अहसद् विवृतैः द्विजैः॥

शब्दार्थ—

कलिङ्ग	२.	कलिङ्ग	दन्तान्	१२.	दाँतों को (तोड़कर)
राजम्	३.	राज को	अपातयत्	१३.	गिरा दिया
तरसा	१०.	हठात्	क्रुद्धः	१.	क्रुद्ध बलराम ने
गृहीत्वा	११.	पकड़कर	यः	४.	जो पहले
दशमे	८.	दश ही	अहसद्	७.	हँसता था
पदे।	९.	कदम पर	विवृतैः	६.	दिखाकर
			द्विजैः॥	५.	दाँत

श्लोकार्थ—क्रुद्ध बलराम ने कलिङ्गराज को जो पहले दाँत दिखाकर हँसता था। दश ही कदम पर हठात् पकड़कर दाँतों को तोड़कर गिरा दिया॥

अष्टत्रिंशः श्लोकः

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः।
राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥३८॥

पदच्छेद— अन्ये निर्भिन्न बाहु ऊरु शिरसः रुधिर उक्षिताः।
राजानः दुद्रुवुः भीताः बलेन परिघ अर्दिताः॥

शब्दार्थ—

अन्ये	९.	दूसरे	राजानः	१०.	राजा लोग
निर्भिन्न	४.	टूटी हुई	दुद्रुवुः	१२.	भागते बने
बाहु ऊरु	५.	बाँह, जाँघ और	भीताः	११.	भयभीत होकर
शिरसः	६.	सिर वाले तथा	बलेन	१.	बलराम के
रुधिर	७.	रुधिर से	परिघ	२.	मुद्गर की
उक्षिताः।	८.	लथपथ	अर्दिताः॥	३.	चोट से

श्लोकार्थ—बलराम के मुद्गर की चोट से टूटी हुई बाँह और जाँघ तथा सिर वाले तथा रुधिर से लथपथ दूसरे राजा लोग भयभीत होकर भागते बने॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत् साध्वसाधु वा ।
रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥३९॥

पदच्छेद— निहते रुक्मिणि श्याले न अब्रवीत् साधु असाधु वा ।
रुक्मिणी बलयः राजन् स्नेह भङ्गभयात् हरिः ॥

शब्दार्थ—निहते	७.	मार दिये जाने पर	रुक्मिणी	२.	रुक्मिणी के
रुक्मिणि	६.	रुक्मिणी के	बलयः	३.	पति
श्याले	५.	अपने साले	राजन्	१.	हे राजन् !
न	१३.	नहीं	स्नेह	८.	स्नेह के
अब्रवीत्	१४.	बोले	भङ्ग	९.	भंग होने के
साधु	११.	भला	भयात्	१०.	भय से
असाधु वा ।	१२.	या बुरा कुछ भी	हरिः ॥	४.	श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—हे राजन् ! रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण अपने साले रुक्मी के मार दिये जाने पर स्नेह के भंग होने के भय से भला या बुरा कुछ भी नहीं बोले ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
रामादयो भोजकटाद् दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

पदच्छेद— ततः अनिरुद्धम् सह सूर्यया वरम् रथम् समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
राम आदयः भोजकटात् दशार्हाः सिद्ध अखिल अर्थाः मधुसूदन आश्रयाः ॥

शब्दार्थ—ततः	१.	तत्पश्चात्	राम	७.	बलराम
अनिरुद्धम्	११.	अनिरुद्ध को	आदयः	८.	आदि
सह	१३.	साथ	भोजकटात्	१०.	भोजकट नगर से
सूर्यया	१२.	नव विवाहिता पत्नी के	दशार्हाः	९.	यदुवंशी
वरम्	१४.	श्रेष्ठ	सिद्ध	४.	सिद्ध हो जाने पर
रथम्	१५.	रथ पर	अखिल	२.	सम्पूर्ण
समारोप्य	१६.	बैठाकर	अर्थाः	३.	प्रयोजन के
ययुः	१८.	चले गये	मधुसूदन	५.	श्रीकृष्ण के
कुशस्थलीम् ।	१७.	द्वारका पुरी को	आश्रयाः ॥	६.	आश्रित

श्लोकार्थ तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्रयोजन के सिद्ध हो जाने पर श्रीकृष्ण के आश्रित बलराम आदि यदुवंशी भोजकट नगर से अनिरुद्ध को नव विवाहिता पत्नी के साथ श्रेष्ठ रथ पर बैठाकर द्वारकापुरी को चले गये ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो
नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

द्विषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

राजोवाच— बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशङ्करयोर्महत् ।
एतत् सर्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥१॥

पदच्छेद— बाणस्य तनयाम् ऊषाम् उपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धम् अभूत् घोरम् हरिशङ्करयोः महत् ।
एतत् सर्वम् महायोगिन् सम् आख्यातुम् त्वम् अर्हसि ॥

शब्दार्थ—बाणस्य	१	बाणासुर की	घोरम्	६.	भयंकर
तनयाम्	२.	पुत्री	हरिशङ्करयोः	७.	श्रीकृष्ण और शङ्कर में
ऊषाम्	३.	ऊषा से	महत् ।	८.	बड़ा
उपयेमे	५.	विवाह किया था	एतत्	१३.	यह
यदूत्तमः ।	४.	यदुवंशियों में श्रेष्ठ (अनिरुद्ध ने)	सर्वम्	१४.	सब
तत्र	६.	वहाँ पर	महायोगिन्	१२.	हे महायोगी !
युद्धम्	१०.	युद्ध	सम् आख्यातुम्	१५.	बताने के लिये
अभूत्	११.	हुआ था	त्वम् अर्हसि ॥	१६.	आप योग्य हैं

श्लोकार्थ—बाणासुर की पुत्री ऊषा से यदुवंशियों में श्रेष्ठ अनिरुद्ध ने विवाह किया था। वहाँ पर श्रीकृष्ण और शङ्कर जी में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। हे महायोगिन् ! यह सब बताने के लिये आप योग्य हैं ॥

द्वितीयः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥२॥

पदच्छेद— बाणः पुत्र शत ज्येष्ठः बलेः आसीत् महात्मनः ।
येन वामन रूपाय हरये अदायि मेदिनी ॥

शब्दार्थ—बाणः	५.	बाण	येन	८.	जिस (बलि ने)
पुत्र	४.	पुत्रों में	वामन	९.	वामन
शत	३.	सौ	रूपाय	१०.	रूपधारी
ज्येष्ठः	६.	सबसे बड़ा	हरये	११.	हरि को
बलेः	२.	बलि के	अदायि	१३.	दे दी थी
आसीत्	७.	था	मेदिनी ॥	१२.	पृथ्वी
महात्मनः ।	१.	महात्मा			

श्लोकार्थ—महात्मा बलि के सौ पुत्रों में बाण सबसे बड़ा था। जिस बलि ने वामन रूपधारी हरि को पृथ्वी दे दी थी ॥

तृतीयः श्लोकः

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ॥३॥

पदच्छेद—
तस्यऔरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यः वदान्यः धीमान् च सत्यसन्धः दृढ व्रतः ॥

शब्दार्थ

तस्य	१. उसका	मान्यः	७. वह माननीय
औरसः	२. औरस	वदान्यः	८. अत्यन्तदानी
सुतः	३. पुत्र	धीमान्	९. बुद्धिमान्
बाणः	४. बाण	च सत्यसन्धः	१२. और अटल प्रतिज्ञा वाला था
शिवभक्ति	५. शङ्कर की भक्ति में	दृढ	१०. दृढ़
रतः सदा ।	६. सदा रत रहता था	व्रतः ।	११. व्रती

श्लोकार्थ—उसका औरस पुत्र बाण शङ्कर की भक्ति में सदा रत रहता था। वह माननीय अत्यन्त दानी बुद्धिमान् दृढ़ व्रती और अटल प्रतिज्ञा वाला था ॥

चतुर्थः श्लोकः

शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ।
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥४॥

पदच्छेद—
शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यम् अकरोत् पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव ते अमराः ।
सहस्र बाहुः वाद्येन ताण्डवे अतोषयत् मृडम् ॥

शब्दार्थ—

शोणितआख्ये	१. शोणित नामक	किङ्कराः	१. नौकर के
पुरे रम्ये	२. रमणीय नगर में	इव	१२. समान सेवा में रहते थे
सः राज्यम्	३. वह राज्य	ते	८. वे
अकरोत्	४. करता था	अमराः ।	९. देवगण
पुरा ।	५. पूर्वकाल में	सहस्र बाहुः	१३. उसकी हजार भुजायें थीं
तस्य	१०. उसको	वाद्येन	१५. बाजे बजाकर
शम्भोः	६. शंकर की	ताण्डवे	१४. उसने ताण्डव नृत्य में
प्रसादेन	७. कृपा से	अतोषयत् मृडम् ॥	१६. शंकर को संतुष्ट किया था

श्लोकार्थ—शोणित नामक रमणीय नगर में वह राज्य करता था। पूर्वकाल में शंकर की कृपा से वे देवगण उसकी नौकर के समान सेवा में रहते थे। उसकी हजार भुजायें थीं। उसने ताण्डव नृत्य में बाजे बजाकर शङ्कर को सन्तुष्ट किया था ॥

पञ्चमः श्लोकः

भगवान् सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥५॥

पदच्छेद— भगवान् सर्वभूतईशः शरण्यः भक्त वत्सलः ।
वरेण छन्दयामास सः तम् वव्रे पुरअधिपम् ॥

शब्दार्थ—

भगवान्	६.	भगवान् शङ्कर ने (उससे)	वरेण	७.	वर
सर्व	१.	सभी	छन्दयामास	८.	माँगने के लिये कहा
भूतईशः	२.	प्राणियों के स्वामी	सः	९.	उसने
शरण्यः	३.	शरणागत रक्षक	तम्	१०.	उससे
भक्त	४.	भक्त	वव्रे	११.	वर माँगा कि
वत्सलः ।	५.	वत्सल	पुरअधिपम् ॥	१२.	आप मेरे नगर के रक्षक बनें

श्लोकार्थ—सभी प्राणियों के स्वामी शरणागत-रक्षक भक्त-वत्सल भगवान् शङ्कर ने उससे वर माँगने के लिये कहा। उसने उनसे वर माँगा कि आप मेरे नगर के रक्षक बनें ॥

षष्ठः श्लोकः

स एकदाऽऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।
किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥

पदच्छेद— सः एकदा आह गिरिशम् पार्श्वस्थम् वीर्य दुर्मदः ।
किरीटेन अर्कवर्णेन संस्पृशन् तत् पद अम्बुजम् ॥

शब्दार्थ—

सः	३.	उसने	किरीटेन	९.	मुकुट से
एकदा	४.	एक बार	अर्क	७.	सूर्य के समान
आह	१४.	कहा	वर्णेन	८.	चमकीले
गिरिशम्	६.	शङ्कर से	संस्पृशन्	१३.	छूकर
पार्श्वस्थम्	५.	समीप में स्थित	तत्	१०.	उनके
वीर्य	१.	बल-पौरुष के	पद	११.	चरण
दुर्मदः ।	२.	घमण्ड में चूर	अम्बुजम् ॥	१२.	कमल को

श्लोकार्थ—बल-पौरुष के घमण्ड में चूर उसने एक बार समीप में स्थित शङ्कर से सूर्य के समान चमकीले मुकुट से उनके चरण कमल को छूकर कहा ॥

सप्तमः श्लोकः

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥७॥

पदच्छेद— नमस्ये त्वाम् महादेव लोकानाम् गुरुम् ईश्वरम् ।
पुंसाम् अपूर्ण कामानाम् काम पूर अमर अङ्घ्रिपम् ॥

शब्दार्थ—

नमस्ये	६. नमस्कार करता हूँ	पुंसाम्	७. मनुष्यों की
त्वाम्	५. आपको	पूर्णकामानाम्	८. अपूर्ण कामनाओं की
महादेव	१. हे महादेव !	काम	६. कामना
लोकानाम्	२. लोकों के	पूर	१०. पूर्ण करने के लिए आप
गुरुम्	३. गुरु और	अमर	११. देव (कल्प)
ईश्वरम् ।	४. ईश्वर	अङ्घ्रिपम् ॥	१२. वृक्ष हैं

श्लोकार्थ—हे महादेव ! लोकों के गुरु और ईश्वर आपको नमस्कार करता हूँ। मनुष्यों की कामना पूर्ण करने के लिये आप कल्प वृक्ष हैं ॥

अष्टमः श्लोकः

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥८॥

पदच्छेद— दोःसहस्रम् त्वया दत्तम् परम् भाराय मे अभवत् ।
त्रिलोक्याम् प्रतियोद्धारम् न लभे त्वदृते समम् ॥

शब्दार्थ—

दोःसहस्रम्	२. दो हजार भुजायें	त्रिलोक्याम्	८. तीनों लोक में
त्वया	१. आपने	प्रतियोद्धारम्	११. योद्धा
दत्तम्	३. मुझे दीं	न	१२. कोई नहीं
परम्	४. केवल वे	लभे	१३. मिल रहा है
भाराय	६. भार रूप	त्वदृते	६. आपके सिवाय (मुझे)
मे	५. मेरे लिये	समम् ॥	१०. अपने समान का
अभवत् ।	७. हो गई हैं		

श्लोकार्थ—हे भगवान् ! आपने दो हजार भुजायें मुझे दीं। केवल वे मेरे लिये भार रूप हो गई हैं। तीनों लोकों में आपके सिवाय मुझे अपने समान कोई योद्धा नहीं मिल रहा है ॥

नवमः श्लोकः

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आयायां चूर्णयन्नद्रीन् भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥९॥

पदच्छेद— कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिः युयुत्सुः दिग्गजान् अहम् ।
आयायाम् चूर्णयन् अद्रीन् भीताः ते अपि प्रदुद्रुवुः ॥

शब्दार्थ—

कण्डूत्या	१.	खुजलाहट से	आयायाम्	६.	मार्ग में
निभृतैः	२.	भरी हुई	चूर्णयन्	८.	तोड़ता-फोड़ता हुआ
दोर्भिः	३.	बाँहों से	अद्रीन्	७.	पहाड़ों को
युयुत्सुः	४.	युद्ध करने का इच्छुक	भीताः	११.	परन्तु डर कर
दिग्गजान्	९.	दिग्गजों की ओर चला गया	ते अपि	१०.	वे भी
अहम् ।	५.	मैं	प्रदुद्रुवुः ॥	१२.	भाग गये

श्लोकार्थ—हे भगवान् ! खुजलाहट से भरी हुई बाँहों से युद्ध करने का इच्छुक मैं मार्ग में पहाड़ों को तोड़ता-फोड़ता हुआ दिग्गजों की ओर चला गया । परन्तु वे भी डर कर भाग गये ॥

दशमः श्लोकः

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

पदच्छेद— तत् श्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुः ते भज्यते यदा ।
त्वत् दर्पघ्नम् भवेत् मूढ संयुगम् मत् समेन ते ॥

शब्दार्थ—

तत्	१.	यह	त्वत्	१४.	तेरा
श्रुत्वा	२.	सुनकर	दर्पघ्नम्	१५.	घमण्ड चूर करने वाला
भगवान्	३.	भगवान् शङ्कर ने	भवेत्	१६.	होगा
क्रुद्धः	४.	क्रुद्ध होकर कहा	मूढ	५.	हे मूर्ख !
केतुः	८.	ध्वजा	संयुगम्	१३.	युद्ध
ते	७.	तेरी	मत्	१०.	मेरे
भज्यते	९.	टूट जायेगी (उस समय)	समेन	११.	समान योद्धा से
यदा ।	६.	जिस समय	ते ॥	१२.	तेरा

श्लोकार्थ—यह सुनकर भगवान् शङ्कर ने क्रुद्ध होकर कहा—हे मूर्ख ! जिस समय तेरी ध्वजा टूट जायेगी उस समय मेरे समान योद्धा से तेरा युद्ध तेरा घमण्ड चूर करने वाला होगा ॥

एकादशः श्लोकः

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ।
प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥११॥

पदच्छेद — इति उक्तः कुमतिः हृष्टः स्वगृहम् प्राविशत् नृप ।
प्रतीक्षन् गिरीश आदेशम् स्ववीर्य नशनम् कुधीः ॥

शब्दार्थ—

इति	२.	ऐसा	प्रतीक्षन्	१४.	प्रतीक्षा करने लगा
उक्तः	३.	कहने पर	गिरीश	१२.	शङ्कर के
कुमतिः	४.	दुर्बुद्धि (वाणासुर)	आदेशम्	१३.	आदेशानुसार युद्ध की
हृष्टः	५.	हर्षित होकर	स्व	९.	अपने
स्वगृहम्	६.	अपने घर में	वीर्य	१०.	पराक्रम का
प्राविशत्	७.	चला गया (वह)	नशनम्	११.	नाश करने वाले
नृप ।	१.	हे राजन् !	कुधीः ॥	८.	मूर्ख

श्लोकार्थ—हे राजन् ! ऐसा कहने पर दुर्बुद्धि वाणासुर हर्षित होकर अपने घर में चला गया । वह मूर्ख अपने पराक्रम का नाश करने वाले शङ्कर के आदेशानुसार युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा ।

द्वादशः श्लोकः

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥१२॥

पदच्छेद — तस्य ऊषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्या अलभत कान्तेन प्राक् अदृष्ट श्रुतेन सा ॥

शब्दार्थ—

तस्य	१.	उसकी	कन्या	६.	कन्या ने
ऊषा	२.	ऊषा	अलभत	१४.	प्राप्त किया
नाम	३.	नाम की	कान्तेन	१०.	सुन्दर
दुहिता	४.	एक कन्या थी	प्राक्	७.	पहले
स्वप्ने	१२.	स्वप्न में	अदृष्ट	८.	न देखे गये और
प्राद्युम्निना	११.	प्रद्युम्न पुत्र (अनिरुद्ध के साथ)	श्रुतेन	९.	न सुने गये
रतिम् ।	१३.	समागम	सा ॥	५.	उस

श्लोकार्थ—उसकी ऊषा नाम की एक कन्या थी । उस कन्या ने पहले न देखे गये और न सुने गये सुन्दर प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध के साथ समागम प्राप्त किया ॥

त्रयोदशः श्लोकः

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी ।
सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥१३॥

पदच्छेद— सा तत्र तम् अपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी ।
सखीनाम् मध्ये उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥

शब्दार्थ—

सा	१. वह	सखीनाम्	८. सखियों के
तत्र	२. वहाँ	मध्ये	९. बीच
तम्	३. उसे	उत्तस्थौ	१०. उठ बैठी और
अपश्यन्ती	४. देखकर	विह्वला	११. विह्वलतापूर्वक
क्वासि	६. कहाँ हो	व्रीडिता	१३. लज्जित हुई
कान्त इति	५. प्रिय तम यह	भृशम् ॥	१२. बहुत
वादिनी ।	७ बोलती हुई		

श्लोकार्थ— वह वहाँ उसे न देखकर प्रियतम कहाँ हो यह बोलती हुई सखियों के मध्य उठ बैठी और विह्वलतापूर्वक बहुत लज्जित हुई ॥

चतुर्दशः श्लोकः

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
सख्यपृच्छत् सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥

पदच्छेद— बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डः चित्रलेखा च तत् सुता ।
सखी अपृच्छत् सखीम् ऊषाम् कौतूहल समन्विता ॥

शब्दार्थ—

बाणस्य	१. बाण का	सखी	७. सखी (चित्रलेखा ने)
मन्त्री	२. मन्त्री	अपृच्छत्	१२. पूछा
कुम्भाण्डः	३. कुम्भाण्ड था	सखीम्	१०. सखी
चित्रलेखा	६. चित्रलेखा थी	ऊषाम्	११. ऊषा से
च तत्	४. और उसकी	कौतूहल	८. आश्चर्य से
सुता ।	५. पुत्री	समन्विता ॥	९. युक्त होकर

श्लोकार्थ—बाण का मन्त्री कुम्भाण्ड था । और उसकी पुत्री चित्रलेखा थी । सखी चित्रलेखा ने आश्चर्य से युक्त होकर सखी ऊषा से पूछा ॥

पञ्चदशः श्लोकः

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ।
हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥१५॥

पदच्छेद— कम् त्वम् मृगयसे सुभ्रूः कीदृशःते मनोरथः ।
हस्तग्राहम् न ते अद्य अपि राज पुत्रि उपलक्षये ॥

शब्दार्थ—

कम्	३.	किसे	हस्तग्राहम्	११.	पाणिग्रहण
त्वम्	२.	तुम	न	१२.	नहीं किया है
मृगयसे	४.	खोज रही हो	ते	१०.	तुम्हारा
सुभ्रूः	१.	हे सुन्दरी !	अद्य अपि	९.	अभी तक (किसी ने)
कीदृशःते	५.	कैसा तुम्हारा	राजपुत्रि	७.	हे राजकुमारी !
मनोरथः ।	६.	मनोरथ है	उपलक्षये ॥	८.	मैं देखती हूँ कि

श्लोकार्थ—हे सुन्दरी ! तुम किसे खोज रही हो ? तुम्हारा कैसा मनोरथ है ? हे राजकुमारी ! मैं देखती हूँ कि अभी तक किसी ने तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं किया है ॥

षोडशः श्लोकः

ऊषोवाच— दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥१६॥

पदच्छेद— दृष्टः कश्चित् नरः स्वप्ने श्यामः कमल लोचनः ।
पीतवासाः बृहत् बाहुः योषिताम् हृदयङ्गमः ॥

शब्दार्थ—

दृष्टः	३.	देखा है	पीतवासाः	६.	पीताम्बरधारी
कश्चित नरः	२.	किसी एक पुरुष को	बृहत्	७.	लम्बी-लम्बी
स्वप्ने	१.	स्वप्न में	बाहुः	८.	भुजाओं वाला तथा
श्यामः	४.	जो साँवला	योषिताम्	९.	स्त्रियों का
कमललोचनः ।	५.	कमल नयन	हृदयङ्गमः ॥	१०.	चित्त चुराने वाला है

श्लोकार्थ—स्वप्न में किसी एक पुरुष को देखा है। जो साँवला, कमल नयन, पीताम्बरधारी, लम्बी-लम्बी भुजाओं वाला तथा स्त्रियों का चित्त चुराने वाला है ॥

सप्तदशः श्लोकः

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥१७॥

पदच्छेद— तम् अहम् मृगये कान्तम् पाययित्वा अधरम् मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीम् क्षिप्त्वा माम् वृजिन अर्णवे ॥

अन्वार्थ—

तम्	२. उस	क्वापि	१३. कहीं
अहम्	१. मैं	यातः	१४. चला गया
मृगये	४. खोज रही हूँ (जो)	स्पृहयतीम्	८. तरसती हुई
कान्तम्	३. प्रियतम को	क्षिप्त्वा	१२. डालकर
पाययित्वा	७. पिलाकर	माम्	९. मुझे
अधरम्	५. (अपने) अधरों का	वृजिन	१०. दुःख
मधु ।	६. मधु (मुझे)	अर्णवे ॥	११ संसार में

श्लोकार्थ— मैं उस प्रियतम को खोज रही हूँ, जो अपने अधरों का मधु मुझे पिलाकर तरसती हुई मुझे दुःख संसार में डालकर कहीं चला गया ॥

अष्टादशः श्लोकः

चित्रलेखोवाच—व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ।
तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥

पदच्छेद— व्यसनम् ते अपकर्षामि त्रिलोक्याम् यदि भाव्यते ।
तम् आनेष्ये नरम् यः ते मनः हर्ता तम् आदिश ॥

शब्दार्थ—

व्यसनम्	२. दुःख	तम्	७. तो उस
ते	१. मैं तुम्हारा	आनेष्ये	९. ले (आऊँगी)
अपकर्षामि	३. दूर कर दूँगी	नरम्	८. मनुष्य को मैं
त्रिलोक्याम्	५. तीनों लोक में कहीं भी वह	यः ते	१०. जो तुम्हारा
यदि	४. यदि	मनः हर्ता	११. चित्तचोर है
भाव्यते ।	६. होगा और उसे तुम पहचान लोगी	तम् आदिश ॥	१२. उसे चित्र में बतला दे ।

श्लोकार्थ—मैं तुम्हारा दुःख दूर कर दूँगी । यदि तीनों लोक में कहीं भी वह होगा और उसे तुम पहचान लोगी तो उस पुरुष को मैं ले आऊँगी । जो तुम्हारा चित्तचोर है, उसे चित्र में बतला दो ॥

एकोनविंशः श्लोकः

इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ।
दैत्यविद्याधरान् यक्षान् मनुजांश्च यथालिखत् ॥१९॥

पदच्छेद— इति उक्त्वा देव गन्धर्व सिद्ध चारण पन्नगान् ।
दैत्य विद्याधरान् यक्षान् मनुजान् च यथा अलिखत् ॥

शब्दार्थ—

इति	१. यह	दैत्य	८. दैत्य
उक्त्वा	२. कहकर (उसने)	विद्याधरान्	९. विद्याधर
देव	३. देव	यक्षान्	१०. यक्ष
गन्धर्व	४. गन्धर्व	मनुजान्	१२. मनुष्यों के
सिद्ध	५. सिद्ध	च	११. और
चारण	६. चारण	यथा	१३. ज्यों के त्यों चित्र
पन्नगान् ।	७. नाग	अलिखत् ॥	१४. बना दिये

श्लोकार्थ—यह कहकर उसने देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के ज्यों के त्यों चित्र बना दिये ।

विंशः श्लोकः

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखद् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

पदच्छेद— मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरम् आनकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखत् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नम् वीक्ष्य लज्जिता ॥

शब्दार्थ—

मनुजेषु च	२. मनुष्यों में	व्यलिखत्	७. चित्र बनाये
सा	१. उसने	रामकृष्णौ	६. बलराम और कृष्ण के
वृष्णीन्	३. वृष्णि वंशियों में	च प्रद्युम्नम्	८. और वह प्रद्युम्न को
शूरम्	४. शूर (वसुदेव के पिता)	वीक्ष्य	९. देखकर
आनकदुन्दुभिम् ।	५. वसुदेव जी	लज्जिता ॥	१०. लज्जित हो गई ।

श्लोकार्थ—उसने मनुष्यों में वृष्णिवंशियों में शूर (वसुदेव के पिता) वसुदेव जी, बलराम और श्रीकृष्ण के चित्र बनाये । और वह प्रद्युम्न को देखकर लज्जित हो गई ।

एकविंशः श्लोकः

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया ।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

पदच्छेद— अनिरुद्धम् विलिखितम् वीक्ष्य ऊषा अवाङ्मुखी ह्रिया ।
सः असौ असौ इति प्राह स्मयमाना महीपते ॥

शब्दार्थ—

अनिरुद्धम्	२. अनिरुद्ध का	सः	८.	वह
विलिखितम्	३. चित्र	असौ	६.	यही है
वीक्ष्य	४. देखकर	असौ	१०.	यही है
ऊषा	५. ऊषा ने	इति	११.	ऐसा (उसने)
अवाङ्मुखी	७. सिर झुका लिया	प्राह स्मयमाना	१२.	मुसकराते हुये कहा
ह्रिया ।	६. लज्जा से	महीपते ॥	१.	हे राजन् !

श्लोकार्थ—हे राजन् ! अनिरुद्ध का चित्र देखकर ऊषा ने लज्जा से सिर झुका लिया । वह यही है, यही है, ऐसा उसने मुसकराते हुये कहा ।

द्वाविंशः श्लोकः

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥२२॥

पदच्छेद— चित्रलेखा तम् आज्ञाय पौत्रम् कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन् द्वारकाम् कृष्णपालिताम् ॥

शब्दार्थ—

चित्रलेखा	३. चित्रलेखा	ययौ	१२.	पहुँची
तम्	४. उसे	विहायसा	११.	आकाश मार्ग से
आज्ञाय	७. भली-भाँति जानकर	राजन्	१.	हे राजन् !
पौत्रम्	६. पौत्र	द्वारकाम्	१०.	द्वारकापुरी में
कृष्णस्य	५. श्रीकृष्ण का	कृष्ण	८.	श्रीकृष्ण से
योगिनी ।	२. योगिनी	पालिताम् ॥	९.	सुरक्षित

श्लोकार्थ—हे राजन् ! योगिनी चित्रलेखा उसे श्रीकृष्ण का पौत्र भली-भाँति जानकर श्रीकृष्ण से सुरक्षित द्वारकापुरी में आकाश मार्ग से पहुँची ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥२३॥

पदच्छेद— तत्र सुप्तम् सुपर्यङ्के प्राद्युम्निम् योगम् आस्थिता।
गृहीत्वा शोणित पुरम् सख्यै प्रियम् अदर्शयत् ॥

शब्दार्थ—

तत्र	१. वहाँ पर	गृहीत्वा	७. उठाकर
सुप्तम्	३. सोये हुये	शोणितपुरम्	८. शोणितपुर ले आयी और
सुपर्यङ्के	२. सुन्दर पलंग पर	सख्यै	९. सखी ऊषा को
प्राद्युम्निम्	४. अनिरुद्ध को	प्रियम्	१०. उसके प्रियतम का
योगम्	५. योग विद्या के	अदर्शयत् ॥	११. दर्शन करा दिया
आस्थिता।	६. प्रभाव से		

श्लोकार्थ— वहाँ पर सुन्दर पलंग पर सोये हुये अनिरुद्ध को योग विद्या के प्रभाव से उठाकर शोणितपुर ले आयी और सखी ऊषा को उसके प्रियतम का दर्शन करा दिया ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भिः रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

पदच्छेद— सा च तम् सुन्दर वरम् विलोक्य मुदित आनना।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भिः रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥

शब्दार्थ—

सा च	१. वह भी	दुष्प्रेक्ष्ये	८. न देखे जाने योग्य
तम्	२. उस	स्वगृहे	९. अपने भवन में
सुन्दर	३. सुन्दर	पुम्भिः	७. पुरुषों द्वारा
वरम्	४. वर को	रेमे	१२. विहार करने लगी
विलोक्य	५. देखकर	प्राद्युम्निना	१०. अनिरुद्ध के
मुदित आनना।	६ प्रसन्न मुख होकर	समम् ॥	११. साथ

श्लोकार्थ—वह भी उस सुन्दर वर को देखकर प्रसन्न मुख होकर पुरुषों द्वारा न देखे जाने योग्य अपने भवन में अनिरुद्ध के साथ विहार करने लगी ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

परार्ध्यवासः स्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ।
पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥२५॥

पदच्छेद — परार्ध्य वासः स्रक् गन्ध धूपदीप आसन आदिभिः ।
पान भोजन भक्ष्यैः च वाक्यैः शुश्रूषया अर्चितः ॥

शब्दार्थ—

परार्ध्य	१.	बहुमूल्य	पान	८.	पीने
वासः	२.	वस्त्र	भोजन	९.	भोजन करने तथा
स्रक्	३.	पुष्पों के हार	भक्ष्यैः	१०.	निगल जाने योग्य पदार्थों
गन्ध	४.	इत्र फुलेल	च	११.	और
धूपदीप	५.	धूपदीप	वाक्यैः	१२.	सुन्दर वचनों से
आसन	६.	आसन	शुश्रूषया	१३.	एवम् सेवा शुश्रूषा से
आदिभिः ।	७.	आदि से	अर्चित ॥	१४.	अनिरुद्ध की अर्चना करती थी ।

श्लोकार्थ—वह बहुमूल्य, वस्त्र, पुष्पों के हार, इत्र फुलेल, धूपदीप, आसन, आदि से पीने, भोजन करने तथा निगल जाने योग्य पदार्थों से और सुन्दर वचनों से एवम् सेवा शुश्रूषा से अनिरुद्ध की अर्चना करती थी ॥

षड्विंशः श्लोकः

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥२६॥

पदच्छेद— गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्ध स्नेहया तया ।
न अहः गणान् स बुबुधे ऊषया अपहृतइन्द्रियः ॥

शब्दार्थ—

गूढः	२.	छिपे रहने वाले	न	१२.	नहीं
कन्यापुरे	१.	कन्या के अन्तःपुर में	अहः गणान्	११.	दिनों के समूह को
शश्वत्	३.	निरन्तर	सः	१०.	अनिरुद्ध ने
प्रवृद्ध	४.	बढ़ते हुये	बुबुधे	१३.	जाना
स्नेहया	५.	स्नेह वाली	ऊषया	७.	ऊषा के द्वारा
तया ।	६.	उस	अपहृत	८.	अपहरण किये गये
			इन्द्रियः ॥	९.	चित्त वाले

श्लोकार्थ—कन्या के अन्तःपुर में छिपे रहने वाले निरन्तर बढ़ते हुये स्नेह वाली उस ऊषा के द्वारा अपहरण किये गये चित्त वाले अनिरुद्ध ने दिनों के समूह को नहीं जाना ॥

सप्तविंशः श्लोकः

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ।
हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥

पदच्छेद — ताम् तथा यदुवीरेण भुज्यमानाम् हत व्रताम् ।
हेतुभिः लक्षयाम् चक्रुः आप्रीताम् दुरवच्छदैः ॥

शब्दार्थ—

ताम्	५.	उस ऊषा में (पहरेदारों ने)	हेतुभिः	७.	कारणों को देखा जो
तथा	२.	उस प्रकार	लक्षयाम्	१०.	सूचना
यदुवीरेण	१.	यदुकुमार के द्वारा	चक्रुः	११.	दे रहे थे
भुज्यमाना	३.	भोगी जाती हुई (अतः)	आप्रीताम्	४.	बहुत प्रसन्न रहने वाली
हत	८.	नष्ट कौमार	दुरवच्छदैः ॥	६.	सुस्पष्ट
व्रताम् ।	९.	व्रत को			

श्लोकार्थ—यदु कुमार के द्वारा उस प्रकार भोगी जाती हुई अतः बहुत प्रसन्न रहने वाली उस ऊषा में पहरेदारों ने सुस्पष्ट उन कारणों को देखा जो नष्ट कौमार व्रत की सूचना दे रहे थे ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

भटा आवेदयाञ्चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ।
विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥

पदच्छेद— भटाः आवेदयन् चक्रुः राजन् ते दुहितुः वयम् ।
विचेष्टितम् लक्षयामः कन्यायाः कुल दूषणम् ॥

शब्दार्थ—

भटाः	१.	पहरेदारों ने (बाणासुर से)	वयम् ।	५.	हम लोग
आवेदयान्	२.	निवेदन	विचेष्टितम्	१०.	रंग ढंग
चक्रुः	३.	किया	लक्षयामः	६.	देख रहे हैं (कि)
राजन्	४.	हे राजन् !	कन्यायाः	९.	राजकुमारी का
ते	७.	आपकी	कुल	११.	कुल को
दुहितुः	८.	पुत्री	दूषणम् ॥	१२.	दूषित करने वाला है

श्लोकार्थ—पहरेदारों ने बाणासुर से कहा—हे राजन् ! हम लोग देख रहे हैं कि आपकी पुत्री राजकुमारी का रंग ढंग कुल को दूषित करने वाला है ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ।
कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

पदच्छेद— अनपायिभिः अस्माभिः गुप्तायाः च गृहे प्रभो ।
कन्यायाः दूषणम् पुम्भिः दुष्प्रेक्षायाः न विद्महे ॥

शब्दार्थ—

अनपायिभिः	३.	बिना क्रम टूटे	कन्यायाः	९.	कन्या का
अस्माभिः	४.	हम लोगों के द्वारा	दूषणम्	१०.	दूषित होना
गुप्तायाः	६.	सुरक्षित	पुम्भिः	७.	पुरुषों के द्वारा
च	२.	फिर	दुष्प्रेक्षायाः	८.	न देखने योग्य
गृहे	५.	महल में	न	१२.	नहीं आ रहा है
प्रभो ।	१.	हे प्रभो !	विद्महे ॥	११.	हमारी समझ में

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! फिर बिना क्रम टूटे हम लोगों के द्वारा महल में सुरक्षित पुरुषों के द्वारा न देखने योग्य कन्या का दूषित होना हमारी समझ में नहीं आ रहा है ॥

त्रिंशः श्लोकः

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ।
त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद् यदूद्वहम् ॥३०॥

पदच्छेद— ततः प्रव्यथितः बाणः दुहितुः श्रुत दूषणः ।
त्वरितः कन्यका आगारम् प्राप्तः अद्राक्षीत् यदुउद्वहम् ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	त्वरितः	७.	शीघ्र
प्रव्यथितः	५.	बहुत दुःखी होकर	कन्यका	८.	कन्या के
बाणः	६.	बाणासुर ने	आगारम्	९.	महल में
दुहितुः	२.	पुत्री का	प्राप्तः	१०.	पहुँचने पर वहाँ
श्रुत	४.	सुनकर	अद्राक्षीत्	१२	देखा
दूषणः ।	३.	दूषित होना	यदुउद्वहम् ॥	११.	यदुवंशी अनिरुद्ध को

श्लोकार्थ—तदनन्तर पुत्री का दूषित होना सुनकर बहुत दुःखी होकर शीघ्र कन्या के महल में पहुँचने पर वहाँ यदुवंशी अनिरुद्ध को देखा ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥३१॥

पदच्छेद—काम आत्मजम् तम् भुवन एक सुन्दरम् श्यामम् पिशङ्ग अम्बरम् अम्बुज ईक्षणम् ।
बृहत् भुजम् कुण्डल कुन्तल त्विषा स्मित अवलोकेन च मण्डित आनना ॥

शब्दार्थ– काम	१. कामावतार (प्रद्युम्न) के	बृहत् भुजम्	६. लम्बी भुजाओं वाले
आत्मजम्	२. पुत्र	कुण्डल	१० कुण्डल और
तम् भुवन	३. अनिरुद्ध को देखा त्रिभुवन में जो	कुन्तलत्विषा	११. घुँघराले बालों की
एक सुन्दरम्	४. एक मात्र सर्वश्रेष्ठ सुन्दर	स्मित	१२. कान्ति से मुसकराहट तथा
श्यामम्	५. श्याम वर्ण वाले	अवलोकेन	१३ चितवन से
पिशङ्ग अम्बरम्	६. पीले वस्त्र धारण करने वाले	च	१४. और
अम्बुज	७. कमल के समान	मण्डित	१५. विभूषित
ईक्षणम् ।	८. नेत्र वाले	आन म् ॥	१६. मुख वाले थे

श्लोकार्थ—कामावतार प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखा। त्रिभुवन में जो एक मात्र सर्वश्रेष्ठ सुन्दर, श्याम वर्ण, पीले वस्त्र धारण करने वाले, कमल के समान नेत्र वाले, लम्बी भुजाओं वाले, कुण्डल और घुँघराले बालों की कान्ति से और मुसकराहट तथा चितवन से विभूषित मुख वाले थे ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

पदच्छेद—दीव्यन्तम् अक्षैः प्रियया अभिनृम्णया तत् अङ्गसङ्ग स्तन कुङ्कुम स्रजम् ।
बाह्वोः दधानम् मधुमल्लिकाश्रिताम् तस्याः अग्रे आसीनम् अवेक्ष्य विस्मितः ॥

शब्दार्थ–दीव्यन्तम्	४. खेलते हुये	बाह्वोः	११. दोनों भुजाओं के मध्य (गले में)
अक्षैः	३. पासों से	दधानम्	१२. धारण किये हुये (और)
प्रियया	२. प्रियतमा के साथ	मधुमल्लिका	८. मधुमालती (बसंती बेला) से
अभिनृम्णया	१. खूब सजी-धजी हुई	श्रिताम्	९. शोभित
तत् अङ्ग	५. ऊषा के अङ्गों का	तस्याः अग्रे	१३. ऊषा के आगे
सङ्ग स्तन	६. सम्पर्क होने से स्तनों की	आसीनम्	१४. बैठे हुये (अनिरुद्ध को)
कुङ्कुम	७. केशर लगे हुये तथा	अवेक्ष्य	१५. देखकर
स्रजम् ।	१०. पुष्प हार को	विस्मितः ॥	१६. बाणासुर आश्चर्य

श्लोकार्थ—खूब सजी-धजी हुई प्रियतमा के साथ पासों से खेलते हुये ऊषा के अङ्गों का सम्पर्क होने से स्तनों की केसर लगे हुये तथा मधुमालती, बसंती बेला से शोभित पुष्पहार को दोनों भुजाओं के मध्य गले में धारण किये और ऊषा के आगे बैठे हुये अनिरुद्ध को देखकर बाणासुर आश्चर्य चकित हो गया ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥३३॥

पदच्छेद— सः तम् प्रविष्टम् वृतम् आततायिभिः भटैः अनीकैः अवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वम् परिघम् व्यवस्थितः यथा अन्तकः दण्डधरः जिघांसया ॥

शब्दार्थ—

सः तम्	६	उस बाणासुर को	उद्यम्य	१२.	उठाकर
प्रविष्टम्	५.	महल में प्रवेश किये हुये	मौर्वम्	१०.	धनुष और
वृतम्	४.	साथ	परिघम्	११.	मुद्गर
आततायिभिः	१.	आततायी	व्यवस्थित	१३.	डट गये
भटैः	२.	योद्धाओं तथा	यथा	१४.	मानों
अनीकैः	३.	सैनिकों के	अन्तकः	१६.	मृत्यु (यम खड़ा) हो
अवलोक्य	७.	देखकर (उन)	दण्डधरः	१५.	काल दण्ड लेकर
माधवः ।	८.	(माधव) अनिरुद्ध ने	जिघांसया ॥	६.	उन्हें मार देने के लिये

श्लोकार्थ—आततायी योद्धाओं तथा सैनिकों के साथ महल में प्रवेश किये हुये उस बाणासुर को देखकर उन माधव अनिरुद्ध ने उन्हें मार देने के लिये धनुष और मुद्गर उठाकर डट गये। मानों काल दण्ड लेकर मृत्यु (यम खड़ा) हो ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ।
ते हन्यमाना भवनाद् विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

पदच्छेद— जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः शुनः यथा सूकर यूथपः अहनत् ।
ते हन्यमानाः भवनात् विनिर्गताः निर्भिन्न मूर्ध ऊरु भुजाः प्रदुद्रुवुः ॥

शब्दार्थ—

जिघृक्षया	१.	उनको पकड़ने की इच्छा से	ते	१०.	वे सैनिक
तान्	४.	उन (सैनिकों को)	हन्यमानाः	६.	मारे जाते हुये
परितः	२.	चारों ओर से	भवनात्	१४.	महल से
प्रसर्पतः	३.	आक्रमण करते हुये	विनिर्गताः	१५.	निकल
शुनः	८	कुत्तों को (मार डाले)	निर्भिन्न	१३.	टूट-फूट गये थे
यथा	६.	जैसे	मूर्ध	११.	जिनके सिर
सूकर यूथपः	७.	सुअरों के दल का नायक	ऊरुभुजाः	१२.	जांघ भुजा (आदि अङ्ग)
अहनत् ।	५.	(अनिरुद्ध उसी प्रकार)मार देते	प्रदुद्रुवुः ॥	१६.	भागे

श्लोकार्थ—उनको पकड़ने की इच्छा से चारों ओर से आक्रमण करते हुये उन सैनिकों को अनिरुद्ध उसी प्रकार मार देते जैसे सुअरों के दल का नायक कुत्तों को मार डाले। मारे जाते हुये वे सैनिक जिनके सिर, जांघ, भुजा आदि अङ्ग टूट-फूट गये थे महल से निकल भागे ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३५॥

पदच्छेद—

तम् नागपाशैः बलिनन्दनः बली घ्नन्तम् स्वसैन्यम् कुपितः बबन्ध ह ।
ऊषा भृशम् शोक विषाद विह्वला बद्धम् निशम्य अश्रुकला अक्षी अरौदिषीत् ॥

शब्दार्थ—

तम्	६. अनिरुद्ध को		ऊषा	१४. ऊषा
नागपाशैः	७. नागपाश से		भृशम्	१५. बहुत
बलिनन्दनः	३. बाणासुर ने		शोक विषादः	११. शोक और विषाद से
बली	२. बलवान्		विह्वला	१२. विह्वल एवम्
घ्नन्तम्	५. मारते हुये		बद्धम्	६. उसे बँधे हुये
स्वसैन्यम्	४. अपनी सेना को		निशम्य	१०. सुनकर
कुपितः	१. क्रोध से भरे हुये		अश्रुकला अक्षी	१३. आँसू से भरे नेत्रों वाली
बबन्ध ह ।	८. बाँध लिया		अरौदिषीत् ॥	१६. रोने लगी

श्लोकार्थ—

क्रोध से भरे हुये बलवान् बाणासुर ने अपनी सेना को मारते हुये अनिरुद्ध को नागपाश से बाँध लिया । उसे बँधे हुये सुनकर शोक और विषाद से विह्वल एवम् आँसू से भरे हुये नेत्रों वाली ऊषा बहुत रोने लगी ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धबन्धो
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

त्रिषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—अपश्यतां अनिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥१॥

पदच्छेद— अपश्यतां च अनिरुद्धम् तत् बन्धूनाम् च भारत।
चत्वारः वार्षिकाः मासाः व्यतीयुः अनु शोचताम् ॥

शब्दार्थ—

अपश्यताम्	४.	नहीं देखते हुये	चत्वारः	८.	चार
च	१.	और	वार्षिकाः	७.	बरसात के
अनिरुद्धम्	३.	अनिरुद्ध को	मासाः	९.	मास
तत्	५.	उनके	व्यतीयुः	११.	बीत गये
बन्धूनाम् च	६.	बन्धुओं के	अनुशोचताम् ॥	१०.	शोक करते हुये
भारत।	२.	हे परीक्षित !			

श्लोकार्थ—और हे परीक्षित् ! अनिरुद्ध को नहीं देखते हुये उनके बन्धुओं के बरसात के चार मास शोक करते हुये बीत गये ॥

द्वितीयः श्लोकः

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च।
प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२॥

पदच्छेद— नारदात् तत् उपाकर्ण्य वार्ताम् बद्धस्य कर्म च।
प्रययुः शोणित पुरम् वृष्णयः कृष्ण देवताः ॥

शब्दार्थ—

नारदात्	१.	नारद से	प्रययुः	१२.	चढ़ाई कर दी
तत्	४.	किया हुआ वह	शोणित	१०.	शोणित
उपाकर्ण्य	६.	सुनकर	पुरम्	११.	पुर पर
वार्ताम्	३.	समाचार (तथा) उसका	वृष्णयः	९.	यदुवंशियों ने
बद्धस्य	२.	बंधे हुये (अनिरुद्ध)	कृष्ण	[illegible]	श्रीकृष्ण को ही
कर्म च।	५.	कार्य भी	देवताः ॥	८.	देवता मानने वाले

श्लोकार्थ—नारद से, बंधे हुये अनिरुद्ध का समाचार तथा उसका किया हुआ वह कार्य भी सुनकर श्रीकृष्ण को ही देवता मानने वाले यदुवंशियों ने शोणित पुर पर चढ़ाई कर दी ॥

तृतीयः श्लोकः

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ।।३।।

पदच्छेद-- प्रद्युम्नः युयुधानः च गदः साम्बः अथ सारणः ।
नन्द उपनन्द भद्र आद्याः राम कृष्ण अनुवर्तिनः ।।

शब्दार्थ—

प्रद्युम्नः	४.	प्रद्युम्न	नन्द	९.	नन्द
युयुधानः	५.	(युयुधान) सात्यकि	उपनन्द	१०.	उपनन्द और
च गदः	६.	और गद	भद्र	११.	भद्र
साम्बः	७.	साम्ब (तथा)	आद्याः	१२.	आदि ने (शोणित पुर) को घेर लिया
अथ	१.	अब	रामकृष्ण	२.	बलराम और श्रीकृष्ण के
सारणः ।	८.	सारण	अनुवर्तिनः ।।	३.	अनुयायी

श्लोकार्थ--अब बलराम और श्रीकृष्ण के अनुयायी प्रद्युम्न, सात्यकि और गद, साम्ब तथा सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि ने शोणित पुर को घेर लिया ।।

चतुर्थः श्लोकः

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात् सात्वतर्षभाः ।।४।।

पदच्छेद— अक्षौहिणीभिः द्वादशभिः समेताः सर्वतः दिशम् ।
रुरुधुः बाण नगरम् समन्तात् सात्वत ऋषभाः ।।

शब्दार्थ--

अक्षौहिणीभिः	४.	अक्षौहिणी सेना के	रुरुधुः	१०.	घेर लिया
द्वादशभिः	३.	बारह	बाण नगरम्	८.	बाणासुर के नगर को
समेताः	५	साथ	समन्तात्	९.	चारों ओर से
सर्वतः	६.	व्यूह	सात्वत	२.	यदुवंशियों ने
दिशम् ।	७.	बनाकर	ऋषभाः ।।	१.	श्रेष्ठ

श्लोकार्थ- श्रेष्ठ यदुवंशियों ने बारह अक्षौहिणी सेना के साथ व्यूह बनाकर बाणासुर के नगर को चारों ओर से घेर लिया ।।

पञ्चमः श्लोकः

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥५॥

पदच्छेद— भज्यमान पुरउद्यान प्राकार अट्टाल गोपुरम् ।
प्रेक्षमाणः रुषा आविष्टः तुल्य सैन्यः अभिनिर्ययौ ॥

शब्दार्थ—

भज्यमान	६. तोड़े जाते हुये	प्रेक्षमाणः	७. देखकर
पुर	१. नगर के	रुषा	८. क्रोध से
उद्यान	२. उद्यान	आविष्टः	६. भरा हुआ बाणासुर
प्राकार	३. परकोटे	तुल्य	१०. समान (१२ अक्षौहिणी)
अट्टाल	४. बुर्ज और	सैन्यः	११. सेना के साथ
गोपुरम् ।	५. सिंहद्वारों को	अभिनिर्ययौ ॥	१२. नगर से निकल पड़ा

श्लोकार्थ—नगर के उद्यान, परकोटे बुर्ज और सिंहद्वारों को तोड़े जाते हुये देखकर क्रोध से भरा हुआ बाणासुर समान (१२ अक्षौहिणी) सेना के साथ नगर से निकल पड़ा ॥

षष्ठः श्लोकः

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥६॥

पदच्छेद— बाण अर्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैः वृतः ।
आरुह्य नन्दि वृषभम् युयुधे राम कृष्णयोः ॥

शब्दार्थ—

बाण अर्थे	१. बाणासुर के लिये	आरुह्य	६. सवार होकर
भगवान्	२. भगवान्	नन्दि	७. नन्दि
रुद्रः	३. शङ्कर	वृषभम्	८. बैल पर
ससुतैः	४. पुत्रों और	युयुधे	१२. युद्ध करने लगे
प्रमथैः	५. प्रमथ गणों के	राम	१०. बलराम और
वृतः ।	६. साथ	कृष्णयोः ॥	११. श्रीकृष्ण से

श्लोकार्थ—बाणासुर के लिये भगवान् शङ्कर पुत्रों और प्रमथ गणों के साथ नन्दी बैल पर सवार होकर बलराम और श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगे ॥

सप्तमः श्लोकः

आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशङ्करयो राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥७॥

पदच्छेद— आसीत् सुतुमुलम् युद्धम् अद्भुतम् रोम हर्षणम् ।
कृष्ण शङ्करयोः राजन् प्रद्युम्न गुहयोः अपि ॥

शब्दार्थ—

आसीत्	१२. हुआ	कृष्ण	२. श्रीकृष्ण और		
सुतुमुलम्	८. घमासान और	शङ्करयोः	३. शङ्कर में तथा		
युद्धम्	११. युद्ध	राजन्	१. हे राजन्		
अद्भुतम्	७. अद्भुत	प्रद्युम्न	४. प्रद्युम्न और		
रोम	९. रोमाञ्च	गुहयोः	५. कार्तिकेय में		
हर्षणम् ।	१०. कारी	अपि ॥	६. भी		

श्लोकार्थ—हे राजन् ! श्रीकृष्ण और शङ्कर में तथा प्रद्युम्न और कार्तिकेय में भी अद्भुत घमासान रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ ॥

अष्टमः श्लोकः

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

पदच्छेद— कुम्भाण्ड कूपकर्णाभ्याम् बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥

शब्दार्थ—

कुम्भाण्ड	१. कुम्भाण्ड और	साम्बस्य	५. साम्ब का
कूपकर्णाभ्याम्	२. कूपकर्ण का	बाण	६. बाणासुर के
बलेन	३. बलराम के	पुत्रेण	७. पुत्र के साथ और
सह	४. साथ	सह	९. साथ
संयुगः ।	११. युद्ध हुआ	सात्यकेः ॥	८. सात्यकि के

श्लोकार्थ—कुम्भाण्ड और कूपकर्ण का बलराम के साथ, साम्ब का बाणासुर के पुत्र के साथ और सात्यकि के साथ बाण का युद्ध हुआ ॥

नवमः श्लोकः

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥

पदच्छेद— ब्रह्म आदयः सुर अधीशाः मुनयः सिद्ध चारणाः ।
गन्धर्व अप्सरसः यक्षाः विमानैः द्रष्टुम् आगमन् ॥

शब्दार्थ—

ब्रह्म	१. ब्रह्मा	गन्धर्व	७. गन्धर्व
आदयः	२. आदि	अप्सरसः	८. अप्सरायें और
सुर अधीशाः	३. बड़े-बड़े देवता	यक्षाः	९. यक्ष
मुनयः	४. मुनि	विमानैः	१०. विमानों से युद्ध
सिद्ध	५. सिद्ध	द्रष्टुम्	११. देखने के लिये
चारणाः ।	६. चारण	आगमन् ॥	१२. आये

श्लोकार्थ—ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरायें और यक्ष विमानों से युद्ध देखने के लिये आये ॥

दशमः श्लोकः

शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान् सविनायकान् ॥१०॥

पदच्छेद— शङ्कर अनुचरान् शौरिः भूत प्रमथ गुह्यकान् ।
डाकिनीः यातुधानान् च वेतालान् स विनायकान् ॥

शब्दार्थ—

शङ्कर	२. शिव के	डाकिनीः	७. डाकिनी
अनुचरान्	३. अनुचरों	यातुधानान्	८. रक्षोगण
शौरिः	१. भगवान् श्रीकृष्ण ने	च	९. और
भूत	४. भूत	वेतालान्	१०. वेतालों के
प्रमथ	५. प्रमथगण	सः	११. साथ
गुह्यकान् ।	६. गुह्यक	विनायकान् ॥	१२. विनायकों को खदेड़ दिया

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने शिव के अनुचरों, भूत, प्रमथ गण, गुह्यक, डाकिनी, रक्षो गण, और वेतालों के साथ विनायकों को खदेड़ दिया ।

एकादशः श्लोकः

प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥११॥

पदच्छेद— प्रेत मातृ पिशाचान् च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुः च्युतैः ॥

शब्दार्थ—

प्रेत	१.	प्रेत गण	द्रावयामास	११.	खदेड़ दिया
मातृ	२.	मातृ गण	तीक्ष्णाग्रैः	९.	तीखी नोक वाले
पिशाचान्	३.	पिशाच	शरैः	१०.	बाणों से मार-मार कर
च	४.	और	शार्ङ्गधनुः	७.	शार्ङ्ग नामक धनुष से
कूष्माण्डान्	५.	कूष्माण्ड	च्युतैः ॥	८.	छूटे हुये
ब्रह्मराक्षसान् ।	६.	ब्रह्मराक्षसों को			

श्लोकार्थ—प्रेत गण, मातृ गण, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्म राक्षसों को शार्ङ्ग नामक धनुष से छूटे हुये तीखी नोक वाले बाणों से मार-मार कर खदेड़ दिया ॥

द्वादशः श्लोकः

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥

पदच्छेद— पृथक् विधानि प्रायुङ्क्त पिनाकी अस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिः अविस्मितः ॥

शब्दार्थ—

पृथक्	३.	विभिन्न	प्रति	९.	विरोधी
विधानि	४.	प्रकार के	अस्त्रैः	१०.	अस्त्रों से (उन्हें)
प्रायुङ्क्त	६.	प्रयोग किया	शमयामास	११.	शान्त कर दिया
पिनाकी	१.	शङ्कर जी ने	शार्ङ्गपाणिः	७.	भगवान् श्रीकृष्ण ने
अस्त्राणि	५	अस्त्रों का	अविस्मितः ॥	८.	बिना विस्मय के
शार्ङ्गिणे ।	२.	श्रीकृष्ण पर			

श्लोकार्थ—शङ्कर जी ने श्रीकृष्ण पर विभिन्न प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया । भगवान् श्रीकृष्ण ने बिना विस्मय के विरोधी अस्त्रों से उन्हें शान्त कर दिया ॥

त्रयोदशः श्लोकः

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥

पदच्छेद— ब्रह्म अस्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रम् वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यम् नैजम् पाशुपतस्य च ॥

शब्दार्थ—

ब्रह्म अस्त्रस्य	१.	श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्र के लिये	आग्नेयस्य	६.	आग्नेयास्त्र के लिये
च ब्रह्म अस्त्रम्	२	ब्रह्मास्त्र का और	च पार्जन्यम्	७.	पार्जन्यास्त्र का
वायव्यस्य	३.	पार्वतास्त्र के	नैजम्	१०.	नारायणास्त्र का प्रयोग किया
च	४	लिये	पाशुपतस्य	९.	पाशुपतास्त्र के लिये
पार्वतम् ।	५.	पार्वतास्त्र का	च ॥	८.	और

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र के लिये ब्रह्मास्त्र का और पार्वतास्त्र के लिये पार्वतास्त्र का, आग्नेयास्त्र के लिये पार्जन्यास्त्र का और पाशुपतास्त्र के लिये नारायणास्त्र का प्रयोग किया ॥

चतुर्दशः श्लोकः

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥१४॥

पदच्छेद— मोहयित्वा तु गिरिशम् जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनाम् शौरिः अघानअसि गदेषुभिः ॥

शब्दार्थ—

मोहयित्वा	५.	मोहित करके	पृतनाम्	११.	सेना को
तु गिरिशम्	४.	शङ्कर को	शौरिः	६.	भगवान् श्रीकृष्ण
जृम्भण	१.	जृम्भण	अघान	१२.	मारने लगे
अस्त्रेण	२.	अस्त्र से	असि	७.	तलवार
जृम्भितम् ।	३.	जम्भाई लेते हुये	गदा	८.	गदा और
बाणस्य	१०.	बाणासुर की	इषुभिः ॥	९.	बाणों से

श्लोकार्थ—जृम्भणास्त्र से जम्भाई लेते हुये शङ्कर को मोहित करके भगवान् श्रीकृष्ण ने तलवार, गदा और बाणों से बाणासुर की सेना को मारने लगे ॥

पञ्चदशः श्लोकः

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।
असृग् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद् रणात् ॥१५॥

पदच्छेद— स्कन्दः प्रद्युम्न बाणओघैः अर्द्यमानः समन्ततः ।
असृग् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिना अपाक्रमत् रणात् ।।

शब्दार्थ—

स्कन्दः	५. कार्तिकेय	असृक्	७. रक्त की धारा
प्रद्युम्न	१. प्रद्युम्न के	विमुञ्चन्	८. बहाते हुये
बाणओघैः	२. बाण-समूहों से	गात्रेभ्यः	६. अङ्गों से
अर्द्यमानः	४. पीड़ित होते हुये	शिखिना	६. मयूर द्वारा
समन्ततः ।	३. चारों ओर से	अपाक्रमत्	११. भाग निकले
		रणात् ।।	१०. रणभूमि से

श्लोकार्थ—प्रद्युम्न के बाण समूहों से चारों ओर से पीड़ित होते हुये कार्तिकेय अङ्गों से रक्त की धारा बहाते हुये मयूर द्वारा रणभूमि से भाग निकले ।।

षोडशः श्लोकः

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

पदच्छेद— कुम्भाण्डः कूपकर्णः च पेततुः मुसल अर्दितौ ।
दुद्रुवुः तत् अनीकानि हतनाथानि सर्वतः ।।

शब्दार्थ—

कुम्भाण्डः	१. कुम्भाण्ड	दुद्रुवुः	१२. भागने लगी
कूपकर्णः	३. कूपकर्ण (बलराम जी के)	तत्	७. उनकी
च	२. और	अनीकानि	८. सेनायें
पेततुः	६. गिर पड़े	हत	१०. मारे जाने पर
मुसल	४. मूसल से	नाथानि	६. सेनापति के
अर्दितौ ।	५. पीड़ित होने पर	सर्वतः ।।	११. चारों ओर

श्लोकार्थ—कुम्भाण्ड और कूपकर्ण बलराम जी के मूसल से पीड़ित होने पर गिर पड़े । उनकी सेनायें सेनापति के मारे जाने पर सब ओर भागने लगीं ।।

सप्तदशः श्लोकः

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ।
कृष्णमभ्यद्रवत् संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥१७॥

पदच्छेद— विशीर्यमाणम् स्वबलम् दृष्ट्वा बाणः अति अमर्षणः ।
कृष्णम् अभ्यद्रवत् संख्ये रथी हित्वा एव सात्यकिम् ॥

शब्दार्थ—

विशीर्यमाणम्	२.	मारी जाती हुई	कृष्णम्	१२.	श्रीकृष्ण की ओर
स्वबलम्	१.	अपनी सेना को	अभ्यद्रवत्	१३.	दौड़ पड़ा
दृष्ट्वा	३.	देख कर	संख्ये	७.	वह युद्ध में
बाणः	४.	बाणासुर	रथी	८.	रथ में बैठा हुआ
अति	५.	बहुत ही	हित्वा	११.	छोड़कर
अमर्षणः ।	६.	क्रुद्ध हुआ (तथा)	एव	९.	ही
			सात्यकिम् ॥	१०.	सात्यकि को

श्लोकार्थ—अपनी सेना को मारी जाती हुई देखकर बाणासुर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। तथा वह युद्ध में रथ में बैठा हुआ ही सात्यकि को छोडकर श्रीकृष्ण जी की ओर दौड़ पड़ा ॥

अष्टादशः श्लोकः

धनूंष्याकृष्य युगपद् बाणः पञ्चशतानि वै ।
एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥१८॥

पदच्छेद— धनूंषि आकृष्य युगपद् बाणः पञ्चशतानि च ।
एक-एकस्मिन् शरौ द्वौ-द्वौ सन्दधे रण दुर्मदः ॥

शब्दार्थ—

धनूंषि	७.	धनुष	एक-	१०.	एक
आकृष्य	८.	खींचकर	एकस्मिन्	११.	एक पर
युगपद्	४.	एक साथ ही	शरौ	१३.	बाण
बाणः	३.	बाणासुर ने	द्वौ-द्वौ	१२.	दो-दो
पञ्च	५.	पाँच	सन्दधे	१४.	चढ़ाये
शतानि	६.	सौ	रण	१.	रण से
च ।	९.	और	दुर्मदः ॥	२.	उन्मत्त

श्लोकार्थ—रण से उन्मत्त बाणासुर ने एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर और एक-एक पर दो-दो बाण चढ़ाये ॥

एकोनविंशः श्लोकः

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥१९॥

पदच्छेद— तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपत् हरिः ।
सारथिम् रथम् अश्वान् च हत्वा शङ्खम् अपूरयत् ॥

शब्दार्थ—

तानि	३. उन	सारथिम्	८. सारथि
चिच्छेद	६. काट डाला	रथम्	९. रथ एवम्
भगवान्	१. भगवान्	अश्वान्	१०. घोड़ों को
धनूंषि	४. धनुषों को	च	७. और
युगपत्	५. एक साथ	हत्वा शङ्खम्	११. विनष्ट करके शङ्ख
हरिः ।	२. श्रीकृष्ण ने	अपूरयत् ॥	१२. बजाया

श्लोकार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने उन धनुषों को एक साथ ही काट डाला। और सारथि, रथ एवम् घोड़ों को विनष्ट करके शङ्ख बजाया ॥

विंशः श्लोकः

तन्माता कोटरा नाम नग्न मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥

पदच्छेद— तत् माता कोटरा नाम नग्ना मुक्त शिरोरुहा ।
पुरः अवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राण रिरक्षया ॥

शब्दार्थ—

तत्	१. उसकी	पुरः	११. सामने
माता	३. माता	अवतस्थे	१२. खड़ी हो गई
कोटरानाम	२. कोटरा नाम की	कृष्णस्य	१०. श्रीकृष्ण के
नग्ना	९. नङ्गी होकर	पुत्र	४. पुत्र के
मुक्त	८. खोलकर	प्राण	५. प्राणों को
शिरोरुहा ।	७. बालों को	रिरक्षया ॥	६. बचाने की इच्छा से

श्लोकार्थ—उसकी कोटरा नाम की माता पुत्र के प्राणों को बचाने की इच्छा से बालों को खोलकर नङ्गी होकर श्रीकृष्ण के सामने खड़ी हो गई ॥

एकविंशः श्लोकः

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद् विरथश्छिन्नधन्वाविशत् पुरम् ॥२१॥

पदच्छेद— ततः तिर्यङ्मुखः नग्नाम् अनिरीक्षन् गदाग्रजः ।
बाणः च तावत् विरथः छिन्नधन्वा आविशत् पुरम् ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	बाणः च	७.	बाण भी
तिर्यङ्मुखः	५.	अपने मुँह को फेर लिया	तावत्	६.	तब तक
नग्नाम्	३.	नङ्गी कोटरा को	विरथः	९.	रथ होन हो जाने से
अनिरीक्षन्	४.	न देखते हुये	छिन्नधन्वा	८.	धनुष कट जाने तथा
गदअग्रजः ।	२.	भगवान् श्रीकृष्ण ने	आविशत्	११.	चला गया
			पुरम् ॥	१०.	नगर में

श्लोकार्थ—तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने नङ्गी कोटरा को न देखते हुये अपने मुँह को फेर लिया। तब तक बाण भी धनुष कट जाने तथा रथ होन हो जाने से नगर में चला गया ॥

द्वाविंशः श्लोकः

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ।
अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥२२॥

पदच्छेद— विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिराः त्रिपात् ।
अभ्यधावत दाशार्हम् दहन् इव दिशः दश ॥

शब्दार्थ—

विद्राविते	२.	भाग जाने पर	अभ्यधावत	१२.	दौड़ा
भूतगणे	१.	भूत-गणों के	दाशार्हम्	११.	श्रीकृष्ण की ओर
ज्वरः	६.	ज्वर	दहन्	१०.	जलाता हुआ
तु	३.	वह	इव	७.	मानों
त्रिशिराः	४.	तीन शिर और	दिशः	८.	दशों
त्रिपात् ।	५.	तीन पैर वाला	दश ॥	९.	दिशाओं को

श्लोकार्थ—भूत-गणों के भाग जाने पर वह तीन सिर और तीन पैर वाला ज्वर मानों दशों दिशाओं को जलाता हुआ श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥

पदच्छेद— अथ नारायणः देवः तम् दृष्ट्वा व्यसृजत् ज्वरम् ।
माहेश्वरः वैष्णवः च युयुधाते ज्वरौ उभौ ॥

शब्दार्थ—

अथ	१.	तदनन्तर	माहेश्वरः	८.	माहेश्वर
नारायणः	३.	नारायण ने	वैष्णवः	१०.	वैष्णव
देवः	२	भगवान्	च	९.	और
तम्	४	उसे	युयुधाते	१३.	आपस में लड़ने लगे
दृष्ट्वा	५.	देखकर	ज्वरौ	१२.	ज्वर
व्यसृजत्	७.	छोड़ा (अब)	उभौ ॥	११.	दोनों
ज्वरम् ।	६.	(अपना) ज्वर			

श्लोकार्थ—तदनन्तर भगवान् नारायण ने उसे देखकर अपना ज्वर छोड़ा। अब माहेश्वर और वैष्णव दोनों ज्वर आपस में लड़ने लगे ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥२४॥

पदच्छेद— माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वा अभयम् अन्यत्र भीतः माहेश्वरः ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशम् तुष्टाव प्रयत अञ्जलिः ॥

शब्दार्थ—

माहेश्वरः	३.	माहेश्वर ज्वर	माहेश्वरः	९.	माहेश्वर
समाक्रन्दन्	४.	अन्त में चिल्लाने लगा	ज्वरः ।	१०.	ज्वर
वैष्णवेन	१.	वैष्ण ज्वर के	शरणार्थी	१२.	शरण में गया और
बलार्दितः ।	२.	तेज से पीड़ित होकर	हृषीकेशम्	११.	श्रीकृष्ण की
अलब्ध्वा	७.	न देखकर	तुष्टाव	१५.	स्तुति करने लगा।
अभयम्	६.	त्राण	प्रयत	१३.	नम्रता पूर्वक
अन्यत्र	५.	कहीं भी	अञ्जलिः ॥	१४.	हाथ जोड़कर
भीतः	८.	भयभीत होकर			

श्लोकार्थ—वैष्णव ज्वर के तेज से पीड़ित होकर माहेश्वर ज्वर अन्त में चिल्लाने लगा। कहीं भी त्राण न देखकर भयभीत होकर माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण की शरण में गया, और नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

ज्वर उवाच—नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥२५॥

पदच्छेद— नमामि त्वा अनन्त शक्तिम् परेशम् सर्व आत्मानं केवलं ज्ञप्ति मात्रम् ।
विश्व उत्पत्ति स्थान संरोध हेतुम् यत्-तत् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम् प्रशान्तम् ॥

शब्दार्थ—

नमामि	१६.	प्रणाम करता हूँ	विश्व	७.	संसार की
त्वा	१५.	आपको मैं	उत्पत्ति	८.	उत्पत्ति
अनन्त	१.	अनन्त शक्ति वाले	स्थान संरोध	९.	स्थिति और संहार
शक्तिम्	२.	परमेश्वर	हेतुम्	१०.	कारण
परेशम्	३.	सबके	यत्-तत्	१४.	स्वरूप
आत्मानम्	४.	आत्मा	ब्रह्म	१३.	ब्रह्म
केवलम्	५.	अद्वितीय	ब्रह्मलिङ्गम्	१२.	श्रुतियों द्वारा वर्णित
ज्ञप्तिमात्रम् ।	६.	ज्ञान स्वरूप	प्रशान्तम् ॥	११.	समस्त विकारों से रहित

श्लोकार्थ—अनन्त शक्ति वाले, परमेश्वर, सबके आत्मा, अद्वितीय, ज्ञान स्वरूप, संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण समस्त विकारों से रहित, श्रुतियों द्वारा वर्णित, ब्रह्म स्वरूप, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥

षड्विंशः श्लोकः

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

पदच्छेद— कालः दैवं कर्म जीवः स्वभावः द्रव्यम् क्षेत्रम् प्राणः आत्मा विकारः ।
तत् सङ्घातः बीजरोह प्रवाहः त्वन्माया एषा तत् निषेधम् प्रपद्ये ॥

शब्दार्थ—

कालः	१.	काल	तत् सङ्घातः	८.	इन सब का लिङ्ग शरीर
दैवम् कर्म	२.	अदृष्ट कर्म	बीजरोह	९.	बीजाङ्कुर
जीवः	३.	जीव	प्रवाहः	१०	न्याय से, कर्म और उससे शरीर की उत्पत्ति
स्वभावः	४.	स्वभाव	त्वन्माया	११.	यह आपकी माया है
द्रव्यम् क्षेत्रम्	५.	सूक्ष्म भूत शरीर	एषा तत्	१२.	आप उस माया के
प्राणः आत्मा	६.	प्राण आत्मा	निषेधम्	१३.	निषेध की परम अवधि हैं
विकारः ।	७.	अहंकार, इन्द्रियाँ, पञ्चभूत	प्रपद्ये ॥	१४.	मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ

श्लोकार्थ—काल, अदृष्ट कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म भूत, प्राण, अहंकार, इन्द्रियाँ, पञ्चभूत, इन सबका लिङ्ग शरीर, बीजाङ्कुर न्याय से, कर्म और उससे शरीर की उत्पत्ति यह आपकी माया है। आप उस माया के निषेध की परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥

सप्तविंशः श्लोकः

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥

पदच्छेद— नानाभावैः लीलया एव उपपन्नैः देवान् साधून् लोक सेतून् बिभर्षि।
हंसि उन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मएतत् ते भारहाराय भूमेः॥

शब्दार्थ—

नाना	३.	अनेक प्रकार के	हंसि	१२.	संहार करते हैं
भावैः	४	रूपों से	उन्मार्गान्	९.	कुमार्ग गामी और
लीलया	१.	आप लीला से ही	हिंसया	१०.	हिंसा
एव उपपन्नैः	२.	बने हुये	वर्तमानान्	११.	करने वालों का
देवान्	५.	देवता	जन्म एतत्	१४.	यह अवतार
साधून्	६.	साधु तथा	ते	१३.	आपका
लोकसेतून्	७.	लोक मर्यादाओं को	भारहाराय	१६.	भार उतारने के लिये ही हुआ है
बिभर्षि।	८.	धारण तथा पोषण करते हैं	भूमेः॥	१५.	भूमि का

श्लोकार्थ—आप लीला से ही बने हुये अनेक प्रकार के रूपों से देवता, साधु तथा मर्यादाओं को धारण तथा पोषण करते हैं। कुमार्गगामी और हिंसा करने वालों का संहार करते है। आपका यह अवतार भूमि का भार उतारने के लिये ही हुआ है॥

अष्टाविंशः श्लोकः

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥

पदच्छेद— तप्तः अहम् ते तेजसा दुःसहेन शान्तः उग्रेण अति उल्बणेन ज्वरेण।
तावत् तापः देहिनाम् ते अङ्घ्रिमूलम् नो सेवेरन् यावत् आशा अनुबद्धाः॥

शब्दार्थ—

तप्तः	८.	तप गया हूँ	तावत्	१०.	तभी तक
अहम् ते	१.	मैं आपके	तापः	११.	ताप रहता है
तेजसा	७.	तेज से	देहिनाम्	९.	प्राणियों को
दुःसहेन	६.	असहनीय	ते अङ्घ्रिमूलम्	१४.	आपके चरणों के मूल का
शान्तः	२.	शान्त	नो	१६.	नहीं
उग्रेण	३.	उग्र और	सेवेरन्	१५.	सेवन करते हैं
अति उल्बणेन	४.	अत्यन्त भयानक	यावत्	१२.	जब तक वे
ज्वरेण।	५.	ज्वर के	आशा अनुबद्धाः॥	१३.	आशा में बँधे रहने से

श्लोकार्थ—मैं आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक ज्वर के असहनीय तेज से तप गया हूँ। प्राणियों को तभी तक ताप रहता है। जब तक वे आशा में बँधे रहने से आपके चरणों के मूल का सेवन नहीं करते हैं॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच—त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥२९॥

पदच्छेद— त्रिशिरः ते प्रसन्नः अस्मि व्येतु ते मज्ज्वरात् भयम् ।
यः नौ स्मरति संवादम् तस्य त्वत् न भवेत् भयम् ॥

शब्दार्थ—

त्रिशिरः ते	१.	हे त्रिशिरा ! मैं तुमसे	यः	७.	जो व्यक्ति
प्रसन्नः अस्मि	२.	प्रसन्न हूँ	नौ	८.	हम दोनों के
व्येतु	६.	दूर हो गया	स्मरति	१०.	स्मरण करेगा
ते	४.	तुम्हारा	संवादम् तस्य	९.	संवाद का उसे
मत् ज्वरात्	३.	मेरे ज्वर से	त्वत् न भवेत्	११.	तुमसे नहीं होगा
भयात् ।	५.	भय	भयम् ॥	१२.	भय

श्लोकार्थ—हे त्रिशिरा ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । मेरे ज्वर से तुम्हारा भय दूर हो जाय । जो व्यक्ति हम दोनों के संवाद का स्मरण करेगा, उसे तुम से भय नहीं होगा ।

त्रिंशः श्लोकः

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥३०॥

पदच्छेद— इति उक्तः अच्युतम् आनम्य गतः माहेश्वरः ज्वरः ।
बाणः तु रथम् आरूढः प्रागात् योत्स्यन् जनार्दनम् ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	इतना	बाणः	८.	बाणासुर
उक्तः	२.	कहा जाने पर	तु	१३.	पुनः
अच्युतम्	५.	श्रीकृष्ण को	रथम्	९.	रथ पर
आनम्य	६.	प्रणाम करके	आरूढः	१०.	सवार होकर
माहेश्वरः	३.	माहेश्वर	प्रागात्	१४.	आ गया
गतः	७.	चला गया	योत्स्यन्	१२.	युद्ध करने के लिये
ज्वरः ।	४.	ज्वर	जनार्दनम् ॥	११.	श्रीकृष्ण से

श्लोकार्थ—इतना कहा जाने पर माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण को प्रणाम करके चला गया । बाणासुर रथ पर सवार होकर श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये पुनः आ गया ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥

पदच्छेद— ततः बाहु सहस्रेण नाना आयुध धरः असुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धः बाणान् चक्र आयुधे नृप ॥

शब्दार्थ—

ततः	२.	तदनन्तर	मुमोच	१४.	छोड़ने लगा
बाहु	४.	बाँहों में	परम	९.	अत्यन्त
सहस्रेण	३.	हजार	क्रुद्धः	१०.	कुपित होकर
नाना	५.	अनेक प्रकार के	बाणान्	११.	बाणों को
आयुध	६.	अस्त्र-शस्त्र	चक्र	१२.	चक्र
धरः	७.	धारण करने वाले	आयुधे	१३.	पाणि भगवान् पर
असुरः ।	८.	असुर ने	नृप ॥	१.	हे राजन् !

श्लोकार्थ—हे राजन् ! तदनन्तर हजार बाँहों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करने वाले असुर अत्यन्त कुपित होकर बाणों को चक्रपाणि भगवान् पर छोड़ने लगा ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

पदच्छेद— तस्य अस्यतः अस्त्राणि असकृत् चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥

शब्दार्थ—

तस्य	४.	उसकी	चिच्छेद	९.	उसी प्रकार काटने लगे
अस्यतः	३.	छोड़ते हुये	भगवान्	६.	भगवान् श्रीकृष्ण
अस्त्राणि	२.	अस्त्रों को	बाहून्	५.	भुजाओं को
असकृत्	१.	बार-बार	शाखा	१२.	डालियों को काट रहा हो
चक्रेण	८.	चक्र से	इव	१०.	जैसे कोई
क्षुरनेमिना ।	७.	छुरे के समान धार वाले	वनस्पतेः ॥	११.	वृक्ष की

श्लोकार्थ— बार-बार अस्त्रों को छोड़ते हुये उसकी भुजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण छुरे के समान धार वाले चक्र से उसी प्रकार काटने लगे जैसे कोई वृक्ष की डालियों को काट रहा हो ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

बाहुषुच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ।
भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥३३॥

पदच्छेद— बाहुषु छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ।
भक्त अनुकम्पी उपव्रज्य चक्र आयुधम् अभाषत ॥

शब्दार्थ—

बाहुषु	३.	बाँहों को (देखकर)	भक्त अनुकम्पी	४.	भक्तों पर दया करने वाले
छिद्यमानेषु	२.	कटती हुई	उपव्रज्य	९.	पास आकर
बाणस्य	१.	बाण की	चक्र	७.	चक्र
भगवान्	५.	भगवान्	आयुधम्	८.	अस्त्र वाले श्रीकृष्ण के
भवः ।	६.	शङ्कर	अभाषत ।	१०.	बोले

श्लोकार्थ—बाण की कटती हुई बाँहों को देखकर भक्तों पर दया करने वाले भगवान् शङ्कर चक्र अस्त्र वाले श्रीकृष्ण के पास आकर बोले ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

श्रीरुद्र उवाच—त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥३४॥

पदच्छेद— त्वम् हि ब्रह्म परम् ज्योतिः गूढम् ब्रह्मणि वाङ्मये ।
पश्यन्ति अमल आत्मानः आकाशम् इव केवलम् ॥

शब्दार्थ—

त्वम् हि	१.	आप ही	यम्	७.	जिन्हें
ब्रह्म	६.	ब्रह्म	पश्यन्ति	१२.	देखते हैं
परम् ज्योतिः	५.	परम ज्योतिः स्वरूप	अमल	८.	निर्मल
गूढम्	४	छिपे हुये	आत्मनः	९.	अन्तः करण वाले (योगी)
ब्रह्मणि	३.	वेद में	आकाशम्	१०.	आकाश के
वाङ्मये ।	२.	वाणीमय	इव केवलम् ॥	११.	समान निर्विकार और निर्लेप

श्लोकार्थ—आप ही वाणीमय वेद में छिपे हुये परम ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म हैं। जिन्हें निर्मल अन्तः करण वाले योगी आकाश के समान निर्विकार और निर्लेप देखते हैं ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥३५॥

पदच्छेद—नाभिः नभः अग्निः मुखम् अम्बु रेतः द्यौः शीर्षम् आशा श्रुतिः अङ्घ्रिः उर्वी ।
चन्द्रः मनः यस्य दृक् अर्कः आत्मा अहम् समुद्रः जठरम् भुजेन्द्रः ॥

शब्दार्थ—

नाभिः	२. नाभि है	चन्द्रः मनः	९. चन्द्रमा मन और
नभः	१. आकाश आपकी	यस्य	११. जिन आपका
अग्निमुखम्	३. अग्नि मुख है	दृक् अर्कः	१०. सूर्य नेत्र हैं
अम्बुरेतः	४. जल वीर्य है	आत्मा	१२. अहंकार
द्यौः शीर्षम्	५. स्वर्ग सिर	अहम्	१३. मैं (शिव)
आशा	६. दिशायें	समुद्रः	१४. समुद्र
श्रुतिः	७. कान हैं और	जठरम्	१५. पेट और
अङ्घ्रिः उर्वी ।	८. पृथ्वी चरण हैं	भुजेन्द्रः ॥	१६. भुजायें इन्द्र हैं

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! आकाश आपकी नाभि है। अग्नि मुख है, जलवीर्य है, स्वर्ग सिर है, दिशायें कान है और पृथ्वी चरण है। चन्द्रमा मन और सूर्य नेत्र हैं। जिन आपका अहंकार मैं शिव, समुद्र पेट और भुजायें इन्द्र हैं॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥३६॥

पदच्छेद— रोमाणि यस्य ओषधयः अम्बु वाहाः केशाः विरिञ्चः धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिः हृदयम् यस्य धर्मः सः वै भवान् पुरुषः लोक कल्पः ॥

शब्दार्थ—

रोमाणि	३. रोम हैं	प्रजापतिः	८. प्रजापति
यस्य	२. जिनके	हृदयम्	१२. हृदय है
ओषधयः	१. ओषधियाँ	यस्य	११. जिनका
अम्बुवाहाः	४. मेघ	धर्मः	१०. धर्म
केशाः	५. केश हैं	सः वै	१३. वे ही
विरिञ्चः	६. ब्रह्मा	भवान्	१६. आप हैं
धिषणा	७. बुद्धि है	पुरुषः	१५. पुरुष
विसर्गः ।	९. लिङ्ग और	लोक कल्पः ॥	१४. सम्पूर्ण लोक के समान

श्लोकार्थ—ओषधियाँ जिनके रोम हैं। मेघ केश हैं, ब्रह्मा बुद्धि है; प्रजापति लिङ्ग और धर्म जिनका हृदय है। वे ही सम्पूर्ण लोक के समान पुरुष आप हैं॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

पदच्छेद— तव अवतारः अयम् अकुण्ठ धामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतः भवाय ।
वयम् च सर्वे भवता अनुभाविताः विभावयामः भुवनानि सप्त ॥

शब्दार्थ—

तव	३.	आपका	वयम्	९.	हम
अवतारः	५.	अवतार	च	११.	भी
अयम्	४.	यह	सर्वे	१०.	सब
अकुण्ठ	१.	अखण्ड	भवता	१२.	आपसे
धामन्	२.	ज्योतिः स्वरूप	अनुभाविताः	१३.	प्रभावित होकर
धर्मस्य गुप्त्यै	६.	धर्म की रक्षा और	विभावयामः	१६.	पालन करते हैं
जगतः	७.	संसार की	भुवनानि	१५.	भुवनों का
भवाय ।	८.	अभिवृद्धि के लिये है	सप्त ॥	१४.	सातों

श्लोकार्थ—अखण्ड ज्योतिः स्वरूप आपका यह अवतार धर्म की रक्षा और संसार की अभिवृद्धि के लिये है । हम सब भी आपसे प्रभावित होकर सातों भुवनों का पालन करते हैं ॥

अष्टात्रिंशः श्लोकः

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥

पदच्छेद— त्वम् एकः आद्यः पुरुषः अद्वितीयः तुर्यः स्वदृक् हेतुः अहेतुः ईशः ।
प्रतीयसे अथापि यथा विकारम् स्वमायया सर्व गुण प्रसिद्ध्यै ॥

शब्दार्थ—

त्वम् एकः	१.	आप एक और	प्रतीयसे	१४.	प्रतीत होते हैं
आद्यः पुरुषः	२.	आदि पुरुष	अथापि	८.	तो भी
अद्वितीयः तुर्यः	३.	अद्वितीय तुरीय तत्त्व	यथा	१३.	अनुसार
स्वदृक्	४.	स्वयं प्रकाश	विकारम्	१२.	विकार के
हेतुः	५.	सबके कारण	स्वमायया	११.	अपनी माया से
अहेतुः	६.	हेतु रहित और	सर्वगुण	९.	तीनों गुणों को
ईशः ।	७.	ईश्वर हैं	प्रसिद्ध्यै ॥	१०.	प्रकाशित करने के लिये

श्लोकार्थ— आप एक और आदि पुरुष, अद्वितीय, तुरीय तत्त्व, स्वयं प्रकाश, सबके कारण, हेतु रहित और ईश्वर हैं । तो भी तीनों गुणों को प्रकाशित करने के लिये अपनी माया से विकार के अनुसार प्रतीत होते हैं ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥

पदच्छेद— यथैव सूर्यः पिहितः छायया स्वया छायाम् च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एवम् गुणेन अपिहितः गुणान् त्वम् आत्म प्रदीपः गुणिनः च भूमन् ॥

शब्दार्थ—

यथैव	२.	जैसे	एवम्	१०.	उसी प्रकार
सूर्यः	३.	सूर्य	गुणेन	११.	गुणों
पिहितः	६.	ढक जाता है	अपिहितः	१२.	ढके हुये
छायया	५.	छाया (बादल) से	गुणान्	१५.	गुणों
स्वया	४.	अपनी	त्वम्	१४.	आप
छायाम् च	७.	और बादल	आत्म प्रदीपः	१३.	स्वयं प्रकाश
रूपाणि च	८.	रूपों को	गुणिनः च	१६.	और गुणियों को (प्रकाशित करते हैं)
सञ्चकास्ति ।	९.	प्रकाशित करता है	भूमन् ॥	१.	हे प्रभो !

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादल से ढक जाता है और रूपों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार गुणों से ढके हुये स्वयं प्रकाश आप गुणों और गुणियों को प्रकाशित करते हैं ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

पदच्छेद— यत् माया मोहित धियः पुत्र दार गृह आदिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ताः वृजिन अर्णवे ॥

शब्दार्थ—

यत् माया	१.	जिनकी माया से	उन्मज्जन्ति	९.	डूबने
मोहित	२.	मोहित	निमज्जन्ति	१०.	उतराने लगते हैं
धियः	३.	बुद्धि वाले (मनुष्य)	प्रसक्ताः	६.	आसक्त होकर
पुत्र-दार	४.	पुत्र, स्त्री	वृजिन	७.	दुःख के
गृह आदिषु ।	५.	घर आदि में	अर्णवे ॥	८.	सागर में

श्लोकार्थ—जिनकी माया से मोहित बुद्धि वाले मनुष्य पुत्र, स्त्री, घर आदि में आसक्त होकर होकर दुःख के सागर में डूबने उतराने लगते हैं ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥४१॥

पदच्छेद— देव दत्तम् इमम् लब्ध्वा नृलोकम् अजितेन्द्रियः।
यः न आद्रियेत त्वत् पादौ स शोच्यः हि आत्मवञ्चकः ॥

शब्दार्थ—

देव दत्तम्	१.	हे देव ! आपके दिये हुये	न	८.	नहीं
इमम्	२.	इस	आद्रियेत	९.	आदर करता है
लब्ध्वा	४.	पाकर	त्वत् पादौ	७.	आपके चरणों का
नृलोकम्	३.	मनुष्य लोक को	स	१०.	वह
अजितेन्द्रियः।	६.	अजितेन्द्रिय पुरुष	शोच्यः हि	११.	शोचनीय है तथा
यः	५.	जो	आत्मवञ्चकः ॥	१२.	अपने को धोखा देता है

श्लोकार्थ—हे देव ! आपके दिये हुये इस मनुष्य-लोक को पाकर जो अजितेन्द्रिय पुरुष आपके चरणों का आदर नहीं करता है, वह शोचनीय है तथा अपने को धोखा दे रहा है ॥

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

पदच्छेद— यः त्वाम् विसृजते मर्त्यः आत्मानम् प्रियम् ईश्वरम्।
विपर्यय इन्द्रिय अर्थ अर्थम् विषम् अत्ति अमृतम् त्यजन् ॥

शब्दार्थ—

यः	१.	जो	विपर्यय	७.	विपरीत
त्वाम्	९.	आपको	इन्द्रिय अर्थ	६.	विषय के
विसृजते	१०.	छोड़ देता है (वह)	अर्थम्	८.	तत्त्व
मर्त्यः	२.	मनुष्य	विषम् अत्ति	१२.	विष खाता है
आत्मानम्	३.	आत्मा	अमृतम्	११.	अमृत को
प्रियम्	४.	प्रिय	त्यजन् ॥	१[illegible].	त्याग कर
ईश्वरम्।	५.	ईश्वर और			

श्लोकार्थ—जो मनुष्य, आत्मा, प्रिय, ईश्वर और विषय के विपरीत तत्त्व आपको छोड़ देता है, वह अमृत को त्याग कर विष खाता है ॥

त्रिचत्वारिंशः श्लोकः

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥४३॥

पदच्छेद— अहम् ब्रह्मा अथ विबुधा मुनयः च अमल आशयाः ।
सर्व आत्मना प्रपन्नाः त्वाम् आत्मानम् प्रेष्ठम् ईश्वरम् ॥

शब्दार्थ—

अहम्	१. मैं	**सर्व**	१२. सब
ब्रह्मा	२. ब्रह्मा	**आत्मना**	१३. प्रकार से
अथ	३. और	**प्रपन्नाः**	१४. शरणागत हैं
विबुधाः	४. देवता	**त्वाम्**	११. आपके
मुनयः	७. मुनि	**आत्मानम्**	८. सबके आत्मा
च अमल	५. एवम् निर्मल	**प्रेष्ठम्**	९. अत्यन्त प्रिय और
आशयाः ।	६. चित्त वाले	**ईश्वरम् ॥**	१०. ईश्वर

श्लोकार्थ—मैं, ब्रह्मा और देवता एवम् निर्मल चित्त वाले मुनि सबके आत्मा अत्यन्त प्रिय और ईश्वर आपके सब प्रकार से शरणागत हैं ॥

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

पदच्छेद— तम् त्वा जगत् स्थिति उदय अन्त हेतुम् समम् प्रशान्तम् सुहृद् आत्म दैवम् ।
अनन्यम् एकम् जगत् आत्म केतम् भव अपवर्गाय भजाम देवम् ॥

शब्दार्थ—

तम् त्वा	३. हम उन आप	**अनन्यम्**	१२. अद्वितीय
जगत् स्थिति	५. संसार की स्थिति	**एकम्**	१३. एक
उदय	६. उत्पत्ति और	**जगत्**	१४. जगत् के
अन्त	७. प्रलय के	**आत्म**	१५. आधार तथा
हेतुम् समम्	८. कारण सम	**केतम्**	१६. अधिष्ठान हैं
प्रशान्तम्	९. परम शान्त	**भव**	१. संसार से
सुहृद्	१०. सुहृद्	**अपवर्गाय**	२. मुक्त होने के लिये
आत्म दैवम् ।	११. आत्मा, इष्ट देव	**भजाम देवम् ॥**	४. देव का भजन करें (जो)

श्लोकार्थ—संसार से मुक्त होने के लिये हम उन आप देव का भजन करते हैं, जो संसार की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय के कारण सम, परम शान्त, सुहृद्, आत्मा, इष्टदेव, अद्वितीय, एक, जगत् के आधार तथा अधिष्ठान हैं ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाभयं दत्तममुष्य देव।
सम्पाद्यतां तद् भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

पदच्छेद— अयम् मम इष्टः दयितः अनुवर्ती मया अभयम् दत्तम् अमुष्य देव।
सम्पाद्यताम् तद् भवतः प्रसादः यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥

शब्दार्थ—

अयम्	२.	यह (बाणासुर)	सम्पाद्यताम्	१६.	कीजिये
मम इष्टः	३.	मेरा अभीष्ट	तद्	८.	इसलिये
दयितः	४.	प्रिय और	भवतः	१४.	(वैसा इस पर भी) अपना
अनुवर्ती	५.	आज्ञाकारी है	प्रसादः	१५.	कृपा प्रसाद
मया अभयम्	७.	मैंने अभयदान	यथा	१०.	जैसा
दत्तम्	८.	दिया है	हि ते	११.	आपका
अमुष्य	६.	इसे	दैत्यपतौ	१२.	दैत्यराज (प्रह्लाद) पर
देव।	१.	हे देव !	प्रसादः ॥	१३.	कृपाप्रसाद है

श्लोकार्थ—हे देव ! यह बाणासुर मेरा अभीष्ट, प्रिय और आज्ञाकारी है। इसे मैंने अभयदान दिया है। इसलिये जैसा आपका दैत्यराज प्रह्लाद पर कृपाप्रसाद है वैसा इस पर भी कृपाप्रसाद कीजिये॥

षट्चत्वारिंशः श्लोकः

श्रीभगवानुवाच—यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव।
भवतो यद् व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥

पदच्छेद— यत् आत्थ भगवन् त्वम् नः करवाम प्रियम् तव।
भवतः यत् व्यवसितम् तत् मे साधु अनुमोदितम् ॥

शब्दार्थ—

यत् आत्थ	३.	जो कहा है	भवतः	७.	आपका
भगवन्	१.	हे भगवन् !	यत्	८.	जो
त्वम् नः	२.	आपने हमसे	व्यवसितम्	९.	निश्चय था
करवाम	६.	करेंगे	तत् मे	१०	उसका मैंने
प्रियम्	४.	वह प्रिय	साधु	११.	अच्छी तरह
तव।	५.	आपका	अनुमोदितम् ॥	१२.	अनुमोदन कर दिया है

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! आपने हमसे जो कहा है वह प्रिय आपका करेंगे। आपका जो निश्चय था, उसका मैंने अच्छी तरह अनुमोदन कर दिया है॥

सप्तचत्वारिंशः श्लोकः

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४७॥

पदच्छेद— अवध्यः अयम् मम अपि एषः वैरोचनि सुतः असुरः ।
प्रह्लादाय वरः दत्तः न वध्यः मे तव अन्वयः ॥

शब्दार्थ—

अवध्यः	७. न मारने योग्य है क्योंकि)	प्रह्लादाय	८. मैंने प्रह्लाद को
अयम्	४. यह	वरः	९. वर
मम	५. मेरे लिये	दत्तः	१०. दिया था कि
अपि	६. भी	न	१३. नहीं
एषः	१. यह	वध्यः	१४ मारूँगा
वैरोचनिसुतः	२. बलिका पुत्र	मे तव	११. मैं तुम्हारे
असुरः ।	३. बाणासुर है	अन्वयः ॥	१२. वंशज को

श्लोकार्थ—यह बलि का पुत्र बाणासुर है। यह मेरे लिये भी न मारने योग्य है। क्योंकि मैंने प्रह्लाद को वर दिया था कि मैं तुम्हारे वंशज को नहीं मारूँगा ॥

अष्टचत्वारिंशः श्लोकः

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥

पदच्छेद— दर्पः उपशमनाय अस्य प्रवृक्णाः बाहवः मया ।
सूदितम् च बलम् भूरि यत् च भारायितम् भुवः ॥

शब्दार्थ—

दर्पः	१. इसके अभिमान को	सूदितम्	१०. संहार कर दिया है
उपशमनाय	२. चूर करने के लिये	च	७. और
अस्य	४. इसकी	बलम्	९. इसकी सेना का
प्रवृक्णाः	६. काट दिया है	भूरि	८. बहुत बड़ी
बाहवः	५. भुजाओं को	यत् च	११. जो
मया ।	३. मैंने	भारायितम्	१४. भार बनी हुई थी
		भुवः ॥	१३. पृथ्वी के लिये

श्लोकार्थ—इसके अभिमान को चूर करने के लिये मैंने इसकी भुजाओं को काट दिया है। और इसकी बहुत बड़ी सेना का संहार कर दिया है जो पृथ्वी के लिये भार बनी हुई थी ॥

एकोनपञ्चाशत्तमः श्लोकः

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ।
पार्षदमुख्यो भवतो नकुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥४९॥

पदच्छेद— चत्वारःअस्य भुजाः शिष्टाः भविष्यन्ति अजर अमराः ।
पार्षदमुख्यः भवतः न कुतः चिद्भयः असुरः ॥

शब्दार्थ—

चत्वारः	३.	चार	पार्षद	९.	पार्षदों में
अस्य	१.	इसकी	मुख्यः	१०.	मुख्य होगा
भुजाः	४.	भुजायें	भवतः	८.	यह आपके
शिष्टाः	२.	शेष	न	१४.	नहीं है
भविष्यन्ति	७.	हो जावेंगी	कुतः चिद्	१२.	कहीं से भी
अजर	५.	अजर और	भयः	१३.	भय
अमराः ।	६.	अमर	असुरः ॥	११.	इस असुर को

श्लोकार्थ—इसकी शेष चार भुजायें अजर और अमर हो जावेंगी । यह आपके पार्षदों में मुख्य होगा । इस असुर को कहीं से भी भय नहीं है ॥

पञ्चाशत्तमः श्लोकः

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥५०॥

पदच्छेद— इति लब्ध्वा अभयम् कृष्णम् प्रणम्य शिरसा असुरः ।
प्राद्युम्निम् रथम् आरोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	इस प्रकार	असुरः ।	४.	बाणासुर
लब्ध्वा	३.	पाकर	प्राद्युम्निम्	८.	अनिरुद्ध का
अभयम्	२.	अभयदान	रथम्	१०.	रथ पर
कृष्णम्	५.	श्रीकृष्ण को	आरोप्य	११.	बैठाकर
प्रणम्य	७.	प्रणाम करके	सवध्वा	९.	वधू (ऊषा) के साथ
शिरसा	६.	सिर से	समुपानयत् ॥	१२.	ले आया

श्लोकार्थ— इस प्रकार अभय दान पाकर बाणासुर श्रीकृष्ण को सिर से प्रणाम करके अनिरुद्ध को वधू ऊषा के साथ रथ पर बैठाकर ले आया ॥

एकपञ्चाशत्तमः श्लोकः

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलङ्कृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥

पदच्छेद— अक्षौहिण्या परिवृतम् सुवासः सम् अलङ्कृतम् ।
सपत्नीकम् पुरस्कृत्य ययौ रुद्र अनुमोदितः ॥

शब्दार्थ—

अक्षौहिण्या	७.	एक अक्षौहिणी सेना	सपत्नीकम्	६.	पत्नी सहित अनिरुद्ध को
परिवृतम्	८.	के साथ	पुरस्कृत्य	९.	आगे करके
सुवासः	३.	सुन्दर वस्त्र और	ययौ	१०.	(श्रीकृष्ण ने) प्रस्थान किया
सम्	५.	युक्त	रुद्र	१.	महादेव से
अलङ्कृतम् ।	४.	आभूषणों से	अनुमोदितः ॥	२.	सम्मति लेकर

श्लोकार्थ—महादेव से सम्मति लेकर सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त पत्नी सहित अनिरुद्ध को एक अक्षौहिणी सेना के साथ आगे करके श्रीकृष्ण ने प्रस्थान किया ॥

द्विपञ्चाशत्तमः श्लोकः

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥५२॥

पदच्छेद— स्व राजधानीम् सम् अलङ्कृताम् ध्वजैः सतोरणैः उक्षित मार्ग चत्वराम् ।
विवेश शङ्ख आनकदुन्दुभि स्वनैः अभिउद्यतः पौर सुहृद्द्विजातिभिः ॥

शब्दार्थ—

स्व	१४.	अपनी	विवेश	१६.	प्रवेश किया
राजधानीम्	१५.	राजधानी में	शङ्ख	१.	शङ्खों और
सम् अलङ्कृतम्	१०.	सुसज्जित तथा	आनकदुन्दुभिः	२.	ढोलों की
ध्वजैः	८.	झंडियों और	स्वनैः	३.	ध्वनियों के साथ
सतोरणैः	९.	तोरणों से	अभिउद्यतः	७.	अगवानी किये जाते हुये (श्रीकृष्ण ने)
उक्षित	११.	सींचे गये	पौर	४.	पुरजनवासियों
मार्ग	१२.	मार्गों और	सुहृद्	५.	मित्रों और
चत्वराम् ।	१३.	चौराहों वाली	द्विजातिभिः ॥	६.	ब्राह्मणों के द्वारा

श्लोकार्थ—शङ्खों और ढोलों की ध्वनियों के साथ पुरजनवासियों, मित्रों, और ब्राह्मणों के द्वारा अगवानी किये जाते हुये श्रीकृष्ण ने झंडियों और तोरणों से सुसज्जित तथा सींचे गये मार्गों और चौराहों वाली अपनी राजधानी में प्रवेश किया ॥

त्रिपञ्चाशत्तमः श्लोकः

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् ।
संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥५३॥

पदच्छेद—

यः एवम् कृष्ण विजयम् शङ्करेण च संयुगम् ।
संस्मरेत् प्रातः उत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥

शब्दार्थ—

यः	१. जो	संस्मरेत्	९. स्मरण करता है
एवम्	२. इस प्रकार	प्रातः	७. प्रातःकाल
कृष्ण	४. श्रीकृष्ण के	उत्थाय	८. उठकर
विजयम्	६. विजय की (कथा का)	न तस्य	१०. उसकी नहीं
शङ्करेण	३. शङ्कर जी के साथ	स्यात्	१२. होती है
च संयुगम् ।	५. युद्ध और	पराजयः ॥	११. पराजय कहीं भी

श्लोकार्थ—

जो इस प्रकार शङ्कर जी के साथ श्रीकृष्ण के विजय की कथा का प्रातःकाल स्मरण करता है उसकी कहीं भी पराजय नहीं होती है ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धानयनं
नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

चतुःषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥१॥

पदच्छेद— एकदा उपवनम् राजन् जग्मुः यदु कुमारकाः ।
विहर्तुम् साम्ब प्रद्युम्न चारु भानु गद आदयः ॥

शब्दार्थ—

एकदा	२.	एक बार	विहर्तुम्	१०.	घूमने के लिये
उपवनम्	११.	उपवन में	साम्ब	३.	साम्ब
राजन्	१.	हे राजन् !	प्रद्युम्न	४.	प्रद्युम्न
जग्मुः	१२.	गये	चारु भानु	५.	चारु-भानु
यदु	८.	यदुवंशी	गद	६.	गद
कुमारकाः ।	९.	कुमार	आदयः ॥	७.	आदि

श्लोकार्थ—हे राजन् ! एक बार साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद, आदि यदुवंशी कुमार घूमने के लिये उपवन में गये ॥

द्वितीयः श्लोकः

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।
जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥२॥

पदच्छेद— क्रीडित्वा सुचिरम् तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।
जलम् निःउदके कूपे ददृशुः सत्त्वम् अद्भुतम् ॥

शब्दार्थ—

क्रीडित्वा	३.	क्रीडा करके	जलम्	५.	जल
सुचिरम्	२.	बहुत समय तक	निःउदके	७.	एक जल रहित
तत्र	१.	वहाँ पर	कूपे	८.	कुयें में
विचिन्वन्तः	६.	ढूंढते हुये उन्होंने	ददृशुः	११.	देखा
पिपासिताः ।	४.	प्यासे होने पर	सत्त्वम्	१०.	जीव को
			अद्भुतम् ॥	९.	अलौकिक

श्लोकार्थ—वहाँ पर बहुत समय तक क्रीडा करके प्यासे होने पर जल ढूंढते हुये उन्होंने एक जल रहित कुयें में अलौकिक जीव को देखा ॥

तृतीयः श्लोकः

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ।
तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥३॥

पदच्छेद— कृकलासम् गिरिनिभम् वीक्ष्य विस्मित मानसाः ।
तस्य च उद्धरणे यत्नम् चक्रुः ते कृपया अन्विताः ॥

शब्दार्थ—

कृकलासम्	३. गिरगिट को	तस्य च	१०. उसके
गिरि	१. पर्वत के	उद्धरणे	११. उद्धार के लिये
निभम्	२. समान आकार के एक	यत्नम्	१२. प्रयत्न
वीक्ष्य	४. देखकर	चक्रुः ते	७. वे लोग करने लगे
विस्मित	५. आश्चर्य चकित	कृपया	८. दया के
मानसाः ।	६. चित्त होकर	अन्विताः ॥	९. वश होकर

श्लोकार्थ—पर्वत के समान आकार के एक गिरगिट को देखकर आश्चर्य चकित चित्त होकर वे लोग दया के वश होकर उसके उद्धार के लिये प्रयत्न करने लगे।

चतुर्थः श्लोकः

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ।
नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥४॥

पदच्छेद— चर्मजैः तान्तवैः पाशैः बद्ध्वा पतितम् अर्भकाः ।
न अशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णाय आचख्युः उत्सुकाः ॥

शब्दार्थ—

चर्मजैः	३. चमड़े और	न	७. नहीं
तान्तवैः	४. सूत की	अशक्नुवन्	९. सके (तब)
पाशैः	५. रस्सियों से	समुद्धर्तुं	८. निकाल
बद्ध्वा	६. बाँधकर	कृष्णाय	१० श्रीकृष्ण के पास जाकर
पतितम्	२. गिरे हुये (गिरगिट को)	आचख्युः	१२. निवेदन किया
अर्भकाः ।	१. जब बालक गण (कुयें में)	उत्सुकाः ॥	११. कौतूहल पूर्वक

श्लोकार्थ—जब बालक गण कुयें में गिरे हुये गिरगिट को चमड़े और सूत की रस्सियों से बाँध कर नहीं निकाल सके तब श्रीकृष्ण के पास जाकर कौतूहल पूर्वक निवेदन किया ॥

पञ्चमः श्लोकः

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः ।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥५॥

पदच्छेद— तत्र आगत्य अरविन्दाक्षः भगवान् विश्व भावनः ।
वीक्ष्य उज्जहार वामेन तम् करेण सः लीलया ॥

शब्दार्थ—

तत्र	६. वहाँ	वीक्ष्य	८. देखकर
आगत्य	७. आकर	उज्जहार	१३. बाहर निकाल लिया
अरविन्दाक्षः	३. कमल नयन	वामेन	१०. बायें
भगवान्	४. भगवान्	तम्	८. उसे
विश्व	१. संसार के	करेण	११. हाथ से
भावनः ।	२. जीवन दाता	सः	५. श्रीकृष्ण ने
		लीलया ॥	१२. लीला पूर्वक

श्लोकार्थ—संसार के जीवनदाता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ आकर उसे देखकर बायें हाथ से लीला पूर्वक बाहर निकाल लिया ॥

षष्ठः श्लोकः

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥६॥

पदच्छेद— सः उत्तमश्लोक कर अभिमृष्टः विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
सन्तप्त चामीकर चारुवर्णः स्वर्गी अद्भुत अलङ्करण अम्बर स्रक् ॥

शब्दार्थ—

सः	१. वह	सन्तप्त	८. तपाये हुये
उत्तमश्लोक	२. भगवान् श्रीकृष्ण का	चामीकर	९. सोने के समान
करअभिमृष्टः	३. स्पर्श होते ही	चारुवर्णः	१०. सुन्दर वर्ण
विहाय	७. त्याग कर	स्वर्गी	११. दिव्य एवम्
सद्यः	४. तत्काल	अद्भुत	१२ अद्भुत
कृकलास	५. गिरगिट का	अलङ्करण	१३. आभूषणों
रूपम् ।	६. स्वरूप	अम्बर	१४. वस्त्र और
		स्रक् ॥	१५. पुष्पों के हारों से शोभित हो गया

श्लोकार्थ—वह भगवान् श्रीकृष्ण का स्पर्श होते ही तत्काल गिरगिट का स्वरूप त्याग कर तपाये हुये सोने के समान सुन्दर वर्ण, दिव्य एवम् अद्भुत आभूषण, वस्त्र और पुष्पों के हारों से शोभित हो गया ॥

सप्तमः श्लोकः

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।
कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥७॥

पदच्छेद— पप्रच्छ विद्वान् अपि तत् निदानम् जनेषु विख्यापयितुम् मुकुन्दः ।
क: त्वम् महाभाग वरेण्यरूपः देव उत्तमम् त्वाम् गणयामि नूनम् ॥

शब्दार्थ—

पप्रच्छ	८.	पूछा	कः	१२.	कौन हो ?
विद्वान्	३.	जानते हुये	त्वम्	११.	तुम
अपि	४.	भी	महाभाग	९.	हे महाभाग !
तत्	१.	उसका	वरेण्यरूपः	१०.	सुन्दर रूप वाले
निदानम्	२.	कारण	देव उत्तमम्	१५.	देवताओं में श्रेष्ठ
जनेषु	६.	लोगों को	त्वाम्	१३	मैं तुम्हें
विख्यापयितुम्	७.	बताने के लिये (उससे)	गणयामि	१६.	समझता हूँ
मुकुन्दः ।	५.	श्रीकृष्ण ने	नूनम् ॥	१४.	निश्चित रूप से

श्लोकार्थ—उसका कारण जानते हुये भी श्रीकृष्ण ने लोगों को बताने के लिये उससे पूछा। हे महाभाग ! सुन्दर रूप वाले तुम कौन हो ? मैं तुम्हें निश्चित रूप से देवताओं में श्रेष्ठ समझता हूँ ॥

अष्टमः श्लोकः

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥८॥

पदच्छेद— दशामिमाम् वा कतमेन कर्मणा सम्प्रापितः असि अतत् अर्हः सुभद्र ।
आत्मानम् आख्याहि विवित्सताम् नः यत् मन्यसे नः क्षमम् अत्र वक्तुम् ॥

शब्दार्थ—

दशामिमाम्	५.	तुम इस दशा को	आत्मानम्	१५.	अपना
वा	२.	अथवा	आख्याहि	१६.	परिचय दो
कतमेन	३.	किस	विवित्सताम्	१३.	जानने के इच्छुक
कर्मणा	४.	कर्म से	नः	१४.	हम लोगों को
सम्प्रापितः	६.	पहुँचा दिये गये	यत्	९.	यदि
असि	७	हो	मन्यसे नः	१२.	उचित समझते हो तो
अतत् अर्हः	८.	तुम इसके योग्य नहीं हो	क्षमम् अत्र	१०.	हम लोगों को यहाँ
सुभद्र ।	१.	हे कल्याण मूर्ति !	वक्तुम् ॥	११.	बतलाना

श्लोकार्थ—हे कल्याण मूर्ते ! अथवा किस कर्म से तुम इस दशा को पहुँचा दिये गये हो। तुम इसके योग्य नहीं हो। यदि हम लोगों को यहाँ बतलाना उचित समझते हो तो जानने के इच्छुक हम लोगों को अपना परिचय दो ॥

नवमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥६॥

पदच्छेद— इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेन अनन्त मूर्तिना ।
माधवम् प्रणिपत्य आह किरीटेन अर्क वर्चसा ॥

शब्दार्थ—

इति स्म	४. इस प्रकार	माधवम्	१०. भगवान् को
राजा	६. राजा ने	प्रणिपत्य	११. प्रणाम करके
सम्पृष्टः	५. पूछे जाने पर	आह	१२. कहने लगे
कृष्णेन	३. श्रीकृष्ण के द्वारा	किरीटेन	६. मुकुट झुकाकर
अनन्त	१. अनन्त	अर्क	७. सूर्य के समान
मूर्तिना ।	२. रूप वाले भगवान्	वर्चसा ॥	८. चमकने वाले

श्लोकार्थ—अनन्त रूप वाले भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर राजा सूर्य के समान चमकने वाले मुकुट झुकाकर भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे ॥

दशमः श्लोकः

नृग उवाच— नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥१०॥

पदच्छेद— नृगः नाम नरेन्द्रः अहम् इक्ष्वाकु तनयः प्रभो ।
दानिषु आख्यायमानेषु यदि ते कर्णम् अस्पृशम् ॥

शब्दार्थ—

नृगः	५. नृग	दानिषु	८. दानी पुरुषों की
नाम	६. नाम है	आख्याय	६. गिनती
नरेन्द्रः	७. राजा हूँ	मानेषु	१०. की जाते समय
अहम्	२. मैं	यदि	१३. मेरा नाम भी
इक्ष्वाकु	३. इक्ष्वाकु का	ते	११. आपके
तनयः	४. पुत्र	कर्णम्	१२. कानों में
प्रभो ।	१ हे प्रभो !	अस्पृशम् ॥	१४. अवश्य पड़ा होगा

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग नामक राजा हूँ । दानी पुरुषों की गिनती की जाते समय आपके कानों में मेरा नाम भी अवश्य पड़ा होगा ।

एकादशः श्लोकः

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।
कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥११॥

पदच्छेद — किम् नु ते अविदितम् नाथ सर्व भूत आत्म साक्षिणः ।
कालेन अव्याहत दृशः वक्ष्ये अथापि तव आज्ञया ॥

शब्दार्थ—

किम् नु	९.	क्या	कालेन	५.	काल से
ते	८.	आपसे	अव्याहत	६.	अबाधित
अविदितम्	१०.	छिपा है	दृशः	७.	ज्ञान वाले
नाथ	१.	हे स्वामिन् !	वक्ष्ये	१४.	सब कुछ कहूँगा
सर्वभूत	२.	सभी प्राणियों की	अथापि	११.	तो भी
आत्म	३.	वृत्ति के	तव	१२.	मैं आपकी
साक्षिणः ।	४.	साक्षी हैं (तथा)	आज्ञया ॥	१३.	आज्ञा से

श्लोकार्थ—हे स्वामिन् ! सभी प्राणियों की वृत्ति के साक्षी हैं । तथा काल से अबाधित ज्ञान वाले आपसे क्या छिपा है । तो भी मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कहूँगा ।

द्वादशः श्लोकः

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।
यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ॥१२॥

पदच्छेद— यावत्यः सिकताः भूमेः यावत्यः दिवि तारकाः ।
यावत्यः वर्ष धाराः च तावतीः अददाम् स्म गाः ॥

शब्दार्थ—

यावत्यः	२.	जितने	यावत्यः	८.	जितनी
सिकताः	३.	धूलिकण हैं	वर्षधाराः	९.	वर्षा की धारायें हैं
भूमेः	१.	पृथ्वी के	च	७.	और
यावत्यः	४.	जितने	तावतीः	१०.	उतनी ही
दिवि	५.	आकाश में	अददाम्	१२.	दान की थीं
तारकाः ।	६.	तारे हैं	स्म गाः ॥	११.	गौयें मैंने

श्लोकार्थ—पृथ्वी के जितने धूलिकण हैं । जितने आकाश में तारे हैं । और जितनी वर्षा की धारायें हैं । उतनी ही गौयें मैंने दान की थीं ॥

त्रयोदशः श्लोकः

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमश्रृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥१३॥

पदच्छेद— पयस्विनीः तरुणीः शीलरूप गुण उपपन्नाः कपिलाः हेम श्रृङ्गीः ।
न्याय अर्जिता रूप्य खुराः सवत्साः दुकूल माला आभरणाः ददौ अहम् ॥

शब्दार्थ—

पयस्विनीः	१.	दुधारू	न्याय अर्जिता	७.	न्याय के धन से प्राप्त
तरुणीः	२.	नौजवान	रूप्य	८.	चाँदी के
शील	३.	सीधी	खुरा	९.	खुरों वाली
रूपगुण	४.	रूप और गुणों के	सवत्साः	१०.	बछड़े सहित
उपपन्नाः	५.	युक्त (सुलक्षणा)	दुकूलमाला	११.	वस्त्र, माला और
कपिलाः	१३.	कपिला गौयें	आभरणाः	१२.	आभूषणों से सज्जित
हेमश्रृङ्गीः ।	६.	सोने के सींगों वाली	ददौ अहम् ॥	१४.	मैंने दी थीं

श्लोकार्थ— दुधारू, नौजवान, सीधी, रूप और गुणों से युक्त, सुलक्षणा, सोने के सींगों वाली, न्याय के धन से प्राप्त, चाँदी के खुरों वाली, बछड़े सहित, वस्त्र, माला और आभूषणों से सज्जित कपिला गौयें मैंने दी थीं ॥

चतुर्दशः श्लोकः

स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१४॥

पदच्छेद— स्वलङ्कृतेभ्यः गुण शील वद्भ्यः सीदत् कुटुम्बेभ्यः ऋत व्रतेभ्यः ।
तपः श्रुत ब्रह्म वदान्य सद्भ्यः प्रादाम् युवभ्यः द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥

शब्दार्थ—

स्वलङ्कृतेभ्यः	१.	वस्त्र आभूषणों से सजी	तपः	९.	तपस्वी
गुण	२.	गुण और	श्रुत	१०.	शास्त्रों और
शील	३.	शील से	ब्रह्म	११.	वेदों को जानने वाले
वद्भ्यः	४.	युक्त	वदान्य	१२.	अतिशय विद्यादान करने वाले
सीदत्	५.	कष्ट में पड़े हुये	सद्भ्यः	१३.	सच्चरित्र
कुटुम्बेभ्यः	६.	कुटुम्ब वाले	प्रादाम्	१६.	दान दी थीं
ऋत	७.	सत्य	युवभ्यः	१४.	युवक और
व्रतेभ्यः ।	८.	व्रती	द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥	१५.	श्रेष्ठ ब्राह्मणों

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! मैंने वस्त्र, आभूषणों से सजी, गुण और शील से युक्त, कष्ट में पड़े हुये, कुटुम्ब वाले, सत्यव्रती, तपस्वी, शास्त्रों और वेदों को जानने वाले, अतिशय विद्यादान करने वाले सच्चरित्र युवक और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान दी थीं ॥

पञ्चदशः श्लोकः

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥१५॥

पदच्छेद— गोभू हिरण्य आयतन अश्व हस्तिनः कन्याः सदासीः तिलरूप्य शय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथान् इष्टम् च यज्ञैः चरितम् च पूर्तम् ॥

शब्दार्थ—

गोभू	१.	गाय-भूमि	वासांसि	९.	वस्त्र
हिरण्य	२.	सुवर्ण	रत्नानि	१०.	रत्न
आयतन	३.	घर	परिच्छदान्	११.	घर की सामग्री
अश्व हस्तिनः	४.	घोड़े हाथी	रथान्	१२.	और रथ (प्रदान किये)
कन्याः	६.	कन्यायें	इष्टम्	१४.	यजन
सदासीः	५.	दासी सहित	च यज्ञैः	१३.	फिर अनेकों यज्ञों से
तिल	७.	तिल	चरितम् च	१५.	किया तथा
रूप्य शय्याः ।	८.	चाँदी-शय्या	पूर्तम् ॥	१६.	कुयें, बावली आदि बनवाये

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! मैंने गाय, भूमि, सुवर्ण, घर, घोड़े, हाथी, दासी सहित कन्यायें, तिल, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, घर की सामग्री और रथ प्रदान किये । फिर अनेकों यज्ञों से यजन किया । तथा कुयें, बावली आदि बनवाये ॥

षोडशः श्लोकः

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

पदच्छेद— कस्यचित् द्विज मुख्यस्य भ्रष्टा गौः मम गोधने ।
सम्पृक्ता अविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥

शब्दार्थ—

कस्यचित्	१.	किसी	सम्पृक्ता	८.	आ मिली
द्विज	३.	ब्राह्मण की	अविदुषा	१०.	अनजान में
मुख्यस्य	२.	श्रेष्ठ	सा	११.	उसे
भ्रष्टा	५.	बिछुड़ कर	च	९.	और
गौः	४.	गाय	मया	१२.	मैंने
मम	६.	मेरी	दत्ता	१४.	दान कर दिया
गोधने ।	७.	गायों में	द्विजातये ॥	१३.	दूसरे ब्राह्मण को

श्लोकार्थ—किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की गाय बिछुड़कर मेरी गायों में आ मिली और अनजान में उसे मैंने दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया ॥

सप्तदशः श्लोकः

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ।
ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

पदच्छेद— ताम् नीयमानाम् तत् स्वामी दृष्ट्वा उवाच मम इति तम् ।
मम इति प्रति ग्राही आह नृगः मे दत्तवान् इति ॥

शब्दार्थ—

ताम्	१.	उस गाय को	मम	११.	मेरी है
नीयमानाम्	२.	ले जाती हुई	इति	१०.	यह
तत् स्वामी	४.	उसके स्वामी ने	प्रतिग्राही	८.	दान ले जाने वाले (ब्राह्मण) ने
दृष्ट्वा	३.	देख कर	आह	६.	कहा कि
उवाच	६.	कहा	नृगः	१३.	राजा नृग ने
मम इति	७.	यह मेरी गाय है	मे दत्तवान्	१४.	मुझे दी है
तम् ।	५.	उस (ब्राह्मण) से	इति ॥	१२.	यह

श्लोकार्थ—उस गाय को ले जाती हुई देखकर उसके स्वामी ने उस ब्राह्मण से कहा। यह मेरी गाय है। दान ले जाने वाले ब्राह्मण ने कहा यह मेरी गाय है। राजा नृग ने यह मुझे दी है ॥

अष्टादशः श्लोकः

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान् दातापहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥१८॥

पदच्छेद— विप्रौ विवदमानौ माम् ऊचतुः स्वार्थ साधकौ ।
भवान् दाता अपहर्ता इति तत् श्रुत्वा मे अभवत् भ्रमः ॥

शब्दार्थ—

विप्रौ	४.	दोनों ब्राह्मण	भवान्	८.	आपने मुझे
विवदमानौ	१.	झगड़ते हुये	दाता	६.	दी है (दूसरे ने कहा
माम	५.	मुझसे	अपहर्ता	१०.	आप चोर हैं
ऊचतुः	६.	बोले	इति	७.	यह
स्वार्थ	२.	स्वार्थ	तत श्रुत्वा	११.	वह सुनकर
साधकौ ।	३.	सिद्ध करने वाले	अभवत् भ्रमः ॥	१२.	मुझे भ्रम हो गया

श्लोकार्थ- हे प्रभो ! झगड़ते हुये स्वार्थ सिद्ध करने वाले दोनों ब्राह्मण मुझसे बोले। यह आपने मुझे दी है। दूसरे ने कहा आप चोर हैं। वह सुनकर मुझे भ्रम हो गया ॥

एकोनविंशः श्लोकः

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै।
गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥१९॥

पदच्छेद— अनुनीतौ उभौ विप्रौ धर्म कृच्छ्र गतेन वै।
गवाम् लक्षम् प्रकृष्टानाम् दास्यामि एषा प्रदीयताम् ॥

शब्दार्थ—

अनुनीतौ	६. अनुनय-विनय किया (कि)	गवाम्	८. गौएँ
उभौ	४. उन दोनों	लक्षम्	७. मैं आपको एक लाख
विप्रौ	५. ब्राह्मणों से	प्रकृष्टानाम्	८. बहुत उत्तम
धर्म	१. धर्म	दास्यामि	१०. दूँगा
कृच्छ्र	२. संकट में	एषा	११. यह गौ
गतेन वै।	३. पड़े हुये मैंने	प्रदीयताम् ॥	१२. मुझे दे दीजिये

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! धर्म संकट में पड़े हुये मैंने उन दोनों ब्राह्मणों से अनुनय-विनय किया कि मैं आपको बहुत उत्तम एक लाख गौएँ दूँगा। यह गौ मुझे दे दीजिये ॥

विंशः श्लोकः

भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः।
समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥२०॥

पदच्छेद— भवन्तौ अनुगृह्णीताम् किङ्करस्य अविजानतः।
समुद्धरत माम् कृच्छ्रात् पतन्तम् निरये अशुचौ ॥

शब्दार्थ—

भवन्तौ	३. आप दोनों	माम्	८. मुझे
अनुगृह्णीताम्	४. कृपा कीजिये	कृच्छ्रात्	९. कष्ट से
किङ्करस्य	२. मुझ सेवक पर	पतन्तम्	७. गिरते हुये
अविजानतः।	१. न जानते हुये	निरये	६. नरक में
समुद्धरत	१०. बचा लीजिये	अशुचौ ॥	५. घोर

श्लोकार्थ—हे विप्रो ! न जानते हुये मुझ सेवक पर आप दोनों कृपा कीजिये। घोर नरक में गिरते हुये मुझे कष्ट से बचा लीजिये ॥

एकविंशः श्लोकः

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद् गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥२१॥

पदच्छेद— न अहम् प्रतीच्छे वै राजन् इति उक्त्वा स्वामी अपाक्रमत् ।
न अन्यत् गवाम् अपि अयुतम् इच्छामि इति अपरः ययौ ॥

शब्दार्थ—

न अहम्	४. मैं कुछ नहीं (लूंगा)	न	११. नहीं
प्रतीच्छे	३. बदले में	अन्यत्	९. दूसरो
वै	२. निश्चित रूप से	गवाम् अपि	१०. गौएँ भी
राजन्	१. हे राजन् !	अयुतम्	८. दस हजार
इति उक्त्वा	५. यह कहकर	इच्छामि	१२. चाहता
स्वामी	६. (गाय का) स्वामी	इति अपरः	१३. ऐसा कहकर दूसरा
अपाक्रमत् ।	७. चला गया (और)	ययौ ॥	१४. (ब्राह्मण भी) चला

श्लोकार्थ—हे राजन् ! निश्चित रूप से बदले में मैं कुछ नहीं लूँगा । यह कह कर गाय का स्वामी चला गया । दस हजार गौएँ भी दूसरी नहीं चाहता हूँ । ऐसा कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ॥

द्वाविंशः श्लोकः

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।
यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

पदच्छेद— एतस्मिन् अन्तरे याम्यैः दूतैः नीतः यमक्षयम् ।
यमेन पृष्टः तत्र अहम् देवदेव जगत्पते ॥

शब्दार्थ—

एतस्मिन्	३. इस	यमेन	११. यम ने
अन्तरे	४. बीच	पृष्टः	१२. पूछा
याम्यैः	५. यम के	तत्र	९. वहाँ
दूतैः	६. दूत मुझे	अहम्	१०. मुझ से
नीतः	७. ले गये	देवदेव	१. हे देवाधिदेव !
यमक्षयम् ।	८. यमपुरी	जगत्पते ॥	२. जगत् के स्वामी

श्लोकार्थ—हे देवाधिदेव ! जगत के स्वामी ! इस बीच यम के दूत मुझे यम पुरी ले गये वहाँ मुझ से यम ने पूछा ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम्।
नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥

पदच्छेद— पूर्वम् त्वम् शुभम् भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम्।
न अन्तम् दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥

शब्दार्थ—

पूर्वम्	२.	पहले	न	१३.	नहीं
त्वम्	३.	तुम	अन्तम्	१२.	अन्त
शुभम्	४.	पाप का	दानस्य	९.	तुम्हारे-दान और
भुङ्क्षे	५.	फल भोगोगे	धर्मस्य	१०.	धर्म के फल स्वरूप प्राप्त
उताहो	६.	या	पश्ये	१४.	देख रहा हूँ
नृपते	१.	हे राजन् !	लोकस्य	११.	लोक का
शुभम् ।	७.	पुण्य का	भास्वतः ॥	८.	तेजस्वी

श्लोकार्थ—हे राजन् ! पहले तुम पाप का फल भोगोगे या पुण्य का ? तेजस्वी तुम्हारे दान और धर्म के फलस्वरूप प्राप्त लोक का अन्त नहीं देख रहा हूँ ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः।
तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥२४॥

पदच्छेद— पूर्वम् देव अशुभम् भुञ्जे इति प्राह पतेति सः।
तावत् अद्राक्षम् आत्मानम् कृकलासम् पतन् प्रभो ॥

शब्दार्थ—

पूर्वम् देव	१.	महाराज पहले मैं	तावत्	९.	उसी क्षण
अशुभम्	२.	पाप का फल	अद्राक्षम्	१३.	देखा
भुञ्जे	३.	भोगना चाहता हूँ	आत्मानम्	११.	अपने को
इति	४.	मेरे इस प्रकार कहते ही	कृकलासम्	१२.	गिरगिट के रूप में
प्राह	६.	कहा	पतन्	१०.	गिरते हुये मैंने
पतेति	७.	गिर जाओ	प्रभो ॥	८.	हे प्रभो !
सः ।	५.	यमराज ने			

श्लोकार्थ—महाराज ! पहले मैं पाप का फल भोगना चाहता हूँ। मेरे इस प्रकार कहते ही यमराज ने कहा गिर जाओ। हे प्रभो ! उसी क्षण गिरते हुये मैंने अपने को गिरगिट के रूप में देखा ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥२५॥

पदच्छेद— ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव।
स्मृतिः न अद्यापि विध्वस्ता भवत् सन्दर्शन अर्थिनः ॥

शब्दार्थ—

ब्रह्मण्यस्य	२. ब्राह्मणों के सेवक	स्मृतिः	८. (पूर्वजन्म की) स्मृति
वदान्यस्य	३. अत्यन्त दानी	न अद्यापि	९. आज भी नहीं
तव	४. आपके	विध्वस्ता	१०. नष्ट हुई है
दासस्य	५. दास (और)	भवत् संदर्शन	६. आपके दर्शन के
केशव।	१. हे भगवन्!	अर्थिनः ॥	७. अभिलाषी (मेरे)

श्लोकार्थ—हे भगवन्! ब्राह्मणों के सेवक, अत्यन्त दानी, आपके दास और आपके दर्शन के अभिलाषी मेरे पूर्वजन्म की स्मृति आज भी नहीं नष्ट हुई है ॥

षड्विंशः श्लोकः

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥२६॥

पदच्छेद—सः त्वम् कथम् मम विभो अक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशा अमलहृद् विभाव्यः।
साक्षात् अधोक्षज उरुव्यसन अन्धबुद्धे स्यात् मे अनुदृश्यः इह यस्य भव अपवर्गः ॥

शब्दार्थ—

सः	२. जो	साक्षात्	१८. सामने
त्वम्	७. आप	अधोक्षज	११. हे परमात्मन्
कथम्	१०. कैसे आ गये	उरुव्यसन	१५. अनेक प्रकार के दुःखों से
मम	८. मेरे	अन्धबुद्धे	१६. किंकर्तव्य विमूढ बने
विभो	१. हे प्रभो!	स्यात्	२०. हो रहे हैं
अक्षिपथः	९. नेत्रों के सामने	मे	१७. मेरे
परात्मायोगेश्वरैः	३. परमात्मा योगीश्वरों द्वारा	अनुदृश्यः	१९. दृष्टिगोचर कैसे
श्रुतिदृशा	४. उपनिषदों की दृष्टि से	इह	१२. यहाँ
अमलहृद्	५. निर्मल चित्त में	यस्यभव	१३. जिसे संसार से
विभाव्यः।	६. चिन्तन करने योग्य	अपवर्गः ॥	१४. मोक्ष मिलता है उसे आप दर्शन देते हैं

श्लोकार्थ—हे प्रभो! जो परमात्मा योगी वर्गों के द्वारा उपनिषदों की दृष्टि से निर्मल चित्त में चिन्तन करने योग्य हैं, वे आप मेरे नेत्रों के सामने कैसे आ गये। हे परमात्मन्! यहाँ जिसे संसार से मोक्ष मिलता है, उसे आप दर्शन देते हैं। अनेक प्रकार के दुःखों से किंकर्तव्य विमूढ बने मेरे सामने कैसे दृष्टि गोचर हो रहे हैं ॥

सप्तविंशः श्लोकः

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥

पदच्छेद— देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोक अच्युत अव्यय ॥

शब्दार्थ—

देव	१.	हे देवों के	नारायण	६.	नारायण
देव	२.	देव	हृषीकेश	७.	इन्द्रियों के स्वामी
जगन्नाथ	३.	जगत् के स्वामी	पुण्यश्लोक	८.	पवित्र कीर्ति
गोविन्द	४.	गोविन्द	अच्युत	६.	अच्युत
पुरुषोत्तम ।	५.	पुरुषोत्तम	अव्यय ॥	१०.	अविनाशी (मुझे आज्ञा दें)

श्लोकार्थ—हे देवों के देव ! जगत् के स्वामी, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, इन्द्रियों के स्वामी, पवित्र कीर्ति, अच्युत, अविनाशी मुझे आज्ञा दें ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

पदच्छेद— अनुजानीहि माम् कृष्ण यान्तम् देवगतिम् प्रभो ।
यत्र क्वापि सतः चेतः भूयात् मे त्वत्पद आस्पदम् ॥

शब्दार्थ—

अनुजानीहि	७.	आज्ञा दें	यत्र क्वापि	८.	जहाँ कहीं भी
माम्	६.	मुझे	सतः	६.	रहते हुये
कृष्ण	२.	श्रीकृष्ण	चेतः	११.	चित्त
यान्तम्	५.	जाते हुये	भूयात्	१४.	रहे
देव	३.	देव	मे	१०.	मेरा
गतिम्	४.	लोक को	त्वत्पद	१२.	आपके चरणों में
प्रभो ।	१.	हे प्रभो !	आस्पदम् ॥	१३.	लगा

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! श्रीकृष्ण ! देवलोक को जाते हुये मुझे आज्ञा दें । जहाँ कहीं भी रहते हुये मेरा चित्त आपके चरणों में लगा रहे ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

पदच्छेद-- नमस्ते सर्व भावाय ब्रह्मणे अनन्त शक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानाम् पतये नमः ॥

शब्दार्थ—

नमस्ते	१. आपको नमस्कार है	कृष्णाय	७. श्रीकृष्ण
सर्व	२. समस्त	वासुदेवाय	८. वासुदेव और
भावाय	३. कार्य-कारण रूप	योगानाम्	९. योगों के
ब्रह्मणे	४. ब्रह्म	पतये	१०. स्वामी को
अनन्त	५. अनन्त	नमः ॥	११. नमस्कार है
शक्तये ।	६. शक्ति वाले		

श्लोकार्थ—आपको नमस्कार है । समस्त कार्य-कारण रूप, ब्रह्म, अनन्त शक्ति वाले, श्रीकृष्ण, वासुदेव और योगों के स्वामी को नमस्कार है ॥

त्रिंशः श्लोकः

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत् पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

पदच्छेद— इति उक्त्वा तम् परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्व मौलिना ।
अनुज्ञातः विमान अग्र्यम् आरुहत् पश्यताम् नृणाम् ॥

शब्दार्थ—

इति उक्त्वा	१. यह कह कर	अनुज्ञातः	७. उनसे आज्ञा लेकर
तम्	२. उनकी	विमान	११. विमान पर
परिक्रम्य	३. परिक्रमा करके (और)	अग्र्यम्	१०. उत्तम
पादौ	५. चरणों का	आरुहत्	१२. चढ़ गया
स्पृष्ट्वा	६. स्पर्श करके	पश्यताम्	९. देखते ही देखते
स्व मौलिना ।	४. अपने मस्तक से	नृणाम् ॥	८. लोगों के

श्लोकार्थ—यह कह कर उनकी परिक्रमा करके और अपने मस्तक से चरणों का स्पर्श करके उनसे आज्ञा लेकर लोगों के देखते ही देखते उत्तम विमान पर चढ़ गया ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

पदच्छेद— कृष्णः परिजनम् प्राह भगवान् देवकी सुतः।
ब्रह्मण्यदेवः धर्मात्मा राजन्यान् अनु शिक्षयन् ॥

शब्दार्थ—

कृष्णः	५.	श्रीकृष्ण ने	ब्रह्मण्यदेवः	१.	ब्राह्मणों के भक्त
परिजनम्	९.	अपने कुटुम्ब के लोगों से	धर्मात्मा	२.	धर्मात्मा
प्राह	१०.	कहा	राजन्यान्	६.	क्षत्रियों को
भगवान्	४.	भगवान्	अनु-	८.	देने के लिये
देवकीसुतः।	३.	देवकी के पुत्र	शिक्षयन् ॥	७.	शिक्षा

श्लोकार्थ—ब्राह्मणों के भक्त, धर्मात्मा, देवकी के पुत्र, भगवान् श्रीकृष्ण ने क्षत्रियों को शिक्षा देने के लिये अपने कुटुम्ब के लोगों से कहा ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

पदच्छेद— दुर्जरम् बत ब्रह्मस्वम् भुक्तम् अग्नेः मनाग् अपि।
तेजीयसः अपि किमुत राज्ञाम् ईश्वरमानिनाम् ॥

शब्दार्थ—

दुर्जरम्	४.	पचा नहीं सकता	तेजीयसः	६.	तेजस्वी व्यक्ति
बत	१.	खेद है कि	अपि	७.	भी
ब्रह्मस्वम्	२.	ब्राह्मण का धन	किमुत	८.	उसे
भुक्तम्	४.	छीन करके	राज्ञाम्	१२.	राजाओं का कहना ही क्या है
अग्नेः	५.	अग्नि के समान	ईश्वर	१०.	फिर अपने को ईश्वर
मनाक् अपि।	३.	थोड़ा भी	मानिनाम् ॥	११.	मानने वाले

श्लोकार्थ—खेद है कि! ब्राह्मण का धन थोड़ा भी छीन करके अग्नि के समान तेजस्वी व्यक्ति भी उसे पचा नहीं सकता। फिर अपने को ईश्वर मानने वाले राजाओं का तो कहना ही क्या है ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

पदच्छेद—
कृष्णः परिजनम् प्राह भगवान् देवकी सुतः ।
ब्रह्मण्यदेवः धर्मात्मा राजन्यान् अनु शिक्षयन् ॥

शब्दार्थ—

कृष्णः	५.	श्रीकृष्ण ने	ब्रह्मण्यदेवः	१.	ब्राह्मणों के भक्त
परिजनम्	९.	अपने कुटुम्ब के लोगों से	धर्मात्मा	२.	धर्मात्मा
प्राह	१०.	कहा	राजन्यान्	६.	क्षत्रियों को
भगवान्	४.	भगवान्	अनु-	८.	देने के लिये
देवकीसुतः ।	३.	देवकी के पुत्र	शिक्षयन् ॥	७.	शिक्षा

श्लोकार्थ—ब्राह्मणों के भक्त, धर्मात्मा, देवकी के पुत्र, भगवान् श्रीकृष्ण ने क्षत्रियों को शिक्षा देने के लिये अपने कुटुम्ब के लोगों से कहा ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

पदच्छेद—
दुर्जरम् बत ब्रह्मस्वम् भुक्तम् अग्नेः मनाग् अपि ।
तेजीयसः अपि किमुत राज्ञाम् ईश्वरमानिनाम् ॥

शब्दार्थ—

दुर्जरम्	९.	पचा नहीं सकता	तेजीयसः	६.	तेजस्वी व्यक्ति
बत	१.	खेद है कि	अपि	७.	भी
ब्रह्मस्वम्	२.	ब्राह्मण का धन	किमुत	८.	उसे
भुक्तम्	४.	छीन करके	राज्ञाम्	१२.	राजाओं का कहना ही क्या है
अग्नेः	५.	अग्नि के समान	ईश्वर	१०.	फिर अपने को ईश्वर
मनाक् अपि ।	३.	थोड़ा भी	मानिनाम् ॥	११.	मानने वाले

श्लोकार्थ—खेद है कि ! ब्राह्मण का धन थोड़ा भी छीन करके अग्नि के समान तेजस्वी व्यक्ति भी उसे पचा नहीं सकता । फिर अपने को ईश्वर मानने वाले राजाओं का तो कहना ही क्या है ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥

पदच्छेद— न अहम् हालाहलम् मन्ये विषम् यस्य प्रतिक्रिया।
ब्रह्मस्वम् हि विषम् प्रोक्तम् न अस्य प्रतिविधिः भुवि ॥

शब्दार्थ—

न	४. नहीं	ब्रह्मस्वम्	८. वस्तुतः ब्राह्मण का धन		
अहम्	१. मैं	हि	७. हो		
हालाहलम्	२. हलाहल	विषम् प्रोक्तम्	१०. विष कहा गया है		
मन्ये	५. मानता हूँ (क्योंकि)	न	१४. नहीं है		
विषम्	३. विष को	अस्य	११. इसकी		
यस्य	६. उसकी	प्रतिविधिः	१३. चिकित्सा		
प्रतिक्रिया।	७. चिकित्सा होती है	भुवि ॥	१२. पृथ्वी पर		

श्लोकार्थ—मैं हलाहल विषको नहीं मानता हूँ। क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है। वस्तुतः ब्राह्मण का धन ही विष कहा गया है। इसकी पृथ्वी पर चिकित्सा नहीं है।

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥

पदच्छेद— हिनस्ति विषम् अत्तारम् वह्निः अद्भिः प्रशाम्यति।
कुलम् समूलम् दहति ब्रह्मस्व अरणि पावकः ॥

शब्दार्थ—

हिनस्ति	३. मार डालता है और	कुलम्	११. कुल को
विषम्	१. विष (केवल)	समूलम्	१०. सारे
अत्तारम्	२. खाने वाले	दहति	१२. जला डालती है
वह्निः	४. अग्नि	ब्रह्मस्व	७. किन्तु ब्राह्मण के धन रूप
अद्भिः	५ जल से	अरणि	८. काष्ठ की
प्रशाम्यति।	६. शान्त की जा सकती है	पावकः ॥	९. जो अग्नि होती है

श्लोकार्थ—विष केवल खाने वाले को ही मार डालता है। और अग्नि जल से शान्त की जा सकती है। किन्तु ब्राह्मण के धन रूप काष्ठ की जो अग्नि होती है वह सारे कुल को जला डालती है।

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद् भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥३५॥

पदच्छेद— ब्रह्मस्वम् दुर्‌अनुज्ञातम् भुक्तम् हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलात् भुक्तम् दश पूर्वान् दश अपरान् ॥

शब्दार्थ—

ब्रह्मस्वम्	१. ब्राह्मण का धन	तु	६. परन्तु		
दुरनुज्ञातम्	२. बिना उसकी आज्ञा के	बलात्	७. बलपूर्वक		
भुक्तम्	३. भोगा जाने पर	भुक्तम्	८. भोगने पर		
हन्ति	१२. नष्ट कर देता है	दश	९. दस		
त्रिपूरुषम् ।	४. तीन पीढ़ियों को तथा	पूर्वान्	१०. पहले की और		
प्रसह्य	५. हठ करके	दश अपरान् ॥	११. दस बाद की पीढ़ियों को		

श्लोकार्थ—ब्राह्मण का धन बिना उसकी आज्ञा के भोगा जाने पर तीन पीढ़ियों को तथा हठ करके परन्तु बल पूर्वक भोगने पर दस पहले की और दस बाद की पीढ़ियों को नष्ट कर देता है ।।

षट्त्रिंशः श्लोकः

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते ।
निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

पदच्छेद— राजानः राजलक्ष्म्या अन्धाः न आत्मपातम् विचक्षते ।
निरयम् ये अभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वम् साधु बालिशाः ॥

शब्दार्थ—

राजानः	३. राजा	निरयम्	१२. नरक में गिरते हैं
राजलक्ष्म्या	४. राज लक्ष्मी से	ये	१. जो
अन्धाः	५. अन्धे होकर	अभिमन्यन्ते	११. हड़प कर
न	७. नहीं	ब्रह्मस्वम्	९. ब्राह्मण का धन
आत्मपातम्	६. अपने अधः पतन को	साधु	१०. अच्छी प्रकार
विचक्षते ।	८. देखते (वे ही)	बालिशाः ॥	२. मूर्ख

श्लोकार्थ—जो मूर्ख राजा राजलक्ष्मी से अन्धे होकर अपने अधः पतन को नहीं देखते वे ही ब्राह्मण का धन अच्छी प्रकार हड़प कर नरक में गिरते हैं ।।

सप्तत्रिंशः श्लोकः

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।
विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥३७॥

पदच्छेद— गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दताम् अश्रु बिन्दवः ।
विप्राणाम् हृत वृत्तीनाम् वदान्यानाम् कुटुम्बिनाम् ॥

शब्दार्थ—

गृह्णन्ति	११.	भिगोती हैं	विप्राणाम्	५.	ब्राह्मणों के
यावतः	६.	जितने	हृत	१.	छीन ली गई है
पांसून्	१०.	धूलि कणों को	वृत्तीनाम्	२.	जीविका जिनकी ऐसे
क्रन्दताम्	६.	रोने से	वदान्यानाम्	३.	उदार हृदय और
अश्रु	७.	आँसू की	कुटुम्बिनाम् ॥	४.	कुटुम्ब वाले
बिन्दवः ।	८.	बूँदें			

श्लोकार्थ—छीन ली गई है जीविका जिनकी ऐसे उदार हृदय और कुटुम्ब वाले ब्राह्मणों के रोने से आँसू की बूँदें जितने धूलि-कणों को भिगोती हैं। (उतने वर्षों तक जीविका छीनने वाले को नरक में रहना पड़ता है) ॥

अष्टात्रिंशः श्लोकः

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरङ्कुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥३८॥

पदच्छेद— राजानः राजकुल्याः च तावतः अब्दान् निरङ्कुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदाय अपहारिणः ॥

शब्दार्थ—

राजानः	४.	राजा	निरङ्कुशाः ।	३.	निरङ्कुश
राजकुल्याः	६.	उसके वंशजों को	कुम्भीपाकेषु	६.	कुम्भीपाक नरक में
च	५.	और	पच्यन्ते	१०.	दुःख भोगना पड़ता है
तावतः	७.	उतने	ब्रह्मदाय	१.	ब्राह्मणों का धन
अब्दान्	८.	वर्षों तक	अपहारिणः ॥	२.	अपहरण करने वाले

श्लोकार्थ—ब्राह्मणों का धन अपहरण करने वाले निरङ्कुश राजा और उसके वंशजों को उतने वर्षों तक कुम्भी पाक नरक में दुःख भोगना पड़ता है ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥३९॥

पदच्छेद— स्वदत्ताम् परदत्ताम् वा ब्रह्मवृत्तिम् हरेत् च यः।
षष्टिवर्ष सहस्राणि विष्ठायाम् जायते कृमिः॥

शब्दार्थ—

स्वदत्ताम्	२.	अपनी दी हुई	षष्टिवर्ष	६.	साठ
परदत्ताम् वा	३.	दूसरे की दी हुई या	सहस्राणि	७.	हजारवर्षों तक
ब्रह्मवृत्तिम्	४.	ब्राह्मण की जीविका का	विष्ठायाम्	८.	विष्ठा का
हरेत् च	५.	हरण करता है वह	जायते	१०.	होता है
यः।	१.	जो (मनुष्य)	कृमिः॥	९.	कीड़ा

श्लोकार्थ—जो मनुष्य अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई या ब्राह्मण की जीविका का हरण करता है, वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है॥

चत्वारिंशः श्लोकः

न मे ब्रह्मधनं भूयाद् यद् गृद्ध्वाल्पायुषो नराः।
पराजिताश्च्युता राज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥

पदच्छेद— न मे ब्रह्मधनम् भूयात् यत्गृद्ध्वा अल्पआयुषः नराः।
पराजिताः च्युताः राज्यात् भवन्ति उद्वेजिनः अहयः॥

शब्दार्थ—

न मे	२.	मेरे राजकोष में न	पराजिताः	७.	शत्रुओं से पराजित
ब्रह्मधनम्	१.	ब्राह्मण का धन	च्युताः	९.	भ्रष्ट और (मरने पर)
भूयात्	३.	होवे (क्योंकि)	राज्यात्	८.	राज्य से
यत्गृद्ध्वा	४.	जिसकी इच्छा करके	भवन्ति	१२.	होते हैं
अल्पआयुषः	५.	थोड़ी आयु वाले	उद्वेजिनः	१०.	कष्ट देने वाले
नराः।	६.	मनुष्य	अहयः॥	११.	साँप

श्लोकार्थ—ब्राह्मण का धन मेरे राजकोष में न होवे। क्योंकि जिसकी इच्छा करके थोड़ी आयु वाले मनुष्य शत्रुओं से पराजित, राज्य से भ्रष्ट और मरने पर कष्ट देने वाले साँप होते हैं॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥

पदच्छेद— विप्रम् कृत आगसम् अपि न एव द्रुह्यत मामकाः ।
घ्नन्तम् बहु शपन्तम् वा नमः कुरुत नित्यशः ॥

शब्दार्थ—

विप्रम्	५. ब्राह्मण से	घ्नन्तम्	८. मारते हुये
कृत	३. करने पर	बहु	१०. बहुत
आगसम्	२. अपराध	शपन्तम्	११. शाप देते हुये भी उन्हें
अपि	४. भी	वा	९. अथवा
न एव	७. नहीं करो	नमः	१३. नमस्कार
द्रुह्यत	६. द्रोह	कुरुत	१४. करो
मामकाः ।	१. मेरे आत्मीयो	नित्यशः ॥	१२. नित्य

श्लोकार्थ—मेरे आत्मीयो, अपराध करने पर भी ब्राह्मण से द्रोह नहीं करो। मारते हुये अथवा बहुत शाप देते हुये भी उन्हें नित्य नमस्कार करो ॥

द्विचत्वारिंशः श्लोकः

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥

पदच्छेद— यथा अहम् प्रणमे विप्रान् अनुकालम् समाहितः ।
तथा नमत यूयम् च यः अन्यथा मे सः दण्डभाक् ॥

शब्दार्थ—

यथा	१. जिस प्रकार	तथा	७. उसी प्रकार
अहम्	२. मैं	नमत	९. नमस्कार करो
प्रणमे	६. प्रणाम करता हूँ	यूयम् च	८. तुम लोग भी
विप्रान्	३. ब्राह्मणों को	यः अन्यथा	१०. जो ऐसा नहीं करेगा
अनुकालम्	४. तीनों समय	मे सः	११. वह मेरे
समाहितः ।	५. सावधानी से	दण्डभाक् ॥	१२. दण्ड का भागी होगा

श्लोकार्थ— जिस प्रकार मैं ब्राह्मणों को तीनों समय सावधानी से प्रणाम करता हूँ, उसी प्रकार तुम लोग भी नमस्कार करो। जो ऐसा नहीं करेगा, वह मेरे दण्ड का भागी होगा ॥

त्रयश्चत्वारिंशः श्लोकः

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ।
अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥

पदच्छेद— ब्राह्मण अर्थः हि अपहृतः हर्तारम् पातयति अधः ।
अजानन्तम् अपि हि एनम् नृगम् ब्राह्मण गौः इव ॥

शब्दार्थ—

ब्राह्मण अर्थः	२. ब्राह्मण का धन	अजानन्तम्	६. अनजान में
हि	१. क्योंकि	अपि हि	१०. भी उसे लेने वाले
अपहृतः	३. चुराया जाने पर	एनम्	११. उस
हर्तारम्	४. चुराने वाले का	नृगम्	१२. नृग को (नरक में डाल दिया)
पातयति	६. गिरा देता है	ब्राह्मण	७. ब्राह्मण की
अधः ।	५. नीचे	गौः इव ॥	८. जैसे गाय ने

श्लोकार्थ—क्योंकि ब्राह्मण का धन चुराया जाने पर चुराने वाले को नीचे गिरा देता है। जैसे ब्राह्मण की गाय ने अनजान में भी उसे लेने वाले उस नृग को नरक में गिरा दिया।

चतुश्चत्वारिंशः श्लोकः

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दो द्वारकौकसः ।
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥४४॥

पदच्छेद— एवम् विश्राव्य भगवान् मुकुन्दः द्वारकौकसः ।
पावनः सर्वलोकानाम् विवेश निज मन्दिरम् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. इस प्रकार	पावनः	५. पवित्र करने वाले
विश्राव्य	३. सुनाकर	सर्वलोकानाम्	४. समस्त लोकों को
भगवान्	६. भगवान्	विवेश	१०. चले गये
मुकुन्दः	७. श्रीकृष्ण	निज	८. अपने
द्वारकौकसः ।	२. द्वारकावासियों को	मन्दिरम् ॥	९. भवन में

श्लोकार्थ—इस प्रकार द्वारकावासियों को सुनाकर समस्त लोकों को पवित्र करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने भवन में चले गये ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नृगोपाख्यानं
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

पदच्छेद— बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथम् आस्थितः ।
सुहृद् दिदृक्षुः उत्कण्ठः प्रययौ नन्द गोकुलम् ॥

शब्दार्थ—

बलभद्रः	३. बलराम जी	सुहृद्	२. मित्रों एवं बन्धुओं को
कुरुश्रेष्ठ	१. हे परीक्षित् !	दिदृक्षुः	३. देखने के इच्छुक एवं
भगवान्	५. भगवान्	उत्कण्ठः	४. उत्कण्ठित
रथम्	७. रथ पर	प्रययौ	१०. गये
आस्थितः ।	८. सवार होकर	नन्दगोकुलम् ॥	९. नन्द के गोकुल (व्रज में)

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! मित्रों एवं बन्धुओं को देखने के इच्छुक एवम् उत्कण्ठित भगवान् बलराम जी रथ पर सवार होकर नन्द के गोकुल व्रज में गये ॥

द्वितीयः श्लोकः

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥२॥

पदच्छेद— परिष्वक्तः चिरः उत्कण्ठैः गोपैः गोपीभिः एव च ।
रामः अभिवाद्य पितरौ आशीर्भिः अभिनन्दितः ॥

शब्दार्थ—

परिष्वक्तः	६. आलिंगन किया	रामः	७. बलराम जी ने
चिरः	१. बहुत दिनों से	अभिवाद्य	९. अभिवादन करके
उत्कण्ठैः	२. उत्कण्ठित	पितरौ	८. माता और पिता का
गोपैः	३. गोपों और	आशीर्भिः	१०. उनके आशीर्वाद से
गोपीभिः	४. गोपियों ने	अभिनन्दितः ॥	११. अपने को कृतार्थ किया
एव च ।	५. भी उनका		

श्लोकार्थ—बहुत दिनों से उत्कण्ठित गोपों और गोपियों ने भी उनका आलिंगन किया । बलराम जी ने माता और पिता का अभिवादन करके उनके आशीर्वाद से अपने को कृतार्थ किया ॥

तृतीयः श्लोकः

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ।
इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥३॥

पदच्छेद— चिरम् नः पाहि दाशार्ह स अनुजः जगदीश्वरः ।
इति आरोप्य अङ्कम् आलिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुः जलैः ॥

शब्दार्थ—

चिरम्	५.	चिरकाल तक	इति	८.	यह कह कर
नः	६.	हमारी	आरोप्य	१०.	उठाकर
पाहि	७.	रक्षा करें	अङ्कम्	९.	गोद में
दाशार्ह	१.	बलराम जी !	आलिङ्ग्य	११.	आलिंगन करके
स	३.	साथ	नेत्रैः	१२.	नेत्रों के
अनुजः	२.	छोटे भाई श्रीकृष्ण के	सिषिचतुः	१४.	भिगो दिया
जगदीश्वरः ।	४.	जगत् के स्वामी	जलैः ॥	१३.	जल से

श्लोकार्थ—बलराम जी ! छोटे भाई श्रीकृष्ण के साथ चिरकाल तक हमारी रक्षा करें। यह कहकर गोद में उठाकर आलिंगन करके नेत्रों के जल से भिगो दिया ॥

चतुर्थः श्लोकः

गोपवृद्धांश्च विधिवद् यविष्ठैरभिवन्दितः ।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥४॥

पदच्छेद— गोप वृद्धान् च विधिवत् यविष्ठैः अभिवन्दितः ।
यथा वयः यथा सख्यम् यथा सम्बन्धम् आत्मनः ॥

शब्दार्थ—

गोप	३.	गोपों को	यथा	८.	जैसी
वृद्धान्	२.	बड़े-बड़े	वयः	९.	अवस्था
च	१.	तथा	यथा	१०.	जैसी
विधिवत्	४.	विधिपूर्वक प्रणाम किया	सख्यम्	११.	मित्रता और
यविष्ठैः	५.	छोटे-छोटे गोपों ने	यथा	१२.	जैसा
अभिवन्दितः ।	६.	उन्हें प्रणाम किया	सम्बन्धम्	१३.	सम्बन्ध था (सबसे मिले)
			आत्मनः ॥	७.	अपनी

श्लोकार्थ—तथा बड़े-बड़े गोपों को विधिपूर्वक प्रणाम किया। और छोटे-छोटे गोपों ने उन्हें प्रणाम किया। अपनी जैसी अवस्था, जैसी मित्रता और जैसा सम्बन्ध था। सबसे मिले ॥

पञ्चमः श्लोकः

समुपेत्याथ गोपालान् हास्यहस्तग्रहादिभिः ।
विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥५॥

पदच्छेद— समुपेत्य अथ गोपालान् हास्य हस्त ग्रह आदिभिः ।
विश्रान्तम् सुखम् आसीनम् पप्रच्छुः परिउपागताः ॥

शब्दार्थ—

समुपेत्य	३. पास जाकर	विश्रान्तम्	७. विश्राम पाने पर
अथ	१. इसके बाद	सुखम्	८. सुखपूर्वक
गोपालान्	२. ग्वाल बालों ने	आसीनम्	९. बैठे हुये (बलराम जी से)
हास्य	४. हँसी	पप्रच्छुः	१२. पूछा
हस्त	५. हाथ	परि	१०. चारों ओर से
ग्रह	६. मिलाने	उपागताः ॥	११. आये हुये गोपों ने
आदिभिः ।	७. आदि से		

श्लोकार्थ—इसके बाद ग्वाल बालों ने पास जाकर हँसी, हाथ मिलाने आदि से विश्राम पाने पर सुख पूर्वक बैठे हुये बलराम जी से चारों ओर से आये हुये गोपों ने पूछा ॥

षष्ठः श्लोकः

पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ।
कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥६॥

पदच्छेद— पृष्टाः च अनामयम् स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ।
कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्त अखिल राधसः ॥

शब्दार्थ—

पृष्टाः	१०. प्रश्न किये जाने पर	कृष्णे	४. श्रीकृष्ण के लिये
च	१. फिर	कमल	२. कमल
अनामयम्	९. कुशल	पत्राक्षे	३. नयन
स्वेषु	८. स्वजनों के बारे में	संन्यस्त	५. त्यागे हुये
प्रेमगद्गदया	११. प्रेमगद्गद	अखिल	६. समस्त
गिरा ।	१२. वाणी से (उनसे पूछा)	राधसः ॥	७. भोग वाले गोपों ने

श्लोकार्थ—फिर कमल नयन श्रीकृष्ण के लिये त्यागे हुये समस्त भोग वाले गोपों ने स्वजनों के बारे में कुशल प्रश्न किये जाने पर प्रेमगद्गद वाणी से उनसे पूछा ॥

सप्तमः श्लोकः

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ।
कच्चित् स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥७॥

पदच्छेद— कच्चित् नः बान्धवाः राम सर्वे कुशलम् आसते ।
कच्चित् स्मरथ नः राम यूयम् दार सुत अन्विताः ॥

शब्दार्थ—

कच्चित्	७.	क्या	कच्चित्	१२.	कभी
नः	२.	हमारे	स्मरथ	१४.	स्मरण करते हैं ?
बान्धवाः	४.	बन्धुगण	नः	१३.	हमारा
राम	१.	हे बलराम जी !	राम	८.	बलराम जी
सर्वे	३.	सभी	यूयम्	११.	आप लोग
कुशलम्	५.	कुशल से	दार सुत	९.	स्त्री, पुत्र
आसते ।	६.	हैं न	अन्विताः ॥	१०.	आदि के साथ

श्लोकार्थ—हे बलराम जी ! हमारे सभी बन्धुगण कुशल से हैं न । क्या हे बलराम जी ! स्त्री-पुत्र आदि के साथ आप लोग कभी हमारा स्मरण करते हैं ।

अष्टमः श्लोकः

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ।
निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥८॥

पदच्छेद— दिष्ट्या कंसः हतः पापः दिष्ट्या मुक्ताः सुहृत् जनाः ।
निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गम् समाश्रिताः ॥

शब्दार्थ—

दिष्ट्या	१.	भाग्य से	निहत्य	९.	मार कर (अथवा)
कंसः हतः	३.	कंस मारा गया	निर्जित्य	१०.	जीत कर
पापः	२.	पापी	रिपून्	८.	शत्रुओं को
दिष्ट्या	४.	भाग्य से ही	दिष्ट्या	७.	भाग्य से ही आप लोग
मुक्ताः	६.	बन्धन से मुक्त हो गये	दुर्गम्	११.	किले में
सुहृत् जनाः ।	५.	बन्धुगण	समाश्रिताः ॥	१२.	निवास करते हैं ॥

श्लोकार्थ—भाग्य से पापी कंस मारा गया । भाग्य से ही बन्धुगण बन्धन से मुक्त हो गये । भाग्य से ही आप लोग शत्रुओं को मार कर अथवा जीत कर किले में निवास करते हैं ॥

नवमः श्लोकः

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसन्दर्शनादृताः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥९॥

पदच्छेद— गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छुः रामसन्दर्शन आदृताः ।
कच्चित् आस्ते सुखम् कृष्णः पुरस्त्री जनवल्लभः ॥

शब्दार्थ—

गोप्यः	४.	गोपियों ने	कच्चित्	१२	न
हसन्त्यः	५.	हँस कर	आस्ते	११.	हैं
पप्रच्छुः	६.	पूछा	सुखम्	१०.	सुख से तो
राम	१.	बलराम जी के	कृष्णः	९.	श्रीकृष्ण (अब)
सन्दर्शन	२.	दर्शन से	पुरस्त्रीजन	७.	नगर वासिनी स्त्रियों के
आदृताः ।	३.	सम्मानित	वल्लभः ॥	८.	प्यारे

श्लोकार्थ—बलराम जी के दर्शन से सम्मानित गोपियों ने हँसकर पूछा । नगरवासिनी स्त्रियों के प्यारे श्रीकृष्ण अब सुख से तो हैं न ?

दशमः श्लोकः

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः ।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ।
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥१०॥

पदच्छेद— कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरम् मातरम् च सः ।
अपि असौ मातरम् द्रष्टुम् सकृत् अपि आगमिष्यति ।
अपि वा स्मरते अस्माकम् अनुसेवाम् महाभुजः ॥

शब्दार्थ—

कच्चित्	१.	क्या कभी	सकृत्	९.	एक बार
स्मरति	५.	स्मरण करते हैं	अपि	१०.	भी
वा बन्धून्	४.	या भाई बन्धुओं का	आगमिष्यति ।	११.	यहाँ आयेंगे
पितरम्	३.	पिता का	अपि वा	१२.	क्या
मातरम् च सः ।	२.	वे माता	स्मरते	१६.	स्मरण करते हैं
अपि असौ	६.	क्या वे	अस्माकम्	१४.	हम लोगों की
मातरम्	७.	माता को	अनुसेवाम्	१५.	सेवा का
द्रष्टुम्	८.	देखने के लिये	महाभुजः ॥	१३.	महाभुज (श्रीकृष्ण)

श्लोकार्थ—क्या कभी वे माता-पिता या भाई बन्धुओं का स्मरण करते हैं । क्या वे माता को देखने के लिये एक बार भी यहाँ आयेंगे । क्या महाभुज श्रीकृष्ण हम लोगों की सेवा का स्मरण करते हैं ।

एकादशः श्लोकः

मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄरपि ।
यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥११॥

पदच्छेद— मातरम् पितरम् भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄः अपि ।
यत् अर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्व जनान् प्रभो ॥

शब्दार्थ—

मातरम्	७. माता	यत्	२. जिनके
पितरम्	८. पिता	अर्थे	४. लिये
भ्रातॄन्	९. भाई	जहिम	१४. त्याग दिया (क्या वे हमें भूल गये)
पतीन्	१०. पति	दाशार्ह	३. यदुवंशी श्रीकृष्ण के
पुत्रान्	११ पुत्र और	दुस्त्यजान्	५. बहुत कठिनाई से त्यागने योग्य
स्वसॄः	१२. बहनों को	स्वजनान्	६. स्वजन सम्बन्धियों को
अपि ।	१५. भी (हम ने)	प्रभो ॥	१. हे प्रभो !

श्लोकार्थ—हे प्रभो ! जिन यदुवंशी श्रीकृष्ण के लिये बहुत कठिनाई से त्यागने योग्य स्वजन सम्बन्धियों को, माता-पिता, भाई, पति, पुत्र और बहनों को भी हमने त्याग दिया। (क्या वे हमें भूल गये) ।

द्वादशः श्लोकः

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ।
कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥१२॥

पदच्छेद— ताः नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्न सौहृदः ।
कथम् नु तादृशम् स्त्रीभिः न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥

शब्दार्थ—

ताः नः	१. ऐसी हम लोगों को	कथम् नु	१०. कैसे
सद्यः	३. तुरन्त	तादृशम्	८. वैसे व्यक्ति के
परित्यज्य	२. त्याग कर (वे)	स्त्रीभिः	७. स्त्रियाँ
गतः	६. चले गये	न	११. नहीं
संछिन्न	५. तोड़ कर	श्रद्धीयेत	१२. विश्वास करें
सौहृदः ।	४. सौहार्द प्रेम को	भाषितम् ॥	९. वचन पर

श्लोकार्थ—ऐसी हम लोगों को त्याग कर वे तुरन्त सौहार्द प्रेम को तोड़ कर चले गये। स्त्रियाँ वैसे व्यक्ति के वचन पर कैसे नहीं विश्वास करें ॥

त्रयोदशः श्लोकः

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।
गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥

पदच्छेद— कथम् नु गृह्णन्ति अनवस्थित आत्मनः वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।
गृह्णन्ति वै चित्र कथस्य सुन्दरस्मित अवलोक उच्छ्वसित स्मर आतुराः ॥

शब्दार्थ—

कथम् नु	७.	क्यों	गृह्णन्ति	१६.	उनकी बातों में आ जाती होंगी
गृह्णन्ति	८.	आने लगीं	वै	९.	निश्चित ही (नगरनारियाँ
अनवस्थित	४.	चञ्चल	चित्र	१०.	रंगबिरंगी
आत्मनः	५.	चित्त वाले (श्रीकृष्ण की)	कथस्य	११.	मीठी-मीठी बातें बनाने वाले
वचः	६.	बातों में	सुन्दरस्मित	१२.	सुन्दर मुसकान से युक्त
कृतघ्नस्य	३.	कृतघ्न	अवलोक	१३.	चितवन और
बुधाः	१.	चतुर	उच्छ्वसित	१४.	ठंडी श्वासों से
पुरस्त्रियः ।	२.	नगर-नारियाँ	स्मर आतुराः ॥	१५.	कामातुर होकर

श्लोकार्थ— बलराम जी ! नगर नारियाँ चञ्चल चित्त वाले श्रीकृष्ण की बातों में क्यों आने लगी। निश्चित ही नगर-नारियाँ रंगबिरंगी मीठी-मीठी बातें बनाने वाले सुन्दर मुसकान से युक्त चितवन और ठंडी श्वासों से कामातुर होकर उनकी बातों में आ जाती होंगी ॥

चतुर्दशः श्लोकः

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥१४॥

पदच्छेद— किम् नः तत् कथया गोप्यः कथाः कथयत अपराः ।
याति अस्माभिः विना कालः यदि तस्य तथैव नः ॥

शब्दार्थ—

किम्	५.	क्या काम है	याति	१४.	कट जाता है तो
नः	२.	हमें	अस्माभिः	१०.	हमारे
तत्	३.	उनकी	विना	११.	बिना
कथया	४.	बात से	कालः	१३.	समय
गोप्यः	१.	हे गोपियो !	यदि	९.	यदि
कथाः	७.	बातें	तस्य	१२.	उनका
कथयत	८.	कहो	तथा एव	१५.	वैसे ही
अपराः ।	६.	दूसरी	नः ॥	१६.	हमारा भी समय कट जायेगा

श्लोकार्थ—हे गोपियो ! हमें उनकी बात से क्या काम है। दूसरी बातें कहो। यदि हमारे बिना उनका समय कट जाता है तो वैसे ही हमारा समय भी कट जायेगा ॥

पञ्चदशः श्लोकः

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ।
गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

पदच्छेद — इति प्रहसितम् शौरेः जल्पितम् चारु वीक्षितम् ।
गतिम् प्रेम परिष्वङ्गम् स्मरन्त्यः रुरुदुः स्त्रियः ॥

शब्दार्थ—

इति	१. इस प्रकार	गतिम्	७. चाल
प्रहसितम्	४. हंसी	प्रेम	८. प्रेमपूर्वक
शौरेः	२. श्रीकृष्ण की	परिष्वङ्गम्	९. आलिङ्गन का
जल्पितम्	३. बातें	स्मरन्त्यः	१०. स्मरण करती हुई
चारु	५. सुन्दर	रुरुदुः	१२. रोने लगीं
वीक्षितम् ।	६. चितवन	स्त्रियः ॥	११. गोपियाँ

श्लोकार्थ—इस प्रकार श्रीकृष्ण की बातें, हंसी, सुन्दर चितवन, चाल, प्रेम पूर्वक आलिङ्गन का स्मरण करती हुई गोपियाँ रोने लगीं ॥

षोडशः श्लोकः

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य सन्देशैर्हृदयङ्गमैः ।
सान्त्वयामास भगवान् नानानुनयकोविदः ॥१६॥

पदच्छेद— सङ्कर्षणः ताः कृष्णस्य सन्देशैः हृदयङ्गमैः ।
सान्त्वयामास भगवान् नाना अनुनय कोविदः ॥

शब्दार्थ—

सङ्कर्षण	५. बलराम जी	सान्त्वयामास	१०. सान्त्वना देने लगे
ताः	६. उन लोगों को	भगवान्	४. भगवान्
कृष्णस्य	७. श्रीकृष्ण के	नाना	१. अनेक प्रकार के
सन्देशैः	९. सन्देशों से	अनुनय	२. अनुनय-विनय करने में
हृदयङ्गमैः ।	८. हृदयस्पर्शी	कोविदः ॥	३. निपुण

श्लोकार्थ—अनेक प्रकार के अनुनय-विनय करने में निपुण भगवान् बलराम जी उन लोगों को श्रीकृष्ण के हृदयस्पर्शी सन्देशों से सान्त्वना देने लगे ॥

सप्तदशः श्लोकः

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥१७॥

पदच्छेद— द्वौ मासौ तत्र च अवात्सीत् मधुम् माधवम् एव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनाम् रतिम् आवहन् ॥

शब्दार्थ—

द्वौ मासौ	७. दो मास	रामः	२. बलराम ने
तत्र च	८. वहाँ पर	क्षपासु	३. रात्रि के समय
अवात्सीत्	१२. बिताये	भगवान्	१. भगवान्
मधुम्	९. चैत्र और	गोपीनाम्	४. गोपियों को
माधवम्	१०. वैशाख	रतिम्	५. रति को
एव च ।	११. भी	आवहन् ॥	६. वृद्धि करते हुये

श्लोकार्थ—भगवान् बलराम ने रात्रि के समय गोपियों की रति की वृद्धि करते हुये दो मास वहाँ पर चैत्र और वैशाख भी बिता दिये ।

अष्टादशः श्लोकः

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥

पदच्छेद— पूर्ण चन्द्रकला मृष्टे कौमुदी गन्ध वायुना ।
यमुना उपवने रेमे सेविते स्त्री गणैः वृतः ॥

शब्दार्थ—

पूर्ण	१. पूर्ण	यमुना	८. यमुना के किनारे
चन्द्रकला	२. चन्द्रमा की कला से	उपवने	९. उपवन में (बलराम जी)
मृष्टे	३. उज्ज्वल तथा	रेमे	१२. विहार करते थे
कौमुदी	४. कुमुदिनी की	सेविते	७. सेवित
गन्ध	५. सुगन्ध से युक्त	स्त्रीगणैः	१०. स्त्रियों के समूह से
वायुना ।	६. वायु से	वृतः ॥	११. घिरे

श्लोकार्थ—पूर्ण चन्द्रमा की कला से उज्ज्वल तथा कुमुदिनी की सुगन्ध से युक्त वायु से सेवित यमुना के किनारे उपवन में बलराम जी स्त्रियों के समूह से घिरे हुये विहार करते थे ।

एकोनविंशः श्लोकः

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ।
पतन्ती तद् वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥

पदच्छेद— वरुण प्रेषिता देवी वारुणी वृक्ष कोटरात् ।
पतन्ती तद् वनम् सर्वम् स्वगन्धेन अध्यवासयत् ॥

शब्दार्थ—

वरुण	१. वरुण की	पतन्ती	७. वह निकलीं और
प्रेषिता	२. भेजी हुई	तद्	८. उस
देवी	४. देवी	वनम्	१०. वन को
वारुणी	३. वारुणी	सर्वम्	९. सम्पूर्ण
वृक्ष	५. एक वृक्ष के	स्वगन्धेन	११. अपनी सुगन्ध से
कोटरात् ।	६. कोटर से	अध्यवासयत् ॥	१२. सुवासित कर दिया

श्लोकार्थ—वरुण की भेजी हुई वारुणी देवी एक वृक्ष के कोटर से वह निकलीं और उस सम्पूर्ण वन को अपनी सुगन्ध से सुवासित कर दिया ॥

विंशः श्लोकः

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

पदच्छेद— तम् गन्धम् मधुधारायाः वायुना उपहृतम् बलः ।
आघ्राय उपगतः तत्र ललनाभिः समम् पपौ ॥

शब्दार्थ—

तम्	४. उस	आघ्राय	६. सूंघकर
गन्धम्	५. सुगन्ध को	उपगतः	९. आये और
मधुधारायाः	३. मधुधारा की	तत्र	८. वहाँ पर
वायुना	१. वायु के द्वारा	ललनाभिः	१०. रमणियों के
उपहृतम्	२. लायी गई	समम्	११. साथ उसे
बलः ।	७. बलराम जी	पपौ ॥	१२. पीने लगे

श्लोकार्थ—वायु के द्वारा लायी गई मधुधारा की उस सुगन्ध को सूंघकर बलराम जी वहाँ पर आये । और रमणियों के साथ उसे पीने लगे ॥

एकविंशः श्लोकः

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ।
वनेषु व्यचरत् क्षीवो मदविह्वललोचनः ॥२१॥

पदच्छेद— उपगीयमान चरितः वनिताभिः हल आयुधः ।
वनेषु व्यचरत् क्षीवः मदविह्वल लोचनः ॥

शब्दार्थ—

उपगीयमान	२.	गाये जाते हुये	वनेषु	६.	वन में
चरितः	३.	चरित वाले	व्यचरत्	१०.	विचर रहे थे
वनिताभिः	१.	रमणियों के द्वारा	क्षीवः	६.	मतवाले एवम्
हल	४.	हल का	मदविह्वल	७.	मद से विह्वल
आयुधः ।	५.	आयुध रखने वाले	लोचनः ॥	८.	नेत्र वाले होकर

श्लोकार्थ—रमणियों के द्वारा गाये जाते हुये चरित्र वाले और हल का आयुध रखने वाले बलरामजी मतवाले एवम् मद से विह्वल नेत्र वाले होकर वन में विचर रहे थे ॥

द्वाविंशः श्लोकः

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत् स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥२२॥

पदच्छेद— स्रग्वी एककुण्डलः मत्तः वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत् स्मित मुखाम्भोजम् स्वेद प्रालेय भूषितम् ॥

शब्दार्थ—

स्रग्वी	१.	पुष्पहार	बिभ्रत्	६.	धारण किये हुये (और)
एककुण्डलः	२.	एक कुण्डल	स्मित	८.	मुस्कराहट
मत्तः	६.	मतवाले (बलराम)	मुखाम्भोजम्	७.	मुख कमल में
वैजयन्त्या	४.	वैजयन्ती	स्वेद	११.	पसीने की बूंदों से
च	३.	तथा	प्रालेय	१०.	हिमकण के समान
मालया ।	५.	माला से विभूषित	भूषितम् ॥	१२.	शोभायमान थे

श्लोकार्थ—पुष्पहार, एक कुण्डल तथा वैजयन्ती माला से विभूषित, मतवाले बलराम मुख कमल में मुस्कराहट धारण किये हुये और हिमकण के समान पसीने की बूंदों से शोभायमान थे ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः।
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥

पदच्छेद— सः आजुहाव यमुनाम् जलक्रीडा अर्थम् ईश्वरः।
निजम् वाक्यम् अनादृत्य मत्तः इति आपगाम् बलः।
अनागतम् हल अग्रेण कुपितः विचकर्ष ह ॥

शब्दार्थ—

सः	१.	उन	मत्तः	७.	मतवाले हो रहे हैं
आजुहाव	६.	बुलाया (किन्तु ये)	इति	८.	यह सोच कर (वे नहीं आईं)
यमुनाम्	५.	यमुना को	आपगाम्	१२.	यमुना को
जलक्रीडा	३.	जलक्रीडा	बलः।	१४.	बलरामजी ने
अर्थम्	४.	करने के लिये	अनागताम्	१३.	नहीं आयी (ये देख कर)
ईश्वरः।	२.	सर्वशक्तिमान् ने	हल	१६.	हल के
निजम्	९.	अपने	अग्रेण	१७.	अग्र भाग से (उन्हें)
वाक्यम्	१०.	वचन का	कुपितः	१५.	क्रुद्ध होकर
अनादृत्य	११.	अनादर करके	विचकर्ष ह ॥	१८.	खींचा

श्लोकार्थ—उन सर्वशक्तिमान् ने जल-क्रीडा करने के लिये यमुना को बुलाया। किन्तु ये मतवाले हो रहे हैं, यह सोच कर वे नहीं आयीं अपने वचन का अनादर करके यमुना को न आये देख कर बलराम जी ने क्रुद्ध होकर हल के अग्र भाग से उन्हें खींचा ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥

पदच्छेद— पापे त्वम् माम् अवज्ञाय यत् न आयासि मया आहुता।
नेष्ये त्वाम् लाङ्गल अग्रेण शतधा काम चारिणीम् ॥

शब्दार्थ—

पापे त्वम्	१.	पापिनी तू	नेष्ये	१२.	ले आऊँगा
माम्	२.	मेरा	त्वाम् लाङ्गल	९.	तुझे हल के
अवज्ञाय	३.	तिरस्कार करके	अग्रेण	१०.	अग्र भाग से
यत्	४.	जो	शतधा	११.	सौ टुकड़े करके
न आयासि	६.	नहीं आ रही है	काम	७	सो स्वेच्छा से
मया आहुता।	५.	मेरे बुलाने पर	चारिणीम् ॥	८.	आचरण करने वाली

श्लोकार्थ—पापिनी! तू मेरा तिरस्कार करके जो मेरे बुलाने पर नहीं आ रही है। स्वेच्छा से आचरण करने वाली तुझे हल के अग्र भाग से सौ टुकड़े करके ले आऊँगा ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥

पदच्छेद— एवम् निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचम् पतिता पादयोः नृप ॥

शब्दार्थ—

एवम	२.	इस प्रकार	उवाच	११.	बोली
निर्भर्त्सिता	३.	डाँटने पर	चकिता	६.	चकित होकर
भीता	४.	डरी हुई	वाचम्	१०.	गिड़गिड़ा कर
यमुना	५.	यमुना	पतिता	८.	गिर पड़ी (और)
यदुनन्दनम् ।	७.	बलराम जी के	पादयोः	८.	पैरों पर
			नृप ॥	१.	हे राजन् !

श्लोकार्थ—हे राजन् ! इस प्रकार डाँटने पर डरी हुई यमुना चकित हो कर बलराम जी के पैरों पर गिर पड़ीं और गिड़गिड़ा कर बोलीं ॥

षड्विंशः श्लोकः

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

पदच्छेद— राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्य एक अंशेन विधृता जगती जगतः पते ॥

शब्दार्थ—

राम	२.	लोकाभिराम	यस्य	८.	जिस
राम	४.	बलराम जी	एक	८.	एक अाप के
महाबाहो	३.	महापराक्रमी	अंशेन	१०.	(अंश मात्र शेष जी)
न जाने	७.	नहीं जान पायी कि	विधृता	१२.	धारण करते हैं
तव	५.	मैं आपका	जगती	११.	जगत् को
विक्रमम् ।	६.	पराक्रम	जगतः पते ॥	१.	हे जगत् के स्वामी !

श्लोकार्थ—हे जगत् के स्वामी ! लोकाभिराम, महापराक्रमी बलराम जी मैं आपका पराक्रम नहीं जान पायी कि आपके एक अंश मात्र शेष जी जगत् को धारण करते हैं ॥

सप्तविंशः श्लोकः

परं भावं भगवतो भगवन् मामजानतीम् ।
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥२७॥

पदच्छेद— परम् भावम् भगवतः माम् भगवन् अजानतीम् ।
मोक्तुम् अर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नाम् भक्तवत्सल ॥

शब्दार्थ—

परम्	५.	वास्तविक	मोक्तुम्	११.	छोड़ देने
भावम्	६.	स्वरूप को	अर्हसि	१२.	योग्य हैं
भगवतः	४.	भगवान् के	विश्वात्मन्	३.	हे विश्वात्मन् !
भगवन्	१.	हे भगवन् !	प्रपन्नाम्	१०.	शरणागत को आप
माम्	९.	मुझ	भक्तवत्सल ॥	२.	हे भक्तवत्सल !
अजानतीम् ।	८	न जानती हुई			

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! हे भक्तवत्सल ! हे विश्वात्मन् ! आप भगवान् के वास्तविक स्वरूप को न जानती हुई मुझ शरणागत को आप छोड़ देने योग्य हैं ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

ततो व्यमुञ्चद् यमुनां याचितो भगवान् बलः ।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥

पदच्छेद— ततः व्यमुञ्चत् यमुनाम् याचितो भगवान् बलः ।
विजगाह जलम् स्त्रीभिः करेणुभिः इव इभराट् ॥

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	विजगाह	९.	क्रीडा करने लगे
व्यमुञ्चत्	६.	छोड़ दिया (और)	जलम्	८.	वैसे ही जल
यमुनाम्	५.	यमुना को	स्त्रीभिः	७.	वे स्त्रियों के साथ
याचितः	२.	प्रार्थना किये जाने पर	करेणुभिः	१२.	हथिनियों के साथ करता है
भगवान्	३.	भगवान्	इव	१०.	जैसे
बलः ।	४.	बलराम ने	इभराट् ॥	११.	गजराज

श्लोकार्थ—तदनन्तर प्रार्थना किये जाने पर भगवान् बलराम ने यमुना को छोड़ दिया । और वे स्त्रियों के साथ वैसे ही जल क्रीड़ा करने लगे जैसे गजराज हथिनियों के साथ करता है ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ।
भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

पदच्छेद— कामम् विहृत्य सलिलात् उत्तीर्णाय असित अम्बरे ।
भूषणानि महाऽर्हाणि ददौ कान्तिः शुभाम् स्रजम् ॥

शब्दार्थ—

कामम्	१. यथेष्ट	भूषणानि	६. आभूषण (और)
विहृत्य	२. विहार करके (जब वे)	महाऽर्हाणि	८. बहुमूल्य
सलिलात्	३. जल से	ददौ	१२. दिया
उत्तीर्णाय	४. निकले तब उन्हें	कान्तिः	५. लक्ष्मी जी ने
असित	६. दो नील	शुभाम्	१०. पवित्र
अम्बरे ।	७. वस्त्र	स्रजम् ॥	११. हार

श्लोकार्थ—यथेष्ट विहार करके जब वे जल से बाहर निकले तब उन्हें लक्ष्मी जी ने दो नील वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण और पवित्र हार दिया ॥

त्रिंशः श्लोकः

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ।
रेजे स्वलङ्कृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

पदच्छेद— वसित्वा वाससी नीले मालाम् आमुच्य काञ्चनीम् ।
रेजे सुअलङ्कृतः लिप्तः माहेन्द्रः इव वारणः ॥

शब्दार्थ—

वसित्वा	३. पहन कर	रेजे	१२. शोभायमान हुये
वाससी	२. वस्त्र	सुअलङ्कृतः	८. सुन्दर भूषणों से विभूषित होकर
नीले	१. दोनों नीले	लिप्तः	७. अङ्ग राग लगा कर
मालाम्	५. माला	माहेन्द्रः	६. इन्द्र के
आमुच्य	६. गले में डाल कर	इव	११. समान
काञ्चनीम् ।	४. सोने की	वारणः ॥	१०. हाथी के

श्लोकार्थ—दोनों नीले वस्त्र पहन कर, सोने की माला गले में डाल कर, अङ्गराग लगा कर, सुन्दर भूषणों से विभूषित होकर इन्द्र के हाथी के समान शोभायमान हुये ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाऽऽकृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१॥

पदच्छेद— अद्य अपि दृश्यते राजन् यमुना आकृष्ट वर्त्मना ।
बलस्य अनन्त वीर्यस्य वीर्यम् सूचयति इव हि ॥

शब्दार्थ—

अद्य	५. आज	बलस्य	१२. बलराम के
अपि	६. भी	अनन्त	१०. अनन्त
दृश्यते	७. दिखाई देती है	वीर्यस्य	११. शक्ति वाले
राजन्	१. हे राजन्	वीर्यम्	१३. पराक्रम को
यमुना	४. यमुना	सूचयति	१४. सूचना दे रही है
आकृष्ट	२. खींचे हुये	इव	८. मानों
वर्त्मना ।	३. मार्ग से	हि ॥	९. वह

श्लोकार्थ—हे राजन् ! खींचे हुये मार्ग से यमुना आज भी दिखाई देती है। मानों वह अनन्त शक्ति वाले बलराम के पराक्रम की सूचना दे रही है ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥

पदच्छेद— एवम् रामस्य सर्वाःनिशाः याताः एका इव रमतः व्रजे ।
रामस्य आक्षिप्त चित्तस्य माधुर्यैः व्रज योषिताम् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. इस प्रकार	रामस्य	७. बलराम जी के
सर्वाःनिशाः	१०. सभी रात्रियाँ	आक्षिप्त	५. मुग्ध
याताः	१२. व्यतीत हो गईं	चित्तस्य	६. चित्त वाले
एका इव	११. एक ही रात्रि के समान	माधुर्यैः	४. मधुरिमा से
रमतः	९. रमण करते हुये	व्रज	२. व्रज
व्रजे ।	८. व्रज में	योषिताम् ॥	३. बालाओं की

श्लोकार्थ—इस प्रकार व्रजबालाओं की मधुरिमा से मुग्ध चित्त वाले बलराम जी के व्रज में रमण करते हुये सभी रात्रियाँ एक ही रात्रि के समान व्यतीत हो गईं ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमः अध्यायः ॥६५॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

षट्षष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१॥

पदच्छेद— नन्दव्रजम् गते रामे करूष अधिपतिः नृप ।
वासुदेवः अहम् इति अज्ञः दूतम् कृष्णाय प्राहिणोत् ॥

शब्दार्थ—

नन्दव्रजम्	३.	नन्द के व्रज में	वासुदेवः अहम्	१२.	वासुदेव मैं हूँ
गते	४.	चले जाने पर	इति	११.	कि
रामे	२.	बलराम जी के	अज्ञः	६.	अज्ञानी
करूष	५.	करूष देश के	दूतम्	९.	एक दूत
अधिपतिः	७.	राजा ने	कृष्णाय	८.	श्रीकृष्ण के पास
नृप ।	१.	हे राजन् !	प्राहिणोत् ॥	१०.	भेजा

श्लोकार्थ—हे राजन् ! बलराम जी के नन्द के व्रज में चले जाने पर करूष देश के अज्ञानी राजा ने श्रीकृष्ण के पास दूत भेजा कि वासुदेव मैं हूँ ॥

द्वितीयः श्लोकः

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥२॥

पदच्छेद— त्वम् वासुदेवः भगवान् अवतीर्णः जगत् पतिः ।
इति प्रस्तोभितः बालैः मेने आत्मानम् अच्युतम् ॥

शब्दार्थ—

त्वम्	३.	आपने	इति	७.	इस प्रकार
वासुदेवः	५.	वासुदेव के रूप में	प्रस्तोभितः	८.	बहकाया हुआ वह
भगवान्	४.	भगवान्	बालैः	९.	मूर्खों द्वारा
अवतीर्णः	६.	अवतार लिया है	मेने	१२.	मान बैठा
जगत्	१.	संसार के	आत्मानम्	१०.	अपने को
पतिः ।	२.	स्वामी	अच्युतम् ॥	११.	भगवान्

श्लोकार्थ— संसार के स्वामी आपने वासुदेव के रूप में अवतार लिया है । इस प्रकार मूर्खों द्वारा बहकाया हुआ वह अपने को भगवान् मान बैठा ॥

तृतीयः श्लोकः

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥३॥

पदच्छेद— दूतम् च प्राहिणोत् मन्दः कृष्णाय अव्यक्त वर्त्मने।
द्वारकायाम् यथा बालः नृपः बालकृतः अबुधः ॥

शब्दार्थ—

दूतम् च	११.	दूत	द्वारकायाम्	१०.	द्वारका में
प्राहिणोत्	१२.	भेज दिया	यथा	१.	जैसे
मन्दः	५.	मन्दमति	बालः	३.	बालक
कृष्णाय	६.	श्रीकृष्ण के पास	नृपः	४.	राजा होता है (वैसे ही)
अव्यक्त	७.	अचिन्त्य	बालकृत	२.	बालकों का बनाया
वर्त्मने।	८.	गति वाले	अबुधः ॥	६.	मूर्ख ने

श्लोकार्थ—जैसे बालकों का बनाया बालक राजा होता है। वैसे ही मन्द मति मूर्ख ने अचिन्त्य गति वाले श्रीकृष्ण के पास द्वारका में दूत भेज दिया ॥

चतुर्थः श्लोकः

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम्।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥४॥

पदच्छेद— दूतः तु द्वारकाम् एत्य सभायाम् आस्थितम् प्रभुम्।
कृष्णम् कमल पत्राक्षम् राज सन्देशम् अब्रवीत् ॥

शब्दार्थ—

दूतः तु	१.	दूत ने	कृष्णम्	८.	श्रीकृष्ण से
द्वारकाम्	२.	द्वारका में	कमल	६.	कमल
एत्य	३.	आकर	पत्राक्षम्	७.	नयन
सभायाम्	४.	सभा में	राज	१०.	राजा का
आस्थितम्	५.	बैठे हुये	सन्देशम्	११.	सन्देश
प्रभुम्।	८.	भगवान्	अब्रवीत् ॥	१२.	कहा

श्लोकार्थ— दूत ने द्वारका में आकर सभा में बैठे हुये कमल नयन भगवान् श्रीकृष्ण से राजा का सन्देश कहा ॥

पञ्चमः श्लोकः

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥५॥

पदच्छेद— वासुदेवः अवतीर्णः अहम् एकः एव नच अपरः ।
भूतानाम् अनुकम्पार्थम् त्वम् तु मिथ्या अभिधाम् त्यज ॥

शब्दार्थ—

वासुदेवः	३.	वासुदेव के रूप में	भूतानाम्	१.	प्राणियों पर
अवतीर्णः	४.	अवतीर्ण	अनुकम्पार्थम्	२.	अनुग्रह करने के लिये
अहम् एकः	५.	एक मात्र मैं	त्वम् तु	९.	तुम अपना
एव	६.	ही हूँ	मिथ्या	१०.	मिथ्या
नच	८.	नहीं है	अभिधाम्	११.	नाम
अपरः ।	७.	दूसरा कोई	त्यज ॥	१२.	छोड़ दो

श्लोकार्थ—प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये वासुदेव के रूप में अवतीर्ण एक मात्र मैं ही हूँ। दूसरा कोई नहीं है। तुम अपना मिथ्या नाम छोड़ दो ॥

षष्ठः श्लोकः

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद् बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद् देहि ममाहवम् ॥६॥

पदच्छेद— यानि त्वम् अस्मत् चिह्नानि मौढ्यात् बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वा एहि माम् त्वम् शरणम् नोचेत् देहि मम आहवम् ॥

शब्दार्थ—

यानि	४.	जो	त्यक्त्वा	८.	उन्हें छोड़ कर
त्वम्	२.	तुमने	एहि	११.	आओ
अस्मत्	५.	मेरे	माम् त्वम्	९.	तुम मेरी
चिह्नानि	६.	चिह्न	शरणम्	१०.	शरण में
मौढ्यात्	३.	मूर्खता वश	नो चेत्	१२.	अन्यथा
बिभर्षि	७.	धारण कर रखे हैं	देहि	१४.	करो
सात्वत ।	१.	यदुवंशी	ममआहवम् ॥	१३.	मुझसे युद्ध

श्लोकार्थ—यदुवंशी तुमने मूर्खता वश जो मेरे चिह्न धारण कर रखे हैं। उन्हें छोड़ कर तुम मेरी शरण में आओ। अन्यथा मुझसे युद्ध करो ॥

सप्तमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥७॥

पदच्छेद— कत्थनम् तत् उपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्य अल्प मेधसः ।
उग्रसेन आदयः सभ्याः उच्चकैः जहसुः तदा ॥

शब्दार्थ—

कत्थनम्	६.	बहकाने वाली बात	उग्रसेन	८.	उग्रसेन
तत्	५.	यह	आदयः	९.	आदि
उपाकर्ण्य	७.	सुन कर	सभ्याः	१०.	सभासद्
पौण्ड्रकस्य	४.	पौण्ड्रक की	उच्चकैः	११.	जोर जोर से
अल्प	२.	अल्प	जहसुः	१२.	हंसने लगे
मेधसः।	३.	बुद्धि वाले	तदा ॥	१.	तब

श्लोकार्थ—तब अल्प बुद्धि वाले पौण्ड्रक की यह बहकाने वाली बात सुन कर उग्रसेन आदि सभासद् जोर-जोर से हंसने लगे ॥

अष्टमः श्लोकः

उवाच दूतं भगवान् परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥८॥

पदच्छेद— उवाच दूतम् भगवान् परिहास कथाम् अनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैः त्वम् एवम् विकत्थसे ॥

शब्दार्थ—

उवाच	६	कहा	उत्स्रक्ष्ये	९.	छोड़ूंगा
दूतम्	५.	दूत से	मूढ	७.	मूर्ख (मैं चक्र आदि)
भगवान्	४.	भगवान् श्रीकृष्ण ने	चिह्नानि	८.	चिह्नों को (उन पर)
परिहास	१.	हंसी की	यैः त्वम्	१०.	जिनके बहकाने से तू
कथाम्	२.	बात के	एवम्	११	इस प्रकार
अनु।	३.	पश्चात्	विकत्थसे ॥	१२.	बहक रहा है

श्लोकार्थ—हंसी की बात के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत से कहा—मूर्ख ! मैं चक्र आदि चिह्नों को उन पर छोड़ूंगा, जिनके बहकाने से तू इस प्रकार बहक रहा है ॥

नवमः श्लोकः

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥९॥

पदच्छेद— मुखम् तत् अपिधाय अज्ञ कङ्क गृध्रवटैः वृतः ।
शयिष्यसे हतः तत्र भविता शरणम् शुनाम् ॥

शब्दार्थ—

मुखम्	५.	मुँह को	शयिष्यसे	१०.	सो जायेगा (और)
तत्	४.	उस	हतः	३.	मारा जा कर
अपिधाय	६.	छिपाकर	तत्र	२.	वहाँ तू
अज्ञ	१.	मूर्ख	भविता	१३.	होगा
कङ्क	७.	चील	शरणम्	१२.	शरण
गृध्रवटैः	८.	गीध, बटेर आदि से	शुनाम् ॥	११.	कुत्तों की
वृतः ।	९.	घिर कर			

श्लोकार्थ—मूर्ख ! वहाँ तू मारा जाकर उस मुँह को छिपाकर चील, बटेर आदि से घिर कर सो जायेगा, और कुत्तों की शरण होगा ॥

दशमः श्लोकः

इति दूतस्तवाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥१०॥

पदच्छेद— इति दूतः तत् आक्षेपम् स्वामिने सर्वम् आहरत् ।
कृष्णः अपि रथम् आस्थाय काशीम् उपजगाम ह ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	इस प्रकार	कृष्णः	८.	श्रीकृष्ण ने
दूतः	३.	दूत	अपि	९.	भी
तत्	२.	उसका	रथम्	१०.	रथ पर
आक्षेपम्	५.	आक्षेप युक्त वचन	आस्थाय	११.	चढ़ कर
स्वामिने	६.	अपने स्वामी के पास	काशीम्	१२.	काशी पर
सर्वम्	४.	समस्त	उपजगाम ह ॥	१३.	चढ़ाई कर दी
आहरत् ।	७.	ले गया (और)			

श्लोकार्थ—इस प्रकार उसका दूत समस्त आक्षेप युक्त वचन अपने स्वामी के पास ले गया। और श्रीकृष्ण ने भी रथ पर चढ़ कर काशी पर चढ़ाई कर दी ॥

एकादशः श्लोकः

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद् द्रुतम् ॥११॥

पदच्छेद — पौण्ड्रकः अपि तत् उद्योगम् उपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्याम् संयुक्तः निश्चक्राम पुरात् द्रुतम् ॥

शब्दार्थ—

पौण्ड्रकः	५.	पौण्ड्रक	अक्षौहिणीभ्याम्	८.	दो अक्षौहिणी सेना
अपि	६.	भी	संयुक्तः	९.	लेकर
तत्	१.	उनकी	निश्चक्राम	११.	बाहर निकला
उद्योगम्	२.	चेष्टा को	पुरात्	१०.	नगर से
उपलभ्य	३.	जान कर	द्रुतम् ॥	७.	शीघ्र
महारथः ।	४.	महारथी			

श्लोकार्थ—उनकी चेष्टा को जान कर महारथी पौण्ड्रक भी शीघ्र दो अक्षौहिणी सेना लेकर नगर से बाहर निकला ॥

द्वादशः श्लोकः

तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

पदच्छेद— तस्य काशीपतिः मित्रम् पार्ष्णिग्राहः अन्वयात् ।
अक्षौहिणीभिः तिसृभिः अपश्यत् पौण्ड्रकम् हरिः ॥

शब्दार्थ—

तस्य	२.	उसका	नृप ।	१.	हे राजन् !
काशीपतिः	४.	काशी नरेश	अक्षौहिणीभिः	८.	अक्षौहिणी सेना लेकर
मित्रम्	३.	मित्र	तिसृभिः	७.	तीन
पार्ष्णि	५.	सहायता	अपश्यत्	१२.	देखा
ग्राहः	६.	करने के लिये	पौण्ड्रकम्	११.	पौण्ड्रक को
अन्वयात्	९.	पीछे-पीछे आया	हरिः ॥	१०.	अब श्रीकृष्ण ने

श्लोकार्थ—हे राजन् ! उसका मित्र काशी नरेश सहायता करने के लिये तीन अक्षौहिणी सेना लेकर पीछे-पीछे आया । तब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक को देखा ॥

त्रयोदशः श्लोकः

शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥१३॥

पदच्छेद— शङ्ख अरि असि गदा शार्ङ्ग श्रीवत्स आदि उपलक्षितम् ।
बिभ्राणम् कौस्तुभ मणिम् वनमाला विभूषितम् ॥

शब्दार्थ—

शङ्ख	१.	शङ्ख	उपलक्षितम् ।	७.	युक्त
अरि	२.	चक्र	बिभ्राणम्	१०.	धारण किये हुये तथा
असि	३.	तलवार	कौस्तुभ	८.	कौस्तुभ
गदा	४.	गदा	मणिम्	६.	मणि
शार्ङ्ग	५.	शार्ङ्ग धनुष	वनमाला	११.	वनमाला से
श्रीवत्स आदि	६.	श्रीवत्स चिह्न आदि से	विभूषितम् ॥	१२.	विभूषित (पौण्ड्रक को देखा)

श्लोकार्थ—हे राजन् ! शङ्ख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्ग धनुष श्रीवत्स आदि से युक्त कौस्तुभ मणि धारण किये हुये, वनमाला से विभूषित पौण्ड्रक को देखा ॥

चतुर्दशः श्लोकः

कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१४॥

पदच्छेद— कौशेय वाससी पीते वसानम् गरुड़ ध्वजम् ।
अमूल्य मौल्य आभरणम् स्फुरन् मकर कुण्डलम् ॥

शब्दार्थ—

कौशेय	१.	रेशमी	अमूल्य	७.	अमूल्य
वाससी	३.	वस्त्र	मौल्य	८.	मुकुट एवं
पीते	२.	पीले	आभरणम्	६.	आभूषण वाले तथा
वसानम्	४.	पहने हुये	स्फुरन्	१०.	जगमगाते हुये
गरुड़	५.	गरुड़ के चिन्ह से	मकर	११.	मकराकृत
ध्वजम् ।	६.	अंकित ध्वज वाले	कुण्डलम् ॥	१२.	कुण्डल वाले (पौण्ड्रक को देखा)

श्लोकार्थ—रेशमी पीले वस्त्र पहिने हुये गरुड़ के चिह्न से अंकित ध्वजा वाले अमूल्य मुकुट एवं आभूषण वाले तथा जगमगाते हुये मकराकृत कुण्डल वाले पौण्ड्रक को देखा ॥

पञ्चदशः श्लोकः

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

पदच्छेद— दृष्ट्वा तम् आत्मनः तुल्य वेषम् कृत्रिमम् आस्थितम् ।
यथा नटम् रङ्ग गतम् विजहास भृशम् हरिः ॥

शब्दार्थ—

दृष्ट्वा	११.	देख कर	यथा	६.	समान
तम्	१०.	उसे	नटम्	८.	अभिनेता के
आत्मनः	१.	अपने	रङ्ग	६.	रंग मंच पर
तुल्य	२.	समान	गतम्	७.	आये हुये
वेषम्	३.	वेश वाले	विजहास	१४.	हंसने लगे
कृत्रिमम्	४.	बनावटी	भृशम्	१३.	खिल-खिला कर
आस्थितम् ।	५.	रूप धारण करके	हरिः ॥	१२.	श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—अपने समान वेश वाले बना वटी रूप धारण करके रंग मंच पर आये हुये अभिनेता के समान उसे देख कर श्रीकृष्ण खिल-खिला कर हंसने लगे ॥

षोडशः श्लोकः

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥

पदच्छेद— शूलैः गदाभिः परिघैः शक्ति ऋष्टि प्रास तोमरैः ।
असिभिः पट्टिशैः बाणैः प्राहरन् अरयः हरिम् ॥

शब्दार्थ—

शूलैः	३.	त्रिशूल	असिभिः	१०.	तलवार
गदाभिः	४.	गदा	पट्टिशैः	११.	पट्टिश और
परिघैः	५.	मुद्गर	बाणैः	१२.	बाणों से
शक्ति	६.	शक्ति	प्राहरन्	१३.	प्रहार किया
ऋष्टि	७.	ऋष्टि	नरयो	१.	शत्रुओं ने
प्रास	८.	भाला	हरिम् ॥	२.	श्रीकृष्ण पर
तोमरैः ।	९.	तोमर			

श्लोकार्थ—शत्रुओं ने श्रीकृष्ण पर त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, भाला, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाणों से प्रहार किया ॥

सप्तदशः श्लोकः

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।
गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥१७॥

पदच्छेद— कृष्णः तु तत् पौण्ड्रक काशिराजयोः बलम् गज स्यन्दन वाजि पत्तिमत् ।
गदा असि चक्रेषुभिः आर्दयत भृशम् यथायुगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥

शब्दार्थ—

कृष्णः तु	५.	वैसे ही श्रीकृष्ण ने	गदा असि	११.	गदा, तलवार
तत्	६.	उस	चक्रेषुभिः	१४.	चक्र और बाणों से
पौण्ड्रक	७.	पौण्ड्रक और	आर्दयत	१६.	तहस-नहस कर दिया
काशिराजयोः	८.	काशिराज की	भृशम्	१५.	बहुत ही
बलम् गज	९.	सेना, हाथी	यथायुगान्ते	१.	जैसे प्रलय के समय
स्यन्दन	१०.	रथ	हुतभुक्	२.	अग्नि
वाजि	११.	घोड़े और	पृथक्	३.	सभी प्रकार के
पत्तिमत् ।	१२.	पैदल की चतुरंगिनी सेना को	प्रजाः ॥	४.	प्राणियों को जला देता है

श्लोकार्थ—जैसे अग्नि सभी प्रकार के प्राणियों को जला देता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने उस पौण्ड्रक और काशिराज की सेना, हाथी, घोड़े और पैदल की चतुरंगिनी सेना को गदा, तलवार, चक्र और बाणों से बहुत ही तहस-नहस कर दिया ॥

अष्टादशः श्लोकः

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥

पदच्छेद— आयोधनम् तत् रथ वाजि कुञ्जर द्विपत् खर उष्ट्रैः अरिणा अवखण्डितैः ।
बभौ चितम् मोदवहम् मनस्विनाम् आक्रीडनम् भूतपतेः इव उल्बणम् ॥

शब्दार्थ—

आयोधनम्	२.	रणभूमि	बभौ	१६.	लग रही थी
तत्	१.	वह	चितम्	९.	पट गई (जिससे वह)
रथ वाजि	५.	रथ, घोड़े	मोदवहम्	१५.	आनन्द दायक
कुञ्जर	६.	हाथी	मनस्विनाम्	१४.	शूर वीरों के लिये
द्विपत्	७.	मनुष्य	आक्रीडनम्	१३.	क्रीडास्थली और
खर उष्ट्रैः	८.	गधे और ऊँटों	भूतपतेः	११.	भूतनाथ (शंकर) की
अरिणा	३.	चक्र से	इव	१०.	मानों
अवखण्डितैः ।	४.	खण्ड-खण्ड हुये	उल्बणम् ॥	१२.	भयंकर

श्लोकार्थ—वह रणभूमि चक्र से खण्ड-खण्ड हुये रथ, हाथी, घोड़े, मनुष्य, गधे और ऊँटों से पट गई। जिससे वह मानों भूतनाथ शंकर की भयंकर क्रीडास्थली और शूरवीरों के लिये आनन्द दायक लग रही थी ॥

एकोनविंशः श्लोकः

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भोः पौण्ड्रक यद् भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥१९॥

पदच्छेद— अथ आह पौण्ड्रकम् शौरिः भो-भोः पौण्ड्रक यत्भवान् ।
दूतवाक्येन माम् आह तानि अस्त्राणि उत्सृजामि ते ॥

शब्दार्थ—

अथ	१.	अब	दूतवाक्येन	८.	दूत के द्वारा
आह	४.	कहा	माम्	९.	मुझे
पौण्ड्रकम्	३.	पौण्ड्रक से	आह	१०.	कहलाया था
शौरिः	२.	श्रीकृष्ण ने	तानि	११.	उन
भोभोः	५.	अरे !	अस्त्राणि	१२.	अस्त्रों को
पौण्ड्रक	६.	पौण्ड्रक	उत्सृजामि	१४.	छोड़ रहा हूँ
यत्भवान् ।	७.	जो तूने	ते ॥	१३.	तुझ पर

श्लोकार्थ—अब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक से कहा । अरे ! पौण्ड्रक जो तूने दूत के द्वारा मुझे कहलाया था, उन अस्त्रों को तुझ पर छोड़ रहा हूँ ॥

विंशः श्लोकः

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥२०॥

पदच्छेद— त्याजयिष्ये अभिधानम् मे यत् त्वया अज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणम् ते अद्य यदि न इच्छामि संयुगम् ॥

शब्दार्थ—

त्याजयिष्ये	८.	छुड़ा दूँगा	व्रजामि	१६.	ग्रहण करूँगा
अभिधानम्	६.	नाम	शरणम्	१५.	शरण
मे	४.	मेरा	ते	१४.	तेरी
यत्	२.	जो	अद्य	१०.	आज (मैं)
त्वया	३.	तूने	यदि	९.	यदि
अज्ञ	१.	रे मूर्ख !	न	१२.	नहीं
मृषा	५.	झूठ-मूठ	इच्छामि	१३.	कर सकूँगा तो
धृतम् ।	७.	रख लिया है उसे	संयुगम् ॥	११.	युद्ध

श्लोकार्थ—रे मूर्ख ! जो तूने मेरा झूठ-मूठ नाम रख लिया है उसे छुड़ा दूँगा । यदि आज मैं युद्ध नहीं कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा ॥

एकविंशः श्लोकः

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद् रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥२१॥

पदच्छेद— इति क्षिप्त्वा शितैः बाणैः विरथी कृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरः अवृश्चत् रथअङ्गेन वज्रेण इन्द्रः यथा गिरेः ।।

शब्दार्थ—

इति	१.	इस प्रकार	शिरः	९.	सिर को (वैसे ही)
क्षिप्त्वा	२.	तिरस्कार करके	अवृश्चत्	१०.	काट डाला
शितैः	३.	तीक्ष्ण	रथअङ्गेन	८.	चक्र से उसके
बाणैः	४.	बाणों से	वज्रेण	१३.	वज्र से
विरथी	६.	रथ विहीन	इन्द्रः	१२.	इन्द्र ने
कृत्य	७.	करके	यथा	११.	जैसे
पौण्ड्रकम् ।	५.	पौण्ड्रक को	गिरेः ।।	१४.	पहाड़ों को काट दिया था

श्लोकार्थ—इस प्रकार तिरस्कार करके तीक्ष्ण बाणों से पौण्ड्रक को रथ विहीन करके चक्र से उसके सिर को वैसे ही काट डाला। जैसे इन्द्र ने वज्र से पहाड़ों को काट दिया था ।।

द्वाविंशः श्लोकः

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥

पदच्छेद— तथा काशिपतेः कायात् शिरः उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत् काशिपुर्याम् पद्म कोशम् इव अनिलः ।।

शब्दार्थ—

तथा	१.	इसी प्रकार (भगवान् श्रीकृष्ण ने)	न्यपातयत्	८.	गिरा दिया
काशिपतेः	३.	काशी नरेश का	काशिपुर्याम्	७.	काशी पुरी में
कायात्	५.	धड़ से	पद्म	११.	कमल का
शिरः	४.	सिर	कोशम्	१२.	पुष्प गिरा देता है
उत्कृत्य	६.	उड़ा कर	इव	९.	जैसे
पत्रिभिः ।	२.	बाणों से	अनिलः ।।	१०.	वायु

श्लोकार्थ—इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने बाणों से काशी नरेश का सिर धड़ से उड़ा कर काशी पुरी में गिरा दिया। जैसे वायु कमल का पुष्प गिरा देता है ।।

त्रयोविंशः श्लोकः

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत् सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥

पदच्छेद— एवम् मत्सरिणम् हत्वा पौण्ड्रकम् ससखम् हरिः ।
द्वारकाम् आविशत् सिद्धैः गीयमान कथा अमृतः ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	द्वारकाम्	७.	द्वारका
मत्सरिणम्	२.	द्वेष रखने वाले	आविशत्	८.	पहुँच गये (उत्तम समय)
हत्वा	५.	मार कर	सिद्धैः	९.	सिद्ध गण (भगवान् की)
पौण्ड्रकम्	३.	पौण्ड्रक को	गीयमान	१२.	गान कर रहे थे
ससखम्	४.	मित्र काशि राज के साथ	कथा	११.	कथा का
हरिः ।	६.	भगवान् श्रीकृष्ण	अमृतः ॥	१०.	अमृतमयी

श्लोकार्थ—इस प्रकार द्वेष रखने वाले पौण्ड्रक को मित्र काशिराज के साथ मार कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका पहुँच गये । उस समय सिद्ध गण भगवान् की अमृतमयी कथा का गान कर रहे थे ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥

पदच्छेद— सः नित्यम् भगवत् ध्यान प्रध्वस्त अखिल बन्धनः ।
बिभ्राणः च हरेः राजन् स्वरूपम् तन्मयः अभवत् ॥

शब्दार्थ—

सः	२.	वह (पौण्ड्रक)	बिभ्राणः	११.	धारण करने से (उनके)
नित्यम्	३.	नित्य	च	९.	और
भगवत्	४.	भगवान् का	हरेः	१०.	श्रीकृष्ण का
ध्यान	५.	ध्यान करने के कारण	राजन्	१.	हे राजन्
प्रध्वस्त	८.	नष्ट करके	स्वरूपम्	१२.	स्वरूप को
अखिल	६.	सम्पूर्ण	तन्मयः	१३.	भगवत्स्वरूप
बन्धनः ।	७.	बन्धनों को	अभवत् ॥	१४.	हो गया

श्लोकार्थ—हे राजन् ! वह पौण्ड्रक नित्य भगवान् का ध्यान करने के कारण सम्पूर्ण बन्धनों को नष्ट करके और श्रीकृष्ण का स्वरूप धारण करने से भगवत्स्वरूप हो गया ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिशियरे जनाः ॥२५॥

पदच्छेद— शिरः पतितम् आलोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किम् इदम् कस्य वा वक्त्रम् इति संशिशियरे जनाः ॥

शब्दार्थ—

शिरः	३. सिर	कस्य	८. किसका
पतितम्	४. गिरा	वा	७. अथवा
आलोक्य	५. देख कर	वक्त्रम्	६. मुख है
राजद्वारे	१. राजमहल के दरवाजे पर	इति	१०. इस प्रकार
सकुण्डलम् ।	२. कुण्डल सहित	संशिशियरे	१२. सन्देह करने लगे
किम् इदम्	६. यह क्या है	जनाः ॥	११. लोग

श्लोकार्थ—राजमहल के दरवाजे पर कुण्डल सहित सिर गिरा देख कर यह क्या है अथवा किसका मुख है इस प्रकार लोग सन्देह करने लगे ।।

षड्विंशः श्लोकः

राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन् नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥२६॥

पदच्छेद— राज्ञः काशिपतेः ज्ञात्वा महिष्यः पुत्र बान्धवाः ।
पौराः च हा हताः राजन् नाथ-नाथ इति प्रारुदन् ॥

शब्दार्थ—

राज्ञः	१. राजा	पौराः च	७. और नागरिक
काशिपतेः	२. काशिपति का सिर	हा हताः	८. हाय सर्वनाश हो गया
ज्ञात्वा	३. जान कर	राजन्	९. हा राजन् !
महिष्यः	४. रानियाँ	नाथ-नाथ	१०. हा नाथ हा स्वामी
पुत्र	५. पुत्र	इति	११. इस प्रकार
बान्धवाः ।	६. बन्धु	प्रारुदन् ॥	१२. विलाप करने लगीं

श्लोकार्थ—राजा काशिपति का सिर जान कर रानियाँ, पुत्र, बन्धु और नागरिक हाय सर्वनाश हो गया, हा राजन्, हा नाथ, हा स्वामी इस प्रकार विलाप करने लगे ।।

सप्तविंशः श्लोकः

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥२७॥

पदच्छेद— सुदक्षिणः तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिम् पितुः ।
निहत्य पितृ हन्तारम् यास्यामि अपचितिम् पितुः ॥

शब्दार्थ—

सुदक्षिणः	३.	सुदक्षिण ने	निहत्य	६.	मार कर
तस्य	१.	उसके	पितुः	७.	पिता का
सुतः	२.	पुत्र	हन्तारम्	८.	हत्या करने वाले को
कृत्वा	६.	करके कहा मैं	यास्यामि	१२.	हो जाऊँगा
संस्थाविधिम्	५.	अन्त्येष्टि संस्कार	अपचितिम्	११.	ऋण से उऋण
पितुः ।	४.	पिता का	पितुः ॥	१०.	पिता के

श्लोकार्थ—उसके पुत्र सुदक्षिण ने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार करके कहा—मैं पिता की हत्या करने वाले को मार कर पिता के ऋण से उऋण हो जाऊँगा ॥

अष्टविंशः श्लोकः

इत्यात्मनाभिसन्धाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

पदच्छेद— इति आत्मना अभिसन्धाय स उपाध्यायः महेश्वरम् ।
सुदक्षिणः अर्चयामास परमेण समाधिना ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	ऐसा	महेश्वरम् ।	९.	भगवान् शङ्कर को
आत्मना	२.	मन में	सुदक्षिणः	४.	सुदक्षिण
अभिसन्धाय	३.	निश्चय करके	अर्चयामास	१०.	आराधना करने लगा
स	६.	साथ	परमेण	७.	अत्यन्त
उपाध्यायः	५.	कुल पुरोहित के	समाधिना ॥	८.	एकाग्रता से

श्लोकार्थ—ऐसा मन में निश्चय करके सुदक्षिण कुल पुरोहित के साथ अत्यन्त एकाग्रता से भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगा ॥

एकोनत्रिंशः श्लोकः

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद् भवः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥२९॥

पदच्छेद— प्रीतः अविमुक्ते भगवान् तस्मै वरम् अदात् भवः ।
पितृ हन्तृ वधउपायम् सः वव्रे वरम् ईप्सितम् ॥

शब्दार्थ—

प्रीतः	२.	प्रसन्न हुये	पितृ	८.	पिता की
अविमुक्ते	१.	काशी में	हन्तृ	९.	हत्या करने वाले के
भगवान्	३.	भगवान्	वधउपायम्	१०.	वध का उपाय (अपने)
तस्मै	५.	उसे	सः	७.	उसने
वरम् अदात्	६.	वर दिया	वव्रे वरम्	१२.	वर के रूप में माँगा
भवः ।	४.	शङ्कर ने	ईप्सितम् ॥	११.	अभीष्ट

श्लोकार्थ—काशी में प्रसन्न हुये भगवान् शङ्कर ने उसे वर दिया। उसने पिता की हत्या करने वाले के वध का उपाय अपने अभीष्ट वर के रूप में माँगा ॥

त्रिंशः श्लोकः

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥३०॥

पदच्छेद— दक्षिणाग्निम् परिचर ब्राह्मणैः समम् ऋत्विजम् ।
अभिचार विधानेन सः च अग्निः प्रमथैः वृतः ॥

शब्दार्थ—

दक्षिणाग्निम्	४.	दक्षिणाग्नि की	अभिचार	५.	अभिचार
परिचर	७.	आराधना करो	विधानेन	६.	विधि से
ब्राह्मणैः	१.	ब्राह्मणों के	सः च अग्निः	८.	वह अग्नि
समम्	२	साथ मिलकर	प्रमथैः	९.	प्रमथ गणों के
ऋत्विजम् ।	३.	ऋत्विक् बने	वृतः ॥	१०.	साथ प्रकट होगा

श्लोकार्थ—शिव ने कहा—तुम ब्राह्मणों के साथ मिलकर ऋत्विक् बने दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करो। वह अग्नि प्रमथ गणों के साथ प्रकट होगा ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन् व्रती ॥३१॥

पदच्छेद— साधयिष्यति सङ्कल्पम् अब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इति आदिष्टः तथा चक्रे कृष्णाय अभिचरन् व्रती ।।

शब्दार्थ—

साधयिष्यति	४.	पूरा करेगा	आदिष्टः	७.	आदेश पाकर
सङ्कल्पम्	३.	तुम्हारा सङ्कल्प	तथा चक्रे	६.	वह
अब्रह्मण्ये	१.	ब्राह्मणों के अभक्त पर	कृष्णाय	८.	श्रीकृष्ण के लिये
प्रयोजितः ।	२.	प्रेरित किया गया (वह)	अभिचरन्	१०.	अभिचार किया
इति	६.	ऐसा	व्रती ।।	५.	व्रती सुदक्षिण ने

श्लोकार्थ—ब्राह्मणों के अभक्त पर प्रेरित किया गया वह तुम्हारा सङ्कल्प पूरा करेगा। व्रती सुदक्षिण ने ऐसा आदेश पाकर श्रीकृष्ण के लिये वह अभिचार किया ।।

द्वात्रिंशः श्लोकः

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥३२॥

पदच्छेद— ततः अग्निः उत्थितः कुण्डात् मूर्तिमान् अतिभीषणः ।
तप्त ताम्र शिखाश्मश्रुः अङ्गार उद्गारि लोचनः ।।

शब्दार्थ—

ततः	१.	तदनन्तर	तप्त	४.	तपे हुये
अग्निः	१०.	अग्नि	ताम्र शिखा	५.	ताँबे के समान लाल शिखा एवम्
उत्थितः	१२.	प्रकट हुआ	श्मश्रुः	६.	दाढ़ी-मूँछ वाला और
कुण्डात्	११.	यज्ञ कुण्ड से	अङ्गार	८.	अङ्गारे
मूर्तिमान्	३.	शरीरधारी	उद्गारि	९.	उगलने वाला
अतिभीषणः ।	२.	अत्यन्त भयानक	लोचनः ।।	७.	आँखों से

श्लोकार्थ—तदनन्तर अत्यन्त भयानक शरीरधारी, तपे हुये ताँबे के समान लाल शिखा एवम् दाढ़ी मूँछ वाला और आँखों से अङ्गारे उगलने वाला अग्नि यज्ञ कुण्ड से प्रकट हुआ ।।

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन् सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥३३॥

पदच्छेद— दंष्ट्रा उग्र भ्रुकुटी दण्ड कठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन् सृक्किणी नग्नः विधुन्वन् त्रिशिखम् ज्वलन् ॥

शब्दार्थ—

दंष्ट्रा उग्र	१.	उग्र दाढ़ों और	आलिहन्	८.	चाट रहा था (उसका)
भ्रुकुटी	३.	भौंहों के कारण उसका	सृक्किणी	७.	मुँह के दोनों कोने
दण्ड	२.	तनी हुई	नग्नः	६.	शरीर नंगा था (वह)
कठोर	५.	भयंकर था (वह)	विधुन्वन्	११.	घुमा रहा था (और वह)
आस्यः	४.	मुख	त्रिशिखम्	१०.	त्रिशूल को
स्वजिह्वया ।	६.	अपनी जीभ से	ज्वलन् ॥	१२.	स्वयम् देदीप्यमान था

श्लोकार्थ—उग्र दाढ़ों और तनी हुई भौंहों के कारण उसका मुख भयंकर था। वह अपनी जीभ से मुँह के दोनों कोने चाट रहा था। वह त्रिशूल को घुमा रहा था। और वह स्वयम् देदीप्यमान था ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद् वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥३४॥

पदच्छेद— पद्भ्याम् ताल प्रमाणाभ्याम् कम्पयन् अवनीतलम् ।
सः अभ्यधावत् वृतः भूतैः द्वारकाम् प्रदहन् दिशः ॥

शब्दार्थ—

पद्भ्याम्	३.	पैरों से	अभ्यधावत्	१२.	दौड़ने लगा
ताल	१.	ताड़ के पेड़	वृतः	१०.	साथ
प्रमाणाभ्याम्	२.	बराबर	भूतैः	९.	भूत गणों के
कम्पयन्	५.	कंपाता हुआ	द्वारकाम्	११.	द्वारका की ओर
अवनीतलम् ।	४.	पृथ्वीतल को	प्रदहन्	७.	जलाता हुआ
सः	८.	वह	दिशः ॥	६.	दिशाओं को

श्लोकार्थ—ताड़ के पेड़ के बराबर पैरों से पृथ्वी तल को कंपाता हुआ तथा दिशाओं को जलाता हुआ वह गणों के साथ द्वारका की ओर दौड़ने लगा ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥३५॥

पदच्छेद— तम् आभिचार दहनम् आयान्तम् द्वारका ओकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगाः यथा ॥

शब्दार्थ—

तम्	१. उस	विलोक्य	५. देखकर		
अभिचार	२. अभिचार की	तत्रसुः	८. वैसे ही डर गये		
दहनम्	३. अग्नि को	सर्वे	६. सभी		
आयान्तम्	४. आते हुये	वनदाहे	११. वन में अग्नि लगने पर		
द्वारका	७. द्वारका	मृगाः	१२. हरिण डर जाते है		
ओकसः ।	८. वासी	यथा ॥	१०. जैसे		

श्लोकार्थ—उस अभिचार की अग्नि को आते हुये देखकर सभी द्वारकावासी वैसे ही डर गये। जैसे वन में अग्नि लगने पर हरिण डर जाते हैं ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदह्यतः पुरम् ॥३६॥

पदच्छेद— अक्षैः सभायाम् क्रीडन्तम् भगवन्तम् भय आतुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥

शब्दार्थ—

अक्षैः	४. पासों से	त्राहि	११. रक्षा कीजिये
सभायाम्	३. सभा में	त्राहि	१२. रक्षा कीजिये
क्रीडन्तम्	५. खेलते हुये	त्रिलोकेश	७. तीनों लोकों के स्वामी
भगवन्तम्	६. भगवान् से कहने लगे	वह्नेः	८. अग्नि से
भय	१. भय से	प्रदहतः	६. जलते हुये
आतुराः ।	२. व्याकुल (वे लोग)	पुरम् ॥	१०. नगर की

श्लोकार्थ—भय से व्याकुल वे लोग सभा में पासों से खेलते हुये भगवान् से कहने लगे—तीनों लोकों के स्वामी ! अग्नि से जलते हुये नगर की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्यः सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥३७॥

पदच्छेद— श्रुत्वा तत् जन वैक्लव्यम् दृष्ट्वा स्वानाम् च साध्वसम् ।
शरण्यः सम्प्रहस्य आह मा भैष्ट इति अवितास्मि अहम् ॥

शब्दार्थ—

श्रुत्वा	३. सुनकर	शरण्यः	७. शरणागतवत्सल
तत् जन	१. लोगों की वह	सम्प्रहस्य	८. हंस कर
वैक्लव्यम्	२. विकलता	आह	६. कहा
दृष्ट्वा	६. देख कर	मा	१०. मत
स्वानाम् च	४. और स्वजनों का	भैष्ट इति	११. डरो
साध्वसम् ।	५. भय	अवितास्मि	१३. रक्षा करूँगा
		अहम् ॥	१२. मैं (तुम लोगों की)

श्लोकार्थ—लोगों की वह विकलता सुनकर और स्वजनों का भय देखकर शरणागत वत्सल भगवान् ने कहा—मत डरो, मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा ॥

अष्टात्रिंशः श्लोकः

सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥३८॥

पदच्छेद— सर्वस्य अन्तः बहिः साक्षी कृत्याम् माहेश्वरीम् विभुः ।
विज्ञाय तत् विघात अर्थम् पार्श्वस्थम् चक्रम् आदिशत् ॥

शब्दार्थ—

सर्वस्य	१. सबके	विज्ञाय	८. जानकर
अन्तः	२. भीतर और	तत्	६. उसके
बहिः	३. बाहर की बातें	विघात	१०. नाश के
साक्षी	४. जानने वाले (श्रीकृष्ण ने)	अर्थम्	११. लिये
कृत्याम्	७. कृत्या को	पार्श्वस्थम्	१२. समीप में स्थित
माहेश्वरीम्	६. शंकर की	चक्रम्	१३. सुदर्शन चक्र को
विभुः ।	५. भगवान्	आदिशत् ॥	१४. आदेश दिया

श्लोकार्थ—सबके भीतर और बाहर की बातें जानने वाले श्रीकृष्ण ने भगवान् शङ्कर की कृत्या को जानकर उसके नाश के लिये समीप में स्थित सुदर्शन चक्र को आदेश दिया ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥

पदच्छेद—तत् सूर्यकोटि प्रतिमम् सुदर्शनम् जाज्वल्यमानम् प्रलय अनल प्रभम् ।
स्वतेजसा खम् ककुभः अथ रोदसी चक्रम् मुकुन्द अस्त्रम् अथ अग्निम् आर्दयत् ॥

शब्दार्थ—

तत्	९.	उस	स्वतेजसा खम्	१२.	अपने तेज से आकाश
सूर्यकोटि	१.	करोड़ों सूर्य के	ककुभः अथ	१३.	दिशा और
प्रतिमम्	२.	समान	रोदसी	१४.	अन्तरिक्ष को चमका कर
सुदर्शनम्	१०.	सुदर्शन	चक्रम्	११.	चक्र ने
जाज्वल्यमानम्	३.	तेजस्वी	मुकुन्द	७.	भगवान् के
प्रलय	४.	प्रलय कालीन	अस्त्रम् अथ	८.	अस्त्र
अनल	५.	अग्नि के समान	अग्निम्	१५.	अभिचार अग्नि को
प्रभम् ।	६.	कान्तिमान्	आर्दयत् ॥	१६.	कुचल डाला

श्लोकार्थ—करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, प्रलय कालीन अग्नि के समान कान्तिमान्, भगवान् के अस्त्र उस सुदर्शन चक्र ने अपने तेज से आकाश, दिशा और अन्तरिक्ष को चमका कर अभिचार-अग्नि को कुचल डाला ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत् स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥

पदच्छेद—कृत्या अनलः प्रतिहतः सः रथाङ्गपाणेः अस्त्र ओजसा सः नृप भग्न मुखः निवृत्तः ।
वाराणसीम् परिसमेत्य सुदक्षिणम् तम् सर्त्विग्जनम् समदहत् स्वकृतः अभिचारः ॥

शब्दार्थ—

नृप	१.	राजन्	वाराणसीम्	१०.	वाराणसी
कृत्या	५.	कृत्या रूप	परिसमेत्य	११.	आ गया
अनलः	६.	अग्नि का	सुदक्षिणम्	१४.	सुदक्षिण को
प्रतिहतः सः	४.	आहत उस	तम्	१५.	उस
रथाङ्गपाणेः	२.	चक्रपाणि श्रीकृष्ण के	सर्त्विग्जनम्	१६.	ऋत्विज आचार्य सहित
अस्त्र ओजसा	३.	सुदर्शन चक्र के तेज से	समदहत्	१७.	जला दिया
सः	८.	वह	स्वकृतः	१२.	अपने किये हुये
भग्नमुखः	७.	मुंह टूट-फूट गया	अभिचारः ॥	१३.	अभिचार ने
निवृत्तः ।	९.	लौट कर			

श्लोकार्थ—राजन् ! चक्रपाणि श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र के तेज से आहत उस कृत्या रूप अग्नि का मुंह टूट-फूट गया । वह लौट कर वाराणसी आ गया । और अपने किये हुये अभिचार ने उस सुदक्षिण को ऋत्विज, आचार्य सहित जला दिया ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसङ्कुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥४१॥

पदच्छेद—चक्रम् च विष्णोः तत् अनुप्रविष्टम् वाराणसीम् स अट्ट सभालय आपणाम् ।
स गोपुर अट्टालक कोष्ठ सङ्कुलाम् सकोश हस्ति अश्व रथ अन्न शालाम् ॥

शब्दार्थ—

चक्रम् च	२.	चक्र भी	सगोपुर	९.	द्वारों के शिखरों
विष्णोः	१.	श्रीकृष्ण का	अट्टालक	१०.	चहारदीवारियों (तथा)
तत्	३.	उसके	कोष्ठ	११.	कोठों से
अनुप्रविष्टम्	४.	पीछे	सङ्कुलाम्	१२.	व्याप्त थी (उसे)
वाराणसीम्	५.	वाराणसी (पहुँच गया) जो पुरी	सकोश	१३.	कोश-खजाने
स अट्ट	६.	अटारियों	हस्ति अश्व	१४.	हाथी-घोड़े
सभालया	७.	सभा भवनों	रथ अन्न	१५.	रथ-अन्न
आपणाम् ।	८.	बाजार	शालाम् ॥	१६.	शाला (गोदामों) सहित जला डाला

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण का चक्र भी उसके पीछे वाराणसी पहुँच गया । जो पुरी अटारियों, सभा भवनों बाजार, द्वारों के शिखरों, चहारदीवारियों तथा कोठों से व्याप्त थी, कोश, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ, अन्न शाला, गोदामों सहित जला डाला ॥

द्वाचत्वारिंशः श्लोकः

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥

पदच्छेद— दग्ध्वा वाराणसीम् सर्वाम् विष्णोः चक्रम् सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वम् उपातिष्ठत् कृष्णस्य अक्लिष्ट कर्मणः ॥

शब्दार्थ—

दग्ध्वा	६.	जलाकर	भूयः	७.	फिर
वाराणसीम्	५.	काशी को	पार्श्वम्	११.	पास
सर्वाम्	४.	सम्पूर्ण	उपातिष्ठत्	१२.	लौट आया
विष्णोः	१.	श्रीकृष्ण का	कृष्णस्य	१०.	श्रीकृष्ण के
चक्रम्	३.	चक्र	अक्लिष्ट	८.	परमानन्दमयी
सुदर्शनम् ।	२.	सुदर्शन	कर्मणः ॥	९.	लीला करने वाले

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र सम्पूर्ण काशी को जला कर फिर परमानन्दमयी लीला करने वाले श्रीकृष्ण के पास लौट आया ॥

त्रयश्चत्वारिंशः श्लोकः

य एतच्छ्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

पदच्छेद—

यः एतत् श्रावयेत् मर्त्यः उत्तम श्लोक विक्रमम् ।
समाहितः वा शृणुयात् सर्व पापैः प्रमुच्यते ।।

शब्दार्थ—

यः	१. जो	समाहितः	६. एकाग्रता के साथ
एतत्	३. इस	वा	८. अथवा
श्रावयेत्	७. सुनाता है	शृणुयात्	९. सुनता है वह
मर्त्यः	२. मनुष्य	सर्व	१०. सभी
उत्तम श्लोक	४. श्रीकृष्ण	पापैः	११. पापों से
विक्रमम् ।	५. चरित्र को	प्रमुच्यते ।।	१२. छूट जाता है

श्लोकार्थ—

जो मनुष्य इस श्रीकृष्ण चरित्र को एकाग्रता के साथ सुनाता है अथवा सुनता है वह सभी पापों से छूट जाता है ।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पौण्ड्रकादिवधो
नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।।६६।।



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

सप्तषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

राजोवाच— भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥१॥

पदच्छेद— भूयः अहम् श्रोतुम् इच्छामि रामस्य अद्भुत कर्मणः ।
अनन्तस्य अप्रमेयस्य यत् अन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥

शब्दार्थ—

भूयः अहम्	६.	मैं फिर	अनन्तस्य	३.	अनन्त और
श्रोतुम्	७.	सुनना	अप्रमेयस्य	४.	अलौकिक
इच्छामि	८.	चाहता हूँ	यत्	१०.	जो कुछ
रामस्य	५.	बलराम जी के बारे में	अन्यत्	११.	अन्य
अद्भुत	१.	अद्भुत	कृतवान्	१२.	कार्य किया है (वह सुनाइये)
कर्मणः ।	२.	कार्य करने वाले	प्रभुः ॥	९.	प्रभु ने

श्लोकार्थ—अद्भुत कार्य करने वाले अनन्त और अलौकिक बलराम जी के बारे में मैं फिर सुनना चाहता हूँ, प्रभु ने जो कुछ अन्य कार्य किया है वह सुनाइये ॥

द्वितीयः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥२॥

पदच्छेद— नरकस्य सखा कश्चित् द्विविदः नाम वानरः ।
सुग्रीव सचिवः सः अथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥

शब्दार्थ—

नरकस्य	१.	नरकस्य	सुग्रीव	८.	सुग्रीव का
सखा	२.	मित्र	सचिवः	९.	मन्त्री
कश्चित्	३.	कोई	सः	७.	वह
द्विविदः	४.	द्विविद	अथ	१०.	और
नाम	५.	नाम का	भ्राता	१३.	भाई था
वानरः ।	६.	वानर था	मैन्दस्य	११.	मैन्द का
			वीर्यवान् ॥	१२.	शक्ति शाली

श्लोकार्थ—नरकासुर का मित्र कोई द्विविद नाम का वानर था। वह सुग्रीव का मन्त्री और मैन्द का शक्तिशाली भाई था ॥

तृतीयः श्लोकः

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन् वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान् घोषानदहद् वह्निमुत्सृजन् ॥३॥

पदच्छेद— सख्युः सः अपचितिम् कुर्वन् वानरः राष्ट्र विप्लवम् ।
पुर ग्राम आकरान् घोषान् अदहत् वह्निम् उत्सृजन् ।।

शब्दार्थ—

सख्युः	३. मित्र का	पुर	८. वह नगरों
सः	१. वह	ग्राम	९. गाँवों
अपचितिम्	४. बदला	आकरान्	१०. खानों और
कुर्वन्	५. लेने के लिये	घोषान्	११. अहीरों की बस्तियों में
वानरः	२. वानर	अदहत्	१४. जलाने लगा
राष्ट्र	६. राष्ट्र में	वह्निम्	१२. आग
विप्लवम् ।	७. घोर उत्पात मचाने लगा	उत्सृजन् ।।	१३. लगा कर

श्लोकार्थ—वह वानर मित्र का बदला लेने के लिये राष्ट्र में घोर उत्पात मचाने लगा। वह नगरों, गाँवों, खानों और अहीरों की बस्तियों में आग लगा कर जलाने लगा ।।

चतुर्थः श्लोकः

क्वचित् स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान् समचूर्णयत् ।
आनर्तान् सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥४॥

पदच्छेद— क्वचित् सः शैलान् उत्पाट्य तैः देशान् समचूर्णयत् ।
आनर्तान् सुतराम् एव यत्र आस्ते मित्रहा हरिः ।।

शब्दार्थ—

क्वचित्	१. कहीं	आनर्तान्	९. काठियावाड़ (आनर्त) में
सः	२. वह	सुतराम्	८. विशेष करके
शैलान्	३. पहाड़ों को	एव	१०. ही (ऐसा करता था)
उत्पाट्य	४. उखाड़ कर	यत्र	११. जहाँ (उसके)
तैः	५. उनसे	आस्ते	१४. रहते थे
देशान्	६. देशों को	मित्रहा	१२. मित्र को मारने वाले
समचूर्णयत् ।	७. चकना चूर कर देता था	हरिः ।।	१३. श्रीकृष्ण

श्लोकार्थ—कहीं वह पहाड़ों को उखाड़ कर उनसे देशों को चकनाचूर कर देता था। विशेष करके काठियावाड़ (आनर्त) में ही ऐसा करता था। जहाँ उसके मित्र को मारने वाले श्रीकृष्ण रहते थे ।।

पञ्चमः श्लोकः

क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान् नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥५॥

पदच्छेद— क्वचित् समुद्र मध्यस्थः दोर्भ्याम् उत्क्षिप्य तत् जलम् ।
देशान् नाग अयुत प्राणः वेलाकूलान् अमज्जयत् ॥

शब्दार्थ—

क्वचित्	४.	कहीं	देशान्	११.	देशों को
समुद्र	५.	समुद्र में	नाग	२.	हाथियों का
मध्यस्थः	६.	खड़ा होकर	अयुत	१.	दश हज़ार
दोर्भ्याम्	७.	दोनों हाथों से	प्राणः	३.	बल रखने वाला वह
उत्क्षिप्य	६.	उछाल कर	वेलाकूलान्	१०.	समुद्र तट के
तत् जलम् ।	८.	उसका जल	अमज्जयत् ॥	१२.	डुबा देता था

श्लोकार्थ—दश हज़ार हाथियों का बल रखने वाला वह कहीं समुद्र में खड़ा होकर दोनों हाथों से उसका जल उछाल कर समुद्र तट के देशों को डुबा देता था ॥

षष्ठः श्लोकः

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥६॥

पदच्छेद— आश्रमान् ऋषि मुख्यानाम् कृत्वा भग्न वनस्पतीन् ।
अदूषयत् शकृत् मूत्रैः अग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥

शब्दार्थ—

आश्रमान्	३.	आश्रमों के	अदूषयत्	१२.	दूषित कर देता था
ऋषि	२.	ऋषियों के	शकृत्	१०.	मल
मुख्यानाम्	१.	श्रेष्ठ	मूत्रैः	११.	मूत्र करके उन्हें
कृत्वा	६.	नष्ट कर देता (तथा)	अग्नीन्	९.	अग्नियों पर
भग्न	५.	तोड़-मरोड़ कर	वैतानिकान्	८.	यज्ञ सम्बन्धी
वनस्पतीन् ।	४.	पेड़ पौधों को	खलः ॥	७.	वह दुष्ट

श्लोकार्थ—श्रेष्ठ ऋषियों के पेड़-पौधों को तोड़-मरोड़ कर नष्ट कर देता। तथा यह दुष्ट यज्ञ सम्बन्धी अग्नियों पर मल-मूत्र करके उन्हें दूषित कर देता था ॥

सप्तमः श्लोकः

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥७॥

पदच्छेद— पुरुषान् योषितः दृप्तः क्ष्माभृद् द्रोणी गुहासु सः ।
निक्षिप्य च अपिअधात् शैलैः पेशस्कारी इव कीटकम् ॥

शब्दार्थ—

पुरुषान्	३. पुरुषों और	निक्षिप्य	८. डाल देता
योषितः	४. स्त्रियों को	च	९. और
दृप्तः	२. मदोन्मत्त (द्विविद)	अप्यधात्	११. मुँह बन्द कर देता
क्ष्माभृद्	५. पहाड़ों की	शैलैः	१०. चट्टानों से (उनका)
द्रोणी	६. घाटियों तथा	पेशस्कारी	१३. भृङ्गी नामक कीड़ा दूसरे
गुहासु	७. गुफाओं में	इव	१२. जैसे
सः ।	१. वह	कीटकम् ॥	१४. कीड़ों को अपने बिल में बन्द कर देता है

श्लोकार्थ—वह मदोन्मत्त द्विविद पुरुषों और स्त्रियों को पहाड़ों की घाटियों तथा गुफाओं में डाल देता और चट्टानों से उनका मुँह बन्द कर देता, जैसे भृङ्गी नामक कीड़ा दूसरे कीड़ों को अपने बिल में बन्द कर देता है ॥

अष्टमः श्लोकः

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥८॥

पदच्छेद— एवम् देशान् विप्रकुर्वन् दूषयन् च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितम् गीतम् गिरिम् रैवतकम् ययौ ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१. इस प्रकार	श्रुत्वा	६. सुन कर वह
देशान्	२. देशवासियों का	सुललितम्	७. एक बार सुन्दर
विप्रकुर्वन्	३. तिरस्कार करता हुआ वह	गीतम्	८. संगीत
दूषयन् च	६. भी दूषित कर देता	गिरिम्	११. पर्वत पर
कुल	४. कुलीन	रैवतकम्	१०. रैवतक नामक
स्त्रियः ।	५. स्त्रियों को	ययौ ॥	१२. गया

श्लोकार्थ—इस प्रकार देशवासियों का तिरस्कार करता हुआ वह कुलीन स्त्रियों को भी दूषित कर देता। एक बार सुन्दर संगीत सुनकर वह रैवतक नामक पर्वत पर गया ॥

नवमः श्लोकः

तत्रापश्यद् यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥९॥

पदच्छेद— तत्र अपश्यत् यदुपतिम् रामम् पुष्कर मालिनम् ।
सुदर्शनीय सर्वाङ्गम् ललना यूथ मध्यगम् ॥

शब्दार्थ—

तत्र	१.	वहाँ (उसने)	सुदर्शनीय	३.	अत्यन्त दर्शनीय
अपश्यत्	१०.	देखा	सर्वाङ्गम्	४.	समस्त अङ्गों वाले तथा
यदुपतिम्	८.	यदुवंश शिरोमणि	ललना	५.	सुन्दर युवतियों के
रामम्	९.	बलराम को	यूथ	६.	झुंड में
पुष्करमालिनम्	२.	कमलों की माला पहने	मध्यगम् ॥	७.	विराजमान

श्लोकार्थ—वहाँ उसने कमलों की माला पहने अत्यन्त दर्शनीय समस्त अङ्गों वाले तथा सुन्दर युवतियों के झुंड में विराजमान यदुवंश-शिरोमणि बलराम को देखा ॥

दशमः श्लोकः

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥

पदच्छेद— गायन्तम् वारुणीं पीत्वा मदविह्वल लोचनम् ।
विभ्राजमानम् वपुषा प्रभिन्नम् इव वारणम् ॥

शब्दार्थ—

गायन्तम्	३.	गा रहे थे	विभ्राजमानम्	७.	इस प्रकार शोभायमान था
वारुणीं	१.	वे मधु	वपुषा	६.	शरीर
पीत्वा	२.	पीकर	प्रभिन्नम्	९.	मदमत्त
मदविह्वल	५.	मद से विह्वल हो रहे थे	इव	८.	मानों
लोचनम् ।	४.	उनके नेत्र	वारणम् ॥	१०.	गजराज हो

श्लोकार्थ—वे मधु पीकर गा रहे थे । उनके नेत्र मद से विह्वल हो रहे थे । शरीर इस प्रकार शोभायमान था मानों मदमत्त गजराज हो ॥

एकादशः श्लोकः

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन् द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥११॥

पदच्छेद— दुष्टः शाखामृगः शाखाम् आरूढः कम्पयन् द्रुमान् ।
चक्रे किलकिला शब्दम् आत्मानम् सम्प्रदर्शयन् ॥

शब्दार्थ—

दुष्टः	१.	दुष्ट	चक्रे	११.	करने लगता
शाखामृगः	२.	वानर	किलकिला	६.	किलकारी का
शाखाम्	३.	डाल पर	शब्दम्	१०.	शब्द
आरूढः	४.	चढ़ कर	आत्मानम्	७.	अपने को
कम्पयन्	६.	हिला देता (और)	सम्प्रदर्शयन् ॥	८.	दिखाता हुआ
द्रुमान् ।	५.	वृक्षों को			

श्लोकार्थ—दुष्ट वानर डाल पर चढ़कर वृक्षों को हिला देता और अपने को दिखाता हुआ किलकारी का शब्द करने लगता ॥

द्वादशः श्लोकः

तस्य धाष्ट्र्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥१२॥

पदच्छेद— तस्य धाष्ट्र्यम् कपेः वीक्ष्य तरुण्यः जाति चापलाः ।
हास्य प्रिया विजहसुः बलदेव परिग्रहाः ॥

शब्दार्थ—

तस्य	८.	उस	चापलाः ।	३.	चञ्चल तथा
धाष्ट्र्यम्	१०.	ढिठाई	हास्य	४.	हास
कपेः	६.	वानर की	प्रिया	५.	परिहास में रुचि रखती हैं
वीक्ष्य	११.	देखकर	विजहसुः	१२.	हंसने लगीं
तरुण्यः	१.	युवतियाँ	बलदेव	६.	बलराम की
जाति	२.	स्वभाव से ही	परिग्रहाः ॥	७.	स्त्रियाँ

श्लोकार्थ—युवतियाँ स्वभाव से ही चञ्चल तथा हास-परिहास में रुचि रखती हैं। बलराम की स्त्रियाँ उस वानर की ढिठाई देखकर हंसने लगीं ॥

त्रयोदशः श्लोकः

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

पदच्छेद— ताः हेलयामास कपिः भ्रूक्षेपैः सम्मुख आदिभिः ।
दर्शयन् स्वगुदम् तासाम् रामस्य च निरीक्षतः ॥

शब्दार्थ—

ताः	११.	उनका	दर्शयन्	७.	दिखाता हुआ
हेलयामास	१२.	तिरस्कार करने लगा	स्वगुदम्	६.	अपनी गुदा
कपिः	१.	वह वानर	तासाम्	५	स्त्रियों को
भ्रूक्षेपैः	८.	भौहें मटका कर	रामस्य	२.	बलराम
सम्मुख	९.	सामने मुँह बना कर	च	३.	के
आदिभिः ।	१०.	घुड़की आदि से	निरीक्षतः ॥	४.	सामने

श्लोकार्थ- वह वानर बलराम के सामने स्त्रियों को अपनी गुदा दिखाता हुआ भौहें मटका कर सामने मुँह बना कर घुड़की आदि से उनका तिरस्कार करने लगा ॥

चतुर्दशः श्लोकः

तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥

पदच्छेद— तम् ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धः बलः प्रहरतां वरः ।
सः वञ्चयित्वा ग्रावाणम् मदिरा कलशम् कपिः ॥

शब्दार्थ—

तम्	४.	उस पर	सः	७.	उस
ग्राव्णा	५.	एक पत्थर से	वञ्चयित्वा	१०.	अपने को बचा कर
प्राहरत्	६.	प्रहार किया (किन्तु)	ग्रावाणम्	९.	पत्थर से
क्रुद्धः	३.	क्रुद्ध होकर	मदिरा	११.	मधु का
बलः	२.	बलराम ने	कलशम्	१२.	कलश उठा लिया
प्रहरताम् वरः ।	१.	प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ	कपिः ॥	८.	वानर ने

श्लोकार्थ—प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ बलराम ने क्रुद्ध होकर उस पर एक पत्थर से प्रहार किया। किन्तु उस वानर ने पत्थर से अपने को बचा कर मधु का कलश उठा लिया ॥

पञ्चदशः श्लोकः

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ।
निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद् बलम् ॥१५॥

पदच्छेद— गृहीत्वा हेलयामास धूर्तः तम् कोपयन् हसन् ।
निर्भिद्य कलशम् दुष्टः वासांसि आस्फालयत् बलम् ॥

शब्दार्थ—

गृहीत्वा	४.	लेकर (और)	निर्भिद्य	५.	फोड़ कर
हेलयामास	६.	बलराम की अवहेलना की	कलशम्	३.	मधुकलश को
धूर्तः	२.	धूर्त वानर ने	दुष्टः	७.	फिर वह दुष्ट (स्त्रियों के)
तम्	१.	उस	वासांसि	८.	वस्त्रों को
कोपयन्	१२.	क्रोधित करने लगा	आस्फालयत्	९.	फाड़ कर
हसन् ।	१०.	हंसता हुआ	बलम् ॥	११	बलराम जी को

श्लोकार्थ—उस धूर्त वानर ने मधुकलश को लेकर बलराम जी की अवहेलना की। फिर वह दुष्ट स्त्रियों के वस्त्रों को फाड़ कर हंसता हुआ बलराम जी को क्रोधित करने लगा ॥

षोडशः श्लोकः

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मदोद्धतः ।
तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥१६॥

पदच्छेद— कदर्थी कृत्य बलवान् विप्रचक्रे मद उद्धतः ।
तम् तस्य अविनयम् दृष्ट्वा देशान् च तत् उपद्रुतान् ॥

शब्दार्थ—

कदर्थी	५.	तिरस्कार	तम्	४.	उन बलराम का
कृत्य	६.	करके	तस्य	८.	उसकी
बलवान्	१.	बलवान् और	अविनयम्	९.	ढिठाई
विप्रचक्रे	७.	उपद्रव किया	दृष्ट्वा	१०.	देख कर
मद	२.	मद से	देशान्	१३.	देशों को विनाश जान कर अपना अस्त्र उठा लिया
उद्धतः ।	३.	उद्धत (द्विविद ने)	च तत्	११.	और उसके द्वारा
			उपद्रुतान् ॥	१२.	उपद्रव ग्रस्त

श्लोकार्थ—बलवान् और मद से उद्धत द्विविद ने उन बलराम का तिरस्कार करके उपद्रव किया। उसकी ढिठाई देख कर और उसके द्वारा उपद्रव ग्रस्त देशों का विनाश जान कर बलराम ने अपना अस्त्र उठा लिया ॥

सप्तदशः श्लोकः

क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ।
द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥१७॥

पदच्छेद— क्रुद्धः मुसलम् आदत्त हलम् च अरि जिघांसया ।
द्विविदः अपि महावीर्यः शालम् उद्यम्य पाणिना ॥

शब्दार्थ—

क्रुद्धः	१.	कुपित बलराम ने	द्विविदः	८.	द्विविद ने
मुसलम्	५.	मूसल	अपि	९.	भी
आदत्त	६.	उठा लिया	महावीर्यः	७.	महाबली
हलम् च	४.	हल और	शालम्	११.	शाल का पेड़
अरि	२.	शत्रु को	उद्यम्य	१२.	उखाड़ लिया
जिघांसया ।	३.	मार डालने की इच्छा से	पाणिना ॥	१०.	एक हाथ से

श्लोकार्थ—इस प्रकार कुपित बलराम जी ने शत्रु को मार डालने की इच्छा से हल और मूसल उठा लिया । महाबली द्विविद ने भी एक हाथ से शाल का पेड़ उखाड़ लिया ।

अष्टादशः श्लोकः

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ।
तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ॥१८॥

पदच्छेद— अभ्येत्य तरसा तेन बलम् मूर्धनि अताडयत् ।
तम् तु सङ्कर्षणः मूर्ध्नि पतन्तम् अचलः यथा ॥

शब्दार्थ—

अभ्येत्य	२.	पास पहुँच कर	तम् तु	१२.	उस पेड़ को (पकड़ लिया)
तरसा	१.	बड़े वेग से	सङ्कर्षणः	७.	बलराम जी ने
तेन	३.	उसे	मूर्ध्नि	१०.	सिर पर
बलम्	४.	बलराम जी के	पतन्तम्	११.	गिरते हुये
मूर्धनि	५.	सिर पर	अचलः	८.	पर्वत के
अताडयत् ।	६.	दे मारा	यथा ॥	९.	समान अविचल खड़े रह कर

श्लोकार्थ—बड़े वेग से पहुँच कर उसे बलराम जी के सिर पर दे मारा । बलराम जी ने पर्वत के समान अविचल खड़े होकर सिर पर गिरते हुये उस पेड़ को पकड़ लिया ॥

एकोनविंशः श्लोकः

प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्देनाहनच्च तम् ।
मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥१६॥

पदच्छेद— प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्देन अहनत् च तम् ।
मुसल आहत मस्तिष्कः विरेजे रक्त धारया ॥

शब्दार्थ—

प्रतिजग्राह	२.	पेड़ को पकड़ लिया	मुसल	७.	मूसल से (उसका)
बलवान्	१.	बली बलराम के (उस)	आहत	६.	फट गया (और)
सुनन्देन	५.	सुनन्द नामक (मूसल से)	मस्तिष्कः	८.	मस्तक
अहनत्	६.	प्रहार किया	विरेजे	१२.	शोभायमान हुआ
च	३.	और	रक्त	१०.	वह रक्त की
तम् ।	४.	उस पर	धारया ॥	११.	धारा से

श्लोकार्थ—बली बलराम ने उस पेड़ को पकड़ लिया। और उस पर सुनन्द नामक मूसल से प्रहार किया। मूसल से उसका मस्तक फट गया और वह रक्त की धारा से शोभायमान हुआ ॥

विंशः श्लोकः

गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ।
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥२०॥

पदच्छेद— गिरिः यथा गैरिकया प्रहारम् न अनुचिन्तयन् ।
पुनः अन्यम् सम् उत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रम् ओजसा ॥

शब्दार्थ—

गिरिः	३.	पर्वत हो (उसने)	पुनः	७.	फिर
यथा	१.	जैसे	अन्यम्	८.	दूसरा वृक्ष
गैरिकया	२.	गेरू से शोभायमान	सम् उत्क्षिप्य	६.	उखाड़ कर उसे
प्रहारम्	४.	प्रहार की	कृत्वा	१२.	कर लिया
न	६.	नहीं की	निष्पत्रम्	११.	बिना पत्ते का
अनुचिन्तयन् ।	५.	कोई भी परवाह	ओजसा ॥	१०.	झाड़-झूड़ कर

श्लोकार्थ—जैसे गेरू से शोभायमान पर्वत हो। उसने प्रहार की कोई भी परवाह नहीं की। फिर दूसरा वृक्ष उखाड़ कर उसे झाड़-झूड़ कर बिना पत्ते का कर लिया ॥

एकविंशः श्लोकः

तेनाहनत् सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ।
ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥२१॥

पदच्छेद— तेन अहनत् सुसंक्रुद्धः तम् बलः शतधा अच्छिनत् ।
ततः अन्येन रुषा जघ्ने तम् च अपि शतधा अच्छिनत् ॥

शब्दार्थ—

तेन	२.	उस वृक्ष से	ततः	८.	तब
अहनत्	३.	बलराम को मारा	अन्येन	१०.	दूसरे वृक्ष से
सुसंक्रुद्धः	१.	अत्यन्त क्रुद्ध होकर	रुषा	९.	क्रोध से
तम्	५.	उसके	जघ्ने	११.	मारा
बलः	४.	बलराम ने	तम् च अपि	१२.	उसके भी
शतधा	६.	सैकड़ों	शतधा	१३.	सैकड़ों
अच्छिनत् ।	७.	टुकड़े कर दिये	अच्छिनत् ॥	१४.	टुकड़े कर दिये

श्लोकार्थ—अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस वृक्ष से बलराम को मारा। बलराम जी ने उसके सैंकड़ों टुकड़े कर दिये। तब क्रोध से दूसरे वृक्ष से मारा, उसके भी सैंकड़ों टुकड़े कर दिये ॥

द्वाविंशः श्लोकः

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ।
आकृष्य सर्वतो वृक्षान् निर्वृक्षमकरोद् वनम् ॥२२॥

पदच्छेद— एवम् युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ।
आकृष्य सर्वतः वृक्षान् निर्वृक्षम् अकरोत् वनम् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	आकृष्य	९.	उखाड़-उखाड़ कर
युध्यन्	३.	युद्ध करते हुये (उसने)	सर्वतः	७.	सब ओर से
भगवता	२.	भगवान् बलराम जी से	वृक्षान्	८.	वृक्षों को
भग्ने	४.	एक-एक वृक्ष के	निर्वृक्षम्	११.	वृक्ष विहीन
भग्ने	५.	टूट जाने पर	अकरोद्	१२.	कर दिया
पुनः पुनः ।	६.	बारम्बार	वनम् ॥	१०.	वन को

श्लोकार्थ—इस प्रकार भगवान् बलराम जी से युद्ध करते हुये उसने एक-एक वृक्ष के टूट जाने पर बारम्बार सब ओर से वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर वन को वृक्ष-विहीन कर दिया ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥२३॥

पदच्छेद— ततः अमुञ्चत् शिला वर्षं बलस्य उपरि अमर्षितः ।
तत् सर्वम् चूर्णयामास लीलया मुसल आयुधः ॥

शब्दार्थ—

ततः	१. तदनन्तर वह	तत्	८. उन
अमुञ्चत्	७. करने लगा	सर्वम्	९. सबको
शिला	५. चट्टानों की	चूर्णयामास	१३. चकनाचूर कर दिया
वर्षम्	६. वर्षा	लीलया	१२. लीला पूर्वक
बलस्य	३. बलराम जी के	मुसल	१०. मुसल
उपरि	४. ऊपर	आयुधः ॥	११. अस्त्र वाले बलराम ने
अमर्षितः ।	२. बहुत चिढ़कर		

श्लोकार्थ—तदनन्तर वह बहुत चिढ़कर बलराम जी के ऊपर चट्टानों की वर्षा करने लगा । उन सबको मुसल अस्त्र वाले बलराम ने लीला पूर्वक चकनाचूर कर दिया ।।

चतुर्विंशः श्लोकः

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥२४॥

पदच्छेद— सः बाहू ताल सङ्काशौ मुष्टी कृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणी पुत्रम् ताभ्याम् वक्षसि अरूरुजत् ॥

शब्दार्थ—

सः	१. उस	आसाद्य	८. पास जाकर
बाहू	४. बाँहों से	रोहिणी	७. रोहिणी के
तालसङ्काशौ	३. अपनी ताल के समान	पुत्रम्	८. पुत्र (बलराम जी के)
मुष्टी	५. घूँसा	ताभ्याम्	११. घूँसे से
कृत्य	६. बाँध कर	वक्षसि	१०. उनकी छाती पर
कपीश्वरः ।	२. वानरराज ने	अरूरुजत् ॥	१२. प्रहार किया

श्लोकार्थ—उस वानर राज ने अपनी ताल के समान बाँहों से घूँसा बाँध कर रोहिणी के पुत्र के पास जाकर उनकी छाती पर घूँसे से प्रहार किया ।।

पञ्चविंशः श्लोकः

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद् रुधिरं वमन् ॥२५॥

पदच्छेद— यादवेन्द्रः अपि तम् दोर्भ्याम् त्यक्त्वा मुसल लाङ्गले ।
जत्रौ अभ्यर्दयत् क्रुद्धः सः अपतत् रुधिरम् वमन् ॥

शब्दार्थ—

यादवेन्द्रः	२.	यदुवंश शिरोमणि बलराम ने	जत्रौ	६.	जत्रु स्थान (हँसली) को
अपि	३.	भी	अभ्यर्दयत्	१०.	दबा दिया
तम्	८.	उसके	क्रुद्धः	१.	कुपित
दोर्भ्याम्	७.	दोनों बाँहों से	सः	११.	वह
त्यक्त्वा	६.	त्याग कर	अपतत्	१४.	गिर पड़ा
मुसल	५.	मूसल	रुधिरम्	१२.	रक्त
लाङ्गले ।	४.	हल और	वमन् ॥	१३.	उगलता हुआ

श्लोकार्थ—कुपित यदुवंश शिरोमणि बलराम ने भी हल और मूसल त्याग कर दोनों बाँहों से उसके जत्रु स्थान हँसली को दबा दिया । वह रक्त उगलता हुआ गिर पड़ा ॥

षड्विंशः श्लोकः

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥२६॥

पदच्छेद— चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौः इव अम्भसि ॥

शब्दार्थ—

चकम्पे	७.	हिल गया	पर्वतः	६.	पर्वत
तेन	२.	उसके	कुरुशार्दूल	१.	हे परीक्षित् !
पतता	३.	गिरने से	वायुना	१०.	वायु से
सटङ्कः	५.	चोटियों के साथ	नौः	११.	डोंगी (नाव) डगमगाती है
सवनस्पतिः ।	४.	वृक्षों और	इव	८.	जैसे
			अम्भसि ॥	९.	जल में

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! उसके गिरने से वृक्षों और चोटियों के साथ पर्वत हिल गया । जैसे जल में वायु से डोंगी (नाव) डगमगाती है ॥

सप्तविंशः श्लोकः

जयशब्दो नमः शब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

पदच्छेद— जय शब्दः नमः शब्दः साधु-साधु इति च अम्बरे ।
सुर सिद्ध मुनीन्द्राणाम् आसीत् कुसुम वर्षिणाम् ॥

शब्दार्थ—

जय	७.	जय	अम्बरे ।	१.	आकाश में
शब्दः	८.	शब्द	सुर	४.	देवताओं
नमः	९.	नमः	सिद्ध	५.	सिद्धों और
शब्दः	१०.	शब्द	मुनीन्द्राणाम्	६.	ऋषि आदि का
साधु-साधु	१२.	साधु-साधु	आसीत्	१४.	होने लगे
इति	१३	यह शब्द	कुसुम	२.	फूल
च	११.	और	वर्षिणाम् ॥	३.	बरसाने वाले

श्लोकार्थ—आकाश में फूल बरसाने वाले देवताओं, सिद्धों और ऋषि आदि का जय शब्द, नमः शब्द और साधु-साधु यह शब्द होने लगा ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥२८॥

पदच्छेद— एवम् निहत्य द्विविदम् जगत् व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानः भगवान् जनैः स्व पुरम् आविशत् ॥

शब्दार्थ—

एवम्	१.	इस प्रकार	संस्तूयमानः	८.	स्तुति किये जाते हुये
निहत्य	५.	मार कर	भगवान्	६.	भगवान् बलराम
द्विविदम्	४.	द्विविद को	जनैः	७.	लोगों द्वारा
जगत्	२.	संसार के लिये	स्व पुरम्	९.	अपने नगर में
व्यतिकरावहम् ।	३.	कष्टदायक	आविशत् ॥	१०	आये

श्लोकार्थ—इस प्रकार संसार के लिये कष्टदायक द्विविद को मार कर भगवान् बलराम लोगों द्वारा स्तुति किये जाते हुये अपने नगर में आये ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे
द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमः अध्यायः ॥६७॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

अष्टषष्टितमः अध्यायः

प्रथमः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिञ्जयः ।
स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥१॥

पदच्छेद— दुर्योधन सुताम् राजन् लक्ष्मणाम् समितिञ्जयः ।
स्वयम्वर स्थाम् अहरत् साम्बः जाम्बवती सुतः ॥

शब्दार्थ—

दुर्योधन	७.	दुर्योधन की	स्वयंवर	५.	स्वयंवर में
सुताम्	८.	पुत्री	स्थाम्	६.	स्थित
राजन्	१.	हे राजन् !	अहरत्	१०.	हर ले आये
लक्ष्मणाम्	९.	लक्ष्मणा को	साम्बः	४.	साम्ब
समितिञ्जयः ।	२.	युद्धविजयी	जाम्बवती सुतः ॥	३.	जाम्बवती पुत्र

श्लोकार्थ—हे राजन् ! युद्धविजयी साम्ब स्वयंवर में स्थित दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को हर ले आये ॥

द्वितीयः श्लोकः

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ।
कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद् बलात् ॥२॥

पदच्छेद— कौरवाः कुपिताः ऊचुः दुर्विनीतः अयम् अर्भकः ।
कदर्थी कृत्य नः कन्याम् अकामाम् अहरत् बलात् ॥

शब्दार्थ—

कौरवाः	१.	कौरव	कदर्थीकृत्य	८.	नीचा दिखा कर
कुपिताः	२.	क्रुद्ध होकर	नः	७.	हमें
ऊचुः	३.	कहने लगे	कन्याम्	१०.	कन्या का
दुर्विनीतः	५.	ढीठ	अकामाम्	९.	न चाहने वाली
अयम्	४.	इस	अहरत्	१२.	अपहरण किया है
अर्भकः ।	६.	बालक ने	बलात् ॥	११.	बलपूर्वक

श्लोकार्थ—कौरव क्रुद्ध होकर कहने लगे । इस ढीठ बालक ने हमें नीचा दिखाकर न चाहने वाली कन्या का बलपूर्वक अपहरण किया है ॥

तृतीयः श्लोकः

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ।
येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥३॥

पदच्छेद— बध्नीत इमम् दुर्विनीतम् किम् करिष्यन्ति वृष्णयः ।
ये अस्मत् प्रसाद उपचिताम् दत्ताम् नः भुञ्जते महीम् ॥

शब्दार्थ —

बध्नीत	३.	बाँध लो	ये	७.	जो
इमम्	१.	इस	अस्मत्	८.	हमारी
दुर्विनीतम्	२.	ढीठ को	प्रसादः	९.	कृपा से
किम्	५.	क्या	उपचिताम्	१०.	समृद्धिशालिनी
करिष्यन्ति	६	कर लेंगे	दत्ताम् नः	११.	हमारी दी हुई
वृष्णयः ।	४.	यदुवंशी हमारा	भुञ्जते महीम् ॥	१२.	भूमि का भोग कर रहे हैं

श्लोकार्थ—इस ढीठ को बाँध लो यदुवंशी हमारा क्या कर लेंगे । जो हमारी कृपा से समृद्धि-शालिनी हमारी दी हुई भूमि का उपभोग कर रहे हैं ॥

चतुर्थः श्लोकः

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥४॥

पदच्छेद— निगृहीतम् सुतम् श्रुत्वा यदि एष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमम् यान्ति प्राणाः इव सुसंयताः ॥

शब्दार्थ—

निगृहीतम्	३.	बँधे हुये	भग्नदर्पाः	७.	अभिमान चूर करने पर
सुतम्	४.	पुत्र के बारे में	शमम्	८.	ठण्डे
श्रुत्वा	५.	सुन कर	यान्ति	९.	पड़ जायेंगे
यदि	१.	यदि	प्राणाः	१२.	इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं
एष्यन्ति इह	६.	यहाँ आयेंगे तो वे	इव	१०.	जैसे
वृष्णयः ।	२.	यदुवंशी लोग	सुसंयताः ॥	११.	पूर्ण संयम से

श्लोकार्थ—यदि यदुवंशी लोग बँधे हुये पुत्र के बारे में सुन कर यहाँ आयेंगे तो वे अभिमान चूर करने पर ठण्डे पड़ जायेंगे । जैसे पूर्ण संयम से इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं ॥

पञ्चमः श्लोकः

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥५॥

पदच्छेद— इति कर्णः शलः भूरिः यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बम् आरेभिरे बद्धुम् कुरु वृद्ध अनुमोदिताः ॥

शब्दार्थ—

इति	१.	इस प्रकार	साम्बम्	१०.	साम्ब को
कर्णः	५.	कर्ण	आरेभिरे	१२.	विचार किया
शलः	६.	शल	बद्धुम्	११.	बाँधने का
भूरिः	७.	भूरिश्रवा	कुरु	२.	कुरुवंश के
यज्ञकेतुः	८.	यज्ञकेतु और	वृद्ध	३.	वृद्धों का
सुयोधनः ।	९.	दुर्योधन ने	अनुमोदिताः ॥	४.	अनुमोदन प्राप्त करके

श्लोकार्थ—इस प्रकार कुरु वंश के वृद्धों का अनुमोदन प्राप्त करके कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन ने साम्ब को बाँधने का विचार किया ॥

षष्ठः श्लोकः

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान् महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥६॥

पदच्छेद— दृष्ट्वा अनुधावतः साम्बः धार्त राष्ट्रान् महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरम् चापम् तस्थौ सिंहः इव एकलः ॥

शब्दार्थ—

दृष्ट्वा	६.	देख कर	प्रगृह्य	९.	चढ़ा कर
अनुधावतः	३.	पीछा कर रहे	रुचिरम्	७.	एक सुन्दर
साम्बः	२	साम्ब ने	चापम्	८.	धनुष पर बाण
धार्त	४.	धृत	तस्थौ	१२.	डट कर खड़े हो गये
राष्ट्रान्	५.	राष्ट्र के पुत्रों को	सिंहः इव	१०.	सिंह के समान
महारथः ।	१.	महारथी	एकलः ॥	११.	अकेले ही

श्लोकार्थ—महारथी साम्ब ने पीछा कर रहे धृतराष्ट्र के पुत्रों को देख कर एक सुन्दर धनुष पर बाण चढ़ा कर सिंह के समान अकेले ही डट कर खड़े हो गये ॥

सप्तमः श्लोकः

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥७॥

पदच्छेद— तम् ते जिघृक्षवः क्रुद्धाः तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनः बाणैः कर्ण अग्रण्यः समाकिरन् ॥

शब्दार्थ—

तम्	१.	उन्हें	आसाद्य	११.	जा कर
ते	३.	वे लोग	धन्विनः	१०.	धनुर्धारी (साम्ब के) पास
जिघृक्षवः	२.	पकड़ने के इच्छुक	बाणैः	१२.	बाणों की
क्रुद्धाः	४.	क्रुद्ध होकर	कर्ण	८.	कर्ण आदि
तिष्ठ तिष्ठ	५.	ठहर-ठहर	अग्रण्यः	९.	योद्धा
इति	६.	इस प्रकार	समाकिरन् ॥	१३.	वर्षा करने लगे
भाषिणः ।	७.	कहने लगे			

श्लोकार्थ—उन्हें पकड़ने के इच्छुक वे लोग क्रुद्ध होकर ठहर-ठहर इस प्रकार कहने लगे। कर्ण आदि योद्धा धनुर्धारी साम्ब के पास जाकर बाणों की वर्षा करने लगे ॥

अष्टमः श्लोकः

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।
नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंह क्षुद्रमृगैरिव ॥८॥

पदच्छेद— सः अपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिः यदुनन्दनः ।
न अमृष्यत् तत् अचिन्त्य अर्भः सिंहः क्षुद्र मृगैः इव ॥

शब्दार्थ—

सः	२.	वे	तत्	८.	उनके अपराध को
अपविद्धः	७.	बिंधे जाने पर भी	अचिन्त्य	३.	अचिन्त्य ऐश्वर्यशाली
कुरुश्रेष्ठ	१.	हे परीक्षित् !	अर्भः	४.	श्रीकृष्ण के पुत्र
कुरुभिः	६.	कौरवों द्वारा	सिंहः क्षुद्र	११.	सिंह तुच्छ
यदुनन्दनः ।	५.	यदुनन्दन साम्ब	मृगैः	१२.	हिरनों के अपराध को नहीं सह सकता है
न अमृष्यत्	९.	सह नहीं सके	इव ॥	१०.	जैसे

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! वे अचिन्त्य ऐश्वर्य शाली श्रीकृष्ण के पुत्र यदुनन्दन साम्ब कौरवों द्वारा बिंधे जाने पर भ उनके अपराध को सह नहीं सके। जैसे सिंह तुच्छ हिरनों के अपराध को सह नहीं सकता है ॥

नवमः श्लोकः

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः ।
कर्णादीन् षड्रथान् वीरास्तावद्भिर्युगपत् पृथक् ॥९॥

पदच्छेद— विस्फूर्ज्य रुचिरम् चापम् सर्वान् विव्याध सायकैः ।
कर्णआदीन् षड्रथान् वीरान् तावद्भिः युगपत् पृथक् ॥

शब्दार्थ—

विस्फूर्ज्य	३.	टंकार करके	कर्णआदीन्	६.	कर्ण आदि
रुचिरम्	१.	साम्ब ने सुन्दर	षड्रथान्	५.	छः रथों पर स्वार्
चापम्	२.	धनुष की	वीरान्	८.	वीरों को
सर्वान्	७.	सभी	तावद्भिः	१०.	उतने ही
विव्याध	१२.	वेध दिया	युगपत्	९.	एक साथ
सायकैः ।	११.	बाणों से	पृथक् ॥	४.	अलग-अलग

श्लोकार्थ—साम्ब ने सुन्दर धनुष की टंकार करके अलग-अलग छः रथों पर सवार कर्ण आदि सभी वीरों को एक साथ उतने ही बाणों से वेध दिया ॥

दशमः श्लोकः

चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ।
रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥१०॥

पदच्छेद— चतुर्भिः चतुरः वाहान् एक एकेन च सारथीन् ।
रथिनः च महेष्वासान् तस्य तत् तेभ्यः अपूजयन् ॥

शब्दार्थ—

चतुर्भिः	१.	चार-चार बाण	रथिनः	८.	रथी वीरों पर छोड़ा
चतुरः	२.	उनके चार-चार	च	९.	और
वाहान्	३.	घोड़ों पर	महेष्वासान्	१०.	महान् पराक्रमी
एक	४.	एक-एक	तस्य	११.	साम्ब के
एकेन	६.	एक-एक	तत्	१२.	उस पराक्रमी की
च	७.	और (उनके)	तेभ्यः	१३.	उन लोगों ने
सारथीन् ।	५.	सारथियों पर	अपूजयन् ॥	१४.	प्रशंसा की

श्लोकार्थ—चार-चार बाण उनके चार-चार घोड़ों पर एक-एक सारथियों पर और एक एक उनके रथी वीरों पर छोड़ा । और महान् पराक्रमी साम्ब के उस पराक्रम की उन लोगों ने प्रशंसा की ॥

एकादशः श्लोकः

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ।
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥११॥

पदच्छेद— तम् तु ते विरथम् चक्रुः चत्वारः चतुरः हयान् ।
एकः तु सारथिम् जघ्ने चिच्छेद अन्यः शरासनम् ॥

शब्दार्थ—

तम् तु	२. साम्ब को	एकः तु	८. एक ने
ते	१. उन लोगों ने	सारथिम्	९. सारथी को
विरथम्	३. रथ हीन	जघ्ने	१०. मार दिया (और)
चक्रुः	४. कर दिया	चिच्छेद	१३. काट दिया
चत्वारः	५. चार वीरों ने	अन्यः	११. दूसरे ने
चतुरः	६. चार	शरासनम् ॥	१२. धनुष को
हयान् ।	७. घोड़ों को (तथा)		

श्लोकार्थ—उन लोगों ने साम्ब को रथहीन कर दिया। चार वीरों ने चार घोड़ों को मार दिया। तथा एक ने सारथी को मार दिया। और दूसरे ने धनुष को काट दिया॥

द्वादशः श्लोकः

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ।
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन ॥१२॥

पदच्छेद— तम् बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवः युधि ।
कुमारम् स्वस्य कन्याम् च स्वपुरम् जयिनः अविशन् ॥

शब्दार्थ—

तम्	४. उस साम्ब को	कुमारम्	७. उन्हें (तथा)
बद्ध्वा	६. बाँध कर	स्वस्य	८. अपनी
विरथीकृत्य	५. रथ हीन करके	कन्याम्	९. कन्या को लेकर
कृच्छ्रेण	३. कठिनाई से	च स्वपुरम्	१०. तथा अपने नगर में
कुरवः	२. कौरवों ने	जयिनः	११. जय मनाते हुये
युधि ।	१. युद्ध में	अविशन् ॥	१२. लौट आये

श्लोकार्थ—युद्ध में कौरवों ने कठिनाई से उस साम्ब को रथहीन करके और बाँध कर उन्हें तथा अपनी कन्या को लेकर अपने नगर में जय मनाते हुये लौट आये॥

त्रयोदशः श्लोकः

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन् सञ्जातमन्यवः ।
कुरून् प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥१३॥

पदच्छेद— तत् श्रुत्वा नारद उक्तेन राजन् सञ्जात मन्यवः ।
कुरून् प्रति उद्यमम् चक्रुः उग्रसेन प्रचोदिताः ॥

शब्दार्थ—

तत्	३.	वह (समाचार)	कुरून्	९.	कौरवों
श्रुत्वा	४.	सुन कर	प्रति	१०.	पर
नारद उक्तेन	२.	नारद के द्वारा	उद्यमम्	११.	चढ़ाई करने की तैयारी
राजन्	१.	हे परीक्षित् !	चक्रुः	१२.	करने लगे
सञ्जात	६.	भर कर (यदुवंशी)	उग्रसेन	७.	उग्रसेन की
मन्यवः ।	५.	क्रोध में	प्रचोदिताः ॥	८.	आज्ञा पाकर

श्लोकार्थ—हे परीक्षित् ! नारद के द्वारा यह समाचार सुन कर क्रोध में भर कर यदुवंशी उग्रसेन की आज्ञा पाकर कौरवों पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे ॥

चतुर्दशः श्लोकः

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णिपुङ्गवान् ।
नैच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥

पदच्छेद— सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णि पुङ्गवान् ।
न ऐच्छत् कुरूणाम् वृष्णीनाम् कलिम् कलिमल अपहः ॥

शब्दार्थ—

सान्त्वयित्वा	१३.	शान्त कर दिया	न	७.	(ठीक) नहीं
तु तान्	१०.	उन	ऐच्छत्	८.	समझता (अतः)
रामः	३.	बलराम ने	कुरूणाम्	४.	कुरुवंशियों और
सन्नद्धान्	९.	युद्ध के लिये तैयार	वृष्णीनाम्	५.	यदुवंशियों के
वृष्णि	१२.	यदुवंशियों को समझाकर	कलिम्	६.	झगड़े को (मैं)
पुङ्गवान् ।	११.	श्रेष्ठ	कलिमल	१.	कलियुग के
			अपहः ॥	२.	पाप-ताप को मिटाने वाले

श्लोकार्थ— कलियुग के पाप-ताप को मिटाने वाले बलराम ने कुरुवंशियों और यदुवंशियों के झगड़े को मैं ठीक नहीं समझता। अतः उन श्रेष्ठ यदुवंशियों को समझा कर शान्त कर दिया ॥

पञ्चदशः श्लोकः

अगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

पदच्छेद— जगाम हास्तिनपुरम् रथेन आदित्य वर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैः च वृतः चन्द्रः इव ग्रहैः ॥

शब्दार्थ—

जगाम	१२. गये	कुलवृद्धैः	८. कुल के बड़े बूढ़ों के
हास्तिनपुरम्	११. हस्तिनापुर	च	८. एवम्
रथेन	३. रथ से वे	वृतः	१०. साथ
आदित्य	१. सूर्य के समान	चन्द्रः	५. चन्द्रमा के
वर्चसा ।	२. चमकीले	इव	६. समान
ब्राह्मणैः	७. ब्राह्मणों	ग्रहैः ॥	४. ग्रहों के साथ

श्लोकार्थ—सूर्य के समान चमकीले रथ से वे ग्रहों के साथ चन्द्रमा के समान ब्राह्मणों एवम् कुल के बड़े बूढ़ों के साथ हस्तिनापुर गये ॥

षोडशः श्लोकः

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ।
उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

पदच्छेद— गत्वा गज आह्वयम् रामः बाह्य उपवनम् आस्थितः ।
उद्धवम् प्रेषयामास धृतराष्ट्रम् बुभुत्सया ॥

शब्दार्थ—

गत्वा	२. पहुँचकर	आस्थितः ।	६. ठहर गये (और)
गज आह्वयम्	१. हस्तिनापुर	उद्धवम्	८. उद्धव को
रामः	३. बलराम जी	प्रेषयामास	१०. भेजा
बाह्य	४. नगर के बाहर	धृतराष्ट्रम्	९. धृतराष्ट्र के पास
उपवनम्	५. एक उद्यान में	बुभुत्सया ॥	७. (सारी बातें) जानने के लिये

श्लोकार्थ—हस्तिनापुर पहुँचकर बलराम जी नगर के बाहर एक उद्यान में ठहर गये। और सारी बातें जानने के लिये उद्धव को धृतराष्ट्र के पास भेजा ॥

सप्तदशः श्लोकः

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ।
दुर्योधनं च विधिवद् राममागतमब्रवीत् ॥१७॥

पदच्छेद— स: अभिवन्द्य अम्बिका पुत्रम् भीष्मम् द्रोणम् च बाह्लिकम् ।
दुर्योधनम् च विधिवत् रामम् आगतम् अब्रवीत् ॥

शब्दार्थ—

सः	१.	उन उद्धव ने	दुर्योधनम्	८.	दुर्योधन की
अभिवन्द्य	११.	वन्दना की (तथा)	च	७.	और
अम्बिका	३.	धृतराष्ट्र	विधि	६.	विधि
पुत्रम्	२.	अम्बिका पुत्र	वत्	१०.	पूर्वक
भीष्मम्	४.	भीष्म पितामह	रामम्	१२.	बलराम जी का
द्रोणम्	६.	द्रोणाचार्य की	आगतम्	१३.	आगमन
च बाह्लिकम् ।	५.	बाह्लिक और	अब्रवीत् ॥	१४.	बताया

श्लोकार्थ—उद्धव ने अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह बाह्लिक और द्रोणाचार्य को और विधि पूर्वक दुर्योधन की वन्दना की। तथा बलराम जी का आगमन बताया ॥

अष्टादशः श्लोकः

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ।
तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥१८॥

पदच्छेद— ते अति प्रीताः तम् आकर्ण्य प्राप्तम् रामम् सुहृत्तमम् ।
तम् अर्चयित्वा अभिययुः सर्वे मङ्गल पाणयः ॥

शब्दार्थ—

ते	१.	वे	तम्	८.	उन उद्धव का
अतिप्रीताः	७.	अत्यन्त प्रसन्न हुये (और)	अर्चयित्वा	९.	सत्कार करके
तम्	२.	उन	अभिययुः	१३.	अगवानी करने चले
आकर्ण्य	६.	सुन कर	सर्वे	१२.	सब (बलराम जी की
प्राप्तम्	५.	आये हुये	मङ्गल	११.	माँगलिक सामग्री लेकर
रामम्	४.	बलराम जी को	पाणयः ॥	१०.	हाथों में
सुहृत्तमम् ।	३.	परमबन्धु			

श्लोकार्थ— वे उन परम बन्धु बलराम जी को आये सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। और उन उद्धव का सत्कार करके हाथों में माँगलिक सामग्री लेकर सब बलराम जी की अगवानी करने चले ॥

एकोनविंशः श्लोकः

तं सङ्गम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ।
तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥

पदच्छेद— तम् सङ्गम्य यथा न्यायम् गाम् अर्घ्यम् च न्यवेदयन् ।
तेषाम् ये तत् प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥

शब्दार्थ—

तम्	३.	उनसे	तेषाम्	८.	उन लोगों में से
सङ्गम्य	४.	मिल कर	ये तत्	९.	जो उन बलराम के
यथा	२.	अनुसार	प्रभावज्ञाः	१०.	प्रभाव के जानकार थे (उन्होंने)
न्यायम्	१.	सम्बन्ध के	प्रणेमुः	१३.	प्रणाम किया
गाम्	५.	गाय	शिरसा	१२.	सिर झुका कर
अर्घ्यम् च	६.	और अर्घ्य	बलम् ॥	११.	बलराम जी को
न्यवेदयन् ।	७.	प्रदान किया			

श्लोकार्थ—सम्बन्ध के अनुसार उनसे मिलकर गाय और अर्घ्य प्रदान किया। उन लोगों में स जो उन बलराम के प्रभाव के जानकार थे। उन्होंने बलराम जी को सिर झुका कर प्रणाम किया ॥

विंशः श्लोकः

बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ।
परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥

पदच्छेद— बन्धून् कुशलिनः पृष्ट्वा श्रुत्वा शिवम् अनामयम् ।
परस्परम् अथो रामः बभाषे अविक्लवम् वचः ॥

शब्दार्थ—

बन्धून्	६.	बन्धुओं की	परस्परम्	२.	एक दूसरे का
कुशलिनः	७.	कुशल	अथो	१.	तदनन्तर
श्रुत्वा	८.	सुन कर	रामः	९.	बलराम जी
पृष्ट्वा	५.	पूछा (तथा)	बभाषे	१२.	बोले
शिवम्	३.	कुशल	अविक्लवम्	१०.	धीरता पूर्वक
अनामयम् ।	४.	मङ्गल	वचः ॥	११.	यह वचन

श्लोकार्थ—तदनन्तर एक दूसरे का कुशल-मङ्गल पूछा। तथा बन्धुओं की कुशल सुन कर बलराम जी धीरता पूर्वक यह वचन बोले ॥

एकविंशः श्लोकः

उग्रसेनः क्षितीशेशो यत् व आज्ञापयत् प्रभुः ।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं माविलम्बितम् ॥२१॥

पदच्छेद— उग्रसेनः क्षितीश ईशः यत् वः आज्ञापयत् प्रभुः ।
तत् अव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वम् मा विलम्बितम् ॥

शब्दार्थ—

उग्रसेनः	४.	उग्रसेन ने	तत्	७.	उसे
क्षितीश	१.	पृथ्वीपतियों के	अव्यग्रधियः	८.	एकाग्रता से
ईशः	२.	शासक	श्रुत्वा	९.	सुन कर
यत् वः	५.	जो आप लोगों को	कुरुध्वम्	१२.	उसका पालन कीजिये
आज्ञापयत्	६.	आज्ञा दी है	मा	१०.	बिना
प्रभुः ।	३.	प्रभु	विलम्बितम् ॥	११.	विलम्ब किये

श्लोकार्थ—पृथ्वी-पतियों के शासक प्रभु उग्रसेन ने जो आप लोगों को आज्ञा दी है। उसे एकाग्रता से सुन कर बिना विलम्ब किये उसका पालन कीजिये ॥

द्वाविंशः श्लोकः

यद् यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥

पदच्छेद— यद् यूयम् बहवः तु एकम् जित्वा अधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीत अथ तत् मृष्ये बन्धूनाम् ऐक्य काम्यया ॥

शब्दार्थ—

यद्	२.	जो	अबध्नीत	९.	बन्दी बना लिया है
यूयम्	३.	आप लोगों ने	अथ	८.	पश्चात्
बहवः	१.	बहुत से	तत्	१०.	सो
तु एकम्	५.	अकेले	मृष्ये	१४.	हम सह लेते हैं
जित्वा	७.	जीत कर	बन्धूनाम्	११.	सम्बन्धियों में
अधर्मेण	४.	अधर्म से	ऐक्य	१२.	एकता बनी रहे
धार्मिकम् ।	६.	धर्मात्मा (साम्ब) का	काम्यया ॥	१३.	इस कारण से

श्लोकार्थ—बहुत से जो आप लोगों ने अधर्म से अकेले धर्मात्मा साम्ब को जीत कर पश्चात् बन्दी बना लिया है, सो सम्बन्धियों में एकता बनी रहे इस कारण से हम सह लेते हैं ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

पदच्छेद— वीर्यं शौर्यं बल उन्नद्धम् आत्मशक्ति समम् वचः ।
कुरवः बल देवस्य निशम्य ऊचुः प्रकोपिताः ॥

शब्दार्थ—

वीर्यं	१. वीरता	कुरवः	९. कौरव लोग
शौर्यबल	२. शूरता और बल-पौरुष के	बलदेवस्य	६. बलराम को
उन्नद्धम	३. उत्कर्ष से परिपूर्ण (और)	निशम्य	८. सुनकर
आत्मशक्ति	४. अपनी शक्ति के	ऊचुः	११. बोले
समम्	५. अनुरूप	प्रकोपिताः ॥	१०. क्रोध से (तिलमिला कर)
वचः ।	७. वाणी की		

श्लोकार्थ—वीरता, शूरता और बल-पौरुष के उत्कर्ष से परिपूर्ण और अपनी शक्ति के अनुरूप बलराम की वाणी को सुनकर कौरव लोग क्रोध से तिलमिलाकर बोले ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षत्युपानद् वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

पदच्छेद— अहो महत् चित्रम् इदम् कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षति उपानत् वै शिरः मुकुट सेवितम् ॥

शब्दार्थ—

अहो	१. ओह !	आरुरुक्षति	१२. चढ़ना चाहती है
महत्	२. बड़े	उपानत्	८. आज पैरों की जूती
चित्रम्	३. आश्चर्य की बात है	वै	७. तभी तो
इदम्	४. इस	शिरः	११. सिर पर
कालगत्या	५. काल गति को	मुकुट	९. मुकुट से
दुरत्यया ।	६. टालना कठिन है	सेवितम् ॥	१०. सेवित

श्लोकार्थ—ओह ! बड़े आश्चर्य की बात है, इस काल गति को टालना कठिन है। तभी तो आज पैरों की जूती मुकुट से सेवित सिर पर चढ़ना चाहती है ॥

त्रयोविंशः श्लोकः

वीर्यशौर्यबलोद्रुद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

पदच्छेद— वीर्यं शौर्यं बल उद्रुद्धम् आत्मशक्ति समम् वचः ।
कुरवः बल देवस्य निशम्य ऊचुः प्रकोपिताः ॥

शब्दार्थ—

वीर्यं	१.	वीरता	कुरवः	८.	कौरव लोग
शौर्यबल	२.	शूरता और बल-पौरुष के	बलदेवस्य	६.	बलराम की
उद्रुद्धम	३.	उत्कर्ष से परिपूर्ण (और)	निशम्य	९.	सुनकर
आत्मशक्ति	४.	अपनी शक्ति के	ऊचुः	११.	बोले
समम्	५.	अनुरूप	प्रकोपिताः ॥	१०.	क्रोध से (तिलमिला कर)
वचः ।	७.	वाणी को			

श्लोकार्थ—वीरता, शूरता और बल-पौरुष के उत्कर्ष से परिपूर्ण और अपनी शक्ति के अनुरूप बलराम की वाणी को सुनकर कौरव लोग क्रोध से तिलमिलाकर बोले ॥

चतुर्विंशः श्लोकः

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षत्युपानद् वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

पदच्छेद— अहो महत् चित्रम् इदम् कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षति उपानत् वै शिरः मुकुट सेवितम् ॥

शब्दार्थ—

अहो	१.	ओह !	आरुरुक्षति	१२.	चढ़ना चाहती है
महत्	२.	बड़े	उपानत्	८.	आज पैरों की जूती
चित्रम्	३.	आश्चर्य की बात है	वै	७.	तभी तो
इदम्	४.	इस	शिरः	११.	सिर पर
कालगत्या	५.	काल गति को	मुकुट	९.	मुकुट से
दुरत्यया ।	६.	टालना कठिन है	सेवितम् ॥	१०.	सेवित

श्लोकार्थ—ओह ! बड़े आश्चर्य की बात है, इस काल गति को टालना कठिन है। तभी तो आज पैरों की जूती मुकुट से सेवित सिर पर चढ़ना चाहती है ॥

पञ्चविंशः श्लोकः

एते यौनेन सम्बद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।
वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥

पदच्छेद— एते यौनेन सम्बद्धाः सह शय्या आसन अशनाः ।
वृष्णयः तुल्यताम् नीताः अस्मत् दत्त नृप आसनाः ॥

शब्दार्थ—

एते	१. ये	वृष्णयः	२. यदुवंशी
यौनेन	३. वैवाहिक	तुल्यताम्	१३. बराबरी में
सम्बद्धाः	४. सम्बन्ध से जुड़ कर	नीताः	१४. आ गये
सह	५. हमारे साथ	अस्मत्	९. हमारे
शय्या	६. सोने	दत्त	१०. दिये हुये
आसन	७. बैठने और	नृप	११. राजा के
अशनाः ।	८. खाने लगे (तथा)	आसनाः ॥	१२. आसन पर बैठ कर हमारी

श्लोकार्थ—ये यदुवंशी वैवाहिक सम्बन्ध से जुड़ कर हमारे साथ सोने, बैठने और खाने लगे । तथा हमारे दिये हुये राजा के आसन पर बैठ कर हमारी बराबरी में आ गये ॥

षड्विंशः श्लोकः

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् ।
किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥

पदच्छेद— चामर व्यजने शङ्खम् आतपत्रम् च पाण्डुरम् ।
किरीटम् आसनम् शय्याम् भुञ्जन्ति अस्मत् उपेक्षया ॥

शब्दार्थ—

चामर	१. ये चँवर	किरीटम्	७. मुकुट
व्यजने	२. व्यजन (पंखा)	आसनम्	८. राजसिंहासन (तथा)
शङ्खम्	३. शङ्ख	शय्याम्	९. (राजोचित) शय्या आदि का
आतपत्रम्	५. छत्र	भुञ्जन्ति	१०. उपभोग
च	६. और	अस्मत्	११. हमारी
पाण्डुरम् ।	४. श्वेत	उपेक्षया ॥	१२. उपेक्षा के कारण कर रहे हैं

श्लोकार्थ—ये चँवर, व्यजन पंखा, शङ्ख, श्वेत छत्र मुकुट, राजसिंहासन तथा राजोचित शय्या आदि का उपभोग हमारी उपेक्षा के कारण कर रहे हैं ॥

सप्तविंशः श्लोकः

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ।
येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥२७॥

पदच्छेद— अलम् यदूनाम् नरदेव लाञ्छनैः दातुः प्रतीपैः फणिनाम् इव अमृतम् ।
ये अस्मत् प्रसाद उपचिताः हि यादवाः आज्ञापयन्ति अद्य गतत्रपाः बत ॥

शब्दार्थ—

अलम्	४.	व्यर्थ हुआ (क्योंकि) वे	ये अस्मत्	८.	जो हमारी
यदूनाम्	१.	यदुवंशियों को	प्रसाद	९.	कृपा से
नरदेव	२.	राज	उपचिताः हि	१०.	इतने समृद्ध शाली हुये (वे) हों
लाञ्छनैः	३.	चिह्न देना	यादवाः	११.	यदुवंशी
दातुः प्रतीपैः	५.	देने वाले के ही विरुद्ध हो गये	आज्ञापयन्ति	१३.	हमें आज्ञा देते हैं
फणिनाम् इव	६.	जैसे साँपों को	अद्य गतत्रपाः	१२.	आज निर्लज्ज होकर
अमृतम् ।	७.	दूध देने से वे विरुद्ध ही होते हैं	बत ॥	१४.	यह बड़े खेद की बात है

श्लोकार्थ—यदुवंशियों को राज-चिह्न देना व्यर्थ हुआ । क्योंकि वे देने वाले के ही विरुद्ध हो गये । जैसे साँपों को दूध देने से वे विरुद्ध ही होते हैं । जो हमारी कृपा से इतने समृद्धिशाली हुये, वे ही आज निर्लज्ज होकर हमें आज्ञा दे रहे हैं । यह बड़े खेद की बात है ॥

अष्टाविंशः श्लोकः

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ।
अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥

पदच्छेद— कथम् इन्द्रः अपि कुरुभिः भीष्म द्रोण अर्जुन आदिभिः ।
अदत्तम् अवरुन्धीत सिंह ग्रस्तम् इव उरणः ॥

शब्दार्थ—

कथम्	८.	कैसे	अदत्तम्	५.	न दी गई वस्तु का
इन्द्रः	६.	इन्द्र	अवरुन्धीत	९.	उपभोग कर सकते हैं
अपि	७.	भी	सिंह	११.	सिंह के
कुरुभिः	१.	कुरुवंशी	ग्रस्तम्	१२.	ग्रास को
भीष्म	२.	भीष्म	इव	१०.	जैसे
द्रोण	३.	द्रोण	उरणः ॥	१३.	भेड़ा नहीं छीन सकता
अर्जुन आदिभिः ।	४.	अर्जुन आदि के द्वारा			

श्लोकार्थ—कुरुवंशी भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि के द्वारा न दी गई वस्तु का इन्द्र भी कैसे उपभोग कर सकते हैं । जैसे सिंह के ग्रास को भेड़ा नहीं छीन सकता ॥

एकोनविंशः श्लोकः

श्रीशुक उवाच—जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ।
आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥

पदच्छेद— जन्म बन्धु श्रिया उन्नद्ध मदाः ते भरतर्षभ।
आश्राव्य रामम् दुर्वाच्यम् असभ्याः पुरम् आविशन् ॥

शब्दार्थ—

जन्म	२. अपनी कुलीनता	आश्राव्य	६. सुनाकर
बन्धु	३. बन्धुओं (तथा)	रामम्	७. बलराम को
श्रियः	४. धन सम्पत्ति के नशे से वे कुरुवंशी	दुर्वाच्यम्	८. दुर्वचन
उन्नद्ध	६. चूर हो रहे थे	असभ्याः	१०. असभ्य कौरव
मदाः ते	५. वे मद में	पुरम्	११. नगर में
भरतर्षभ।	१. हे परीक्षित्!	आविशन् ॥	१२. चले गये

श्लोकार्थ—हे परीक्षित्! अपनी कुलीनता, बन्धुओं तथा धन-सम्पत्ति के नशे में वे कुरुवंशी मद में चूर हो रहे थे। बलराम को दुर्वचन सुनाकर असभ्य कौरव नगर में चले गये ॥

त्रिंशः श्लोकः

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वावाच्यानि चाच्युतः।
अवोचत् कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

पदच्छेद— दृष्ट्वा कुरूणाम् दौः शील्यम् श्रुत्वा वाच्यानि च अच्युतः।
अवोचत् कोप संरब्धः दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥

शब्दार्थ—

दृष्ट्वा	३. देखकर	अवोचत्	१२. बोले
कुरूणाम्	१. कुरुवंशियों की	कोप	८. क्रोध से
दौः शील्यम्	२. दुःशीलता	संरब्धः	९. तमतमा कर
श्रुत्वा	५. सुनकर	दुष्प्रेक्ष्यः	७. न देखने योग्य
वाच्यानि च	४. और दुर्वचन	प्रहसन्	११. हँसते हुये
अच्युतः।	६. बलराम जी	मुहुः ॥	१०. बार-बार

श्लोकार्थ—कुरुवंशियों की दुःशीलता देखकर और दुर्वचन सुनकर बलराम जी न देखने योग्य क्रोध से तमतमा कर बार-बार हँसते हुये बोले ॥

एकत्रिंशः श्लोकः

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥३१॥

पदच्छेद— नूनम् नानामद उन्नद्धाः शान्तिम् न इच्छन्ति असाधवः ।
तेषाम् हि प्रशमः दण्डः पशूनाम् लगुडः यथा ॥

शब्दार्थ—

नूनम्	१.	निश्चित ही	तेषाम्	७.	उनको
नानामद	२.	अनेक बातों के मद से	हि	६.	ही है
उन्नद्धाः	३.	उन्मत्त	प्रशमः दण्डः	८.	शान्त करने का उपाय दण्ड
शान्तिम् न	५.	शान्ति नहीं	पशूनाम्	११.	पशुओं को ठीक करने का
इच्छन्ति	६.	चाहते हैं	लगुडः	१२.	उपाय लाठी है
असाधवः ।	४.	दुष्ट लोग	यथा ॥	१०.	जैसे

श्लोकार्थ—निश्चित ही अनेक बातों के मद से उन्मत्त दुष्ट लोग शान्ति नहीं चाहते हैं। उनको शान्त करने का उपाय दण्ड ही है। जैसे पशुओं को ठीक करने का उपाय लाठी है ॥

द्वात्रिंशः श्लोकः

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः ।
सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥३२॥

पदच्छेद— अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णम् च कुपितम् शनैः ।
सान्त्वयित्वा अहम् एतेषाम् शमम् इच्छन् इह आगतः ॥

शब्दार्थ—

अहो	१.	ओह !	सान्त्वयित्वा	७.	समझा कर
यदून्	३.	यदुवंशियों	अहम्	८.	मैं
सुसंरब्धान्	२.	क्रोध से भरे	एतेषाम्	९.	इन लोगों की
कृष्णम्	५.	श्रीकृष्ण को	शमम्	१०.	शान्ति
च कुपितम्	४.	और कुपित	इच्छन्	११.	चाहता हुआ
शनैः ।	६.	धीरे-धीरे	इह आगतः ॥	१२.	यहाँ आया

श्लोकार्थ—ओह ! क्रोध से भरे यदुवंशियों और कुपित श्रीकृष्ण को धीरे-धीरे समझा कर मैं इन लोगों की शान्ति चाहता हुआ यहाँ आया ॥

त्रयस्त्रिंशः श्लोकः

न इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ।
तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥३३॥

पदच्छेद— ते इमे मन्दमतयः कलह अभिरताः खलाः ।
तम् माम् अवज्ञाय मुहुः दुर्भाषान् मानिनः अब्रुवन् ॥

शब्दार्थ—

ते	१. वे	तम् माम्	८. मेरा
इमे	२. ये	अवज्ञाय	१०. तिरस्कार करके
मन्दमतयः	४. मूर्ख और	मुहुः	९. बार-बार
कलह	५. कलह के	दुर्भाषान्	११. दुर्वचन
अभिरताः	६. प्रेमी है	मानिनः	७. इन अभिमानियों ने
खलाः ।	३. दुष्ट लोग	अब्रुवन् ॥	१२. कहे हैं

श्लोकार्थ—परन्तु ये दुष्ट लोग मूर्ख और कलह के प्रेमी हैं। इन अभिमानियों ने मेरा बार-बार तिरस्कार करके दुर्वचन कहे हैं ॥

चतुस्त्रिंशः श्लोकः

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥

पदच्छेद— न उग्रसेन किल विभुः भोज वृष्णि अन्धक ईश्वरः ।
शक्र आदयः लोकपालाः यस्य आदेश अनुवर्तिनः ॥

शब्दार्थ—

न उग्रसेनः	८. वे उग्रसेन नहीं हैं (केवल)	शक्र	२. इन्द्र
किल	१. ठीक है	आदयः	३. आदि
विभुः	९. राजाधिराज	लोकपालाः	४. लोकपाल
भोजवृष्णि	१०. वे तो भोज, वृष्णि और	यस्य	५. जिनकी
अन्धक	११. अन्धक वंश वालों के	आदेश	६. आज्ञा का
ईश्वरः ।	१२. स्वामी हैं	अनुवर्तिनः ।	७. पालन करते हैं

श्लोकार्थ—ठीक है ! इन्द्र आदि लोकपाल जिनकी आज्ञा का पालन करते हैं, वे उग्रसेन केवल राजाधिराज नहीं हैं; वे तो केवल भोज, वृष्णि और अन्धक वंश वालों के ही स्वामी हैं ॥

पञ्चत्रिंशः श्लोकः

सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥३५॥

पदच्छेद— सुधर्मा आक्रम्यते येन पारिजातः अमर अङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सः असौ न किल अध्यासन अर्हणः ॥

शब्दार्थ—

सुधर्मा	२.	सुधर्मा सभा को	आनीय	७.	लाकर
आक्रम्यते	३.	अधिकार में कर लिया है	भुज्यते	८.	उसका उपभोग करते हैं
येन	१.	जिन्होंने	सः असौ	९.	वे श्रीकृष्ण भी
पारिजातः	६.	पारिजात को	न किल	१२.	नहीं है
अमर	४.	जो देवताओं के	अध्यासन	१०.	राजसिंहासन के
अङ्घ्रिपः ।	५.	वृक्ष	अर्हणः ॥	११.	अधिकारी

श्लोकार्थ—जिन्होंने सुधर्मा सभा को अधिकार में कर लिया है। जो देवताओं के वृक्ष पारिजात को लाकर उसका उपभोग करते हैं। वे श्रीकृष्ण भी राजसिंहासन के अधिकारी नहीं हैं ॥

षट्त्रिंशः श्लोकः

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥३६॥

पदच्छेद— यस्य पादयुगम् साक्षात् श्रीः उपास्ते अखिलेश्वरी ।
सः न अर्हति किल श्रीशः नरदेव परिच्छदान् ॥

शब्दार्थ—

यस्य	४.	जिनके	सः	८.	वे
पादयुगम्	५.	दोनों चरणों की	न अर्हति	१२.	नहीं रख सकते
साक्षात्	३.	स्वयम्	किल	७.	क्या
श्रीः	२.	लक्ष्मी	श्रीशः	९.	लक्ष्मी पति (भगवान्)
उपास्ते	६.	उपासना करती हैं	नरदेव	१०.	राजा की
अखिलेश्वरी ।	१.	सारे जगत् की स्वामिनी	परिच्छदान् ॥	११.	सामग्रियों को

श्लोकार्थ—सारे जगत् की स्वामिनी लक्ष्मी स्वयम् जिनके दोनों चरणों की उपासना करती हैं, क्या वे लक्ष्मीपति भगवान् राजा की सामग्रियों को नहीं रख सकते हैं ॥

सप्तत्रिंशः श्लोकः

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥३७॥

पदच्छेद—यस्य अङ्घ्रि पङ्कज रजः अखिल लोकपालैः मौलि उत्तमैः धृतम् उपासित तीर्थं तीर्थम् । ब्रह्मा भवः अहम् अपि यस्य कलाः कलायाः श्रीम् च उद्वहेम चिरम् अस्य नृपासनम् क्व ॥

शब्दार्थ—

यस्य अङ्घ्रि	१. जिनके चरण	ब्रह्मा-भवः	९. ब्रह्मा-शङ्कर और		
पङ्कज रजः	२. कमलों की धूलि	अहम् अपि	१०. मैं भी और		
अखिल	३. सारे	यस्य	१२. जिनकी		
लोकपालैः	४. लोकपाल अपने	कला: कलायाः	१३. कला की कला हैं तथा जिनकी		
मौलि उत्तमैः	५. श्रेष्ठ मुकुट पर	श्रीः च	११. लक्ष्मी		
धृतम्	६. धारण करते हैं (जो धूलि)	उद्वहेम चिरम्	१४. धूलि को चिरकाल तक धारण करते हैं		
उपासित	७. सन्तों द्वारा सेवित	अस्य	१५. उनके लिये		
तीर्थं-तीर्थम् ।	८. तीर्थों को भी तीर्थ बनाती है	नृपासनम् क्व ॥	१६. राजसिंहासन कहाँ है		

श्लोकार्थ—जिनके चरण कमलों की धूलि लोकपाल अपने श्रेष्ठ मुकुट पर धारण करते हैं। जो धूलि सन्तों द्वारा सेवित तीर्थों को भी तीर्थ बनाती है। ब्रह्मा-शङ्कर और लक्ष्मी जिनकी कला की कला हैं तथा जिनकी धूलि को चिरकाल तक धारण करते हैं। उनके लिये राजसिंहासन कहाँ है ? ॥

अष्टात्रिंशः श्लोकः

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

पदच्छेद— भुञ्जते कुरुभिः दत्तम् भूखण्डम् वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयम् स्वयम् तु कुरवः शिरः ॥

शब्दार्थ—

भुञ्जते	६. भोगते हैं	उपानहः	९. जूती हैं (तथा)
कुरुभिः	३. कौरवों का	किल	७. क्या खूब !
दत्तम्	४. दिया हुआ	वयम्	८. हम लोग तो
भूखण्डम्	५. पृथ्वी का एक टुकड़ा	स्वयम्	११. स्वयम्
वृष्णयः	१. यदुवंशी	कुरवः	१०. कौरव लोग
किल ।	२. लोग तो	शिरः ॥	१२. सिर हैं

श्लोकार्थ—यदुवंशी लोग तो कौरवों का दिया हुआ पृथ्वी का एक टुकड़ा भोगते हैं। क्या खूब हम लोग तो जूती हैं तथा कौरव लोग स्वयं सिर हैं ॥

एकोनचत्वारिंशः श्लोकः

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ।
असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥३९॥

पदच्छेद— अहो ऐश्वर्य मत्तानाम् मत्तानाम् इव मानिनाम् ।
असम्बद्धाः गिरः रूक्षाः कः सहेत अनुशासिता ॥

शब्दार्थ—

अहो	१.	ओह !	असम्बद्धाः	८.	बिना सिर पैर की
ऐश्वर्य	२.	ऐश्वर्य से	गिरः	९.	बातों को
मत्तानाम्	३.	उन्मत्त तथा	रूक्षाः	७.	रूखी और
मत्तानाम्	४.	पागल	कः	१०.	कौन
इव	५.	सरीखे	सहेत	११.	सहन कर सकता है
मानिनाम् ।	६.	घमंडी (कौरवों) की	अनुशासिता ॥	११.	शासक

श्लोकार्थ—ओह ! ऐश्वर्य से उन्मत्त तथा पागल सरीखे घमंडी कौरवों की रूखी और बिना सिर पैर की बातों को कौन शासक सहन कर सकता है ॥

चत्वारिंशः श्लोकः

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥

पदच्छेद— अद्य निष्कौरवीम् पृथ्वीम् करिष्यामि इति अमर्षितः ।
गृहीत्वा हलम् उत्तस्थौ दहन् इव जगत् त्रयम् ॥

शब्दार्थ—

अद्य	१.	आज मैं	गृहीत्वा	८.	लेकर
निष्कौरवीम्	३.	कौरव-विहीन	हलम्	७.	(बलराम जी) हल को
पृथ्वीम्	२.	पृथ्वी को	उत्तस्थौ	१२.	उठ कर खड़े हो गये
करिष्यामि	४.	कर डालूँगा	दहन्	११.	जलाते हुये
इति	५.	इस प्रकार कहते हुये	इव	९.	मानों
अमर्षितः ।	६.	क्रोध से भर कर	जगत् त्रयम् ॥	१०.	तीनों लोक को

श्लोकार्थ—आज मैं पृथ्वी को कौरव-विहीन कर डालूँगा। इस प्रकार कहते हुये क्रोध से भर कर बलराम जी हल को लेकर मानों तीनों लोक को जलाते हुये उठ कर खड़े हो गये ॥

एकचत्वारिंशः श्लोकः

लाङ्गलाग्रेण नगरमुत्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥

पदच्छेद— लाङ्गल अग्रेण नगरम् उत्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष सः गङ्गायाम् प्रहरिष्यन् अमर्षितः ॥

शब्दार्थ—

लाङ्गल	१. हल की	विचकर्ष	१०. खींचने लगे
अग्रेण	२. नोक से	सः	८. वे बलराम जी
नगरम्	४. नगर पर	गङ्गायाम्	७. गङ्गा में डुबाने के लिये
उत्विदार्य	६. उखाड़ कर	प्रहरिष्यन्	५. प्रहार करते हुये (उसे)
गजाह्वयम् ।	३. हस्तिनापुर	अमर्षितः ॥	९. अत्यन्त क्रोध से

श्लोकार्थ—हल की नोक से हस्तिनापुर नगर पर प्रहार करते हुये उसे उखाड़ कर गङ्गा में डुबाने के लिये वे बलराम जी अत्यन्त क्रोध से उसे खींचने लगे ॥

द्वाचत्वारिंशः श्लोकः

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसम्भ्रमाः ॥४२॥

पदच्छेद— जलयानम् इव आघूर्णम् गङ्गायाम् नगरम् पतत् ।
आकृष्यमाणम् आलोक्य कौरवाः जात सम्भ्रमाः ॥

शब्दार्थ—

जलयानम्	३. नौका के	आकृष्यमाणम्	१. हल के खींचने पर
इव	४. समान	आलोक्य	८. देख कर
आघूर्णम्	२. जल में डगमगाती हुई	कौरवाः	९. कौरव
गङ्गायाम्	६. गङ्गा में	जात	११. उठे
नगरम्	५. नगर को	सम्भ्रमाः ॥	१०. घबड़ा
पतत् ।	७. गिरते हुये		

श्लोकार्थ—हल से खींचने पर जल में डगमगाती हुई नौका के समान नगर को गङ्गा में गिरते हुये देख कर कौरव घबड़ा उठे ॥

त्रिचत्वारिंशः श्लोकः

तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः ।
सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

पदच्छेद— तम् एव शरणम् जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः ।
सलक्ष्मणम् पुरस्कृत्य साम्बम् प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥

शब्दार्थ—

तम् एव	७. उन ही	सलक्ष्मणम्	२. लक्ष्मणा के साथ
शरणम्	६. शरण में	पुरस्कृत्य	४. आगे करके
जग्मुः	१०. गये	साम्बम्	३. साम्ब को
सकुटुम्बाः	५. कुटुम्ब के साथ	प्राञ्जलयः	६. हाथ जोड़ कर
जिजीविषवः ।	१. तब वे लोग प्राण रक्षा के लिये	प्रभुम् ॥	८. प्रभु बलराम जी की

श्लोकार्थ—तब वे लोग प्राण रक्षा के लिये लक्ष्मणा के साथ साम्ब को आगे करके कुटुम्ब के साथ हाथ जोड़ कर उन ही प्रभु बलराम जी की शरण में गये ॥

चतुःचत्वारिंशः श्लोकः

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥४४॥

पदच्छेद— राम राम अखिलाधार प्रभावम् न विदाम ते ।
मूढानाम् नः कुबुद्धीनाम् क्षन्तुम् अर्हसि अतिक्रमम् ॥

शब्दार्थ—

राम राम	१. हे लोकाभिराम बलराम जी	मूढानाम्	८. मूर्ख
अखिलाधार	२. सारे जगत् के आधार	नः	७. हम
प्रभावम्	४. प्रभाव को	कुबुद्धीनाम्	६. दुर्बुद्धियों का
न	५. नहीं	क्षन्तुम्	११. आप क्षमा करने
विदामः	६. जानते	अर्हसि	१२. योग्य हैं
ते ।	३. हम आपके	अतिक्रमम् ॥	१०. अपराध

श्लोकार्थ—हे लोकाभिराम बलराम जी ! सारे जगत् के आधार हम आपके प्रभाव को नहीं जानते, हम मूर्ख कुबुद्धियों का अपराध आप क्षमा करने योग्य हैं ॥

पञ्चचत्वारिंशः श्लोकः

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥४५॥

पदच्छेद— स्थिति उत्पत्ति अप्ययानाम् त्वम् एकः हेतुः निराश्रयः ।
लोकान् क्रीडनकानिईश क्रीडतः ते वदन्ति हि ॥

शब्दार्थ—

स्थिति	२. स्थिति	लोकान्	११. सारे लोक
उत्पत्ति	३. उत्पत्ति और	क्रीडनकानि	१२. खिलौने हैं
अप्ययानाम्	४. प्रलय के	ईश	८. हे प्रभो !
त्वम्	१. आप (जगत् की)	क्रीडतः	६. क्रीडा करने वाले
एकः	५. एक मात्र	ते	१०. आपके ये
हेतुः	६. कारण (एवम्)	वदन्ति	१४. ऋषि लोग कहते हैं
निराश्रयः।	७. निराधार हैं	हि ॥	१३. ऐसा ही

श्लोकार्थ—आप जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय के एक मात्र कारण एवम् निराधार हैं। हे प्रभो ! क्रीडा करने वाले आपके ये सारे लोक खिलौने हैं। ऐसा ही ऋषि लोग कहते हैं ॥

षट्चत्वारिंशः श्लोकः

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

पदच्छेद— त्वम् एव मूर्ध्नि इदम् अनन्त लीलया भूमण्डलम् बिभर्षि सहस्र मूर्धन् ।
अन्ते च यः स्व आत्मनि रुद्ध विश्वः शेषे अद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥

शब्दार्थ—

त्वम् एव	३. आप ही	अन्ते च	६. अन्त में (प्रलय आने पर)
मूर्ध्नि	७. अपने सिर पर	यः	१०. जो आप
इदम्	४. इस	स्व	११. अपने
अनन्त	१. हे अनन्त !	आत्मनि	१२. आत्मा के अन्दर
लीलया	६. खेल-खेल में	रुद्धविश्वः	१३. जगत् को लीन करके
भूमण्डलम्	५. भूमण्डल को	शेषे	१६. शयन करते हैं
बिभर्षि	८. धारण करते हैं	अद्वितीयः	१४. अद्वितीय रूप से
सहस्रमूर्धन् ।	२. सहस्र सिर वाले	परिशिष्यमाणः॥	१५. बचे रह कर

श्लोकार्थ—हे अनन्त ! सहस्र सिर वाले ! आप ही इस भूमण्डल को खेल-खेल में अपने सिर पर धारण करते हैं। अन्त में जो आप अपने आत्मा के अन्दर जगत् को लीन करके अद्वितीय रूप से बचे रह कर शयन करते हैं ।।

सप्तचत्वारिंशः श्लोकः

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥

पदच्छेद— कोपः ते अखिल शिक्षार्थम् न द्वेषात् न च मत्सरात् ।
बिभ्रतः भगवन् सत्त्वम् स्थिति पालन तत्परः ॥

शब्दार्थ—

कोपः	८. क्रोध	बिभ्रतः	६. धारण किये हुये हैं
ते	७. आपका	भगवन्	१. हे भगवन् ! आप
अखिल	९. सब को	सत्त्वम्	५. सत्त्वमय शरीर
शिक्षार्थम्	१०. शिक्षा देने के लिये हैं	स्थिति	२. जगत् की स्थिति और
न द्वेषात्	११. यह न तो द्वेष से और	पालन	३. पालन के लिये
न च मत्सरात् ।	१२. न मत्सर के कारण होता है	तत्परः ॥	४. तत्पर होकर

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! आप जगत् की स्थिति और पालन के लिये तत्पर होकर सत्त्वमय शरीर धारण किये हुये हैं । आपका क्रोध सब को शिक्षा देने के लिये है । यह न तो द्वेष से और न मत्सर के कारण होता है ॥

अष्टचत्वारिंशः श्लोकः

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

पदच्छेद— नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधर अव्यय ।
विश्वकर्मन् नमस्ते अस्तु त्वाम् वयम् शरणम् गताः ॥

शब्दार्थ—

नमस्ते	६. आप को नमस्कार है	विश्वकर्मन्	७. विश्व के रचयिता
सर्व	१. समस्त	नमस्ते	८. आप को नमस्कार
भूतात्मन्	२. प्राणि स्वरूप	अस्तु	९. हो
सर्वशक्ति	३. सभी शक्तियों को	त्वाम्	११. आपको
धर	४. धारण करने वाले	वयम्	१० हम लोग
अव्यय ।	५. अविनाशी	शरणम्गताः ॥	१२. शरणागत हैं

श्लोकार्थ—समस्त प्राणि स्वरूप, सभी शक्तियों को धारण करने वाले, के अविनाशी आपको नमस्कार है । विश्व के रचयिता आपको नमस्कार हो । हम लोग आपको शरणागत हैं ॥